समाजशास्त्रीय अनुसंधान

का

तर्क और विधियाँ

LOGIC & METHODS OF SOCIOLOGICAL RESEARCH

डॉ एम एम लवानिया

पूर्व-आचार्य एव अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग

दयानन्द कॉलिज, अजमेर

एव

शशी के जैन

एम ए (समाजशास्त्र)

©

रिसर्च पब्लिकेशन्स

नयी दिल्ली ○ जयपुर

प्राक्कथन

जिज्ञासा मानव का स्वभाव रही है। अपनी जिज्ञासा के कारण ही मनुष्य ने आदिकाल से ही अपने चारो ओर पाए जाने वाले पर्यावरण को समझने का प्रयास किया है। न केवल पर्यावरण बल्कि सामाजिक सम्बन्ध, मानवीय व्यवहार एव जटिल अन्त क्रिया प्रतिमान भी उसकी जिज्ञासा की परिधि मे आये।

समाजशास्त्र के पिता 'आगस्त काम्टे' ने मानवीय मस्तिष्क के बौद्धिक विकास की तीन अवस्थाओ का उल्लेख किया है—यथा धार्मिक, तात्विक एव वैज्ञानिक। 'सामाजिक अनुसन्धान' विकास की तीसरी कडी से जुडा हुआ है, जहाँ ज्ञान प्राप्त करने का सर्वाधिक उपयुक्त सत्य एव विश्वसनीय आधार पर वैज्ञानिकता को माना जाता है। वस्तुनिष्ठ (Objective) होकर सुव्यवस्थित एव क्रमबद्ध रूप से वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा किसी समस्या के बारे मे ज्ञान प्राप्त करना ही 'अनुसन्धान' है।

कोई भी अनुसन्धानकर्ता अपनी अनुसन्धान-यात्रा को सफलतापूर्वक पूरी नहीं कर सकता, जब तक कि उसे आधारभूत अनुसन्धान अवधारणाओ, प्रक्रियाओं, उपकरणो, प्रविधियो, पद्धतियो, सिद्धान्तो एव अनुसन्धानो के दौरान आने वाली समस्याओ और उनके सम्भावित उपायो की जानकारी न हो। प्रस्तुत कृति 'समाजशास्त्रीय अनुसन्धान का तर्क एव विधियाँ' सम्बद्ध परीक्षार्थियो के पाठ्यक्रम को ध्यान मे रखकर तैयार की गई है। अनुसन्धान जैसे दुर्ग्राह्य विषय को ग्राह्य बनाने का प्रयास हमने अपनी पूरी क्षमतानुसार किया है। उदाहरणो एव रेखाचित्रो के प्रस्तुतीकरण के कारण पुस्तक की उपयोगिता मे वृद्धि हुई है, ऐसी हम अपेक्षा करते हैं।

अनुसन्धान मे विभिन्न विषयो का समावेश है—दर्शन, तर्कशास्त्र, सांख्यिकी, मनोविज्ञान आदि। प्रस्तुत कृति मे इन सभी का आवश्यकतानुसार समावेश है और सम्पूर्ण समाजशास्त्रीय अनुसन्धान का सक्षिप्त एव सरल परिचय इसके पाठको को सुगमता से प्राप्त होता है।

जिन लेखको की कृतियो का उपयोग किया गया है और जिन सहयोगियों ने इस कृति को तैयार करने मे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहयोग दिया है, उन सभी के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

लेखकद्वय

प्रकाशकीय

'समाजशास्त्रीय अनुसन्धान का तर्क एवं विधियाँ' नामक कृति इस विषय पर लिखी गई एक अनुपम कृति है। प्रस्तुत पुस्तक को इस रूप में प्रस्तुत करने में लेखकों ने अंग्रेजी माध्यम की सौ से अधिक पुस्तकों से सामग्री जुटाई है। अनुसन्धान एक ऐसा विषय है जो विज्ञान, दर्शन, मनोविज्ञान एवं तर्क के समन्वय के कारण अत्यन्त जटिलता रखता है। पुस्तक के कलेवर में मुख्य रूप में निम्नांकित कृतियों का सहारा लिया गया है—

1. *Madge* The Tools of Social Science
2. *Goode & Hatt* Research Method ı Social Science
3. *P V Young* Scientific Social rvey and Research
4. *Selitz, Jahoda & Others* Research Methods in Behavioural Science
5. *Gideon Soberg & Rober Neti* A Methodology for Social Research
6. *Morris Rossenberg* The Logic of Survey Analysis
7. *Lynd Robert* Knowledge for What ?
8. *Gross Alwellyn* Sociological Theory—Inquiries and Paradigms
9. *Lazarsfeld Paul F & Morris Rosenberg (ed)* The Language of Social Research
10. *John C Makinney* Constructing Typology and Social Theory
11. *Gibbs Jack* Sociological Theory Construction

आशा है, प्रस्तुत कृति इस विषय के अध्ययनकर्त्ताओं के लिए एक उपयोगी व सराहनीय प्रयास सिद्ध होगी।

अनुक्रमणिका

है जब तथ्यो का सकलन कर लिया जाए। एक बार वर्गीकरण का निर्धारण हो जाने के पश्चात् सकलित तथ्यों मे से भिन्न-भिन्न तथ्यो को भिन्न श्रेणियो मे वर्गीकृत किया जाना है। वर्गीकरण के पश्चात् ही सारणीयन किया जाता है जिसमे तथ्यो को सरल (Simple) या जटिल (Complex) सारणियो मे प्रस्तुत किया जाता है।

(6) सामान्यीकरण (Generalization)

वैज्ञानिक पद्धति का अन्तिम चरण सामान्यीकरण का होता है। प्रत्येक अनुसन्धान मे अनुसन्धानकर्त्ता का उद्देश्य विभिन्न प्रघटनाओ के बारे मे सामान्यीकरण प्राप्त करना होता है। प्राप्त की गई एकरूपता के आधार पर ही कतिपय निष्कर्षों का प्रतिपादन किया जाता है तथा उन निष्कर्षों के आधार पर सामान्यीकरण निकाले जा सकते हैं।

सामान्यीकरण प्राप्त करने की क्षमता किसी भी विज्ञान के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता है। किसी विज्ञान मे सिद्धान्त (Theory) मात्र अनुमान पर आधारित नही होते हैं। वे रचनात्मक अध्ययनो के सग्रह से विकसित होते हैं, तथा उनका समय-समय पर आनुभविक अध्ययनो के द्वारा सत्यापन (Verification) किया जाता है जिनके आधार पर ही व्यवस्थित सामान्यीकरणों का निर्माण होता है। यद्यपि सामाजिक विज्ञानो मे अत्यधिक निश्चित नियमो का निर्माण सम्भव नही है, क्योकि सामाजिक तथ्यो को निश्चित रूप से परिमापित नही किया जा सकता है।

वैज्ञानिक पद्धति मे तथ्यो की व्यवस्था तथा सामान्यीकरणो का निर्माण अवधारणाओ (Concepts) के निर्माण के साथ-साथ होता है। वैज्ञानिक पद्धति के सफल प्रयोग के लिए अनुसन्धानकर्त्ता मे सतत् चिन्तन, निरन्तर खोज तथा अपने स्वय की व्यवस्था के विश्लेषण के अटल निर्णय की आवश्यकता होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैज्ञानिक प्रणाली के इन आधारभूत सिद्धान्तो का पालन करके एक वैज्ञानिक या अनुसन्धानकर्त्ता यथार्थ सिद्धान्तो के निर्माण म सफल होता है। इनके अभाव मे अनुसन्धान वस्तुनिष्ठ (Objective) नही होता है तथा अनेक बार असफल भी हो जाता है।

अवधारणाएँ[1]
(Concepts)

सामाजिक अनुसन्धान मे अवधारणाओ, प्रत्ययो अथवा सप्रत्ययों का अत्यन्त महत्व है। सामान्यत (प्रत्येक विज्ञान का उद्देश्य यथार्थ (Reality) की खोज करना होता है।) इस यथार्थ के विभिन्न पक्षो की व्याख्या विचारो के माध्यम से होती है) अत प्रत्येक विज्ञान अपनी जानकारी को प्रस्तुत करने की लिए अपनी

1 अग्रेजी भाषा के 'Concept' शब्द को हिन्दी मे अवधारणा, प्रत्यय, सम्प्रत्यय एव सम्बोध भी कहा जाता है। सुगमता व सरलता की दृष्टि से हम 'अवधारणा' का प्रयोग कर रहे हैं।

एक पदावली (Terminology) अथवा दूसरे शब्दों में कुछ अवधारणाओं का निर्माण करता है। विज्ञान इस प्रकार निष्कर्षों को सम्प्रेषित करने के लिए अवधारणाओं का निर्माण करता है। इसलिए विज्ञान में अवधारणात्मक व्यवस्था का काफी महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। वस्तुतः विज्ञान के सैद्धान्तिक पक्ष को ही 'अवधारणात्मक व्यवस्था' के नाम से पुकारा जाता है।

विज्ञान का मूल उद्देश्य है सार्वभौमिक (Universal) नियमों की खोज। किन्तु सभी वस्तुएँ एवं घटनाएँ एक दूसरे से किसी न किसी सीमा तक भिन्न होती हैं। यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि फिर सार्वभौमिकता की प्राप्ति किस प्रकार होती है? इसके लिए हम अमूर्तता (Abstruction) का सहारा लेते हैं। किसी भी कार्य के बहुत से कारण ज्ञात हैं। हम एक नियम में इनमें से बहुधा केवल एक का प्रभाव देखते हैं। यद्यपि सभी घटनाएँ कुछ न कुछ भिन्न होती हैं। अध्ययन का कारण सभी घटनाओं में होता है। कारण को इस अमूर्त रूप में रखने से उसका कार्य या प्रभाव स्पष्ट हो जाता है। प्रत्येक 'कार्य' और 'कारण' को इस अमूर्त रूप में 'अवधारणा' (Concept) प्रत्यय या सम्प्रत्यय कहा जाता है।

एक उदाहरण से हम 'अवधारणा' को और अधिक सुगमता से समझ सकते हैं। सामान्यतः अलग-अलग विद्यार्थियों के परीक्षफल (Results) अलग-अलग होते हैं। अब हम यह मान लें कि परीक्षाफल का प्रमुख कारण बुद्धि एवं परिश्रम है। प्रत्येक विद्यार्थी में इनका विशेष प्रकार से समावेश होता है और इसीलिए उनके परीक्षाफल अलग-अलग होते हैं। अब यदि हम केवल 'बुद्धि' (Intelligence) का प्रभाव जानना चाहें तो दूसरे कारकों को स्थिर रखकर जान सकते हैं। यदि दूसरे कारकों के दृष्टिकोण से एक जैसे विद्यार्थियों में अधिक बुद्धि वाले का फल अच्छा हो और कम बुद्धि वाले का खराब हो तो हम कहेंगे कि 'बुद्धि अच्छी होने से परीक्षाफल भी अच्छा होता है।" यहाँ हम यह देखते हैं कि यद्यपि परीक्षार्थी अलग-अलग हैं, यह नियम सबकी बुद्धि के विषय में है, अर्थात् सार्वभौमिक (Universal) है। इस प्रकार 'बुद्धि' यहाँ एक अवधारणा है। इसी प्रकार विज्ञान के प्रत्येक नियम में अवधारणाओं का प्रयोग सामान्यतः पाया जाता है। जैसे लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, भार, आयतन, तापमान, राज्य, तन्त्र, व्यक्तित्व आदि समस्त अवधारणाएं हैं।

अवधारणाओं का प्रयोग केवल 'विज्ञान' (Science) में ही होता हो, ऐसा नहीं है अपितु सामान्य चिन्तन एवं वार्तालाप के लिए भी यह आवश्यक होती है। जब कोई बच्चा कहता है कि "मुझे टॉफी और खेल अच्छे लगते हैं।" तो वह तीन अवधारणाओं 'टॉफी', 'खेल' व 'अच्छा लगना' का प्रयोग कर रहा है। इसी प्रकार अवधारणाएँ विभिन्न वर्गों जैसे फल फूल आदि के लिए हो सकती है। वे क्रियाओं के लिये जैसे सीखना लड़ना, आदि के लिए हो सकती हैं। वे विशेषणों जैसे अच्छा, बुरा के लिए हो सकती हैं। व क्रिया-विशेषणों जैसे तेज, धीमा आदि के लिए हो सकती हैं। वे सम्बन्ध के लिए हो सकती हैं। जैसे अन्दर, बाहर आदि।[1]

1 डॉ सत्यदेव : सामाजिक विज्ञानों की शोध पद्धतियाँ, पृ 28-29

अवधारणा की परिभाषाएँ
(Definitions of Concepts)

('अवधारणा' को परिभाषित करना अत्यन्त कठिन कार्य है, क्योकि अवधारणा का सम्बन्ध एक अमूर्त सामान्य विचार से होता है, जो कि किसी घटना, प्रक्रिया, एक प्रकार के अनुरूप तथ्यो के विषय मे सोच-विचार कर व उसके विभिन्न तत्वों के परस्पर सम्बन्धो को ध्यान मे रखकर बनाया जाता है।) फिर भी अनेक समाजशास्त्रियो ने अवधारणा को परिभाषित करने का श्रम किया है। उनमे से कुछ प्रमुख हैं—

गुडे एव हट्ट ने अपनी पुस्तक 'मेथड्स इन सोशल रिसर्च' मे लिखा है कि "सभी अवधारणाएँ अमूर्त (Abstract) होती हैं, तथा वे यथार्थता (Reality) के कुछ ही विशेष पक्षों का प्रतिनिधित्व करती हैं।"[1]

एच पी फेयरचाइल्ड (H P Fairchild) ने 'डिक्शनरी ऑफ सोश्योलोजी' म अवधारणा को परिभाषित करने हुए लिखा है कि "वे विशेष मौखिक सकेत जो कि समाज के वैज्ञानिक अवलोकन तथा चिन्तन से निकाले गए सामान्यीकृत विचारो को दिए जाते हैं।"[2]

जी. डकन मिचेल (G Duncan Mitchell) ने भी अपने सम्पादित ग्रन्थ 'ए डिक्शनरी ऑफ सोश्योलोजी' मे लिखा है कि 'अवधारणा एक विचारात्मक गुण या सम्बन्ध की ओर सकेत करने वाला पद है।"[3] एक अन्य स्थान पर मिचैल 'सिद्धान्त' (Theory) के साथ इसके सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि "समाजशास्त्र म अमूर्तिकरण की दृष्टि मे अवधारणा सिद्धान्त से निम्न स्तर पर होती है तथापि वह सिद्धान्त का मूल अग होती है, क्योकि सिद्धान्त इन अवधारणाओ से ही बनते हैं।"

रॉबर्ट के मर्टन (Robert K Merton) ने भी लिखा है कि "अवधारणा किसका अवलोकन किया जाना है, उसको परिभाषित करती है, ये वे चर (Variables) होते हैं जिनके मध्य आनुभविक सम्बन्धो की स्थापना की जाती है। जब इन प्रस्थापनाओ मे तार्किक सम्बन्ध स्थापित किया जाता है तो सिद्धान्त का जन्म होता है।"[5]

दि कन्साइज ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार "अवधारणा वस्तुओ के एक वर्ग का विचार अथवा सामान्य विचार होता है।"[6]

सैनफोर्ड लैबोविज एव रॉबर्ट हैगडार्न ने 'इन्ट्रोडक्शन टू सोशल रिसर्च' मे इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि "एक अवधारणा ऐसा शब्द अथवा सकेत है जो अन्यथा विभिन्न प्रकार की घटनाओ मे समानता का प्रतिनिधित्व करता है।

1 *Goode and Hatt* Methods in Social Research, p 41
2 *H P Fairchild* Dictionary of Sociology, p 56
3 *G Duncan Mitchell* A Dictionary of Sociology, 1968, p 37
4 *G Duncan Mitchell* Ibid, p 37
5 *Robert K. Merton* Social Theory and Social Structure, p. 89
6 Quoted from the Concise Oxford Dictionary

उदाहरणार्थ यदि मनुष्य अपने अनेक वैयक्तिक लक्षणों मे भिन्न होते हैं, किन्तु सभी को कुछ जैविक विशेषताओं मे समानता के आधार पर स्तनधारी की श्रेणी म वर्गीकृत किया जा सकता है।"[1]

पी. वी यग (P V Young) ने इसको परिभाषित करते हुए लिखा है कि 'सामाजिक विश्लेषण की प्रक्रिया मे अन्य तथ्यो से पृथक् किए गए तथ्यो के एक नए वर्ग को एक अवधारणा का नाम दिया जा सकता है।'[2]

मेकमिलन (Macmillan) ने 'सोशल रिसर्च स्ट्रेटजी एण्ड टेक्टिक्स' मे लिखा है कि 'अवधारणाएँ घटनाओं को समझने के तरीके हैं वैज्ञानिक अवधारणाएँ अमूर्तीकरण (Abstruction) होते हैं जो कि चुने हुए व अधिसीमित क्षेत्र रखने वाले होते हैं।[3]

ऊपर हमने अनेक समाजशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत अवधारणाओं की परिभाषाओं को प्रस्तुत किया है। इन परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अवधारणाएँ घटनाओं को समझने के तरीके है। अवधारणाएँ न केवल वैज्ञानिक ढग के प्रयोग के लिए आवश्यक हैं बल्कि वे प्रत्येक मानवीय क्रिया के क्षेत्र मे सचार तथा विचारो के आदान प्रदान के लिए आवश्यक हैं। वैज्ञानिक अवधारणा अमूर्त होती है, जो कि चुने हुए व अनिसीमित क्षेत्र म सम्बन्धित होती है। अवधारणाओं को हम वस्तुओं व घटनाओं को समझने के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले पद के नाम से भी सम्बोधित कर सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि अवधारणा एक अमूर्त सामान्य विचार होता है जो कि किसी घटना, प्रक्रिया, एक प्रकार के अनुरूप तथ्यों के विषय मे साथ विचार कर व उसके विभिन्न तत्वो के परस्पर सम्बन्धो को ध्यान मे रखकर बनाया जाता है।

अवधारणा की परिभाषा मे आने वाली कठिनाइयाँ
(Difficulties in the Definition of Concept)

अवधारणा की विभिन्न परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि किसी विज्ञान की निश्चितता व सवहनशीलता के लिए उसमे अवधारणाओं की निश्चित परिभाषा होना अत्यधिक आवश्यक है। तथापि अवधारणा की निश्चित तथा स्पष्ट परिभाषा होना एक कठिन कार्य है क्योंकि अवधारणा को परिभाषित करने मे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पडता है। उनमे से कुछ प्रमुख कठिनाइयाँ निम्न हैं–

1 अवधारणाओं का विकास समान अनुभवो के सन्दर्भ मे उसी प्रकार हो सकता है, जैसे ग्राम बोलचाल या दिन-प्रतिदिन की भाषा का विकास किया जाता है। अत जब किसी विज्ञान के वैज्ञानिक अपने समान अनुभवो के आधार पर किसी अवधारणा का निर्माण करते हैं, तो अन्य सामान्य व्यक्तियो द्वारा उस परिभाषा को समझना दुष्कर होता है क्योंकि उनके पास वह वैज्ञानिक अनुभव नहीं होता है।

1 *S Lobobitz and R Hagdorn* Introduction to Social Research, p 118
2 *P V Young* Scientific Social Surveys and Research, p 101
3 *Macmillan* Social Research Strategy and Tactics p 27

इसी प्रकार एक भाषा की अवधारणा का दूसरी भाषा मे निश्चित रूपान्तरण या अनुवाद इसलिए दुष्कर होता है क्योंकि उन लोगो मे उस प्रकार के वैज्ञानिक अनुभव नही होते हैं।

2 अवधारणाओ को परिभाषित करने मे दूसरी बडी कठिनाई मूलत: व्यावहारिक है। अर्थात् वैज्ञानिको के द्वारा जिन अवधारणाओ का निर्माण किया जाता है, वे सामान्य भाषा मे दूसरे अर्थों मे प्रयुक्त की जाती हैं। इस प्रकार विज्ञान की अवधारणाओ का सामान्य बोलचाल की भाषा की अवधारणाओ से अलग रखकर समझना पर्याप्त कठिन होता है। जैसे समाजशास्त्र का विद्यार्थी समाज, समूह व संस्कृति शब्दो का प्रयोग जिस अर्थ मे करता है, सामान्य बोलचाल की भाषा मे उसका अर्थ भिन्न होता है।

3 अनेक बार अवधारणा के रूप मे प्रयुक्त किए जाने वाले पदो का अर्थ वैज्ञानिको द्वारा भी भिन्न-भिन्न लगाया जाता है, अर्थात् वे अनेकार्थी होते हैं। मर्टन ने अपनी पुस्तक 'सोशल थ्यारी एव सोशल स्ट्रक्चर' मे प्रकार्य (Function) की अवधारणा के छ अर्थों को बताया है।[1]

4 अवधारणाओ का अर्थ भी अनेक बार परिवर्तित हो जाता है, विज्ञान जैसे-जैसे प्रगति करता जाता है, सम्बन्धित अवधारणाओ के अर्थ संशोधित एवं निश्चित होते जाते हैं।

अत किसी भी विज्ञान मे वैज्ञानिको को विभिन्न अवधारणाओ के प्रयोग मे अत्यन्त सावधानी रखनी चाहिए। वैज्ञानिक जिन अवधारणाओ का प्रयोग करे उनके अर्थ के बारे मे उन्हें पर्याप्त रूप से सन्तुष्ट होना चाहिए। चूँकि एक विषय के वैज्ञानिक प्राय: अपनी समस्याओ का अध्ययन समान प्रविधि एव पदावली के अन्तर्गत करते हैं, अत उनमें किसी अवधारणा के अपेक्षित अर्थ को समझने मे तथा उसे समझाने मे कठिनाई नहीं होनी चाहिए। इसके अलावा भी समय-समय पर प्रयुक्त अवधारणाओ व सन्दर्भों के बारे में बातचीत तथा विचार-विमर्श करना पर्याप्त सहायक होता है, क्योंकि वह उन अवधारणाओ के बारे मे प्रचलित भ्रान्तियो व धारणाओ का निराकरण करने मे सहायक होता है।[2]

अवधारणा की विशेषताएँ
(Characteristics of Concept)

अवधारणा वैज्ञानिक विश्लेषण की एक इकाई है। इस भूमिका को यह ठीक से पूरा कर सके इसके लिए इसमें कुछ गुणो या विशेषताओ का होना आवश्यक है।

कार्लो लेस्ट्रूसी (Carlo Lastrucci) ने अवधारणाओ के पांच गुणो का उल्लेख किया है।[3] वे हैं—

1 *Robert K Merton* op cit, p 10
2 *Goode and Hutt* op cit p 18
3 *Carlo Lastrucci* 'Concepts in Empirical Research' in **L. D. Hayes and R D Hedlund 'The Conduct of Political Inquiry', 1970, p. 75–77.**

1. **उपयुक्तता**—अवधारणा का चयन इस प्रकार होना चाहिए कि वह अपना ध्यान अध्ययन के केन्द्रीय विषय पर केन्द्रित करे। जैसे 'निम्न वर्ग' या 'मध्यम वर्ग'। इसमे अनुसन्धानकर्त्ता को देखना होगा कि उसके सिद्धान्त के दृष्टिकोण से निम्न वर्ग' या 'मध्यम वर्ग' मे किन-किन लोगो को रखा जाना उपयुक्त होगा।

2. **स्पष्टता**—अवधारणा की परिभाषा परिशुद्ध एव स्पष्ट होनी चाहिए जैसे नैतिकता, अनैतिकता, अपराध के अलग-अलग व अनेक अर्थ लगाए जा सकते है। इसलिए अनुसन्धानकर्त्ता को यह स्पष्ट करना चाहिए कि वह क्या अर्थ लगा रहा है।

3 **मापनता**—जिस सीमा तक अवधारणा को मात्रात्मक रूप दिया जा सकेगा उसी सीमा तक वह मापा जा सकेगा और परिशुद्धता की प्राप्ति मे सहायक होगा। इसलिए यथासम्भव अवधारणा ऐसी होनी चाहिए कि उसे मापा जा सके।

4. **तुलनात्मकता**—एक ही प्रकार की समस्त घटनाएँ एक जैसी ही नही होती हैं, जैसे 'अपराध' मे उठाईगीरी व मारपीट से लेकर हत्या तक सम्मिलित है। अनुसन्धानकर्ता को यह प्रयत्न करना चाहिए कि उसकी अवधारणा द्वारा सवर्ग के साथ-साथ घटना का स्तर भी निश्चित हो जाए, तभी वह तुलना कर सकेगा।

5 **पुनर्परीक्षण**—वैज्ञानिक सिद्धान्तो के लिए यह आवश्यक है कि उनका परीक्षण व पुनर्परीक्षण हो सके। अनुसन्धानकर्त्ता को अपनी अवधारणाओ का चुनाव इस प्रकार करना चाहिए कि अन्य अनुसन्धानकर्त्ता भी उनका परीक्षण व पुनर्परीक्षण कर सकें।

• लेकिन इनके अतिरिक्त भी अवधारणाओ की कुछ सामान्य विशेषताओ का उल्लेख किया जा सकता है, जैसे—

1 अवधारणाएँ या सम्प्रत्यय सामान्यत तथ्यो पर आधारित एक प्रकार का विचार होता है, जो तथ्यो के समूह या वर्ग के सम्बन्ध मे जानकारी प्रदान करता है।

2 गुडे एव हट्ट लिखते हैं कि अवधारणाएँ किसी घटनाक्रम को प्रकट करती है। यह स्वय घटना या उल्लेख मात्र नही होती, बल्कि उससे उत्पन्न होने वाले एन्द्रिक अनुभवो तथा प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा उत्पन्न की गई एक तार्किक रचना होती है।[1]

3 अवधारणाएँ सम्पूर्ण घटना का प्रतिनिधित्व नहीं करती हैं, अपितु उसके एक स्वरूप मात्र का प्रतिनिधित्व करती हैं।

4 यह एक या दो अत्यन्त कम शब्दो मे ही व्यक्त किए जाने वाला विचार होता है। एक प्रकार मे यह परिभाषा के रूप मे व्यक्त किया जा सकने वाला अमूर्तीकरण होता है।

5 प्रत्येक अवधारणा का अपना एक विशिष्ट अर्थ होता है, और यह सिद्धान्त के स्तर से निम्न स्तर का अमूर्तीकरण (Abstruction) या सामान्यीकरण (Generalization) होता है।

1 *Goode and Hutt* op. cit., p 42.

6 वैज्ञानिको द्वारा प्रयुक्त अवधारणाएँ सामान्यत जटिल अथवा कठिन होती हैं। उनका प्रयोग भी विशेष अर्थ व परिस्थिति मे किया जाता है।

7. अवधारणाओ का विकास होता रहता है तथा उनमे परिवर्तन भी होता रहता है। वे अपनी प्रकृति, विशेषताएँ अथवा अध्ययन केन्द्र बिन्दु समय-समय पर वदल भी सकती है।

8 अवधारणा का उद्देश्य यथार्थ (Reality) को समझने एव उसे स्पष्ट करने मे समाज वैज्ञानिको की सहायता करना होता है।

9 जब अवधारणाओ को निरीक्षण की इकाइयो तथा उनकी विशेषताओ के आधार पर वर्गीकृत करने हेतु प्रयोग मे लाते हैं तो उसे हम चर (Variable) कहते हैं। चर अवधारणा की माध्य विमिति है।[1] उदाहरणार्थ दुर्खीम के सामाजिक विघटन के सिद्धान्त मे मानव जनसख्या को समानता, एकता व विचलन के विरोध के आधारो पर वर्गीकृत किया गया है।

10 अवधारणाएँ उपकल्पना (Hypothesis) निर्माण मे सहयोगी होती हैं। 'टी बी बोटामोर' के अनुसार नई अवधारणा दो उद्देश्यो की पूर्ति मे सहायक होती है। प्रथम अब तक पृथक् पृथक् रूप मे प्रकट न होने वाली घटनाओ के वर्गो को ये वर्गीकृत अथवा विभाजित करते हैं, तथा द्वितीय, वे घटनाओ के सक्षिप्त वर्णन व आगे के विश्लेषण म सहायक होती हैं।

11 अवधारणाएँ सिद्धान्त (Theory) के अनिवार्य अग होती हैं, क्योकि प्रयुक्त अवधारणाओ के आधार पर ही 'सिद्धान्त-निर्माण' की नीव रखी जाती है।

12 एक अवधारणा न तो सत्य होती है न असत्य, क्योकि वह तो केवल मात्र एन्द्रिय तथ्यो (Sense Data) का नामोल्लेख या सकेतीकरण ही होता है। यह मानव इन्द्रियो को प्रभावित करने वाले अथवा उनमे अपना प्रतिबिम्ब या सवेदन उत्पन्न करने वाले तथ्यो का एक अमूर्त रूप ही होता है।

13 अवधारणाएँ मापनात्मक' होनी चाहिए। अवधारणाओ को मापना उसकी अमूर्तता पर निर्भर करता है, वह जितनी कम अमूर्त होगी उतनी ही सरलता से उसे मापा जा सकेगा।

14 अवधारणाओ की अस्पष्टताओ को दूर करने के लिए उन्हें ठीक ढग से परिभाषित किया जाना चाहिए तथा उनका 'मानकीकरण' (Standardization) किया जाना चाहिए।

15. मिचैल (Mitchell) ने 'डिक्शनरी ऑफ सोश्योलोजी' मे अवधारणाओ के लिए तीन कसौटियो का उल्लेख किया है[2] वे हैं—

1 *Labobitz and Hagdorn* op cit, p 43
2 *G Duncan Mitchell* op cit, p 37

(A) सूक्ष्मता एवं परिशुद्धता (Precision)
(B) अनुभवाश्रित आधार (Empirical Anchorage)
(C) प्रस्तुत सिद्धान्त को समझा सकने योग्य सिद्धान्तों के निर्माण मे उपयोगी सिद्ध होने की क्षमता।

अवधारणाओं का निर्माण
(Construction of Concepts)

अवधारणाओं का निर्माण कोई सरल प्रक्रिया नहीं है बल्कि इसके लिए वैज्ञानिक के पास सूझ-बूझ, अनुभव व पर्याप्त ज्ञान की आवश्यकता होती है। अवधारणा के विकास के लिए सामान्यत दो प्रक्रियाएँ आवश्यक है—

1 सामान्यीकरण (Generalization), एव
2 अमूर्तीकरण (Abstruction)।

सामान्यीकरण वह प्रक्रिया है जिसमे अनुभवो की विविधता से सिद्धान्त प्रतिपादित किए जाते हैं। उदाहरण के लिए बच्चा यह देखता है कि एक पेड का विकास विभिन्न आकृतियो एव आकारो मे हो सकता है, दूसरा प्रत्येक चर अथवा अवधारणा आवश्यक रूप से अमूर्त होती है अर्थात् इसमे प्रस्तुत घटना के कुछ चुने हुए लक्षण पाए जाते हैं। 'पॉल लजार्सफील्ड' (Paul Lazarsfeld) ने इस प्रक्रिया को चार चरणो द्वारा समझाया है[1]—

1 प्रतिमा-सृष्टि—अर्थात् अवधारणा का निर्माण या उसकी रचना तब होती है, जब हमे बहुत-सी भिन्न घटनाओ मे कोई आधारभूत एकता दिखाई दे जाए या जब हमे किन्ही सम्बन्धो को सार्थक बनाने वाला कोई तत्त्व मिल जाए। प्रारम्भ मे इस तत्त्व या अवधारणा की केवल एक धुंधली प्रतिमा हमारे सम्मुख उभरती है। जैसे मानलें हम किसी फैक्ट्री का अध्ययन कर रहे हैं, हम पाते हैं कि यह फैक्ट्री भलीभाँति चल रही है। इसे भली प्रकार चलाए जाने मे मनुष्यो व साधनो को अधिक उत्पादक बनाने के लिए कुछ किया जा रहा है। इसी 'कुछ' को हम 'प्रबन्ध' की सज्ञा दे देते हैं और इस प्रकार एक नई अवधारणा की रचना हो जाती है। 'एथनोमैथडोलोजी' नामक अवधारणा हेरोल्ड गारफीकल ने व 'संस्कृनिकरण' की अवधारणा का विकास एम एन श्रीनिवास ने इसी प्रकार किया था।

2. विशिष्ट विवरण—दूसरा चरण है अवधारणा की मूल प्रतिमा (Image) को उसके अंशो मे बाँटना। जिन घटनाओ से अवधारणा उपजी थी उनका सविस्तार विवेचन किया जाता है। इस प्रकार अवधारणा के विभिन्न पक्ष, अश, आयाम आदि हमे मिल जाते हैं। जैसे कुशल 'प्रबन्ध' के अश हो सकते हैं— समूह मे द्वेष न होना, लोगो का सन्तुष्ट होना, बहुत कडाई न होना आदि।

1 *Paul Lazarsfeld* The Translation of Concepts into Indices in Hays and Hedlunds, op cit., p 78-81

3. सूचकों का चयन—अवधारणाओ के निर्माण का तीसरा चरण है, विभिन्न अशो या आयामो के सूचक ढूंढना। जैसे किसी 'डॉक्टर' की कुशलता का सूचक हो सकता है, उसके द्वारा ठीक किए गए रोगियो की संख्या। अवधारणाओ के विभिन्न अशो के अनुरूप अनेक सूचक हमे प्राप्त हो जाते हैं। प्रत्येक सूचक का अवधारणा के साथ केवल 'सभाव्यता-सम्बन्ध' होता है, निश्चित सम्बन्ध नही। अकेला सूचक गलत सूचना भी दे सकता है, जैसे जो डॉक्टर हृदय रोगो का इलाज करता है उसके रोगियो की तुलना मे जो डॉक्टर चर्म रोगो का इलाज करता है, उसके अधिक रोगियो के ठीक होने की सम्भावना होती है। अत कई सूचक एक साथ लेने से अवधारणा की अधिक शुद्ध माप होती है, क्योकि उन सबके द्वारा एक साथ एक ही दिशा मे गलत सूचना देने की सम्भावना कम होती है।

4 सूचकांक का निर्माण—चौथा व अन्तिम कदम है विभिन्न सूचको को मिलाकर अवधारणा का सूचकांक (Index) बनाना। प्रत्येक सूचक एक चर (Variable) कहलाता है। सूचकांक स्वय भी एक चर ही होता है। ये चर अवधारणा के अशो व पूरी अवधारणा को मापते हैं। जैसे ऊपर के उदाहरण मे 'द्वेष' एव प्रबन्ध की 'कुशलता' दोनो ही चर हैं। इन्ही चरो के सहारे हम अवधारणाओ के सम्बन्धो अर्थात् उपकल्पनाओ को गणनीय रूप देने मे सफल होते हैं।

इस प्रकार अवधारणा निर्माण मूलत चर व उनके उचित उपयोग पर निर्भर करता है। अत वैज्ञानिक को अवधारणा निर्माण अत्यन्त सावधानी से करना चाहिए।

सामाजिक अनुसन्धान मे अवधारणा का महत्त्व
(Importance of Concept in Social Research)

इस तथ्य से इन्कार नही किया जा सकता कि प्रत्येक प्रकार के अनुसन्धान मे तथ्यो के सकलन व उनके विश्लेषण के लिए अवधारणाओ का चयन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण एव निर्णायक भूमिका वाला होता है। रोबर्ट के. मर्टन ने भी लिखा है कि "यदि मात्र यथार्थ (Reality) को ध्यान मे रखकर ऐसे तथ्यो का सकलन किया जाए जिनमे परस्पर कोई सम्बन्ध स्थापित न किया जा सके तो चाहे वह कितने ही गम्भीर अवलोकन का परिणाम क्यो न हो वह अनुसन्धान निष्फल होगा।"[1]

सामाजिक अनुसन्धानो मे आनुभविक अध्ययनो से सम्बन्धित परिवर्तियो (Variables) का चयन करना निरर्थक होगा, क्योकि इस प्रकार के परिवर्तियो या चरो की कोई सीमा नही है, जबकि सफल अनुसन्धान कार्य के लिए ऐसे ही परिवर्ती सहायक होगे जो प्रस्तुत प्रघटना के विश्लेषण से सम्बन्धित हो। सामाजिक अनुसन्धान मे अनेक अवधारणाओ का उल्लेख किया जाता है, जिनके अभाव मे अनुसन्धान कार्य ही सम्भव नही है, जैसे कुछ महत्वपूर्ण अवधारणाएँ ये हैं—

1 *Robert K Merton* op cit, p. 90.

1 पद्धति एवं प्रविधि (Method and Technique)—पद्धति किसी विषय के अध्ययन की सामान्य प्रणाली होती है जिसके अनुसार अध्ययन कार्य का संगठन किया जाता है, तथ्यों की विवेचना व निष्कर्षों का निर्धारण किया जाता है। प्रविधि वह तरीका है जिसमें वह अध्ययन किया जाता है। इसे इस तालिका से अधिक स्पष्ट समझा जा सकता है—

पद्धतियाँ (Methods)	प्रविधियाँ (Techniques)
वैज्ञानिक पद्धति	प्रश्नावली
ऐतिहासिक पद्धति	निदशन

2 सम-सम्भावना (Probability)—सम-सम्भावना की यह अवधारणा उस ज्ञान के सन्दर्भ में है जो उस कथन के बारे में प्राप्त है जिसमें सम्भावित तथ्य का मूल्यांकन किया जाता है। सम-सम्भावना की इस अवधारणा का निदर्शन (Sampling) प्राप्त करने की प्रविधि से निकट का सम्पर्क है।

3 वैधता (Validity)—सामाजिक विज्ञानों में 'वैधता' की अवधारणा की परिभाषा शोधकर्ता द्वारा परिमापन की वह मात्रा प्राप्त करना है, जिसे वह प्राप्त करना चाहता था।[1] अर्थात् वैज्ञानिक प्रयोगों में किसी प्रघटना का प्रदत्त वह परिमापन वैध माना जाता है, जो किसी प्रघटना का ठीक-ठीक परिमापन करता है।[2]

4. विश्वसनीयता (Reliability)—सामाजिक विज्ञानों में विश्वसनीयता का अत्यन्त महत्त्व है। जिन पद्धतियों का प्रयोग अनुसन्धानकर्त्ता द्वारा किया जाता है क्या वे अन्य अनुसन्धानकर्त्ताओं द्वारा प्रयुक्त किए जाने पर भी तथा विभिन्न समयों पर प्रयुक्त किए जाने पर भी समान परिणाम प्रस्तुत करेंगी।[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक अनुसन्धान में अनेक स्वीकृत अवधारणाएँ हैं, जिनके प्रयोग के बिना अनुसन्धान की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। इन अवधारणाओं की स्पष्टता तथा व्यावहारिक उपयोगिता के ज्ञान के अभाव में किसी भी वैज्ञानिक के लिए शोध-कार्य सम्भव नहीं हो सकता। प्रत्येक वैज्ञानिक को अपना अनुसन्धान कार्य करने से पूर्व अवधारणाओं की स्पष्टता एवं उनके व्यावहारिक उपयोग व प्रयोग का पर्याप्त ज्ञान अपेक्षित होता है।

अवधारणाओं के कुछ उदाहरण
(Some Examples of Concepts)

अवधारणाओं के विशद विश्लेषण के पश्चात् अब हम आपको इन अवधारणाओं के कुछ उदाहरणों से परिचित करा दें। हम पहले यह स्पष्ट कर चुके हैं कि अवधारणाएँ केवल विज्ञान के लिए ही नहीं वरन् सामान्य बातचीत एवं

1 *S Bernard Philips* Social Research p 159
2 *S Bernard Philips* Ibid, p 159
3 *H W Smith*: Strategies of Social Research 1975 p 58

चिन्तन के लिए भी महत्त्वपूर्ण होती है। विभिन्न आधारो के आधार पर विभिन्न अवधारणाएँ बनाई जा सकती हैं। हम यहाँ सामान्य बोलचाल मे प्रयुक्त कुछ सामान्य अवधारणाएँ प्रस्तुत कर रहे हैं—

आधार (Basis)	अवधारणाएँ (Concepts)
वस्तुएँ	किताब, पेन, फल, फूल
क्रिया	हँसना, सीखना, लडना
विशेषण	अच्छा, बुरा, बडा, छोटा
क्रिया-विशेषण	तेज, मध्यम, धीमा
सम्बन्ध	अन्दर, बाहर, ऊपर, नीचे।

ऊपर हमने कुछ सामान्य अवधारणाएँ (General Concepts) प्रस्तुत की है। समाजशास्त्र (Sociology) मे भी अनेक महत्त्वपूर्ण अवधारणाओ का प्रयोग होता है, जैसे—

प्रमुख समाजशास्त्रीय अवधारणाएँ (Major Sociological Concepts) :

समूह (Group)	अधिकारीतन्त्र (Bureaucracy)
प्रस्थिति (Status)	सामाजिक सरचना (Social Structure)
समाजीकरण (Socialization)	प्रकार्य (Function)
शक्ति (Power)	सामाजिक व्यवस्था (Social System)
सत्ता (Authority)	समाज (Society)
स्तरीकरण (Stratification)	प्राथमिक समूह (Primary Group)

उपकल्पना*
(Hypothesis)

सामाजिक प्रघटनाओ के वैज्ञानिक अध्ययन मे 'उपकल्पना' (Hypothesis) का अत्यन्त महत्त्व है। उपकल्पना का निर्माण, उसका प्रयोग और उपादेयता वैज्ञानिक पद्धति का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चरण है। किसी भी सामाजिक समस्या के अध्ययन के लिए कोई वैज्ञानिक निराधार ही आगे नहीं बढता है वरन् वह उस तथ्य या समस्या के बारे मे एक या कुछ उपकल्पनाएँ बनाता है, जिनके आधार पर वह अपने शोध कार्य को आगे बढाता है। उपकल्पना के अभाव मे विषय का क्षेत्र एव दिशा अनिश्चित ही रहती है, और ऐसी अवस्था मे अनुसन्धानकर्ता का शोध-क्षेत्र मे कदम रखना अन्धकार मे हाथ-पाँव मारने के अतिरिक्त कुछ नही होगा। अत अनुसन्धानकर्त्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह किसी अपरिचित अनुसन्धान-क्षेत्र मे अनायास ही प्रवेश नही कर जाए, वरन् तथ्यो के अवलोकन, सकलन आदि के लिए अपनी कल्पना, अनुभव या किसी अन्य स्रोतो के आधार पर एक सामान्य

* अंग्रेजी भाषा के 'Hypothesis' का हिन्दी अनुवाद भी उपकल्पना, प्राक्कल्पना, पूर्व-कल्पना, परिकल्पना आदि रूपों मे किया जाता रहा है। लोकप्रियता एव सरलता के कारण हम 'उपकल्पना' शब्द का प्रयोग कर रहे हैं।

तर्क वाक्य का निर्माण कर ले, जिसे अनुसन्धान के दौरान परीक्षित किया जा सके। यही तर्क वाक्य 'उपकल्पना' कहलाता है।

(उपकल्पना का शाब्दिक आशय है 'पूर्व-चिन्तन')। अन्य शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि प्रारम्भिक जानकारी के आधार पर किया गया पूर्वानुमान (Tentative Result) जिसके आधार पर सम्भावित अनुसन्धान को एक निश्चित दिशा प्रदान की जा सके, उपकल्पना कहलाता है।

उपकल्पना का अर्थ एवं परिभाषाएँ
(Meaning and Definitions of Hypothesis)

उपकल्पना को सामान्यत एक कामचलाऊ सामान्यीकरण माना जाता है, जिसकी अनुसन्धान के दौरान परीक्षा की जाती है। वैज्ञानिक आधारो पर एक उपकल्पना को दो अथवा दो से अधिक चरो (Variables) के मध्य सम्बन्ध का अनुमानित विवरण कहा जाता है। और भी स्पष्ट रूप से एक उपकल्पना दो या दो से अधिक चरो के बीच पाए जाने वाले सम्बन्ध का अनुभवात्मक रूप से परीक्षण करने योग्य कथन है। यह एक प्रकार का सर्वोत्तम अनुमान होता है, जो कुछ ऐसी शर्तें रखता है, जो प्रदर्शित नहीं की जाती तथा जिसके परीक्षण की आवश्यकता होती है। परीक्षण के दौरान या परीक्षणोपरान्त यह सत्य भी साबित हो सकती हैं और मिथ्या या व्यर्थ भी।

अनेक विद्वानो एव समाजशास्त्रियो ने अपने-अपने दृष्टिकोण से उपकल्पना को परिभाषित करने का प्रयास किया है। इन विद्वानो के द्वारा प्रस्तुत परिभाषाएँ उपकल्पना के महत्त्व को और उसके अर्थ को और भी स्पष्ट करने मे हमारी सहायता करेंगी।

गुडे एव हट्ट (Goode and Hutt) ने अपनी महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'मेथड्स इन सोश्यल रिसर्च' मे इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि "उपकल्पना भविष्य की ओर देखती है। यह एक तर्कपूर्ण वाक्य है, जिसकी वैधता की परीक्षा की जा सकती है। यह सत्य भी सिद्ध हो सकती है और असत्य भी।"[1]

'वेबस्टर्स न्यू इन्टरनेशनल डिक्शनरी ऑफ दी इंग्लिश लैंग्वेज' के अनुसार "उपकल्पना एक विचार, दशा या सिद्धान्त होती है, जो कि सम्भवत बिना किसी विश्वास के स्वीकार कर ली जाती है, जिससे कि उसके तार्किक परिणाम निकाले जा सकें और ज्ञात या निर्धारित किए जाने वाले तथ्यो की सहायता से इस विचार की सत्यता की जाँच की जा सके।"[2]

ई एस बोगार्डस (E S Bogardus) ने 'सोश्योलोजी' में इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "परीक्षित किया जाने वाला तर्क-वाक्य (Proposition) एक उपकल्पना है।"

1 *Goode and Hutt* Methods in Social Research p 56.
2 Webster's New International Dictionary of English Language, 1956
3 *E. S Bogardus* Sociology, p 551

जॉर्ज लुण्डबर्ग (**George Lundberg**) ने 'सोशल रिसर्च' में लिखा है कि "*उपकल्पना एक प्रयोग सम्बन्धी सामान्यीकरण* (*Tentative Generalization*) है, जिसकी उपयुक्तता की जाँच की जाती है। अपने प्रारम्भिक स्तर पर उपकल्पना केवल एक अनुमान, विचार अथवा कल्पनात्मक विचार हो सकता है, जो आगे के अनुसन्धान के लिए आधार बनता है।"[1]

गुड एवं स्केटस' (**Good and Scates**) ने 'मेथड्स आफ रिसर्च' में इसकी *व्याख्या करते हुए लिखा है कि* '*एक उपकल्पना अवलोकित तथ्यों को समझाने* और अध्ययन को आगे मार्ग दर्शित करने के लिए निर्मित तथा अस्थाई रूप से ग्रहण की गई एक बुद्धिमत्तापूर्वक निष्कर्ष होता है।"[2]

जॉन गालटुंग (**John Galtung**) ने अपनी कृति 'थ्योरी एण्ड मेथड्स ऑफ सोशयल रिसर्च' में उपकल्पना' को अधिक विस्तृत एवं गणितीय आधार पर समझाया है। उनका कथन था कि समस्त अनुसन्धानों में निम्न तत्त्व होते हैं—

1 इकाई (Unit)
2 चर (Variable),
3 मूल्य (Value)।

अतः आपके अनुसार एक उपकल्पना चरों के द्वारा कुछ इकाइयों के सम्बन्ध में उनके विशिष्ट मूल्यों से सम्बन्धित कथन है। यह स्पष्ट करती है कि इकाइयों का सम्बन्ध कितने और किन चरों से है।[3]

इसे एक उदाहरण से हम अधिक स्पष्ट रूप में समझ सकते हैं। यदि हम यह उपकल्पना लें कि पुरुष स्त्रियों से अधिक बुद्धिमान होते हैं।' (Men are more intelligent than women) तो इसको इस प्रकार समझा जा सकता है—

पुरुष एवं स्त्रियाँ	इकाई (Unit)
बुद्धि	चर (Variable)
अधिक	मूल्य (Value)

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उपकल्पना एक ऐसा पूर्व विचार, पूर्वानुमान या कल्पनात्मक विचार होता है, जो कि अनुसन्धानकर्त्ता अनुसन्धान समस्या के बारे में अनुसन्धान से पूर्व बना लेता है। *अनुसन्धान के दौरान वह उसकी सार्थकता की जाँच करने हेतु आवश्यक तथ्यों को* एकत्रित करता है। यदि अनुसन्धान में खोजे गए तथ्यों के आधार पर इस विचार, अनुमान या कल्पना की सत्यता सिद्ध हो जाती है तो यह विचार अनेक बार व अनेक स्थानों पर सत्य सिद्ध होने पर एक 'सिद्धान्त' (Theory) का रूप लेता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से हम यह कह सकते हैं कि उपकल्पना दो या दो से अधिक चरों (Variables) के मध्य एक सम्बन्ध को प्रतिपादित करती है, और बाद में

1 *George A Lundberg* Social Research, p 96
2 *Goode Carter & Scates* Methods of Research, 1954 p 90
3 *John Galtung* . Methods of Social Research, 1967, p 310

इस कथित सम्बन्ध का परीक्षण करना होता है। यह सत्य अथवा असत्य दोनों हो सकती है।

कार्ल पॉपर (Karl Popper) ने भी लिखा है कि वैज्ञानिक उपकल्पनाओं के लिए यह आवश्यक है कि उनका परीक्षण हो सके और यदि वे असत्य हो तो उन्हें असत्य सिद्ध किया जा सके। यदि किसी उपकल्पना का अनुभव के आधार पर असत्य सिद्ध करना असम्भव हो तो उसे वैज्ञानिक उपकल्पना नहीं कहा जाएगा। जो उपकल्पनाएँ परीक्षण की कसौटी पर खरी उतरती हैं उनसे ही विज्ञान का कलेवर बनता है।

उपकल्पना की विशेषताएँ
(Characteristics of Hypothesis)

सामाजिक और वैज्ञानिक अनुसन्धानों म लगभग प्रत्येक वैज्ञानिक किसी न किसी उपकल्पना को लेकर अपना अनुसन्धान कार्य प्रारम्भ करता है। उपकल्पनाएँ अनुसन्धानकर्ता को अपनी अनेक विशेषताओं के द्वारा उनकी अनुसन्धान यात्रा को सही रूप मे निर्देशित करती हैं। वैज्ञानिक प्रयोग मे आने वाली उपकल्पनाओं म कुछ विशेषताएँ होती हैं।

गुडे एव हट्ट' ने मेथड्स इन सोशल रिसर्च' मे उपकल्पनाओं की पांच प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया है। वे हैं—

1 स्पष्टता (Clarity)
2 अनुभवसिद्धता (Empiricism)
3. विशिष्टता (Specificity),
4 उपलब्ध प्रविधियो से सम्बन्धित (Related to Available Techniques),
5 सिद्धान्तो मे सम्बन्धित (Related with Existing Theories)।

लेकिन यहाँ हम उपकल्पना की कुछ सामान्य विशेषताओं का उल्लेख करेंगे—

(1) उपकल्पना मार्गदर्शन के लिए उपयोगी है। इसके बिना अनुसन्धानकर्ता विषय से कोसो दूर भटक जाएगा।

(2) यह तथ्यो पर आधारित अस्थाई हल है।

(3) उपकल्पना का स्पष्ट होना आवश्यक है। अस्पष्टता, वैज्ञानिक ज्ञान और प्रकृति के प्रतिकूल है अत यदि यह अस्पष्ट है तो अवैज्ञानिक व अनुपयोगी होगी।

(4) विशिष्टता इसका बडा लक्षण है। यदि यह सामान्य हुई तब निष्कर्ष पर पहुँचना सम्भव नहीं है। अत यह अध्ययन विषय के किसी विशेष पहलू से सम्बन्धित होनी चाहिए। अन्यथा सत्यता की जांच करना कठिन हो जाएगा।

(5) उपलब्ध पद्धतियाँ और साधनो से सम्बन्धित होनी चाहिए, अन्यथा यह उपयोगी सिद्ध न होगी। गुडे तथा हट्ट (Goode & Hutt) के मत म, "जो सिद्धान्तशास्त्री यह भी नहीं जानता कि उसकी उपकल्पना की परीक्षा के लिए

कौन-कौनसी पद्धतियाँ उपलब्ध हैं वह व्यावहारिक प्रश्नो के निर्माण मे असफल रहता है।"

(6) जिसमे मूल्य या आदर्श निर्णय का पुट न हो, वही उपकल्पना वैज्ञानिक तथा सार्थक सिद्ध हो सकती है। इसका अर्थ यह नही है कि अनुसन्धानकर्त्ता को आदर्श प्रस्तुत करने का प्रयत्न ही नही करना चाहिए बल्कि इसका आशय यह है कि ऐसा आदर्श जिसका परीक्षण, अवलोकन किया जा सके और जो परीक्षण करने पर सही उतरते हो।

(7) उपकल्पना प्राय अतिशयोक्तिपूर्ण भाषा मे व्यक्त नही होती। उसमे प्रयोगसिद्धता का गुण होना चाहिए।

(8) यह समस्या के प्रमुख सिद्धान्त से घनिष्ठ रूप मे सम्बन्धित हो।

(9) उपकल्पना पूर्व-निर्मित सिद्धान्तो से सम्बन्धित होनी चाहिए। गुडे तथा हट्ट के अनुसार, 'एक विज्ञान तभी सचयी बन सकता है यदि वह उपलब्ध तथ्यो तथा सिद्धान्त समूह पर पूर्णतया लागू होता है।"

(10) उचित उपकल्पना द्वारा इकट्ठे किए जाने वाले तथ्य उपयोगी होते हैं।

उपकल्पना के आयाम या विमितियाँ
(Dimensions of Hypothesis)

उपकल्पना की विशेषताओ को समझ लेन के बाद अब हमे उपकल्पना के विभिन्न आयाम, तत्त्व या विमितियो पर प्रकाश डालना चाहिए क्योकि उपकल्पना के मूल्यांकन के लिए कुछ आयामो का होना अत्यावश्यक है।

प्रसिद्ध समाजवेत्ता जॉन गालटुंग (John Galtung) ने अपनी महत्त्वपूर्ण कृति 'थ्योरी एण्ड मथड्स ऑफ सोशियल रिसर्च' मे उपकल्पना की दस विमितियो (Dimensions) का उल्लेख किया है।[1] वे विमितियाँ या आयाम निम्न हैं—

1 सामान्यता (Generality)—सामान्यता से हमारा आशय उन परिस्थितियो का ब्यौरा देने से है, जिनमे उपकल्पना को लागू किया जा सकता है। किसी एक स्थान अथवा परिस्थिति विशेष के लिए प्रमाणित तथ्यो को सामान्यीकरण (Generalization) प्राप्त करने हेतु अन्य स्थानो अथवा परिस्थितियो पर लागू किया जाता है। इस प्रकार के परीक्षण से या तो उपकल्पना की पुष्टि हो जाती है अथवा वह असत्य प्रमाणित हो जाती है।

2. जटिलता (Complexity)—जटिलता से हमारा आशय प्रयोग मे लाए गए चरो (Variables) की सख्या के स्पष्टीकरण से है। सबसे सामान्य या सरल उपकल्पना वह होती है, जिसमे मात्र एक ही 'चर' होता है। उपकल्पना की जटिलता के साथ-साथ उसके चरो की सख्या भी बढती जाती है। सामाजिक प्रघटनाओ के विश्लेषण मे उपकल्पना का यह पक्ष पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है, क्योकि जितनी जटिल उपकल्पनाओ की पुष्टि होगी सामाजिक प्रघटनाओ का विश्लेषण

1 *John Galtung* op cit, p 315-337.

उतना ही श्रेष्ठ होगा। इस प्रकार अधिक सामान्यीकरण प्राप्त करने के लिए जटिल उपकल्पनाओं का निर्माण आवश्यक है।

3 विशिष्टता (Specificity)—उपकल्पना की सामान्य परिभाषा से दो प्रकार की विशिष्टताएँ स्पष्ट होती हैं—एक तो 'चरों की विशिष्टता' एवं दूसरी इन 'चरों के वितरण की विशिष्टता'। इस सन्दर्भ में वे विशिष्ट चर (Variables) महत्त्वपूर्ण हैं, जिनके आधार पर उपकल्पना का निर्माण किया जाता है। द्विखण्डीय उपकल्पना (Dicnotomus Hypothesis) से त्रिखण्डीय उपकल्पनाएँ एवं त्रिखण्डीय से बहुखण्डीय (Multiple Hypothesis) अधिक महत्त्वपूर्ण व श्रेष्ठ हैं। किसी भी उपकल्पना की आनुभाविक विशेषता को सैद्धान्तिक विशेषता के स्तर तक लाना चाहिए, ताकि तथ्यों के सन्दर्भ में उपकल्पना को परिष्कृत किया जा सके।[1]

4 निश्चयवादिता (Determinancy)—इस विमिति या आयाम के भीतर हम परिस्थितियों का विवरण इतने अच्छे ढंग से प्रस्तुत करते हैं कि हम निश्चयवादिता या निश्चयात्मकता के साथ यह कह सकते हैं कि इकाइयों की वास्तविक स्थिति क्या है? सामाजिक अनुसन्धान में सम्भावनापूर्ण उपकल्पना की अपेक्षा निश्चयात्मक उपकल्पना को श्रेष्ठ माना जाता है। किसी उपकल्पना की निश्चयात्मकता उसकी विशिष्टता से सम्बन्धित होती है और किसी भी उपकल्पना की विशिष्टता को कम करने के बाद हम किसी भी सीमा तक उसमें निश्चयात्मकता प्राप्त कर सकते हैं। आदर्शात्मक स्थिति यह होती है कि दोनों ही गुणों का समावेश उपकल्पना में हो, लेकिन सामान्यतः सामाजिक विज्ञानों में इस प्रकार का अनुपात कम ही होता है।[2]

5. मिथ्यात्मकता (Falsifiability)—शोधकर्ता को अपने अनुसन्धान में उपकल्पना को इस प्रकार प्रस्तुत करना चाहिए कि इसके सत्य अंश, अनिश्चित अंश एवं मिथ्या अंश आदि की सीमाएँ स्पष्ट रूप से अलग-अलग हों। इसका उद्देश्य वस्तुतः यह पता लगाना होता है कि उपलब्ध तथ्यों में मिथ्या पक्ष का मापन कहाँ तक सम्भव है। जैसे-जैसे उपकल्पना की पुष्टि होती जाती है, उसके मिथ्या प्रमाणित होने के अवसर समाप्त होते जाते हैं।

6 परीक्षणीयता (Testability)—उपकल्पना की एक अन्य विमिति परीक्षणीयता या उसकी जाँच की योग्यता है। यहाँ उपकल्पना की परीक्षणीयता से हमारा आशय यह है कि जब उपकल्पना की तुलना आनुभविक आवटन से की जाए तो इसकी सत्यता अथवा असत्यता सम्बन्धी निष्कर्ष निकल सकें। किसी उपकल्पना की जाँच के निष्कर्ष कुछ भी हो सकते हैं। यदि उस उपकल्पना की पुष्टि होती है तो वह सत्य प्रमाणित होती है और यदि उसकी स्थिति अनिश्चित रहे तो वह मिथ्या प्रमाणित हो सकती है।

1 *John Galtung*: Ibid p 321
2 *John Galtung*: Ibid, p 323

7 भविष्यवाणीयता (Predictability)--उपकल्पना की एक और विमिति उसकी भविष्यवाणीयता है। इसके अन्तर्गत चरो के मध्य पाए जाने वाले सम्बन्ध की भविष्यवाणी की जाती है। सामाजिक विज्ञानो मे भविष्यवाणी करने की क्षमता इतनी महत्त्वपूर्ण नही है जितनी सामाजिक प्रघटनाओ को स्पष्ट करने की आवश्यकता। इस प्रकार सामाजिक अनुसन्धानकर्त्ता अनुसन्धान के दौरान उपलब्ध तथ्यो के प्रकाश मे अपनी उपकल्पनाओ मे परिवर्तन एव सशोधन करता रहता है।[1]

8. सवहनशीलता (Communicability)—कोई भी उपकल्पना उस सीमा तक सवहनशील होती है, जहाँ तक दूसर लोग उसके अर्थ को ग्रहण कर सकें तथा वे भी उपकल्पना का वही अर्थ लगाएँ जिस उद्देश्य से अनुसन्धानकर्त्ता ने उसे बनाया था अर्थात् सूचना प्रदान करने वाले तथा सूचना प्राप्त करने वाले व्यक्तियो द्वारा एक ही अर्थ निकाला जाए। यह सवहन तीन स्तरो (Stages) पर हो सकता है–उपकल्पना का सवहन उसके सन्दर्भ मे एकत्र किए गए तथ्यो का सवहन तथा उनके मध्य सम्बन्धो का मूल्याकन।

9 पुनरुत्पादकता (Reproducibility)—एक उपकल्पना उस सीमा तक पुनरुत्पादन के योग्य होती है जब तक कि उसे उनके निष्कर्षों के साथ दोहराया जा सके अर्थात् यदि कोई अनुसन्धानकर्त्ता उसी प्रकार के तथ्यो को एकत्रित करता है तो वह उन प्रक्रिया को समझने के साथ साथ उन्हीं अर्थों मे स्वीकार भी करे।

10 विश्वसनीयता (Reliability)—उपकल्पना का यह तत्त्व इस बात की ओर सकेत करता है कि उपलब्ध तथ्यो के आधार पर उपकल्पना की जाँच होनी है, जिसे पुष्टिकरण की मात्रा के नाम से पुकारा जा सकता है। जैसे किसी उपकल्पना का मिथ्या प्रमाणित होना या उसका समर्थन नही होना अथवा पुष्टि होना या सत्य प्रमाणित होना। ये वे विमितियाँ अथवा आयाम हैं, जो कम या अधिक मात्रा मे प्रत्येक उपकल्पना मे पाए जाते हैं तथा उपकल्पना को सामान्य विचार (General Idea) से पृथक् करते हैं।

सामाजिक शोध में उपकल्पना का महत्त्व
(Importance of Hypothesis in Social Research)

एक उदाहरण के द्वारा हम उपकल्पना का महत्त्व स्पष्ट कर सकते हैं। वनस्पति-विज्ञान (Botany) का एक विद्यार्थी पौधो के विकास के बारे मे एक अनुसन्धान कार्य करना चाहता है। इस उद्देश्य से यदि वह नगर के पेड-पौधो की पत्तियाँ गिनना प्रारम्भ करे, तो उसका प्रयत्न हास्यास्पद होगा। इसका मुख्य कारण यह है कि उसका तथ्य-सकलन आधारहीन है। किन्तु यदि कोई सैद्धान्तिक आधार हो तो यही कार्य अर्थ-युक्त हो सकता है। जैसे उसकी उपकल्पना यह हो सकती है

[1] *John Galtung* Ibid, p 334

कि किसी विशेष खाद के प्रयोग से पत्तियो की (जैसे पालक की पत्तियो की) सख्या बढ जाती है। इसकी परीक्षा के लिए वह दो क्यारियो मे पौधो की पत्तियो की सख्या की तुलना करता है—एक ऐसी जिसमे खाद डाली गई है और दूसरी जिसमे खाद नही डाली गई है। इस तुलना द्वारा यह जाना जा सकता है कि खाद पत्तियो की सख्या बढाने मे उपयोगी है या नही। इस प्रकार हम देखते हैं कि पत्तियाँ गिनना भी उपयोगी हो सकता है, यदि उसके पीछे उपकल्पना हो।[1]

एम कोहेन (M Cohen) ने ए प्रीफेस टु लॉजिक' मे लिखा है कि "पथ प्रदर्शन करने वाले किसी न किसी विचार के बिना हम यह नहीं जानते है कि किन तथ्यो का सग्रह करना है सिद्ध करन के लिए किसी वस्तु के बिना हम यह निश्चित नही कर सकते कि क्या सगत और क्या असगत है।"[2]

एच प्यायनकेदर ने भी 'साइन्स एण्ड हाइपोथिसिस' मे इसे अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "यह प्राय कहा गया है कि प्रयोग का पूर्व-कल्पित विचारो के बिना किया जाना असम्भव है। यह न केवल प्रत्येक प्रयोग को निष्फल बनाएगा बल्कि यदि हम इसे करना भी चाहे तो भी यह नही किया जा सकता।"[3]

जहोदा एव कुक (Johoda and Cook) ने लिखा है कि "उपकल्पनाओ का निर्माण तथा सत्यापन करना ही वैज्ञानिक अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य होता है।"[4]

कोहेन एवं नेगल (Cohen & Negal) ने भी लिखा है कि "किसी भी अन्वेषण मे हम तब तक एक कदम भी आगे नही बढ सकते जब तक कि उस कठिनाई के प्रस्तावित स्पष्टीकरण अथवा समाधान से हम प्रारम्भ न करें जिसने इसे उत्पन्न किया है।"[5]

गुडे एव हट्ट (Goode and Hutt) ने भी लिखा है कि "अच्छे अनुसन्धान मे उपकल्पना का निर्माण करना सर्वप्रमुख चरण है।"[6]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैज्ञानिक अनुसन्धान मे उपकल्पनाओ का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। वैज्ञानिक, ढग के प्रयोग की एक मौलिक आवश्यकता यह है कि अवधारणाओ (Concepts) वाक्य-विन्यासो (Constructs) एव चरो (Variables) की आवश्यक परिभाषा करने के पश्चात् अगला कदम यह है कि अनुसन्धान प्रश्नो का स्पष्ट एव विस्तृत रूप में निर्माण किस प्रकार किया जाए जिनका उत्तर प्राप्त करने की हम आशा रखते हैं। ये प्रश्न हमे उपकल्पनाओ के निर्माण की ओर ले जाते हैं। एक उपकल्पना का सामाजिक एव वैज्ञानिक अनुसधानमे अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण स्थान है। अत: मार्ग-दर्शन के लिए उपकल्पना समुद्रो मे जहाजो को रास्ता

1 डॉ सत्यदेव : सामाजिक विज्ञानों की शोध पद्धतियाँ, पृष्ठ 8
2 *M Cohen* · A Preface to Logic, p 148
3 *H Pyayankear* : Science and Hypothesis p 143
4 *Jahoda & Others* Research Methods in Social Relations p 39
5 *Cohen and Negal* . An Introduction to Logic and Scientific Method, 1934
6 *Goode and Hutt* . Methods in Social Research, p 73

दिखाने वाले 'प्रकाश-स्तम्भ' (Light Houses) के समान है जो अनुसन्धानकर्ताओ और वैज्ञानिकों को भटकने से बचाता है। उपकल्पना के महत्त्व को हम निम्नानुसार दर्शा सकते हैं—

(1) अध्ययन मे निश्चितता स्थापित करना (Establishing Definiteness in the Study)—उपकल्पना का यह सर्वप्रथम गुण है कि अध्ययन को एक निश्चित सीमा तक बांध देता है। इस दीवार-रेखा के खिचने से अध्ययनकर्त्ता को पता चलता है कि उसे क्या-क्या अध्ययन करना है, कितना अध्ययन करना है तथा किन तथ्यों का सकलन करना है और किनको बिल्कुल छोडना है। गुडे तथा हट्ट के शब्दो मे, "उपकल्पना यह बताती है कि हम किसकी खोज करें।" इससे अनुसन्धानकर्त्ता को व्यर्थ के आंकडो, तथ्यो आदि को इकट्ठे करने की आवश्यकता नही रहेगी अत वह समय और धन दोनो की बचत करता है।

(2) मार्गदर्शन के रूप मे (In the form of Guidance)—उपकल्पना, अनुसन्धानकर्त्ता का मार्गदर्शन करती है जिससे उसका ध्यान प्रमुख विषय पर ही केन्द्रित होता है। यह अध्ययन के कार्य को बहुत सरल बना देती है जिसमे विलम्ब की सम्भावना को आसानी से टाला जाता है। सही दिशा दिखाने का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण इस दृष्टि से भी है कि इससे अनुसन्धानकर्त्ता का आत्मविश्वास बना रहता है कि वह अपने लक्ष्य की ओर ठीक बढ रहा है, अन्यथा उसका साहस व धैर्य टूट जाता है। जिस समय मनोबल गिर जाता है, कोई भी अध्ययनकर्त्ता कितना ही होशियार और विद्वान क्यो न हो, उसकी आगे कार्य करने मे दिलचस्पी नहीं रहती। अत पी वी यग ने उचित ही कहा है, "उपकल्पना का प्रयोग एक दृष्टिहीन खोज से रक्षा करता है।"[1]

(3) उद्देश्य की स्पष्टता (Clarity about Purpore)—उपकल्पना एक ऐसा मापदण्ड स्थापित करती है जिससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अध्ययन का क्या उद्देश्य है। कुछ अध्ययन बहुद्देशीय होते हैं, अतः उन्हे स्पष्ट करना आवश्यक होता है। जब उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है तो अध्ययनकर्त्ता को सामग्री सकलित करने मे कठिनाई नही होती। वह कई स्रोतो से आवश्यक और अभीष्ट सूचना प्राप्त कर सकता है। कई बार अनुसन्धानकर्त्ता उद्देश्य की स्पष्टता के अभाव मे इतना भटक जाता है कि अन्त मे निराशा ही हाथ आती है। उसके श्रम का कोई लाभ नही होता चाहे उसने कितनी ही निष्ठा, दिलचस्पी, लगन के साथ कार्य किया हो अत उपकल्पना इन मुख्य दोषो से बचाती है।

(4) अनुसन्धान-क्षेत्र को सीमित करना (Restricting the Research Field)—अनुसन्धानकर्त्ता के लिए यह व्यावहारिक रूप मे सम्भव नही है कि वह विषय के समस्त पक्षो पर अध्ययन करे। अध्ययन विषय के विभिन्न पहलुओ पर सामग्री इतनी विस्तृत होती है कि वह यथार्थ मे अनुसन्धान कर ही नही सकता। यदि ऐसा

1 *Pauline V Young* op cit., p. 95.

कर भी लिया जाता है तो वैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह व्यर्थ है। इस निरर्थकता एवं जटिलता को दूर करने में उपकल्पना हमें सहायता प्रदान करती है। उदाहरणार्थ यदि हम राजनीति विज्ञान में 'मतदान व्यवहार' (Voting Behaviour) का अध्ययन करना चाहें तो इससे सम्बन्धित विषय मनोविज्ञान, समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र हो सकते हैं। एक व्यक्ति का मत देने के सम्बन्ध में व्यवहार जानने की कोशिश करें तो एक पक्ष आर्थिक हो सकता है जिसमें अपनी निर्धन स्थिति होने के कारण वह किसी भी व्यक्ति को वोट दे सकता है जो कुछ पैसा या अन्य लालच देता है, दूसरा पक्ष मनोवैज्ञानिक हो सकता है जिसमें वह बड़े-बड़े स्वादिष्ट भाषणों, नारों व वायदों द्वारा प्रभावित होकर वोट दे। इसी प्रकार तीसरा पक्ष जाति या बिरादरी का, चौथा पक्ष विचारधारा का, पाँचवाँ पक्ष अपने मित्रों व सम्बन्धियों को प्रसन्न करने का हो सकता है। यदि हम इसका राजनीतिक पक्ष ही लें तो स्वाभाविक ही क्षेत्र सीमित करना होगा। जॉर्ज लुण्डबर्ग के शब्दों में उपकल्पना के आधार पर, "हम जानबूझ कर अपनी विचार शक्तियों को स्वीकार करते हैं और अपने अनुसन्धान के क्षेत्र को सीमित करके त्रुटियों की सम्भावना को कम करने का प्रयास करते हैं।"[1]

(5) प्रासंगिक तथ्यों के संकलन में सहायक (**Helpful in the Collection of Relevant Facts**)—अध्ययनकर्ता के समक्ष विषय के अध्ययन करते समय कई तथ्य आते हैं, केवल विषय से सम्बन्धित तथ्यों का ही संकलन किया जाता है। उपकल्पना द्वारा क्षेत्र, उद्देश्य और दिशा पहले ही निर्धारित हो जाते हैं, अतः अनुसन्धानकर्ता अपने अध्ययन के लिए केवल उन्हीं तथ्यों को इकट्ठा करेगा जो उसके लिए सहायक हों। इसका अर्थ यह हुआ कि हम मनमाने ढंग से तथ्यों को एकत्र नहीं कर सकते, सम्बद्ध तथ्यों का ही संकलन कर उपकल्पना की सत्यता या असत्यता की जाँच करते हैं। लुण्डबर्ग के शब्दों में, "बिना किसी उपकल्पना के तथ्यों का संकलन और किसी उपकल्पना को आधार मानकर तथ्यों का संकलन—इन दोनों में अन्तर केवल यही है कि दूसरी स्थिति में हम जान बूझकर अपनी विचार-शक्तियों की सीमाओं को स्वीकार करते हैं और अपने अनुसन्धान के क्षेत्र को सीमित करके उनकी त्रुटियों की गुंजाइश को कम करने का प्रयत्न करते हैं जिससे कि अधिकतर उन विशिष्ट पक्षों पर ही ध्यान केन्द्रित किया जा सके, जो हमारे पूर्वानुभव के अनुसार हमारे उद्देश्य की पूर्ति के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।"[2]

(6) निष्कर्ष निकालने में सहायक (**Helpful in Drawing Conclusions**)-उपकल्पना के निर्माण के बाद हम उससे सम्बन्धित तथ्यों का संकलन करते हैं। इन तथ्यों के आधार पर हम यह सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि उपकल्पना सही है या गलत। यदि सही है तो हम सिद्धान्त का निर्माण करते हैं जो अन्य अनुसंधानों के लिए आधार बन जाते हैं। यदि गलत भी सिद्ध होती है तो हमें वास्तविकता का

1 2 *George A Lundberg* op cit, p 119

पता चलता है। उदाहरणार्थ यह कल्पना कि 'विद्यार्थी वर्ग का राजनीतिज्ञ केवल अपने संकीर्ण हितों की रक्षा के लिए शोषण करते हैं।' यदि यह गलत भी सिद्ध होता है तो हमे वास्तविकता का तो ज्ञान होता ही है। श्रीमती यंग के अनुसार, वैज्ञानिक के लिए एक नकारात्मक परिणाम उतना ही महत्त्वपूर्ण तथा रोचक है जितना कि सकारात्मक परिणाम। दोनो ही अवस्थाओं में हमे सत्य का ज्ञान होता है जो उपकल्पना से ही सम्भव है। पी वी यंग के अनुसार उपकल्पना की उपयोगिता अनुसंधानकर्त्ता के निम्न बातों पर निर्भर करती है—(i) तीक्ष्ण अवलोकन (Keen Observation) (ii) अनुशासित कल्पना एवम् सृजनात्मक चिन्तन (Disciplined imagination and creative thinking), (iii) कुछ निरूपित सैद्धान्तिक स्वरूप (Some formulated theoretical frame work)। अत अभीष्ट परिणाम एवम् उद्देश्य प्राप्ति के लिए उपकल्पना ही केवल कामचलाऊ या उपयोगी नहीं होनी चाहिए अपितु अनुसन्धानकर्त्ता में कल्पना, चिन्तन, बुद्धि और धर्म की भी आवश्यकता है।

उपकल्पनाओं का उद्गम या स्रोत
(Source of Hypothesis)

उपकल्पना के बारे में विशद् जानकारी प्राप्त करने के लिए यह अनिवार्य है कि हम यह भी समझें कि (एक अनुसन्धानकर्त्ता को उपकल्पना या उपकल्पनाएँ कहाँ से प्राप्त होती है? अर्थात् वे कौन से स्रोत (Source) हैं जहाँ से एक अनुसन्धानकर्त्ता को किसी विशिष्ट उपकल्पना या उपकल्पनाओं के निर्माण की प्रेरणा मिलती है?)

(उपकल्पना के स्रोत या उद्गम अनेक हो सकते है। जॉर्ज लुण्डबर्ग (George Lundberg) ने 'सोश्यल रिसर्च' में लिखा है कि "एक उपयोगी उपकल्पना की खोज में हम कविता, साहित्य दर्शन, समाजशास्त्र के विस्तृत वर्णनात्मक साहित्य (Descriptive Literature), मानव जातिशास्त्र (Ethnology) कलाकारों के काल्पनिक सिद्धान्तों या उन गम्भीर विचारों के सिद्धान्तों की सम्पूर्ण दुनिया में विचरण कर सकते हैं, जिन्होंने कि मनुष्य के सामाजिक सम्बन्धों के गहन अध्ययन कार्य में अपने को नियोजित किया है।'[1]

(मोटे तौर पर उपकल्पना के स्रोत को दो भागो में बाटा जा सकता है:—

1 वैयक्तिक (Personal) 2 बाह्य (External)

1 वैयक्तिक या निजी स्रोत में अनुसन्धानकर्त्ता की अपनी स्वयं की अन्तर्दृष्टि, सूझ बूझ, कोरी कल्पना विचार अनुभव कुछ भी हो सकता है। एक अनुसन्धानकर्त्ता सामान्यतया अपनी प्रतिभा, दूरदर्शिता, विचारों की मौलिकता तथा अनुभवों के आधार पर उपकल्पना का निर्माण कर सकता है। ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते है जिनमें (वैज्ञानिकों ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर ऐसी अनेक

1 *George Lundberg* op cit, p 9

उपकल्पनाओ का निर्माण किया, जिनके आधार पर विश्व विख्यात वैज्ञानिक नियमो का प्रतिपादन सम्भव हुआ।

2. बाह्य स्रोत म कोई भी साहित्य, कविता, विचार, अनुभव, सिद्धान्त, साहित्य, दर्शन, कहानी, नाटक, उपन्यास अथवा प्रतिवेदन आदि कुछ भी हो सकता है। इसका मूल आशय यह है कि जब कभी अनुसन्धानकर्त्ता किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियो के द्वारा प्रतिपादित एक सामान्य विचार के आधार पर अपनी उपकल्पना का निर्माण करता है, तो उसे हम उपकल्पना का बाह्य स्रोत कहते हैं। अनेक समाज वैज्ञानिको ने भी उपकल्पना के विभिन्न स्रोतो का उल्लेख किया है। उनमे से कुछ प्रमुख हैं—

एम एच गोपाल (M H Gopal) ने उपकल्पना के छः प्रमुख स्रोतो का उल्लेख किया है।[1] वे हैं—

1 सांस्कृतिक पर्यावरण (Cultural Environment)

2 लोक बुद्धि अथवा प्रचलित विश्वास एव प्रथाएँ (Folk wisdom or Current Beliefs and Practices)

3 विशेष विज्ञान (Particular Science)

4 समरूपता (Analogy)

5 स्वीकृत सिद्धान्तो का अपवाद (Exception to the Accepted Theories)

6 वैयक्तिक अनुभव एव मौलिक प्रतिक्रियाएँ (Personal Experiences and Personal Reactions)

गुडे एव हट्ट (Goode and Hutt) ने उपकल्पना के चार प्रमुख स्रोतो का उल्लेख किया है, जिनका उपकल्पना निर्माण के क्षेत्र मे काफी महत्वपूर्ण स्थान है।[2] वे हैं—

1 सामान्य संस्कृति (General Culture)

2 वैज्ञानिक सिद्धान्त (Scientific Theories)

3 समरूपताएँ (Analogies) एव

4. व्यक्तिगत प्रकृति वैशिष्टय सम्बन्धी अनुभव (Personal Ideosyncratic Experiences)

यहाँ हम इन स्रोतो की विस्तार से विवेचना करेंगे।

सामान्य संस्कृति (General Culture)

मनुष्यो की गतिविधियो को समझने का सबसे अच्छा साधन उनकी संस्कृति है। व्यक्तियो का व्यवहार एव उनका चिन्तन बहुत कुछ उनकी अपनी संस्कृति के अनुरूप ही होता है। अधिकांश उपकल्पनाओ का मूल स्रोत वह सामान्य संस्कृति

1 *M H Gopal*: An Introduction to Research Procedure in Social Sciences p 120–121

2 *Goode and Hutt* op cit, p 63 67

होती है, जिसमे विशिष्ट विज्ञान का विकास होता है। सम्बन्धित सस्कृति लोगो के विचारो, जीवन-प्रणाली तथा मूल्यो को प्रभावित करती है। इस प्रकार प्रमुख सांस्कृतिक मूल्य (*Cultural Values*) *प्रत्यक्षतः शोध-कार्य की प्रेरणा बन जाते* है। उदाहरण के लिए जैसे पश्चिमी सस्कृति मे व्यक्तिगत सुख, उदारवाद, सामाजिक गतिशीलता, प्रतिस्पर्द्धा, प्रगतिवाद एव सम्पन्नता आदि पर अधिक जोर दिया जाता है, जबकि भारतीय सस्कृति मे दर्शन, आध्यात्मिकता, जाति-प्रथा, धर्म, सयुक्त-परिवार आदि का गहन प्रभाव दिखाई देता है। इस प्रकार अपनी सामान्य सस्कृति भी अनुसन्धानकर्त्ता को उपकल्पना के लिए स्रोत प्रदान करती है।

सामान्य सस्कृति को तीन प्रमुख भागो मे बाँटकर समझा जा सकता है—

(A) सांस्कृतिक पृष्ठभूमि (Cultural Background)—जिस सामान्य सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि को लकर विज्ञान का विकास होता है वह सस्कृति स्वय ही उपकल्पना निर्माण के विभिन्न स्रोत उपलब्ध करती है। जैसे भारत एव ब्रिटेन की पृथक् पृथक् सांस्कृतिक पृष्ठभूमि।

(B) सांस्कृतिक चिह्न (Cultural Traits)—इसमे हम किसी समाज या सस्कृति के लोक-ज्ञान के विभिन्न अग जैसे लोक-विश्वास, लोक-कथाएं, लोक-*साहित्य, लोक-गीत, कहावते आदि को रख सकते है*, जिनके आधार पर उपकल्पनाओ का निर्माण किया जा सके।

(C) सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन (Socio Cultural Changes)—समय-समय पर उस सस्कृति, विशेषकर उसके सस्थात्मक ढाँचे के विभिन्न अगो मे परिवर्तन किया जाता है। इन परिवर्तनो के कारण परिवर्तित सांस्कृतिक मूल्य भी उपकल्पना के स्रोत बन सकते हैं।

2 वैज्ञानिक सिद्धान्त (Scientific Theories)

(विभिन्न वैज्ञानिक सिद्धान्त, जो समय-समय पर प्रस्तुत किए जाते हैं, भी उपकल्पना के स्रोत हो सकते हैं।) गुड़े एव हट्ट ने तो यहाँ तक लिखा है कि "उपकल्पनाओ का जन्म स्वय विज्ञान मे होता है।" (Hypotheses originate in the science itself)। प्रत्येक विज्ञान मे अनेको सिद्धान्त होते हैं। इन सिद्धान्तो से एक विषय के विभिन्न पहलुओ के सम्बन्ध मे हमे जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रकार इन सिद्धान्तो के अन्तर्गत सम्मिलित पक्षो (Aspects) के सम्बन्ध मे प्राप्त ज्ञान भी उपकल्पनाओ का स्रोत माना जा सकता है।

(वस्तुत एक अनुसन्धानकर्त्ता अपने अध्ययन द्वारा केवल नवीन सिद्धान्तो की रचना ही नही करता बल्कि नवीन परिस्थितियो में पहले से स्थापित सिद्धान्तो का परीक्षण भी करता है। उक्त सिद्धान्तो के पुनर्परीक्षण से उनके अन्तर्गत विद्यमान न्यूनताएं अथवा अशुद्धियां भी सामने आ जाती हैं। इस प्रकार प्रचलित सिद्धान्त सामाजिक अध्ययनो को दिशा प्रदान करते हैं एव नवीन उपकल्पनाओ को जन्म देते है। उदाहरण के लिए रिजले (Risley) एव नसफील्ड (Nesfield) ने भारत मे जाति-प्रथा की उत्पत्ति का अध्ययन करने के लिए जिन उपकल्पनाओं को प्रस्तुत

किया, उनका निर्माण जाति-प्रथा की उत्पत्ति से सम्बन्धित पहले के सिद्धान्तो के आधार पर ही करना सम्भव हो सका। दुर्खीम (Durkheim) के द्वारा प्रस्तुत आत्महत्या (Suicide) का सिद्धान्त भी इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। दुर्खीम के अनुसार आत्महत्या के विभिन्न कारणों तथा सामाजिक प्रभावो का विवेचन करने के पश्चात् उससे सम्बन्धित जिन नियमो का निर्माण किया जाएगा उनका सामूहिक नाम 'आत्महत्या का सिद्धान्त' कहलाएगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनेक बार पूर्व सिद्धान्तो के निष्कर्षों या सामान्यीकरणों के आधार पर उपकल्पनाओं का निर्माण किया जा सकता है। इस आधार पर इन उपकल्पनाओं के द्वारा इन सिद्धान्तो की पुष्टि या इन्हे अस्वीकृत अथवा नवीन सिद्धान्तो की रचना भी की जा सकती है।

3 सादृश्यताएँ (Analogies)

जब कभी दो क्षेत्रों मे कुछ समानताएं या समरूपताएं दिखाई देती है तो सामान्यतया उनके आधार पर भी उपकल्पनाओं का निर्माण कर लिया जाता है। इस प्रकार ऐसी समरूपताएं या सादृश्यताएं भी उपकल्पनाओं के लिए स्रोत बन जाती हैं। ए. वल्फ (A Wolf) ने लिखा है कि 'सादृश्यता उपकल्पनाओं के निर्माण तथा घटना में किसी काम चलाऊ नियम की खोज के लिए अत्यन्त उपयोगी पथ-प्रदर्शक है।" कभी कभी दो तथ्यों के मध्य समानता के कारण नई उपकल्पना का जन्म होता है और इनकी प्रेरणा का कारण सादृश्यताएं होती है। 'जुलियन हक्सले' ने बताया कि किसी विज्ञान की प्रकृति के सम्बन्ध मे सामाजिक अवलोकन उपकल्पनाओं के आधार बन जाते है। ये समानताएं या तो दो विभिन्न व्यवहार-क्षेत्रो (उदाहरणार्थ पशु मनुष्य वनस्पति-मनुष्य) मे समरूपता की ओर संकेत करती हैं या जो घटनाएँ एक ही अवसर या समय पर विभिन्न स्थानो पर घटित होती है सादृश्यता की प्रवृत्ति बनाती हैं। कुछ विशिष्ट व्यवहार 'मनुष्यो' एवं 'पशुओं' मे समान हो सकते हैं। परिस्थिति विज्ञान (Ecology) के अन्तर्गत सामान्य मानवीय रूप अथवा क्रियाएँ समान क्षेत्रो अथवा परिस्थितियों मे रहने वाले व्यक्तियों मे देखी जा सकती हैं। पौधो मे नर-मादा का परस्पर सम्बन्ध एवं व्यवहार भी पुरुषो स्त्रियो के पारस्परिक यौन-सम्बन्धो (Sex Relationships) की ओर संकेत करता है।

लुई पाश्चर द्वारा चेचक (Small Pox) के टीके लगाने के सिद्धान्तो मे गायो के चेचक से संक्रमित होने तथा उसी के सादृश्य मनुष्य के शरीर मे चेचक के कीटाणु छोडने को उपकल्पना माना गया है।

हरबर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) ने सामाजिक उदविकास (Social Evolution) के सिद्धान्तो को प्रस्तुत करने के लिए जिस उपकल्पना का निर्माण किया वह इस सादृश्य पर आधारित थी "कि समाज की उत्पत्ति, विकास और विनाश जीव-रचना के जन्म विकास और मृत्यु के ही समान है।"

4. व्यक्तिगत प्रकृति-वैशिष्ट्य अनुभव
(Personal Ideosyncratic Experiences)

व्यक्तिगत प्रकृति-वैशिष्ट्य अनुभव भी उपकल्पना के महत्त्वपूर्ण स्रोत है। संस्कृति, विज्ञान एवं समरूपता ही उपकल्पना निर्माण के लिए आधार-सामग्री नहीं जुटाते बल्कि व्यक्ति का अपना अनुभव भी उपकल्पना निर्माण में महत्त्वपूर्ण होता है। सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति प्रकृति में कुछ विशिष्ट अनुभव प्राप्त करता है और उसी अनुभव के आधार पर वह उपकल्पना का निर्माण कर सकता है।'

न्यूटन ने पेड़ से गिरने वाली सेव (Apple) को देखकर (जो एक सामान्य प्रकृति वैशिष्ट्य अनुभव था) गुरुत्वाकर्षण के महान् सिद्धान्त (Great Theory of Gravitation) की रचना की। इसी प्रकार डार्विन को जीवन-संघर्ष (Struggle for Existence) एवं उपयुक्त व्यक्ति की जीवन-क्षमता (Survival of the fittest) के सिद्धान्त स्थापित करने में अपने व्यक्तिगत अनुभवों पर ही उपकल्पनाओं का निर्माण करना पड़ा था। माल्थस ने भी जनसंख्या की तीव्र एवं खाद्य पदार्थों की धीमी वृद्धि का सिद्धान्त अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर बनाया। लोम्ब्रोसो (Lombroso) ने मनोचिकित्सक एक चिकित्सक के रूप में अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर एक उपकल्पना का निर्माण किया कि 'अपराधी जन्मजात होते हैं' (*Criminals are Born*) एवं अपनी शारीरिक विशेषताओं में वे सामान्य व्यक्तियों से भिन्न होते हैं। सर हरबर्ट रिजले (Sir Herbert Risley) ने 1901 में जनगणना के अधीक्षक के रूप में जिस विशिष्ट ढंग से भारतीय जनता को देखा एवं उनके बारे में अनुभवों को प्राप्त किया वह उनके 'जाति के प्रजातीय सिद्धान्त' (Racial Theory of Caste) की उपकल्पना की आधारशिला बनी।

इस प्रकार इन्हीं चार स्रोतों के आधार पर प्रमुख रूप से उपकल्पनाओं का जन्म होता है।

उपकल्पना के प्रकार
(Types of Hypothesis)

उपकल्पना के उद्गम या स्रोत को समझ लेने के बाद अब हमें यह देखना चाहिए कि सामाजिक विज्ञानों में किन-किन प्रकार की उपकल्पनाओं का प्रयोग किया जाता है। सामाजिक यथार्थ की जटिल प्रकृति के कारण उपकल्पनाओं का कोई एक सर्वमान्य वर्गीकरण प्रस्तुत करना अत्यन्त कठिन कार्य है। सामाजिक यथार्थ का क्षेत्र जितना व्यापक होगा उपकल्पनाओं की संख्या भी उतनी ही व्यापक होगी। समाजशास्त्र में जिन उपकल्पनाओं का प्रयोग किया जाता है उनके कई प्रकार या स्तर होते हैं। फिर भी उन्हें विभिन्न वर्गों में प्रस्तुत किया जा सकता है।

उपकल्पनाओं को मोटे तौर पर दो बड़े भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1 सरल उपकल्पनाएँ (Simple Hypothesis)—ये वे उपकल्पनाएँ हैं जिनमें दो अवधारणाओं के मध्य सह-सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।

2 जटिल उपकल्पनाएँ (Complex Hypothesis)—जटिल उपकल्पनाएँ उन्हें कहा जाता है, जिनमे सामान्यत दो से अधिक अवधारणाओ के मध्य सम्बन्ध दर्शाया जाता है।

एम एच गोपाल (M H. Gopal) ने 'एन इन्ट्रोडक्शन टू रिसर्च प्रोसीजर इन सोश्यल साइन्स' मे उपकल्पना के दो प्रकारो का उल्लेख किया है।[1] वे हैं—

1 अशुद्ध, मिली-जुली अथवा मौलिक उपकल्पनाएँ (Crude Hypothesis)
2 विशुद्ध तथा पुनर्परीक्षित उपकल्पनाएँ (Refined Hypothesis)।

1 मौलिक उपकल्पनाएँ (*Crude Hypothesis*)—मौलिक उपकल्पनाएँ सामान्यत निम्न स्तरीय विचारधाराएँ होती है, जो अधिकाशत केवल सकलित की जा सकने वाली सामग्री को बताती हैं। इन उपकल्पनाओ के द्वारा किसी सिद्धान्त अथवा नियम की स्थापना नही होती है तथा ये विशेषकर वर्णनात्मक अध्ययनो से सम्बन्धित होती हैं तथा साथ ही इस प्रकार की उपकल्पनाएँ पिछले निष्कर्षों को काफी दृढ आधार प्रदान करती हैं।

2 विशुद्ध उपकल्पनाएँ (Refined Hypothesis)—ये उपकल्पनाएँ ही वास्तव मे अधिक महत्त्वपूर्ण होती हैं। इन उपकल्पनाओ का निर्माण अनेक अध्ययनो के आधार पर निकाले गए निष्कर्षों पर आधारित होता है। इन उपकल्पनाओ को पुन तीन उप-भागो मे बाँटा जा सकता है—

(A) सामान्य स्तरीय उपकल्पनाएँ (Simple-Level Hypothesis),
(B) जटिल-आदर्श उपकल्पनाएँ (Complex-Ideal Hypothesis),
(C) जटिलतम अन्तर्सम्बन्धित चर उपकल्पनाएँ (Complicated Inter-related Multiple Variable Hypothesis)।

गुडे एव हट्ट (Goode and Hutt) का वर्गीकरण

गुडे एव हट्ट ने 'मैथड्स इन सोश्यल रिसर्च' मे उपकल्पनाओ के तीन महत्त्वपूर्ण प्रकारो का उल्लेख किया है, जो सामाजिक विज्ञानो मे अधिक प्रतिष्ठित हैं।[2] वे हैं—

1 आनुभविक एकरूपता से सम्बन्धित उपकल्पनाएँ,
2 जटिल आदर्श प्रारूप से सम्बन्धित उपकल्पनाएँ एव
3 विश्लेषणात्मक चरो से सम्बन्धित उपकल्पनाएँ।

गुडे एव हट्ट के इन प्रकारो का यहाँ हम विस्तृत वर्णन करेंगे—

1 आनुभविक एकरूपता से सम्बन्धित उपकल्पनाएँ (Hypothesis Related to Empirical Uniformities)—सर्वप्रथम वे उपकल्पनाएँ आती हैं जो अनुभवात्मक समरूपता के अस्तित्व की विवेचना करती हैं। इस स्तर की उपकल्पनाएँ सामान्यतया सामान्य ज्ञान पर आधारित कथनो की वैज्ञानिक परीक्षा करती है

1 *M H Gopal*, op cit p 118-119
2 *Goode and Hutt* op cit, p 59-62

अर्थात् इस प्रकार की उपकल्पनाओ के द्वारा हम ऐसी समस्याओ का अध्ययन कर सकते हैं, जिनके बारे मे सामान्य जानकारी पहले से ही उपलब्ध है। उदाहरण के लिए जैसे किसी उद्योग के श्रमिको की जातीय पृष्ठभूमि की विवेचना अथवा किसी नगर के उद्योगपतियो के बारे मे या अस्पृश्यता के बारे मे अध्ययन। इसी प्रकार *किन्ही विशिष्ट समूहो के व्यवहारो का अध्ययन भी किया जा सकता है,* जैसे किसी विशिष्ट कॉलेज के नवीन छात्रो के व्यवहार का अध्ययन कि वे पुराने छात्रो के व्यवहार से भिन्न है या नही।

कुछ लोगो का विश्वास है कि इस प्रकार के अध्ययनो से किसी प्रकार की उपकल्पना का प्रयोग नही होता है क्योंकि मात्र कुछ नए तथ्यो को एकत्रित किया जाता है, जबकि वस्तुतः इस प्रकार के अध्ययन मे सामान्य जानकारी वाले कथन उपकल्पना का कार्य करते हैं तथा किए गए सर्वेक्षण या तो उस जानकारी की पुष्टि करते हैं या उनका खण्डन करते हैं। इस उपकल्पना के विरुद्ध सबसे बडा तर्क यह दिया जाता है कि इस प्रकार की उपकल्पना की कोई उपयोगिता नहीं है, क्योंकि जिसे सब लोग जानते है, उसे बताने मे कोई नवीनता नही है, तथापि यहाँ इतना कहना पर्याप्त होगा कि प्रत्येक सामान्य जानकारी वैज्ञानिक जानकारी नही होती है, क्योकि वैज्ञानिक जानकारी केवल व्यवस्थित रूप मे वैज्ञानिक पद्धति (Scientific Method) द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। सामान्य जानकारी मे प्राय अन्ध-*विश्वास एव शकाएँ भी सम्मिलित रहती हैं। इस प्रकार उपकल्पना का कार्य तीन* स्तरो पर होता है—प्रथम, यह मूल्य प्रदान निर्णयो को पृथक् करती है, दूसरा, पदो की व्याख्या करती है; एव तीसरा, उसकी प्रामाणिकता की जाँच करती है।[1]

सामान्यत जब किसी तथ्य के बारे मे वैज्ञानिक अध्ययन के बाद उपलब्ध जानकारी पर यह कहा जाता है कि इसका पहले से ज्ञान था, जबकि वस्तुत सच्चाई यह है कि बिना उस अध्ययन के उस प्रकार की पूर्व-घोषणा करना किसी के लिए भी सम्भव नही होता, अतः वस्तुत जिसके बारे मे यह पद होता है, उसे सभी जानते हैं। यह मात्र प्रामाणिकता सिद्ध होने के बाद ही माना जाता है। इस प्रकार उपकल्पना का सरलतम रूप आनुभविक सामान्यीकरण प्राप्त करना है।[2]

2. जटिल आदर्श प्रारूप से सम्बन्धित उपकल्पनाएँ (Hypothesis Related to Complex Ideal Types)—गुडे एव हट्ट के अनुसार दूसरे प्रकार की उपकल्पनाएँ *जटिल-आदर्श प्रारूप (Ideal Type) से सम्बन्ध रखती हैं। इन उपकल्पनाओ का उद्देश्य प्रचलित तार्किक एव अनुभवात्मक एकरूपताओ के सम्बन्धो का परीक्षण* करने के लिए किया जाता है। इस प्रकार मे उपकल्पनाएँ विभिन्न कारको मे तार्किक अन्तर्सम्बन्ध (Logical Inter-relations) स्थापित करने के उद्देश्य से बनाई जाती हैं। ऐसी उपकल्पना की परीक्षा के लिए सर्वप्रथम तथ्यों के तर्कपूर्ण क्रम (Logical Sequence) को आदर्श मानकर 'सामान्यीकरण' (Generalisation) निकाल

1 *Goode and Hutt* Ibid, p. 60
2 *Goode and Hutt* Ibid, p 61.

अन्य वर्गीकरण

कुछ अन्य समाज-वैज्ञानिकों ने उपकल्पनाओं को दो भागों में बांटा है—

1 वर्णनात्मक उपकल्पना,

2 सम्बन्ध उपकल्पना।

1 वर्णनात्मक उपकल्पना—*इसमें किसी दिए गए चर के प्रसार होने से* सम्बन्धित प्रश्न रखे जाते हैं। इसमें यह प्रयास नहीं किया जाता कि विभिन्न कारकों के मध्य पाए जाने वाले सम्बन्ध की खोज की जाए।

2 सम्बन्ध उपकल्पना—इस प्रकार की उपकल्पना में दो या अधिक कारकों के परस्पर सम्बन्ध, कारणों या परिणामों के मध्य सम्बन्ध की ओर सकेत किया जाता है। इन उपकल्पनाओं में जो प्रस्ताव या तर्कपूर्ण सम्बन्ध बतलाने वाले कथन रखे जाते हैं, उनके तीन रूप होते हैं और उनके आधार पर ही तीन प्रकार की उपकल्पनाओं को देखा जा सकता है—

(A) पहले प्रकार की उपकल्पना में यह बताया जाता है कि प्राकृतिक दशा में किस प्रकार कोई विशेष घटनाक्रम के तत्त्व परस्पर सम्बन्धित रहते हैं।

(B) दूसरे प्रकार की उपकल्पना में मानव उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किस प्रकार किसी अनुभवाश्रित घटनाक्रम को प्रयोग में लाया जा सकता है।

(C) तीसरे प्रकार की उपकल्पना दूसरे प्रकार की उपकल्पना से मिलती-जुलती होती है, मगर यह अधिक स्पष्ट होती है।

एक अन्य वर्गीकरण के अनुसार उपकल्पनाओं को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया गया है[1]—

1 तात्त्विक उपकल्पना (Substantive Hypothesis)

2 सांख्यिकीय उपकल्पना (Statistical Hypothesis)

1. तात्त्विक उपकल्पना—इस प्रकार की उपकल्पना में दो अथवा दो से अधिक चरों के मध्य अनुमान पर आधारित सम्बन्धों को व्यक्त किया जाता है। यह एक प्रकार से सामान्य प्रकार की उपकल्पना है। सामान्यत ये तात्त्विक उपकल्पनाएँ परीक्षण योग्य नहीं होतीं। जैसे एक नेता (Leader) जितना अधिक प्रजातान्त्रिक *ढंग को अपनाएगा उसका नेतृत्व उतना ही सफल होगा तथा उसके अनुयायी उसकी* बातों को उतना ही अधिक मानेंगे।

2. सांख्यिकीय उपकल्पना—एक सांख्यिकीय उपकल्पना तात्त्विक उपकल्पना के सम्बन्धों से निगमनित (Deduced) सांख्यिकीय सम्बन्धों का एक अनुमान पर आधारित (Conjectural) कथन है। सांख्यिकीय उपकल्पना के परीक्षण के लिए किसी न किसी आधार (Base) का होना आवश्यक है। इनका परीक्षण हम एक विकल्पीय (Alternative) उपकल्पना की पृष्ठभूमि में करते हैं।

1 डॉ. सुरेन्द्र सिंह, सामाजिक अनुसधान, भाग 2, पृष्ठ 155-156.

श्रेष्ठ (उपयोगी) उपकल्पना की विशेषताएँ
(Characteristics of Good (Useful) Hypothesis)

सामाजिक अनुसन्धान मे सामान्यत उपकल्पनाओं का निर्माण किया जाता है परन्तु समस्त उपकल्पनाएँ वैज्ञानिक नहीं होती। 'गुडे एवं हट्ट' ने लिखा है कि (वैज्ञानिक के मन मे) अकेले अथवा सामूहिक उत्सवों में, एकान्त क्षणों मे अथवा व्यस्तता के क्षणों मे अनेक प्रकार की उपकल्पनाओं का जन्म होता है। उनमे से अधिकांश तो यूं ही समाप्त हो जाती है, और उनका विज्ञान के विकास पर कोई प्रभाव नही पड़ता। केवल निश्चित प्रभावों के द्वारा ही यह सम्भव है कि दोषपूर्ण कल्पनाओं को अच्छी उपकल्पनाओं मे अलग किया जा सके।[1]

सामान्यत एक श्रेष्ठ अच्छी या उपयोगी उपकल्पना उसे कहा जाता है, जो उपलब्ध पद्धतियों के माध्यम से अधिक से अधिक तथ्यों को एकत्रित करने मे सहायक हो एवं कम से कम कठिनाइयों को प्रस्तुत करे।

गुडे एवं हट्ट ने श्रेष्ठ या उपयोगी उपकल्पना की पाँच विशेषताओं का उल्लेख किया है।[2] वे है—

1. उपकल्पनाएँ अवधारणात्मक दृष्टि से स्पष्ट होनी चाहिए (Hypothesis must be conceptually clear)—इसका आशय यह है कि उपकल्पनाओं को अवधारणात्मक रूप मे बिल्कुल स्पष्ट होना चाहिए अर्थात् जिन अवधारणाओं (Concepts) का प्रयोग उपकल्पना मे किया गया है उनका अर्थ पूरी तरह स्पष्ट होना चाहिए। एक श्रेष्ठ उपकल्पना के लिए यह आवश्यक है कि उस उपकल्पना मे प्रयुक्त समस्त अवधारणाओं का सक्रियात्मक (परिचालनात्मक) परिभाषित (Operational Definition) अनिवार्य रूप से किया जाए। उपकल्पना की भाषा व अर्थ इतना स्पष्ट व निश्चित होना चाहिए जिससे उसका आशय स्पष्ट हो और मनगढन्त विवेचना से बचा जा सके। गुडे एवं हट्ट के अनुसार उपकल्पना को अवधारणात्मक दृष्टि से स्पष्ट बनाने के लिए इसमे दो विशेषताओं का होना आवश्यक है[3]—

A अवधारणाओं को स्पष्टत परिभाषित किया जाए, एवं

B इन परिभाषाओं को सामान्यत अधिकांश लोगों द्वारा स्वीकार किया जाए।

इस प्रकार वे उपकल्पनाएँ जो अवधारणात्मक दृष्टि से अस्पष्ट होती हैं, उनके परिणाम भी अवैज्ञानिक हो सकते हैं।

2. उपकल्पना का सम्बन्ध आनुभविक प्रयोगसिद्धता से होना चाहिए (Hypothesis should be empirically referents)—उपकल्पना की श्रेष्ठता के लिए यह अनिवार्य है कि उसमे अनुभवसिद्ध प्रामाणिकता का होना भी आवश्यक

1 *Goode and Hutt*. op cit, p 67
2 *Goode and Hutt*: Ibid, p 68-71
3 *Goode and Hutt*: Ibid, p 68.

है, अर्थात् उपयोगी उपकल्पना का सम्बन्ध आनुभविक तथ्यों से होना चाहिए न कि आदर्शात्मक या नैतिक प्रतिमानों से, अर्थात् एक अनुसन्धानकर्त्ता को उपकल्पना की रचना करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसकी उपकल्पना की सत्यता की वास्तविक तथ्यों के आधार पर जाँच की जा सके, अर्थात् उसमें 'वास्तविकता' या तथ्यों की 'मौलिक स्थिति' का तत्त्व विद्यमान होना चाहिए। इसमें किसी प्रकार की आदर्शात्मकता (Normativism) अर्थात् इनका सम्बन्ध आदर्शात्मक निर्णयों (अच्छा बुरा, सत्य-असत्य आदि) से नहीं होना चाहिए। जैसे 'मानव-हत्या पाप है।' या 'पूँजीपति श्रमिकों का शोषण करते हैं।' आदि ऐसी उपकल्पनाएँ प्रयोगसिद्ध नहीं होती, अत इन्हें वैज्ञानिक उपकल्पाएँ नहीं माना जाता।

3 **उपकल्पनाएँ विशिष्ट होनी चाहिए (Hypothesis must be specific)**—एक उपयोगी उपकल्पना की एक और अन्य विशेषता यह है कि वह सामान्य (General) न होकर अध्ययन-विषय के किसी विशिष्ट (Specific) पक्ष से सम्बन्धित होनी चाहिए। यदि अध्ययन-विषय के सभी पक्षों को लेकर एक सामान्य उपकल्पना का निर्माण कर लिया जाता है तो अध्ययनकर्त्ता एक समय में ही विषय के समस्त पक्षों का यथार्थ अध्ययन नहीं कर सकता। उपकल्पना की विशिष्टता से अनुसन्धान में उसकी व्यावहारिकता एवं महत्त्व भी स्पष्ट हो जाता है। इसके विपरीत यदि उपकल्पना को सामान्य भाषा में प्रस्तुत किया जाए तो वह देखने में पर्याप्त भव्य एवं आकर्षक लगेगी, तथापि वह कार्यकारी या उपयोगी नहीं होगी। एक आनुभविक अध्ययनकर्त्ता को इस प्रकार के विचारों पर शोध करने का मोह त्याग कर ऐसे विषयों का चयन करना चाहिए जो आनुभविक अध्ययन की दृष्टि से व्यावहारिक हो।[1] अत विशिष्ट उपकल्पनाएँ अनुसन्धान कार्य को व्यावहारिकता प्रदान करती है।

4. **उपकल्पना का सम्बन्ध उपलब्ध प्रविधियों से होना चाहिए (Hypothesis should be related to available techniques)**-(उपकल्पना का निर्माण करते समय यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि उपकल्पना ऐसी होनी चाहिए, जिसका उपलब्ध प्रविधियों द्वारा परीक्षण किया जा सके।) स्वयं गुडे एवं हट्ट ने इस सन्दर्भ में लिखा है कि "*वह सिद्धान्त शास्त्री जो यह नहीं जानता कि* उसकी उपकल्पना की परीक्षा के लिए कौनसी प्रविधियाँ (Techniques) उपलब्ध हैं, प्रयोग योग्य प्रश्नों के निर्माण में हीन है।"[2]

(लेकिन अनेक बार सामाजिक यथार्थ की जटिल प्रकृति के कारण उपकल्पना का निर्माण उपलब्ध तकनीक से परे भी किया जाता है। उदाहरण के लिए 'इमाइल दुर्खीम' (Emile Durkheim) ने अपनी पुस्तक 'सुसाइड' (Suicide) के लिए जब 'आत्महत्या' से सम्बन्धित उपकल्पनाओं का निर्माण किया तो उपलब्ध तकनीक से इनकी जाँच सम्भव नहीं थी।)

1 *Goode and Hatt*: Ibid, p 69
2 *Goode and Hatt*: Ibid, p. 70.

5 उपकल्पनाओं का सम्बन्ध सिद्धान्त-समूह से होना चाहिए (Hypothesis *should be related to a body of theory*)—उपकल्पना की रचना करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि वह पहले प्रस्तुत किए गए किसी सिद्धान्त अथवा सिद्धान्तों से सम्बन्धित हो। गुडे एवं हट्ट स्वयं कहते हैं, इस नियम की अवहेलना अक्सर सामाजिक अनुसन्धान के प्रारम्भिक विद्यार्थी कर देते हैं। यह उचित है कि चुनी हुई उपकल्पना किसी प्रतिपादित सिद्धान्त के अनुसार ही हो। वे आगे लिखते हैं कि "जब अनुसन्धान व्यवस्थित रूप से पूर्व स्थापित सिद्धान्तों पर *आधारित होता है तो ज्ञान में यथार्थ योगदान की सम्भावना अधिक हो जाती है।*"[1]

इस प्रकार असम्बद्ध उपकल्पनाओं की प्रमुख प्रचलित सिद्धान्तों के आधार पर परीक्षा नहीं की जा सकती है।

गुडे एवं हट्ट के द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त विशेषताओं के अलावा भी एक श्रेष्ठ या उपयोगी उपकल्पना में दो और विशेषताएँ होनी चाहिए। वे हैं—

1 उपकल्पनाएँ सरल होनी चाहिए (Hypothesis must be simple)—*उपकल्पना की विशेषता का उल्लेख श्रीमती पी वी यंग* (Mrs P V Young) ने किया है। पी वी यंग के अनुसार 'सरलता का यह आशय नहीं है कि उपकल्पनाएँ ऐसी हों जो साधारण व्यक्ति की समझ में आ जाएँ। सरलता किसी प्रघटना को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है। अनुसन्धानकर्त्ता को अपनी समस्या की जितनी अधिक जानकारी होगी, वह उतनी ही सरल उपकल्पनाएँ बनाएगा।"[2]

2 *उपकल्पना समस्या का पर्याप्त उत्तर होनी चाहिए* (Hypothesis must be an adequate answer to the problem)—अर्थात् उपकल्पना को किसी समस्या का पर्याप्त उत्तर प्रस्तुत करना चाहिए। सम्भव है ऐसी अनेक उपकल्पनाएँ हों जो एक समस्या के समाधान हेतु सुझाव प्रस्तुत करती हों, किन्तु यह आवश्यक है कि प्रत्येक उपकल्पना किसी विशेष दृष्टिकोण से समस्या का समाधान *प्रस्तुत करती हो।*

इस प्रकार उपरोक्त विशेषताओं से युक्त उपकल्पनाओं का प्रयोग ही सामान्यत अनुसन्धानकर्त्ता को अपने अनुसन्धान में सहायता प्रदान करता है। मनगढन्त या कल्पनात्मक आधारों पर बनाई गई उपकल्पनाएँ न तो वैज्ञानिक अध्ययन में सहायता प्रदान करती हैं, और न ही उनसे कोई वैज्ञानिक निष्कर्ष प्राप्त किया जा सकता है। सिद्धान्तों के निर्माण में तो वे बिल्कुल ही अनुपयोगी होगी।

उपकल्पना निर्माण में कठिनाइयाँ
(Difficulties in Formulation of Hypothesis)

उपकल्पना का निर्माण अत्यन्त सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। लेकिन अनेक बार अत्यन्त सावधानीपूर्वक उपकल्पनाओं का निर्माण करने के बाद भी कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं। इन कठिनाइयों के कारण अनेक बार

1 *Goode and Hatt*: Ibid, p 72
2 *Mrs P. V Young*, op. cit, p 106

अनुसन्धानकर्त्ता अपना धैर्य खोने लगता है। गुडे एवं हट्ट ने उपकल्पना निर्माण मे आने वाली तीन प्रमुख कठिनाइयो का उल्लेख किया है।[1] वे हैं—

1 स्पष्ट सैद्धान्तिक सन्दर्भ का अभाव (Absence of a clear theoretical framework)

2 उपलब्ध सैद्धान्तिक सन्दर्भ को तार्किक रूप से उपयोग में लाने का अभाव (Lack of ability to utilise that theoretical framework logically)

3 उपलब्ध अनुसन्धान प्रविधियो के साथ पर्याप्त जानकारी का अभाव (Failure to be acquainted with available research techniques)

लेकिन यहाँ हम उपकल्पना निर्माण मे आने वाली कुछ सामान्य कठिनाइयो का उल्लेख करेंगे।

1 **सैद्धान्तिक सन्दर्भ की अनुपस्थिति (Lack of Theoretical Framework)**—किसी विचार के उत्पन्न होने के पश्चात् उस पर वैज्ञनिक पद्धति के द्वारा अनुसन्धान करने हेतु जब उपकल्पना का निर्माण किया जाता है तो सर्वप्रथम कठिनाई यह उपस्थित होती है कि पूर्व स्थिति के स्पष्टीकरण के लिए सैद्धान्तिक सन्दर्भ (ढाँचा) उपलब्ध नही हो पाता है। अत ऐसी स्थिति मे एक कायकारी उपकल्पना का निर्माण कठिन हो जाता है।

2 **सैद्धान्तिक सन्दर्भ के आवश्यक ज्ञान का अभाव (Lack of Knowledge of Theoretical Framework)**—अनेक बार सैद्धान्तिक सन्दर्भ तो उपस्थित होता है मगर अनुसन्धानकर्त्ता को अपन विषय एव उपकल्पना से सम्बन्धित सद्धान्तिक सन्दर्भ का स्पष्ट ज्ञान नही होता, तथा उसके अभाव म वह सफलतापूर्वक उपकल्पना का निर्माण नही कर सकता। सैद्धान्तिक सन्दर्भ का स्पष्ट ज्ञान अनुसन्धानकर्त्ता की प्रथम आवश्यकता है।

3. **सैद्धान्तिक सन्दर्भ के तर्कपूर्ण प्रयोग का अभाव (Lack of Logical use of Theoretical Framework)**—सैद्धान्तिक सन्दर्भ की पूर्ण उपस्थिति एव उसके बारे मे पर्याप्त ज्ञान होने के बाद भी उपकल्पना निर्माण की एक कठिनाई यह आती है कि उसमे सैद्धान्तिक सन्दर्भ के तर्कपूर्ण (Logical) एव कुशल (Efficient) प्रयोग की योग्यता भी होनी चाहिए। इसके अभाव मे उपयोगी उपकल्पना का निर्माण लगभग असम्भव ही है।

4 **अध्ययन प्रविधियों की विविधता (Varying Study Techniques)**—आधुनिक समय मे अनेक नवीन आविष्कारो, मशीनो एव यन्त्रो आदि का प्रचलन बढ जाने से नवीनतम अध्ययन प्रविधियो के आ जाने से इन अध्ययन-प्रविधियो मे इतनी विविधता आ गई है कि एक अनुसन्धानकर्त्ता के लिए सर्वाधिक उपयुक्त पद्धति का चयन करना अत्यन्त दुष्कर हो गया है। वर्तमान मे एक ही अध्ययन अनेक

1 *Goode and Hatt* op cit, p 57

का निर्माण होता है। सिद्धान्त एक प्रकार से *उपकल्पना की सिद्धता है। सिद्धान्त* पूरी तरह तथ्यो पर आधारित होते हैं। सिद्धान्त मे विभिन्न तथ्यो का तार्किक विश्लेषण किया जा सकता है तथा सम्बन्धों की भी स्थापना की जा सकती है। *इस स्थल पर हमें इस बात की कोई जानकारी नही होती कि निगमनित* (Deduced) नवीन सम्बन्ध सत्य है अथवा असत्य। ये निगमनित नवीन सम्बन्ध उपकल्पना का निर्माण करते है। यदि पुन एकत्रित किए गए आँकडो के आधार पर इनकी पुष्टि हो जाती है तो यह भविष्य मे किए जाने वाले सिद्धान्त निर्माण का एक अ ग बन जाते है।

गुडे एव हट्ट भी लिखते है कि "एक सिद्धान्त तथ्यो के मध्य के एक तार्किक सम्बन्ध को बतलाता है। इस सिद्धान्त से ऐसे प्रस्थापन, निष्कर्ष या विचार निकाले जा सकते हैं जो कि सत्य सिद्ध होने चाहिए, यदि प्रथम उल्लेखित सम्बन्ध सही है। *ये निष्कर्ष या प्रस्थापन ही उपकल्पनाएँ होते हैं... ...प्रत्येक सार्थक प्रतीत होने वाला सिद्धान्त अतिरिक्त उपकल्पनाओ को निर्मित करने देता है।*"[1]

विलियम एच जॉर्ज (William H George) ने भी 'द साइन्टिस्ट इन एक्शन' मे लिखा है कि "व्यावहारिक रूप मे एक सिद्धान्त एक विस्तृत उपकल्पना है। यह सरल उपकल्पना की तुलना मे अधिक प्रकार के तथ्यो से सम्बन्धित होती है।"[2]

इसी प्रकार हमे यह नही भूलना चाहिए कि अनुसन्धानकर्त्ता उपकल्पनाओ के निर्माण से पूर्व जिन अवधारणाओ को बनाता या चुनता है, उनके परस्पर सम्पर्क व प्रक्रिया से ही वह कोई सिद्धान्त बनाता है। *उस सिद्धान्त से कार्यवाहक* उपकल्पनाएँ (Workable Hypothesis) बनाई जाती हैं और उपकल्पनाओ के सिद्ध हो जाने पर सिद्धान्त 'सत्य सिद्धान्त' के रूप मे प्रकट हो जाता है। कहने *का आशय यह है कि सिद्धान्त उपकल्पना के पूर्व एव पश्चात्* (Before and After) दोनो ही अवस्थाओ मे विद्यमान होता है। पूर्व की अवस्था में यह केवल मात्र पथ प्रदर्शक, विचार-समूह के रूप में ही होता है। पश्चात की अवस्था मे वह सार्थक तथा सत्य सिद्ध हुआ सिद्धान्त होता है।

एम एच गोपाल (M H Gopal) ने लिखा है "एक सिद्धान्त व एक उपकल्पना के मध्य का अन्तर एक प्रकार की अपेक्षा मात्रा या अ श का ही अधिक है, *क्योंकि जब उपकल्पनाएँ सत्य सिद्ध हो जाती हैं तो वह एक सिद्धान्त का भाग ही* बन जाती हैं। एक प्रकार से ये एक दूसरे से ही निकलती हैं।"[3]

प्रकट है कि 'उपकल्पना' व सिद्धान्त का घनिष्ठ सम्बन्ध है। उपकल्पनाओ का सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोत है सिद्धान्त। प्रत्येक सिद्धान्त से निगमन (Deduction) द्वारा हमे अनेक उपकल्पनाएँ प्राप्त होती हैं। फिर इन उपकल्पनाओ की अनुभव

1 *Goode and Hatt* op cit, p 56–57
2 *William H George* The Scientist in Action, p 220
3 *M H Gopal* op cit, p 115–116.

द्वारा ज्ञात तथ्यों से परीक्षा करते हैं। यदि ये स्वीकृत हो जाते हैं तो सिद्धान्त की स्थापना हो जाती है। 'गुडे एवं हट्ट' के शब्दों में "निगमन का निरूपण ही उपकल्पना का निर्माण करता है। यदि यह प्रमाणित हो जाता है तो सैद्धान्तिक रचना का भाग बन जाता है।"[1]

इसे इस चित्र द्वारा भी समझा जा सकता है—

सिद्धान्त (Theory)
↑
सत्यापन (Verification)
↑
उपकल्पना (Hypothesis)
↑
निगमन (Deduction)
↑
सिद्धान्त (Theory)
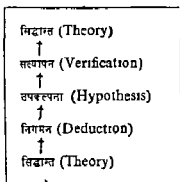
चर अथवा परिवर्त्य
(Variables)

सामाजिक अनुसन्धान के अन्तर्गत हम विभिन्न प्रकार के चरों (Variables) के साथ कार्य करते हैं। सामान्यतः चर से हमारा अभिप्रायः वस्तुओं अथवा घटनाओं की ऐसी विशेषता, गुण अथवा श्रेणी से है जो इसे निर्धारित किए गए विभिन्न आंकिक मान (Numeral Values) ग्रहण कर सकती है, उदाहरण के लिए समय, भार, आय, आयु, धर्म राष्ट्रीयता, बुद्धि, जन्म, मृत्यु, विवाह, बीमारी इत्यादि (सामाजिक अनुसन्धान के अन्तर्गत चरों के साथ कार्य करते हुए आवश्यकतानुसार इन्हें स्थिर रखते हैं तथा परिवर्तित करते हैं। जब हम यह निर्णय लेते हैं कि हमें चर को स्थिर रखना है तो हमें चर के केवल एक मूल्य का ही उल्लेख करना पड़ेगा। यदि हम निर्णय यह लेते हैं कि चर को परिवर्तित करना है, तो हमें उन विभिन्न मूल्यों का उल्लेख करना पड़ेगा जिनको हम आदर्श मानकर प्रयोग करना चाहते हैं।) मूल्यों का किया गया यह उल्लेख इस बात पर निर्भर करता है कि चर की कल्पना हम गुणात्मक अथवा परिमाणात्मक शब्दों में करते हैं। गुणात्मक चरों को गुण (Attribute) कहा जाता है। चर शब्द का प्रयोग वास्तव में उन्हीं विशेषताओं के लिए किया जाना चाहिए जो परिमाणात्मक प्रकृति वाली हों। सहज बुद्धि के स्तर पर गुण एवं चर में पाया जाने वाला विभेद स्पष्ट है क्योंकि हम यह कह सकते हैं कि चर के सन्दर्भ में ही सख्याओं का प्रयोग किया जाता है, गुण के सदर्भ में नहीं।[2]

1 *Goode and Hatt*, Ibid,
2 डॉ. सुरेन्द्रसिंह : सामाजिक अनुसन्धान, भाग 1, पृ. 23-24.

एक चर एक सकेत (Symbol) है जिससे अनेको अ श (Numeral) अथवा मान (Values) निर्धारित किए जा सकते हैं।

चर का अर्थ एव परिभाषा
(Meaning and Definition of Variables)

चर को अनेक आधारो पर परिभाषित किया जा सकता है।

मिल्ड्रेड पर्टिन (Mildred Parten) व एच पी. फेयरचाइल्ड (H P Fairchild) की कृति 'डिक्शनरी ऑफ सोश्योलोजी' मे लिखा है कि "चर का आशय किसी लक्षण (Trait), योग्यता (Quality) अथवा विशेषता (Characteristics) से है जो विभिन्न वैयक्तिक मामलो मे परिमाण या मात्रा को निर्धारित करता है।"[1]

एक चर एक अवधारणा का परिमापन योग्य पहलू है। उदाहरणार्थ पुरुषो की लम्बाई अथवा एक परिमापन योग्य अवधारणा (पुरुषो एव स्त्रियो के बीच जैविक भिन्नताएँ) है जो या तो एक इकाई (व्यक्ति अथवा समूह) से दूसरी इकाई के लिए अथवा एक इकाई के लिए विभिन्न समयो पर दो अथवा दो से अधिक मान ग्रहण करता है, उदाहरणार्थ लम्बाई और भार के दृष्टिकोण से व्यक्ति भिन्न है और एक समय से दूसरे समय पर व्यक्ति बढ सकता है अथवा अधिक भारी हो सकता है।

उदाहरण के लिए X एक चर है। इसका अर्थ यह हुआ कि यह एक ऐसा सकेत है जिसे हम अनेक अ क अथवा मान निर्धारित कर सकते हैं। यहां पर X अनेक तर्कसगत एव औचित्यपूर्ण मान ग्रहण कर सकता है। चरो की प्रकृति आवश्यक रूप से परिमाणात्मक (Quantitative) है। यदि हम कहे कि भारत मे 20% लोग साक्षर हैं तो 20% 'मान या मूल्य' (Value) हुआ क्योकि यह सख्या इकाइयो के समूह (भारत) का कोई माप देती है और स क्षरता का प्रतिशत जो 0% से 100% के मध्य कोई भी हो सकता है, 'चर' कहलाएगा। किसी समूह या समग्र (Universe) के अन्तर्गत अनेक ऐसे चर हो सकते हैं जो उस समूह की इकाइयो को कोई माप दे सकते हैं। इस प्रकार हम चरो के एक समूह की कल्पना कर सकते हैं और हमारी समस्या यह रहती है कि चरो के इस समूह मे से अपने अध्ययन हेतु हम किस चर का चुनाव करें। जैसा कि डॉ एस एस शर्मा ने लिखा है—"चर के चुनाव की समस्या 'इकाई' के चुनाव की समस्या के काफी समान है। हम जानते हैं कि जिस समूह का अध्ययन हमे करना है उसे हम कई प्रकार से इकाइयो मे विभाजित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी नगर के रहने वालो के सम्बन्ध मे कोई अध्ययन करता है तो विभिन्न इकाइयां होगी—मुहल्ले, भवन, परिवार, व्यक्ति। समूह की वह इकाई जिसका आकार हम और कम नहीं कर सकते (जैसे व्यक्ति) समूह की 'Ultimate Unit' कहलाता है और इन

1 *Mildred Parten* in H P Fairchild's Dictionary of Sociology, p. 332.

'Ultimate' इकाइयों के विभिन्न समूहों जैसे—मुहल्ला, परिवार को हम 'Cluster' कहते हैं। अब इन विभिन्न इकाइयों से सम्बन्धित विभिन्न 'चर' होंगे जो इन इकाइयों (जैसे—परिवार या व्यक्ति) का एक माप देने में वर्गीकरण करने में सक्षम हैं।'

चरों का वर्गीकरण (Classification of Variables)

चरों का वर्गीकरण स्वतन्त्र एवं आश्रित (Independent and Dependent), सक्रिय एवं निर्धारित (Active and Assigned), उत्तेजक एवं प्रत्युत्तर (Stimulus and Response), सार्वजनिक अथवा निजी व्यक्तिगत अथवा सामूहिक (Individual or Collective), स्थायी अथवा अस्थायी, चरम (Absolute), सापेक्ष (Relative) अथवा सम्बन्धात्मक (Relational), विश्वात्मक (Global), विश्लेषणात्मक (Analytic) अथवा संरचनात्मक पृष्ठभूमि, व्यक्तित्व सम्बन्धी अथवा तत्त्वात्मक (Elemental), प्राथमिक (Proper) अथवा संदर्भात्मक (Contextual) इत्यादि के रूप में किया जा सकता है किन्तु सामाजिक अनुसंधान के अन्तर्गत प्राय प्रयोग में लाया गया वर्गीकरण स्वतन्त्र एवं आश्रित चरों वाला ही है। एक स्वतन्त्र चर एक आश्रित चर अर्थात् पूर्वकल्पित प्रभाव का पूर्वकल्पित कारण है। आश्रित चर वह चर है जिसके विषय में भविष्यवाणी की जाती है तथा स्वतन्त्र चर वह चर है जो भविष्यवाणी करता है। परिवर्तनशील चर सक्रिय चर कहे जाते हैं। वे परिभाषित (Defined) चर जिनका वर्णन तुरन्त प्रस्तुत किया जा सकता है निर्धारित चर कहलाते हैं। निर्धारित चरों को सावयवी (Organic) चर भी कहा जाता है। एक व्यक्ति का कोई भी गुण, विशेषता अथवा लक्षण सावयवी (Organic) चर है। उत्तेजक चर किसी ऐसी परिस्थिति अथवा प्रयोगकर्त्ता द्वारा पर्यावरण में किया गया ऐसा हेरफेर (Manupulation) है जो प्राणी से प्रत्युत्तरों को करवाता है। प्रत्युत्तर चर एक ऐसा चर है जो प्राणी के किसी भी व्यवहार का बोध कराता है।[1]

सामाजिक वर्ग, लिंग आयु, धार्मिक विश्वास, दुराग्रह, अनुशासन आदि कुछ प्रमुख सामाजिक चर हैं जिनका समाजशास्त्र के क्षेत्र में प्रयोग होता है।

एक बार उपयुक्त चरों की परिभाषा हो जाने के पश्चात् यह निर्णय लेना आवश्यक होता है कि चरों को स्थिर रखते हुए अथवा इन्हें परिवर्तित करते हुए कार्य किया जाना है तथा यदि चरों के मूल्यों को परिवर्तित करते हुए कार्य किया जाना है तो यह परिवर्तन किस सीमा तक किया जाना है। इन दोनों प्रश्नों का उत्तर परीक्षित की जाने वाली परिकल्पना एवं अनुसन्धान के उद्देश्यों तथा उस परिस्थिति पर निर्भर करता है जिनके सन्दर्भ में समस्या का प्रतिपादन किया जा रहा है। यदि समस्याओं का समाधान किसी एक विशिष्ट एवं अपरिवर्तनशील परिस्थिति के लिए खोजा जाना है तो एक विशिष्ट मूल्य पर सभी चरों को स्थिर रखा जाएगा किन्तु

1 डॉ. सुरेन्द्रसिंह : वही, पृ. 23–24.

समस्या जितनी ही अधिक सामान्य होती है, -
अधिक सीमा मे परिवर्तन करने पडते है ।

चरो के नियन्त्रण एवं परिवर्तन की प्रवि
(Methods of Control & Change of

चरो के नियन्त्रण एव परिवर्तन की
प्रमुख प्रविधियो को सक्षेप मे इस प्रकार स्पष्ट

1 पूर्व-प्रयोगात्मक निर्देशो (Pre-.
प्रयोग—उत्तरदाताओ को प्रयोग आरम्भ क
कर दिए जाने चाहिए । ये निर्देश सरल तथा
चाहिए तथा इन्हे परानुभूतिपूर्ण ढग से (En
चाहिए । पूर्व-प्रयोगात्मक निर्देश प्रदान करने
(1) निर्देश प्रदान किए जाने के समय उत्तर
तथा (2) इन निर्देशो का विभिन्न उत्तरदात
किया जा सकता है ।

2 असत्य बातो का बतलाया जाना
उदाहरण के लिए मतदान के गलत परिणा
नियन्त्रण एव परिवर्तन किया जा सकता है
सत्य प्रतीत हो रही हो ।

3 उत्तरदाताओं को उनके द्वारा प्र
करना—इस प्रविधि के व्ययपूर्ण होने के बा
है बशर्ते कि उत्तरदाताओ को वास्तविक प्रयो
समुचित प्रशिक्षण एव पूर्वाभ्यास (Rehearsa

4 सम्भावित व्यवहारो का नियन्त्रि
निर्माण करते हुए जो व्यवहार की सम्भाविना
समुचित परिवर्तन एव नियन्त्रण सम्भव है ।

परिचालन
(Operationalizat

अर्थ एव परिभाषा (Meaning & Definitior

निरीक्षण का कार्य, जो सामाजिक अनुस
परिचालन व्यवस्था के बिना नही हो सकता इ
परिचालनात्मक परिभाषा का विशेष महत्त्व है ।
तक कह दिया है कि अनुसन्धान मे परिचालन
किन्तु ऐसा दृष्टिकोण अतिवादी है और सत्य के
को इस प्रकार के अतिवादी दृष्टिकोण से बचना -
अनुसन्धानकर्त्ता के लिए एक प्रकार की निर्देश-
अमुक-अमुक कार्य अमुक-अमुक तरीके से करो

अर्थ प्रदान करता है और यह स्पष्ट करता है कि अनुसन्धानकर्त्ता को उस चर के मापन के लिए क्या-क्या कार्य करने हैं। फ्रेड एन कैरलिंगर का स्पष्ट अभिमत है कि परिचालनात्मक परिभाषा चरो को वास्तविक अर्थ प्रदान करती है और ऐसा यह उन बातो को स्पष्ट करके करती है जो उस चर या चरो के मापन की क्रिया मे आवश्यक होते हैं। दूसरे शब्दो मे परिचालनात्मक परिभाषा एक अनुसन्धानकर्त्ता के उन कार्यों का वर्णन है, जो उसे किसी चर के मापन मे करने होते हैं।

सामाजिक अनुसन्धान मे परिचालनात्मक परिभाषा, उसके प्रकारो और महत्त्व तथा परिचालनात्मक परिभाषा के निर्माण मे कठिनाइयो पर डॉ सुरेन्द्रसिंह ने सारगर्भित रूप मे बहुत ही अच्छा प्रकाश डाला है—

परिचालनात्मक विशेषण का परिभाषा के साथ सम्बन्धित करने का अर्थ इसे रहस्यमय बनाना नही है बल्कि इसे ऐसा स्वरूप प्रदान करना है जो अधिक विश्वसनीयता के साथ सचार की प्रक्रिया के दौरान प्रयोग मे लाया जा सकता है।

एक परिचालनात्मक परिभाषा वह परिभाषा है जो एक अवधारणा, वाक्य-विन्यास अथवा चर से सम्बन्धित क्रियाओ अथवा गतिविधियो का ब्यौरा देते हुए उन्हे अनुसन्धान योग्य बनाती है।

अधिक स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि परिचालनात्मक परिभाषा केवल वह परिभाषा है जिसके अन्तर्गत यथासम्भव पुष्टि (Coroboration) से प्रभावित होने वाली सम्पादित किए जाने (Performable) योग्य क्रियाओ का स्पष्ट रूप से बोध कराने वाले शब्दो का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार इसके अन्तर्गत (1) भौतिक हेरफेर जैसे कि कैक बनाना, थर्मामीटर पढना, (2) इन परिवर्तनो का विषयात्मक शाब्दिक विवरण अथवा (3) सांकेतिक अथवा मानसिक क्रियाओ के शाब्दिक उल्लेख सम्मिलित होते हैं। इस प्रकार एक परिचालनात्मक परिभाषा एक घटना की परिभाषा अधिक निश्चयात्मकता के साथ इस अर्थ मे कर सकती है कि यह अन्य अनुसन्धानकर्त्ताओ जैसे समान अनुभव प्राप्त करने के लिए निर्देशो को रूपरेखा प्रस्तुत करती है।

वास्तव मे वैज्ञानिक अध्ययन करने हेतु अनुसन्धान के अन्तर्गत प्रयोग मे लाई जाने वाली विभिन्न अवधारणाओं को परिमापन योग्य बनाया जाना आवश्यक होता है। एक भाववाचकता (Abstraction) के स्तर पर पाई जाने वाली अवधारणा को एक विभेद किए जाने योग्य घटना (Discriminable Event) के रूप मे परिवर्तित करना अवधारणा की परिचालनात्मक परिभाषा करना है। स्काट तथा वर्थमिर के शब्दो मे इस प्रकार एक अवधारणा की परिचालनात्मक परिभाषा उन क्रियाओ (पर्यवेक्षण की प्रक्रिया मे प्रयुक्त उपकरणो, हेरफेरो, परिमापनो अथवा अभिलेखन कार्यरीतियो समेत) का बोध कराती है जिनके द्वारा अनुसन्धानकर्त्ता एक अवधारणा द्वारा सशोधित की गई घटना की उपस्थिति (अथवा परिमाण) का पता लगाता है। कभी-कभी परिचालनात्मक परिभाषाओ के प्रति विरोध को व्यक्त करने के लिए इन पर यह लांछन लगाया जाता है कि शब्द के महत्त्व को कम करती

है तथा उसकी गरिमा को धक्का पहुँचाती है क्योंकि परिचालनात्मक रूप से परिभाषित किए जाने पर शब्द का मौलिक अर्थ परिवर्तित हो जाता है तथा व्यवहार के कुछ पहलू इस परिभाषा के विषय-क्षेत्र से बाहर रह जाते हैं। वास्तव मे परिचालनात्मकता की दिशा मे किए गए प्रयासो को शब्द के लिए लाभकारी माना जाना चाहिए क्योंकि ये शब्द का परिष्कार करते हैं और परिष्कार विज्ञान का मौलिक आधार है।

परिचालनात्मक परिभाषाएँ दो प्रकार की होती हैं—(1) परिभाषित (Measured) तथा (2) प्रयोगात्मक (Experimental)। परिभाषित परिचालनामक परिभाषा वह है जो यह स्पष्ट करती है कि चर का परिमापन किस प्रकार किया जाएगा तथा प्रयोगात्मक परिचालनात्मक परिभाषा वह है जो अनुसन्धानकर्ता द्वारा चर के हेर-फेर का विवरण प्रस्तुत करती है।

पर्यवेक्षणो के बिना कोई भी वैज्ञानिक अनुसन्धान कार्य नही हो सकता तथा पर्यवेक्षण तब तक असम्भव है जब तक कि इस विषय मे स्पष्ट निर्देश उपलब्ध न हो कि किस चीज का पर्यवेक्षण किस प्रकार किया जाना है। परिचालनात्मक परिभाषाएँ इसी प्रकार के निर्देश हैं।

परिचालनात्मक परिभाषाएँ अवधारणाओं को एक सीमित तथा प्रबन्ध के योग (Managable) अर्थ प्रदान करती हैं। किसी भी परिचालनात्मक परिभाषा के अन्तगत इनके समस्त पहलुओ को प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है। इस बात पर आवश्यक रूप से बल देना कि हम सामाजिक अनुसन्धान के अन्तर्गत जिस किसी भी शब्द का प्रयोग करेंगे वह परिचालनात्मक रूप से ही परिभाषित होगा, उपयुक्त प्रतीत नही होता क्योंकि इससे हमारा अध्ययन आवश्यकता से कही अधिक सीमित, सकुचित एव सकीर्ण बन जाएगा। फिर भी जैसा कि स्किनर ने बताया है—

"परिचालनात्मक मनोवृत्ति अपनी कमियो के बावजूद भी किसी विज्ञान में अच्छी चीज है क्योंकि इसमे प्राचीन एव अवैज्ञानिक उत्पत्ति (Non-Scientific Origin) के अनेको शब्द विद्यमान हैं।"

परिचालनात्मक परिभाषाओ के निर्माण मे अनेक कठिनाइयाँ हैं जैसे—(1) प्रस्तुत घटना की परिभाषा करना, (2) योग्य पर्यवेक्षको की नियुक्ति करना इत्यादि।

क्रियाशोध का परिचालनात्मक प्रतिमान
(Operational Pattern of Action Research)

क्रियाशोध पाइलट परियोजनाओ को क्षेत्रीय परिस्थितियो मे चलाते हुए सम्पादित किया जाता है। उद्देश्यो की स्पष्ट परिभाषा करने, समस्याओ के अलग किए जाने, उनका उचित निदान प्रस्तुत किए जाने, शक्तियो एव कमियो के प्रारम्भिक मूल्यांकन के पश्चात् पाइलट परियोजना को चलाने के पूर्व सदैव एक परियोजना सलाहकारी समिति की स्थापना की जानी जो इससे सम्बन्धित विभिन्न पहलुओ पर विचार करती हुई प्रभावपूर्ण क्रिया के लिए समुचित संस्तुतियाँ प्रदान

करती रहती है । परियोजना का समय-समय पर मूल्यांकन करते हुए इसकी प्रगति का अनुमान लगाया जाता रहता है । 2 या 3 साल तक परियोजना के क्षेत्र मे चलते रहने के पश्चात् अन्तिम मूल्यांकन किया जाना है । इसके बाद प्राप्त परिणामो का अन्य प्रतिनिधित्वपूर्ण क्षेत्रो म परीक्षण करने के लिए परीक्षण परियोजनाएँ (Test Projects) चलाई जाती है । इन परियोजनाओं द्वारा प्राप्त परिणामो की पुष्टि होन पर एक वैयक्तिक अध्ययन (Case Study) की रचना की जाती है जिससे पाइलट योजनाओ तथा परीक्षण परियोजना की क्रियाविधि इनके दौरान विकसित की गई प्रक्रियाओ एव प्रविधियो तथा इनके द्वारा डाले गए प्रभावो तथा इनकी अच्छाइयो एव बुराइयो और सफलताओ तथा असफलताओ का इनके कारणों सहित विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जाता है । इसके पश्चात् परिचालनात्मक सस्थाओ से प्राप्त अनुभवा को विस्तृत क्षेत्र म लागू करने मे सहायता पहुँचाई जाती है और इसके लिए उन्हे आवश्यक ज्ञान एव निपुणताओ की विस्तृत जानकारी कराई जाती है, उनके कर्मचारियो के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती है; तथा समय-समय पर उनका मार्ग-दर्शन करते हुए उनके कार्य म आने वाली विभिन्न बाधाओ को दूर किया जाता है ।

परिचालनात्मक उपकल्पना
(Operational Hypothesis)

जिस प्रकार सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि का उपयोग करते हुए उपकल्पनाओ अथवा परिकल्पनाओ (Hypothesis) का निर्माण करते है उसी प्रकार उपकल्पनाओ को आधार के रूप मे स्वीकार करते हुए हम परिचालनात्मक उपकल्पना का विकास करते हैं जिसम विभिन्न आनुभविक परिचालन (Empirical Operation) का उल्लेख होता है । इस स्तर पर सफल अनुसन्धानकर्त्ता के लिए अनुभव एव कल्पना आवश्यक हो जाते हैं । यद्यपि सिद्धान्त से उपकल्पना का विकास पर्याप्त रूप से तर्कसगत प्रतीत होता है, सैद्धान्तिक उपकल्पना से परिचालनात्मक उपकल्पना का निर्माण प्रमुख रूप से अन्तर्दृष्टि का विषय है । इस स्तर पर उपलब्ध क्रियाओ की विस्तृत जानकारी तथा नवीन क्रियाओ को विकसित करने की सामर्थ्य के रूप म अनुसन्धानकर्त्ता की निपुणताएँ पाई जाती है । एक क्रिया का आलोचनात्मक मूल्यांकन करत समय यह जानने का प्रयास किया जाना चाहिए कि क्या वास्तव मे यह क्रिया इच्छित सूचना प्रदान करती है तथा यह सिद्धान्त एव इसके परिमापन के बीच एक कडी के रूप मे कहाँ तक उपयुक्त है । परिचालनात्मक उपकल्पना का निर्माण हम इसलिए करना चाहते हैं ताकि परिमापन प्रणाली अधिक से अधिक विश्वसनीय, विषयात्मक, पुनःवृत्तिपूर्ण तथा प्रामाणिक रह सके । परिचालनात्मक उपकल्पना अन्तिम रूप से हमारे समय, धन एव प्रयासो के व्यय मे बचत करती है क्योंकि यह स्पष्ट रूप से हमे बताती है कि किस प्रकार की सूचना किस प्रकार एकत्रित की जाए ।

2

अन्वेषण का तर्क, समाज विज्ञान और मूल्य, प्रस्थापना एवं न्याय-वाक्य के मध्य सम्बन्ध

(The Logic of Inquiry, Values and Social Sciences, Relationship Between Proposition and Syllogism)

अन्वेषण का तर्क
(The Logic of Inquiry)

मानव की अनादिकाल से यह विशेषता रही है कि वह अपने चारो ओर फैले पर्यावरण को समझने का प्रयास करता रहा है। इसके पीछे एक बहुत बडा कारण यह है कि वह अपनी इस समझ व ज्ञान के द्वारा इस पर्यावरण को इस प्रकार परिवर्तित कर सके कि उसकी आवश्यकताओ की पूर्ति सम्भव हो सके और उसे अधिक सुख व शान्ति का अनुभव हो सके। मानव की यही जिज्ञासा उसे अन्वेषण (Inquiry) की ओर ले जाती है।

अन्वेषण का सम्बन्ध 'विज्ञान' (Science) अथवा 'वैज्ञानिक ज्ञान' (Scientific Knowledge) से है। समाजशास्त्र मे अन्वेषण के तर्क (The Logic of Inquiry) से हमारा आशय यह है कि समाजशास्त्र के अन्तर्गत वैज्ञानिक पद्धति (Scientific Method) के द्वारा किसी भी प्रघटना का अध्ययन व विश्लेषण किया जाए। वैज्ञानिक आधार पर आँकडो का एकत्रीकरण और वैज्ञानिक ढग से ही उनका विश्लेषण ही समाजशास्त्र के अन्वेषण का तर्क है।

ऑगस्त कॉम्ट (Auguste Comte) ने ज्ञान के विकास की प्रक्रिया मे तीन सोपानो का उल्लेख किया है, वे हैं—

1 **धार्मिक अवस्था**—ज्ञान की प्रथम स्थिति वह थी जब व्यक्ति प्रत्येक सामाजिक प्रघटना को धार्मिक मान्यताओ के आधार पर समझा करता था।

2 **तात्विक अवस्था**—ज्ञान के विकास की दूसरी अवस्था मे 'तर्क' ने धर्म का स्थान ले लिया।

3. वैज्ञानिक अवस्था—ज्ञान के विकास की यह तृतीय अवस्था है। यहाँ तर्क का स्थान 'विज्ञान' ले लेता है। इससे प्रत्येक सामाजिक प्रघटना की व्याख्या वैज्ञानिक आधार पर की जाती है।

समाजशास्त्र के विकास की स्थिति ज्ञान की इस तृतीय अवस्था से सम्बन्धित है। इस प्रकार ऑगस्त कॉम्ट ने ही समाजशास्त्रीय अन्वेषण के तर्क को वैज्ञानिक माना था। कॉम्ट के बाद आने वाले विभिन्न समाजशास्त्रियों ने व्यवस्थित रूप से समाजशास्त्र को एक विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित करने पर बल दिया। इनमें इमाईल दुर्खीम (Emile Durkheim) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन समाजशास्त्रियों ने यह प्रयास किया कि समाजशास्त्रीय अध्ययनों के लिए व्यवस्थित रूप से आँकड़ों का एकत्रीकरण किया जाए जिससे कि वैज्ञानिक आधारों पर उनका विश्लेषण किया जा सके एवं उसकी वैज्ञानिक प्रकृति को अधिक सशक्त बनाया जा सके।

समाजशास्त्र में हम व्यक्ति का समूह में अथवा समूह (Group) का अध्ययन करते हैं, जिसके अन्तर्गत एक ऐसे सामाजिक यथार्थ का निर्माण होता है, जो सामाजिक सम्बन्ध या ऐसी ही किसी सामाजिक प्रघटना का निर्माण करते हैं जिसका सामाजिक महत्त्व हो। प्रत्येक विषय में यथार्थ (Reality) को समझने के लिए किसी विशेष पद्धति (Method) का प्रयोग किया जाता है। समाजशास्त्र में विज्ञान एवं वैज्ञानिक पद्धति इस यथार्थ को समझने की दृष्टि से प्रयुक्त की गई। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल तक समाजशास्त्र को एक विज्ञान के रूप में स्थापित कर लिया गया एवं पद्धतिशास्त्रीय दृष्टिकोण से विषय में काफी प्रगति हो चुकी थी। विभिन्न प्रकार की अनेक वैज्ञानिक पद्धतियों के द्वारा सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण किया जाने लगा और बहुत बड़े पैमाने पर गुणात्मक (Qualitative) एवं गणनात्मक (Quantitative) आँकड़ों के आधार पर सिद्धान्तों का निर्माण किया गया। सगणक (Computor) के आविष्कार ने इस कार्य में और भी सहायता पहुँचाई, जिसके फलस्वरूप विभिन्न चरों के साथ सम्बन्ध दिखलाया जाकर अनेक नए परिणाम निकाले गए।

विज्ञान एवं विज्ञानवाद (Scienticism) भौतिकीय प्रारूप में विश्वास करता है, जिसकी यह मान्यता है कि समाजशास्त्र को भी भौतिकशास्त्र एवं सामाजिक प्रघटनाओं को भी भौतिक प्रघटनाओं की तरह विश्लेषित किया जा सकता है।

विज्ञान 'ज्ञान' और 'पद्धति' दोनों ही है। इन दोनों स्वरूपों में इसके दो तत्त्व प्रमुख माने जाते हैं वे हैं—

1. तर्क या तार्किकता (Rationality) एवं
2. इन्द्रियगत अनुभव (Empiricism)।

सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से विज्ञान में ऐसे प्राक्कथनों को प्रस्तुत किया जाता है है जो कि तार्किक आधार पर परस्पर जुड़े हुए हैं एवं जिनका सत्यापन इन्द्रिय

अनुभव पर निर्भर करता है। विज्ञान के लिए एक और आवश्यक शर्त वस्तुपरकता (Objectivity) की है, अर्थात् वह वस्तुपरक होकर ही सामाजिक या अन्य घटनाओ को समझने व विश्लेषित करने का प्रयास करे।

इस प्रकार तर्क या तार्किकता, इन्द्रियगत अनुभव एव वस्तुपरकता किसी भी वैज्ञानिक अन्वेषण का आधार है।

रॉय फ्रांसिस ने विज्ञान की निम्न विशेषताओ का उल्लेख किया है—

1. विज्ञान तार्किक है।
2. विज्ञान आनुभविक है।
3. विज्ञान सार्वभौमिक है।
4 विज्ञान मे निरन्तरता है।
5 विज्ञान समस्याओ को सुलझाता है।
6 विज्ञान प्राक्कथनो का निर्माण करता है।
7 विज्ञान सचयी (Cumulative) है।

विज्ञान कुछ धारणाओ (Assumptions) पर भी आधारित है। प्रमुख रूप से विज्ञान की तीन मुख्य धारणाएँ हैं—

1 प्रकृति की एकरूपता,
2 सत्य की वस्तुपरकता, एव
3 आनुभविकता।

यहाँ हम इन तीनो को थोडा विस्तार से समझने का प्रयास करेंगे—

1 **प्रकृति की एकरूपता (Uniformity of Nature)**—प्रकृति की एकरूपता से हमारा आशय यह है कि प्रकृति के कुछ नियम होते हैं, और विशेष स्थितियो के सयोग से एक ही प्रकार के फल उत्पन्न होते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रकृति मे एकरूपता पाई जाती है, अर्थात् एक-सी स्थिति होने पर एक-सी घटनाएँ होगी।

2 **सत्य की वस्तुपरकता (Objectivity of Truth)**—इसका अभिप्राय यह है कि हम यथार्थ को हमारे अपने मूल्य, विश्वासो व आकांक्षाओ के विपरीत स्वतन्त्र होकर वस्तुपरक (Objective) ढग से समझने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार हमारे स्वयं के मूल्य व विश्वास भी यथार्थ (Reality) को परिवर्तित नहीं कर सकते हैं।

3 **आनुभविकता (Empiricism)**—इसका अभिपाय यह है कि यथार्थ के अध्ययन के लिए इन्द्रियपरक अनुभव का होना आवश्यक है। हम किसी वस्तु को इन्द्रियगत अनुभव के द्वारा ही सही रूप मे जान व समझ सकते हैं।

मॉरिस कोहेन (Morris R Cohen) ने विज्ञान के चार प्रमुख लक्षणो की विवेचना की है।[1] वे हैं—

1 *Morris R. Cohen*. Reason and Nature. An Essay on the Meaning of Scientific Method, 1959, p 83.

1 प्रामाणिकता,
2. परिशुद्धता,
3 अमूर्त सार्वभौमिकता, एव
4 व्यवस्था ।

हम यहां इनकी विस्तार से विवेचना करेंगे--

1. प्रामाणिकता (Validity)—विज्ञान का सबसे प्रमुख लक्षण उसकी प्रामाणिकता है, अर्थात् विज्ञान के लिए प्रमाणों (Evidences) की आवश्यकता होती है । यूरोप में बहुत लम्बे समय तक यह माना जाता था कि सूर्य (Sun) पृथ्वी (Earth) के चारों ओर घूमता है, परन्तु सोलहवीं शताब्दी के सुविख्यात ज्योतिषाचार्य कोपरनिकस ने इस मान्यता मे सन्देह किया और प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध किया कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है न कि सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता है ।

2. परिशुद्धता (Accuracy)--विज्ञान मे सदा यह प्रयास रहता है कि अधिक से अधिक सही ज्ञान प्राप्त किया जाए । साधारणतया यह देखा जा सकता है कि अलग-अलग व्यक्तियों का ज्ञान अलग-अलग हो सकता है, परन्तु विज्ञान के लिए यह आवश्यक है कि वह ज्ञान सर्वमान्य एव सत्य हो । सत्य ज्ञान प्राप्त करने का लाभ यह है कि जन-साधारण मे फैले हुए भ्रमों का नाश होना है एव इससे कभी-कभी आविष्कार में अप्रत्याशित सफलता भी प्राप्त होती है ।

3 अमूर्त सार्वभौमिकता (Abstract Universality)--विज्ञान का उद्देश्य अमूर्त सार्वभौमिक नियमों की खोज करना है । विज्ञान घटनाओं की सूची मात्र नहीं है, वरन् उनकी व्याख्या करता है, अर्थात् यह बताता है कि जो कुछ हुआ वह क्यों हुआ ? इसके लिए उसे नियमों की तलाश रहती है । सब घटनाएँ एक दूसरे से कुछ न कुछ भिन्न होती हैं, जबकि नियम सदा उसी तरह लागू होते है । इसे नियमों की सार्वभौमिकता का गुण कहा जाता है । उदाहरण के लिए भौतिकी मे 'न्यूटन' या आइन्स्टाइन के नियम देश काल के अनुसार नहीं बदलते । इन नियमों की 'अमूर्तता' (Abstraction) से हमारा आशय यह है कि इनके लिए सामान्यतया न प्राप्त होने वाली अवस्थाओं को आधार बनाया जाता है ।

4. व्यवस्था (System)—हमारा सामान्य ज्ञान बहुधा असम्बद्ध और तर्कविहीन होता है । इसके विपरीत विज्ञान मे एक तन्त्र या व्यवस्था होती है । इस व्यवस्था के तीन मुख्य गुण हैं । सम्बन्ध होना, पूर्ण होना और तर्कनापरक होना । विज्ञान के इस गुण-व्यवस्था के कारण ही भविष्य की घटनाओं के विषय मे ज्ञान सम्भव होता है ।

इस प्रकार जैसे जैसे विज्ञान विकसित होता जाता है, उसमे अधिक व्यवस्था आती जाती है । सामाजिक विज्ञानो मे भी व्यवस्था लाने का प्रयत्न होता है ।

रॉबर्ट के मर्टन (Robert K Merton) ने विज्ञान की प्रकृति की विवेचना मे उसकी मूल्य-पुंजों को अधिक महत्त्व दिया है । उनके अनुसार विज्ञान मे पाँच मूल्य-पुंज पाए जाते हैं । वे हैं—

1 सार्वभौमिकता (Universalism),
2 व्यवस्थित या संगठित शंका (Organized Scepticism),
3 सामुदायिकता (Communalism),
4 नैतिक तटस्थता (Ethical Neutrality),
5 रुचि तटस्थता (*Disinterestedness*) ।

टालकट पारसन्स (Talcott Parsons) ने भी विज्ञान के चार मानदण्डो का उल्लेख किया है। वे हैं—

1 आनुभविक प्रामाणिकता (Empirical Validity),
2 तर्कगत स्पष्टता (Logical Clarity),
3 तर्कसंगत प्रस्थापनाएँ (Logical Consistancy of Propositions),
4 सिद्धान्तो की सामान्यता (Generality of Principles) ।

स्पष्ट है कि विज्ञान एव विज्ञान की प्रकृति के बारे मे अनेक महत्त्वपूर्ण समाज वैज्ञानिको ने अनेक महत्त्वपूर्ण लक्षणो का उल्लेख किया है, जो मिलकर विज्ञान का कलेवर बनाते हैं। सक्षेप मे कहा जा सकता है कि विज्ञान प्रामाणिक, परिशुद्ध, आनुभविक एव तार्किक होता है। साथ ही यह नैतिक तटस्थता से मुक्त स्वतन्त्र, सर्वमान्य व सार्वभौमिक सिद्धान्तो की रचना करता है जो देश व काल की सीमा से परे सदैव सत्य होते हैं। यही विज्ञान की मूलभूत विशेषताएँ हैं।

उपयोगिता

अन्वेषण या सामाजिक शोध का तर्क अथवा उसकी सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक उपयोगिता निम्नलिखित बातो से स्पष्ट है—

1. अज्ञानता का नाश—अन्वेषण अथवा सामाजिक शोध विभिन्न सामाजिक घटनाओ के सम्बन्ध मे वैज्ञानिक ज्ञान प्रदान कर उन घटनाओ के सम्बन्ध मे हमारी अज्ञानता का नाश करता है। किसी भी विषय म विश्वसनीय बोध प्राप्त करने का अर्थ ही होता है उस विषय के सम्बन्ध म समस्त अन्धकार को दूर कर देना। अनेक सामाजिक समस्याओ का कारण भी कुछ विषयो के सम्बन्ध म हमारी अज्ञानता ही होना है। उदाहरणार्थ भाषावाद, प्रान्तवाद आदि का जन्म क्रूर अन्धविश्वासो और अज्ञानताओ के फलस्वरूप ही हुआ है। इन समस्याओ का समाधान तब तक सम्भव नही जब तक हमारी अज्ञानता दूर नही होती है। इस दिशा म अन्वेषण अथवा सामाजिक शोध अधिक सहायक सिद्ध हुआ है।

2 मानव की जिज्ञासु प्रकृति का समाधान—मानव प्राणी की सदैव से यह विशेषता रही है कि वह अपने चारो ओर पाए जाने वाले वातावरण को अधिक से अधिक समझने का प्रयास करता रहा है ताकि वह उस इस प्रकार परावर्तित कर सके कि उसकी अनुभूत आवश्यकताओ की पूर्ति सम्भव हो सके और उसे अधिक सुख एव शान्ति का अनुभव हो सके। मानव की इस जिज्ञासु प्रकृति को अन्वेषण से शान्ति मिलती है वह अपने जीवन के प्रत्येक क्षण किसी न किसी प्रकार की पूछताछ करते हुए अपनी जिज्ञासु प्रकृति को खुराक देता रहता है। अन्वेषण कार्य जीवन मे

अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि हम केवल तर्क के आधार पर अपने चारो ओर पाई जाने वाली बाह्य वास्तविकता को नहीं समझ सकते ।

3. समाज कल्याण में सहायक—अन्वेषण अथवा सामाजिक शोध की सहायता से समाज-कल्याण कार्य को एक वैज्ञानिक स्तर पर प्रतिष्ठित किया जा सकता है । लोगो के मन मे यह गलत धारणा बनी हुई है कि समाज-कल्याण कार्य को कोई भी व्यक्ति या सस्था आयोजित कर सकती है और सफलता भी पा सकती है । पर इस आयोजन का आधार यदि वैज्ञानिक ज्ञान व अनुभव नहीं है तो उसमे सफलता की प्राप्ति केवल एक सयोग (Chance) की ही बात होगी । उदाहरणार्थ, यदि हम डकैतो का 'हृदय परिवर्तन' करना चाहते हैं तो इन पर केवल उपदेशो की वर्षा करने मात्र से ही हमारे उद्देश्यो की पूर्ति नही हो सकेगी जब तक हम डकैतो के अन्तर्निहित मनोविज्ञान को भी अच्छी तरह समझ न लेंगे अथवा उन कारणो का पता न लगा लेंगे जो कि डकैतो को जन्म देते हैं । *अत समाज-कल्याण कार्य को* तभी एक ठोस आधार प्राप्त हो सकता है जबकि सामाजिक शोध की सहायता प्राप्त की जाए ।

4 उद्देश्य-प्राप्ति हेतु सर्वोत्तम साधन प्रस्तुत करना—अन्वेषण एक उद्देश्यपूर्ण क्रिया है । इसकी समूची क्रिया निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर रहती है । इसके अन्तर्गत अनर्गल बातो के लिए स्थान नहीं होता । अन्वेषण सुव्यवस्थित कार्यक्रम के निर्माण की दिशा मे हमे आगे बढाता है । यह उद्देश्यो की पूर्ति हेतु सरल साधनो की प्राप्ति सम्भव बनाता है । यह रूढिगत विचारो और व्यवहारो मे सुधार *का मार्ग प्रस्तुत करता है क्योंकि इसका पथ वैज्ञानिक होता है* जिसमे भ्रान्तियो तथा अपुष्ट धारणाओ के लिए स्थान नही होता ।

5 सामाजिक प्रगति मे सहायक—सामाजिक प्रगति का अर्थ है सामाजिक जीवन मे अच्छाई के लिए परिवर्तन (Change for good) अर्थात् प्रगति भी एक प्रकार का परिवर्तन है जो कि कल्याणकारी सिद्ध होता है । पर परिवर्तन को कल्याणकारी दिशा मे किस प्रकार निर्देशित किया जा सकता है ? उसी अवस्था मे जबकि परिवर्तन के कारको तथा परिस्थितियो का हमे वास्तविक ज्ञान हो और हम उस ज्ञान को ऐसे प्रयत्नो मे लगाएँ जो सब के लिए या समाज के अधिकांश लोगो के लिए शुभ हो । इसका तात्पर्य यह हुआ कि सामाजिक प्रगति के लिए जिस सचेत प्रयत्न की आवश्यकता होती है उसे हम सामाजिक जीवन के सम्बन्ध मे अपने *वैज्ञानिक ज्ञान पर सुप्रतिष्ठित करें । हमारे कल्याणकारी प्रयत्नों को जब तक* वैज्ञानिक आधार प्राप्त न होगा तब तक सामाजिक प्रगति की सम्भावना भी कम ही होगी । अन्वेषण या सामाजिक शोध इस वैज्ञानिक आधार का एक निर्भर योग्य साधन है ।

6 मानव समाज के मन्द गति परिवर्तन में नवीन ज्ञान एवं गति प्रदान करने वाला—मानव-समाज परम्पराओ तथा रूढियो की लीक सदियो तक पीटता रहता है । उसके प्रवाह की गति को मोडना सरल नहीं है । रेल के आविष्कार के

पूर्व मानव ने अपनी उसी स्थिति से समायोजन कर रखा था, किन्तु रेल के आविष्कार के बाद समाज मे एक बडा परिवर्तन दिखाई पडा। इसी प्रकार, अन्वेषण मानव-जीवन को गति देने एव दिशा परिवर्तन मे अत्यन्त सहायक होना है।

7. सामाजिक नियन्त्रण मे सहायक--सामाजिक शोध से प्राप्त ज्ञान सामाजिक नियन्त्रण मे भी सहायक सिद्ध होता है। सामाजिक नियन्त्रण तभी भावशील हो सकता है जबकि हमे सामाजिक सम्बन्धो व प्रक्रियाओ (Process) का पूरा-पूरा ज्ञान हो। सामाजिक नियन्त्रण के लिए सर्वप्रथम हमे यह जानना होगा कि समाज मे कौन-कौन सी विघटनकारी प्रवृत्तियां क्रियाशील हैं और उनकी वास्तविक प्रकृति क्या है ? इस जानकारी के पश्चात् ही उन पर नियन्त्रण करने के साधनो को ढूंढा जा सकता है। इस कार्य मे सामाजिक शोध अत्यधिक सहायक सिद्ध हो सकता है।

8 सामाजिक विज्ञानो की उन्नति मे सहायक--सामाजिक शोध से प्राप्त ज्ञान स्वय समाजशास्त्र की उन्नति मे सहायक होना है। समाजशास्त्र की उन्नति सामाजिक घटनाओ के सम्बन्ध मे अधिकाधिक वैज्ञानिक खोज पर ही निर्भर है। सामाजिक शोध उसी वैज्ञानिक खोज का एक निर्भर योग्य साधन है। स्मरण रहे कि सामाजिक शोध केवल सामाजिक घटनाओ का अध्ययन या अनुसन्धान ही नही करता अपितु उस अध्ययन-कार्य को अधिकाधिक यथार्थ बनाने के लिए नवीन यन्त्रो, प्रविधियो आदि का भी आविष्कार करता है। दोनो ही अवस्थाओ मे समाजशास्त्र की प्रगति होती है क्योकि इन आविष्कारो के फलस्वरूप सामाजिक घटनाओ को समझने और उन पर नियन्त्रण पाने की शक्ति बढ जाती है। इन आविष्कारो का प्रभाव केवल समाजशास्त्र पर ही नही, अपितु अन्य सामाजिक विज्ञानो पर भी पडता है क्योकि ये सभी सामाजिक विकास किसी न किसी रूप मे मानवीय व्यवहारो तथा सामाजिक प्रक्रियाओ का अध्ययन करते हैं अर्थात् सामाजिक जीवन के किसी विशिष्ट पक्ष पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। ये सभी पक्ष एक दूसरे से पृथक् नही अपितु एक-दूसरे से सम्बद्ध होते हैं और इसी प्रकार सामाजिक विज्ञानो मे श्रम-विभाजन व विशेषीकरण के साथ-साथ अन्त सम्बन्ध व अन्त निर्भरता भी होती है अतः एक की प्रगति दूसरे की प्रगति को भी प्रोत्साहित करती है। सामाजिक शोध मे सामाजिक जीवन के सम्बन्ध मे खोज होती है। उसका स्वस्थ प्रभाव सभी सामाजिक विज्ञानो पर पडता है और वह उनकी प्रगति मे सहायक सिद्ध होती है।

9 सैद्धान्तिक उपयोगिता—डॉ मुकर्जी के ही शब्दो मे, अन्वेषण अथवा सामाजिक शोध सामाजिक घटनाओ का निष्पक्ष विश्लेषण करता है, समाज व सामाजिक जीवन के सम्बन्ध मे हमारे ज्ञान की सीमाओ को विस्तृत करता है, सामाजिक प्रक्रियाओ के सम्बन्ध मे विश्वसनीय ज्ञान की प्राप्ति मे सहायक सिद्ध होता है, सामाजिक जीवन की भावी गतिविधि के सम्बन्ध मे हमे सूचित करता है, नवीन ज्ञान की सम्भावनाओ को बढाता है तथा सामाजिक घटनाओं की वास्तविक

प्रकृति को उद्घाटित करके उनके सम्बन्ध मे हमारे विद्यमान अन्धविश्वासो (Dogmatism) को समाप्त करने मे सहायक सिद्ध होता है। सामाजिक शोध आगे बढता है और अज्ञानता पीछे भागती है, सामाजिक शोध हमे तो प्रगति व कल्याण की राह दिखाता है, पर साथ ही अन्धविश्वासो व कुसस्कारो की कब्र खोदता जाता है। इस प्रकार अन्धकार से प्रकाश की ओर बढती हुई मानवता के लिए सामाजिक शोध एक विश्वसनीय 'गाइड' (Guide) बन जाता है और बन जाता है ज्ञान का साधन एव विज्ञान का आधार।

समाजशास्त्रीय अन्वेषण की सीमाएँ
(Limitations of Sociological Inquiry)

सामाजशास्त्रीय अन्वेषण की अपनी सीमाएँ हैं क्योंकि भौतिक वस्तुओ की प्रकृति और सामाजिक घटनाओ की प्रकृति मे मूलभूत अन्तर हैं। कार (Carr) ने सामाजिक क्षेत्र के अन्तर्गत निम्नलिखित चार प्रकार की सीमाएँ बताई हैं—

(1) हमारी इच्छाएँ एक विशेष प्रकार का फल या परिणाम चाहती हैं।
(2) हम व्यावहारिक फल के आकांक्षी हैं।
(3) हम सामाजिक क्षेत्र मे वस्तुपरक दृष्टिकोण प्राय नही अपना पाते।
(4) हमारे व्यक्तिगत अनुभवो के जगत् से परे सम्बन्ध बहुत अस्पष्ट रूप से ज्ञात होते हैं।

फ्रांसिस बेकिन ने सामाजिक विज्ञानो मे चार सीमाओ का उल्लेख किया है—

1 नृशसीय सीमाएँ (भ्रान्तियाँ) (Idols of Tribe)—हम प्राकृतिक त्रुटियो की ओर ही झुकाव रखते हैं फलस्वरूप मनुष्य को मनुष्य होने की अपनी सीमाएँ उसे सत्य के प्रत्येक पहलू का दिग्दर्शन नही करा सकती।

2. समाजीकृत भ्रान्तियाँ (Idols of the Cave)—सामाजिक विज्ञानो पर एक सीमा व्यक्ति के गलत विचारो और धारणाओ की है जिनमें वह अपने समाजीकरण की प्रक्रिया मे सीख लेता है। जन्म से लेकर बडे होने तक व्यक्ति समाजीकरण की प्रक्रिया मे विभिन्न प्रकार की गलत आदतो, धारणाओ और विश्वासो को आत्मसात् कर लेता है, फलस्वरूप वह सही दृष्टि से विचलित हो जाता है।

3 शाब्दिक भ्रान्तियाँ (Idols of Market Place)—सामाजिक विज्ञान भाषा सम्बन्धी सीमा का शिकार बना रहता है। भाषा के अनेक अर्थ निकलते हैं जो कि 'सन्दर्भ' से जुडे रहते हैं। जब तक हम वार्तालाप के सन्दर्भ और वार्तालाप मे सलग्न व्यक्तियो के बारे मे समुचित ज्ञान न रखते हो, तक तक हम अध्ययन की घटना के बारे मे सही ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते।

4 वाद विरोध की भ्रान्तियाँ (Idols of the Theatre)—यह स्वाभाविक है कि मनुष्य किसी विशेष विचारधारा या वाद के प्रति निष्ठावान हो। यदि सामाजिक वैज्ञानिक इस प्रकार की निष्ठा मे लिप्त है तो वह अपने अध्ययन

दृष्टिकोण को एक विशेष घुमाव दे देता है और उसका परिप्रेक्ष्य उसकी विचारधारा (Ideology) के अनुरूप बन जाता है।

हाइक (Hayek) के अनुसार विज्ञान मे तीन प्रमुख त्रुटियाँ हैं—

1 वस्तुपरकता के प्रति आस्था (Fallacy of Objectivity)
2 पद्धतिशास्त्र की सामूहिकता (Methodological Collectivism)
3 इतिहासवाद (Historicism)

वस्तुपरकता के प्रति आस्था से यहाँ तात्पर्य यह है कि यहाँ मनुष्य को मनन करने की छूट नही है और उसके चिन्तन का कोई महत्त्व नही है। दूसरी धारणा के अन्तर्गत वस्तु को पूर्ण रूप मे देखने का प्रयास किया जाता है, जो कि भ्रान्तिमय है। 'इतिहासवाद' मे घटनाओ को विशिष्ट रूप मे न देखकर साधारणीकरण के दृष्टिकोण से देखा व समझा जाता है। इनके अतिरिक्त भी विज्ञान की अनेक सीमाएँ हैं। सामाजिक विज्ञानो मे हम प्राकृतिक विज्ञानो की तरह प्रयोगशालाओ का निर्माण नही कर सकते हैं और न ही हम घटनाओ पर नियन्त्रण रख सकते हैं। एक ओर सबसे बडी कठिनाई यह है कि यहाँ 'मनुष्य' ही 'मनुष्य' का अध्ययन करता है, अत मनुष्य अपने अध्ययन मे पूरी तरह तटस्थ रह पाएगा, इसमे सन्देह बना रहता है।

विज्ञान का खण्डन एवं मानवतावादी दृष्टिकोण
(Humanistic Approach as a Counter to Science)

पिछले दो-तीन दशको से विज्ञान के विरोध मे मानवतावादी दृष्टिकोण एक महत्त्वपूर्ण विचारधारा के रूप मे उभरा है। मानवीय उपागम विज्ञान एव उसकी पद्धति को अस्वीकार करता है। समाजशास्त्र मे अनेक नवीन शाखाओ जैसे रेडिकल समाजशास्त्र, प्रतिवर्तात्मक समाजशास्त्र (Reflexive Socilogy), एथनोमेथडोलोजी (Ethonomethodology) आदि का सूत्रपात हुआ, जिन्होने अन्वेषण के तर्क के रूप मे वैज्ञानिकता का विरोध किया।

सोरोकिन (Sorokin) ने लिखा है कि समाजशास्त्र के अन्तर्गत वैज्ञानिक पद्धति से आँकड़े एकत्रित किए जा रहे हैं, नई पद्धतियो का विकास हुआ है, लेकिन फिर भी हम सामाजिक यथार्थ को ठीक से समझने की स्थिति से अभी बहुत दूर हैं। अत एक नए समाजशास्त्र की सरचना आवश्यक हो गई थी। इसी के परिणामस्वरूप मानवीय समाजशास्त्र का जन्म हुआ। मानवीय समाजशास्त्र 'वैज्ञानिक पद्धति' की अपेक्षा समानुभूति (Empathy), अत ज्ञान (Intution) आदि तरीको से सामाजिक घटनाओ को समझने पर जोर देता है। समाजशास्त्रीय सवेदना (Sociological Sensitivity) एव समाजशास्त्रीय परिकल्पना (Sociological Imagination) के आधार पर हम समाज व सामाजिक यथार्थ को समझें यह आवश्यक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समाजशास्त्रीय अन्वेषण का तर्क वैज्ञानिक एव मानविकी (Scientific and Humanistic) दोनो ही रहे हैं। दोनो का ही अभिमुखन (Orientation) बिल्कुल भिन्न है। अपने जन्म से लेकर पाँच-छ

दशाब्दियो तक समाजशास्त्र के अन्वेषण का तर्क वैज्ञानिक ही रहा, लेकिन पिछले दो-तीन दशको से उसके वैज्ञानिक होने की अनेक आलोचनाएँ की गई। इन्ही आलोचनाओ के परिणामस्वरूप मानविकी समाजशास्त्र की स्थापना हुई। ज्ञान के क्षेत्र मे विभिन्न तर्क-सगत अभिमुखन यथार्थ को विभिन्न पहलुओ से समझने मे सहायक सिद्ध होते हैं।

समाज विज्ञान और मूल्य
(Social Sciences and Values)

समाज विज्ञान एव मूल्य के सम्बन्ध की विवेचना अत्यन्त पुरानी है, जो समाज विज्ञान के प्रारम्भ से ही नही वरन् उससे भी पहले सामाजिक चिन्तन के इतिहास मे निरन्तर चलती रही है। वर्तमान मे भी समाज विज्ञान मे मूल्यो की समस्या एक प्रमुख समस्या मानी जाती है। समाज विज्ञान ने सदैव ही स्वय को वैज्ञानिक (Scientific) बनाने का प्रयास किया है। समाज-विज्ञान अपने प्रारम्भिक समय से ही यह प्रयास करता रहा है कि सामाजिक घटनाओ का अध्ययन वैज्ञानिक पद्धति (Scientific Method) के द्वारा ही किया जाए और सामाजिक यथार्थ (Social Reality) को समझने का यही सबसे उपयुक्त तरीका है।

समाज विज्ञानो मे वैज्ञानिक पद्धति की यह प्रतिष्ठा अनायास ही उत्पन्न नही हुई बल्कि उसके पीछे प्राकृतिक विज्ञानो की सफलता थी, जिन्होने प्राकृतिक जगत मे होने वाली घटनाओ के सफल वर्णन, व्याख्या, निरूपण एव निष्कर्षों को प्राप्त करने का गौरव प्राप्त किया था। फिर प्राकृतिक जगत (Natural World) एव सामाजिक जगत (Social World) मे स्थापित सादृश्य (Analogy) के कारण समाज विज्ञान भी प्राकृतिक विज्ञान के स्वरूप एव पद्धतियो के प्रयोग से स्वय को अछूता न रख सका। 'मूल्य-निरपेक्षता' या 'मूल्य-स्वतन्त्र सामाजिक विज्ञान' (Valuefree Social Science) भी इसी चेष्टा का उदाहरण है।

लेकिन प्राकृतिक विज्ञानो के विपरीत समाज विज्ञानो की बडी विचित्र स्थिति है। समाज विज्ञान जहाँ एक ओर मूल्य निरूपक व्यक्तियो और उनके मूल्यांकनात्मक व्यवहार का अध्ययन करता है वही दूसरी ओर वह उन्हीं से जन्म लेता है। इस प्रकार वह एक ही समय मे अध्ययनकर्त्ता भी है और अध्ययन-वस्तु भी है। इस प्रकार समाज विज्ञान की परिस्थिति बडी विरोधाभासी है। एक ओर जहाँ वह समाज व उसके सदस्यो का मूल्य-निरपेक्ष अध्ययन करना चाहता है, वही दूसरी ओर वह अपने विशिष्ट मूल्यो के सन्दर्भ मे उसे सुधारना एव बदलना भी चाहता है। इसी विचित्र विरोधाभासी चरित्र ने समाज विज्ञान मे एक दोहरे व्यक्तित्व का विकास किया है। एक तरफ जब वह अपनी वैज्ञानिक प्रकृति (Scientific Nature) के अनुरूप आचरण करता है तो यह कहा जाता है कि वह 'मूल्य स्वतन्त्र' विज्ञान है, लेकिन दूसरी ओर जब वह वर्तमान समाज विज्ञान जो मूल्य स्वतन्त्रता पर आधारित है की आलोचना करता है और मूल्य-युक्तता का समर्थन करता है तो उसे मूल्य युक्त समाज विज्ञान कहा जाता है।

इस प्रकार 'मूल्य-स्वतन्त्र समाज विज्ञान' (alue-free Social Science) पूर्णत: वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा अर्थात् आंकड़ो के विधिवत् एव सुव्यवस्थित सकलन, विश्लेपण एव निरूपण पर जोर देता है एव उनके मूल्यांकन (Evaluation) से स्वय को दूर रखता है। ऑगस्त कॉम्ट' (Auguste Comte) ने 'समाजशास्त्र' की नीव रखी तो उनका आशय एक ऐसे विज्ञान की रचना करना था जो समाज का अध्ययन उसकी समग्रता एव सम्पूर्णता मे कर सके। कॉम्ट ने ज्ञान के विकास की अन्तिम अवस्था भी 'वैज्ञानिक' (Positive) ही मानी थी।[1] इमाइल दुर्खीम (Emile Durkheim) ने भी इसी आधार पर समाजशास्त्र को 'व्यक्तिवाद' एव 'समाजवाद' जैसी मूल्य-व्यवस्थाओ से दूर रखने की चेतावनी दी थी। दुर्खीम ने सामाजिक प्रघटनाओ के अध्ययन के लिए अत्यन्त विस्तार से वैज्ञानिक नियमो की व्याख्या अपनी पुस्तक 'द रूल्स ऑफ सोश्योलोजीकल मेथड्स' म की।[2] मैक्स वेबर (Max Weber) भी इसी मत के थे। अपने भी समाज वैज्ञानिको को मूल्य-मुक्त (Value-free) रहने पर जोर दिया।[3] विल्फ्रेडो परेटो (V Pareto) ने भी समाजशास्त्रियो को अपनी व्यक्तिगत भावनाओ से स्वतन्त्र रहने की सलाह दी थी और इस बात का आग्रह किया कि समाजशास्त्रियो को केवल 'क्या है ?' (What is ?) का वर्णन व व्याख्या करनी चाहिए। 'क्या होना चाहिए ?' (What should be ?) के वर्णन व विश्लेषण से स्वय को दूर रखना चाहिए।[4]

दूसरी ओर समाज विज्ञान मे ऐसे भी अनेको समाजशास्त्री हैं जो समाज विज्ञान की वैज्ञानिक प्रकृति की कटु आलोचना करते हैं। यह दृष्टिकोण 'विज्ञान' एव उसकी पद्धति को अस्वीकार करता है एव यह समाजशास्त्रीय ज्ञान को जन साधारण के हित के लिए उपयोग करने मे विश्वास करता है। विगत कुछ दशाब्दियो मे इस विचारधारा के विश्वास के कुछ प्रमुख कारण रहे हैं। राबर्ट लाइन्ड (Robert Lynd) ने अपनी पुस्तक का नाम ही ज्ञान किस लिए' रखा। आपने इस प्रश्न को गम्भीरता से उठाया कि समाजशास्त्रियो को अपने ज्ञान का उपयोग सामाजिक निर्माण मे करना चाहिए। लाइन्ड ने इस प्रकार समाज विज्ञान मे 'विज्ञान' के आदर्श को अस्वीकृत कर यह बताया कि मानवीय मूल्य समाज विज्ञान की विषय-वस्तु की अनिवार्यता है, और इसके बिना यथार्थ को नहीं जा सकता। यही नही आपने बताया कि मानव मूल्य ही समाज विज्ञान की दिशा निर्धारित करते हैं, जिसके द्वारा मानव जाति हमेशा अपनी संस्कृति का पुनर्मिनाण करती रहती है। इसी आधार पर लाइन्ड न समाज वैज्ञानिकों का उदासीनता के 'अलगाव' या 'एकान्त' से मुक्त होकर सामाजिक नीति निर्धारण के लिए आह्वान किया है।[1] सी राइट मिल्स (C Wright Mills) ने भी अपनी

1 *Auguste Comte* The Positive Philosophy
2 *Emile Durkheim* The Rules of Sociological Methods 1938
3 *Max Weber* Sociology of Max Weber by Julien Allen
4 *V Pareto* Mind, Self and Society, 1939

महत्त्वपूर्ण कृति 'द सोश्योलोजिकल इमेजीनेशन' में इसी तरह के विचार प्रस्तुत किए हैं। अपने वर्तमान समाज विज्ञान में 'सुधारवादी चेष्टा' के अभाव पर दुःख प्रकट किया है।[2] पीटर बर्जर (Peter Berger) ने भी समाजशास्त्रियों में मानसिक जिज्ञासा के गुण को अनिवार्य माना, और आपके अनुसार समाजशास्त्र का पहला मन्त्र होना चाहिए 'वस्तुएँ जैसी दिखती हैं, वैसी नहीं हैं' (Things are not what they look)। आपके अनुसार 'समाजशास्त्रीय सवेदना' (Sociological Sensitivity) के आधार पर हम समाज व 'सामाजिक यथार्थ' को समझें यह आवश्यक है।[3]

प्रकट है कि समाज विज्ञान में 'मूल्य-मुक्त' एवं 'मूल्य युक्त' दोनों प्रकार की विचारधाराएँ एवं दृष्टिकोण रहे हैं। भौतिक या प्राकृतिक विज्ञानों में मूल्य-निरपेक्षता का विचार जहाँ एक स्वीकृत तथ्य है वहीं समाज विज्ञान में यह विवादास्पद है। कुछ समाज वैज्ञानिकों का यह मानना है कि समाज विज्ञान को मूल्य-स्वतन्त्र या मूल्य-निरपेक्ष होना चाहिए तो कुछ का यह मानना है कि मूल्य-स्वतन्त्रता या मूल्य-निरपेक्षता न केवल समाज विज्ञान में सम्भव ही है बल्कि यह अवांछनीय भी है। यहाँ हम किसी एक पक्ष से सम्बन्धित नहीं हैं। हम तो केवल तार्किक व यथार्थ आधार पर इसका विश्लेषण करना चाहते हैं और इस विश्लेषण के लिए यह आवश्यक है कि हम पहले 'विज्ञान' (Science) एवं 'मूल्य' (Value) की अवधारणाओं को भली-भाँति समझ लें व उनसे परिचित हो लें।

विज्ञान क्या है ?
(What is Seience ?)

विज्ञान की परिभाषा अनेक आधारों पर अनेक दृष्टिकोण से की गई है। मोटे तौर पर विज्ञान को एक क्रमबद्ध ज्ञान एवं इस ज्ञान को प्राप्त करने की एक विधि के रूप में जाना जाता है। वस्तुतः विज्ञान का स्पष्ट आशय वैज्ञानिक विधि द्वारा आँकड़ों का सकलन, विश्लेषण एवं निरूपण करना है, और इस निरूपण के आधार पर सिद्धान्तों (Theories) की रचना करना है। सिद्धान्त से हमारा आशय परस्पर सम्बन्धित अवधारणा, वाक्य-विन्यासों (Constructs), परिभाषाओं एवं उपकल्पनाओं के एक ऐसे समूह से है जो घटना की व्याख्या करने एवं भविष्य-वाणी करने के उद्देश्य से चरों (Variables) के मध्य सम्बन्धों का ब्यौरा प्रस्तुत करते हुए घटनाओं का एक क्रमबद्ध रूप प्रस्तुत करता है। विज्ञान की सारभूत विशेषता 'वैज्ञानिक ढंग' की है। सभी विज्ञानों की एकता केवल इनकी विषय-वस्तु से सम्बन्धित न होकर इनके अन्तर्गत प्रयुक्त ढंग में सन्निहित है। कार्ल पियरसन (Karl Pearson) ने भी लिखा है कि "समस्त विज्ञानों की एकता इसके ढंग में है, केवल उसकी विषय-वस्तु में नहीं।"[4]

1 *Robert Lynd*: Knowledge for What ? 1939, p. 114
3 *C W Mills*: The Sociological Imagination, p 165 & 176.
3 *Peter Berger*: Invitation to Sociology, p 31.
4 *Karl Pearson*: The Grammar of Science, p. 10–12.

इस प्रकार वैज्ञानिक ढ ग या वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा तथ्यों का अध्ययन किया जाता है एव यथार्थ तथ्यो की खोज की जाती है। विज्ञान कार्य-कारण सम्बन्धो के बारे मे सार्वभौमिक एव प्रामाणिक नियमो की स्थापना करता है। 'ऑगस्त कॉम्ट' ने भी लिखा है कि "वैज्ञानिक पद्धति मे धर्म, दर्शन तथा कल्पना का कोई भी स्थान नहीं है। इसके विपरीत अवलोकन, मूल्यांकन, प्रयोग एवं वर्गीकरण की व्यवस्थित कार्य-प्रणाली को ही वैज्ञानिक पद्धति माना जाता है।"

अपनी 'पद्धति' (Method) अथवा 'ढ ग' मे होने के कारण ही विज्ञान के प्रारूप को जो पहले केवल प्राकृतिक विज्ञानो के लिए ही था, सामाजिक विज्ञानो ने भी शनै -शनै अपनाया क्योंकि विषय-वस्तु की विविधता से वैज्ञानिक अध्ययन पर कोई प्रभाव नही पडता है। अतः प्राकृतिक विज्ञान की पद्धति, कार्य-प्रणाली, उसके प्रकार्य, नियम, निष्कर्ष सभी समाज विज्ञान के लिए अनुकरण की वस्तु बन गई। और इस प्रकार समाज विज्ञान 'वैज्ञानिक पद्धति' के आधार पर सामाजिक प्रघटनाओ की व्याख्या करने लगे, और प्राकृतिक विज्ञानो की भाँति ही सिद्धान्तों का निर्माण करने लगे। लेकिन समाज विज्ञान का कार्य इतना सरल नहीं था। 'सी ई केनेथमीज' न अपनी कृति दि पाथ ऑफ साइन्स' मे लिखा है कि "एक समाज वैज्ञानिक सदैव तथ्यो को एकत्रित करने और उन्हे स्वेच्छापूर्वक एक प्रतिमान मे रखने का प्रयास नही करता। वह प्रायः तथ्यो को एकत्रित करता है तथा स्वय प्रक्रिया पर ध्यान दिए बिना निरन्तर इन्हें प्रतिमानो मे रखता है। वह उन तथ्यो चयन कर सकता है, जिनमे उसकी अभिरुचि हो तथा उन्हे एक साथ एक सिद्धान्त मे समजित करने का प्रयास कर सकता है, अपने विचार को बदल सकता है, दूसरे सिद्धान्त को अपना सकता है, कुछ ऐसे तथ्यो को छोड सकता है, जिसके बारे में उसे सदेह हो तथा क्रिया के किसी चेतन निर्देशन के बिना उनका पुनर्स्थापन कर सकता है।"[1]

'मूल्य' का अर्थ एव परिभाषा
(Meaning and Definition of Value)

मूल्यो (Values) का सामान्य अर्थ है 'चरम लक्ष्य'। मूल्यो का सम्बन्ध 'जो कुछ आज है' उससे कम होता है, बल्कि उसका मुख्य सम्बन्ध 'जो होना चाहिए' उसके अधिक होता है। दूसरे शब्दो मे वे नैतिक औचित्य को प्रकट करते हैं। प्राचीन भारतीय शास्त्रो मे चार प्रकार के मुख्य मूल्य गिनाए गए हैं धर्म, अर्थ, काम एव मोक्ष। व्यक्तियो के मूल्य समान भी हो सकते हैं एव असमान भी। जैसे कोई 'ज्ञान' को अधिक महत्त्व देता है तो कोई 'धन' को। कोई 'त्याग' को अधिक महत्त्व देता है तो कोई 'सुख' को।

उदाहरण के लिए भारतीय समाज मे 'आध्यात्मवाद' को अधिक महत्त्व दिया जाता है तो अमेरिकन या पश्चिमी समाजो मे 'भौतिकवाद' को। मूल्यो के

1 *C. E Kenethmeage* . The Path of Science, p 60

इन भेदों का एक नतीजा यह है कि हम अमेरिका या पश्चिमी समाजो को गिरा हुआ कहते हैं तो वहाँ के लोग भारत को पिछड़ा हुआ। जब मूल्य भिन्न होंगे तो मूल्यांकन भी भिन्न होगा।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मूल्यों का सम्बन्ध समाज विशेष की सांस्कृतिक विशेषताओं से होता है।

डॉ. राधाकमल मुकर्जी (Dr Radha Kamal Mukerjee) ने मूल्यों को परिभाषित करते हुए लिखा है कि 'मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त वे इच्छाएँ (Desires) तथा लक्ष्य (Goals) हैं, जिनका अन्तरीकरण (Internalisation) सीखने या समाजीकरण (Socialization) की प्रक्रिया के माध्यम से होता है, जो कि बाद मे व्यक्तिनिष्ठ प्राथमिकताएँ (Sub ective Preferences), प्रमाप (Standards) एव अकांक्षाएँ (Aspirations) बन जाती हैं।"[1] अधिक सरल शब्दों मे 'मूल्य एक प्रकार स उन सामाजिक प्रभावो, लक्ष्यों या आदर्शों को कहा जा सकता है, जिनके द्वारा सामाजिक परिस्थितियों तथा विषयों का मूल्यांकन किया जाता है।"

हैरी एम जॉनसन (**Harry M Johnson**) ने भी लिखा है कि 'मूल्य एक अवधारणा या प्रमाप (Standard) है। यह सांस्कृतिक हो सकता है अथवा केवल व्यक्तिगत, और इसके द्वारा चीजो की एक दूसरे के साथ तुलना की जाती है। चीजें स्वीकार या अस्वीकार की जाती हैं।" वुड्स ने सामाजिक मूल्यों की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'मूल्य दैनिक जीवन मे व्यवहार को नियन्त्रित करने के सामान्य सिद्धान्त हैं। मूल्य न केवल मानव व्यवहार को दिशा प्रदान करते हैं बल्कि वे अपने आप मे आदर्श और उद्देश्य भी हैं। जहाँ मूल्य होते है वहाँ न केवल यह देखा जाता है कि क्या होना चाहिए बल्कि यह भी देखा जाता है कि यह सही है या ग़लत।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम यह देखते हैं कि मूल्य एक आन्तरिक अथवा अदृश्य गुण है। यह मनुष्यों के सीखने की प्रक्रिया (समाजीकरण) के द्वारा ही विकसित होता है। इस प्रकार मूल्यों का विकास एक सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया के माध्यम से होता है। सामाजिक मूल्य किसी भी व्यक्ति को उसके समूह की सस्कृति के द्वारा सामाजिक धरोहर के रूप मे पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरण के द्वारा प्राप्त होते हैं। ये मूल्य को शनै-शनै समाज मे व्यक्तिनिष्ठ अथवा सामाजिक व्यवहार के प्रमाण बन जाते हैं।

इस प्रकार साधारणतया मूल्यों को दो दृष्टियों से देखा गया है। वे हैं—

1 व्यक्तिनिष्ठ (Subjective)

2 वस्तुनिष्ठ (Objective)

1 *Radha Kamal Mukerjee* · Quoted by Bogardus : Development of Socisal Thought, p 635

व्यक्तिनिष्ठ दृष्टि से मूल्य किसी व्यक्ति की इच्छा या अनुभव है जिसे उसने एक विकल्प के रूप मे चुना है।

वस्तुनिष्ठ दृष्टि से मूल्य किसी वस्तु के वे गुण हैं जो उस वस्तु अथवा उसके गुण को व्यक्ति द्वारा प्राप्त करने के लिए वांछनीय बना देते हैं।

इस प्रकार मूल्य न तो पूरी तरह व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) हैं, एव न ही वे पूरी तरह वस्तुनिष्ठ (Objective) हैं। इसी प्रकार हमे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि 'मूल्य' किसी शून्य मे नही उत्पन्न होते हैं, अपितु वे मनुष्य और उसके सामाजिक-सांस्कृतिक पर्यावरण के मध्य अन्त क्रिया द्वारा उत्पन्न होते हैं।

सामाजिक विज्ञान एव मूल्य
(Social Sciences and Values)

'विज्ञान' (Science) एव 'मूल्य' (Value) की पारिभाषिक विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन दोनो के मध्य एक प्रकार के सम्बन्ध की विवचना सुगमता से की जा सकती है। हम यह पूर्व मे स्पष्ट कर चुके हैं कि मूल्य सामाजिक सम्बन्धो से उत्पन्न होते हैं, अर्थात् वे मानवीय समाज से परे कोई ऐसी चीज या वस्तु नही है जिनका अध्ययन विज्ञान द्वारा न किया जा सके।

सामाजिक विज्ञान एवं मूल्य के सम्बन्ध को अधिक भली-भाँति रूप से समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम उसे कुछ बिन्दुओ मे प्रस्तुत करें। ये बिन्दु उन क्षेत्रो को स्पष्ट करते हैं जहाँ सामाजिक विज्ञान एव मूल्यो के मध्य अन्त क्रिया होती है। वे बिन्दु या क्षेत्र हैं[1]—

1 सामाजिक विज्ञान के हेतु मूल्य (Values for Social Sciences),
2 सामाजिक विज्ञान के मूल्य (Values of Social Sciences),
3 सामाजिक विज्ञान मे मूल्य (Values in Social Sciences)।

1 सामाजिक विज्ञान के हेतु मूल्य (Values for Social Sciences)— किसी भी विज्ञान की भाँति सामाजिक विज्ञान भी वैज्ञानिक द्वारा जनित नैतिक मूल्यो एव प्रतिमानो से तथा उनके द्वारा उस समाज एव सस्कृति के मूल्यो और प्रतिमानो से प्रभावित होता है, जिसके सन्दर्भ म उसका निर्माण हुआ है। यही सामान्य मूल्य और मूल्यांकन जो विज्ञान की उत्पत्ति और विकास के स्रोत हैं विज्ञान के हेतु मूल्य कहलाते हैं। इस प्रकार ये वे मूल्य हैं जिनके बारे मे वैज्ञानिक अध्ययन करता है और वैज्ञानिक सिद्धान्त अथवा ज्ञान का निर्माण करता है।

इस प्रकार हमे ध्यान रखना चाहिए कि वे मूल्य जो सामाजिक विज्ञान के निर्माण मे सहायक हैं, हैं वे सामान्यत व्यक्ति के सम्पूर्ण समाज एव उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था के ही वे अग होते हैं, जो सामान्यतः समाज वैज्ञानिक की क्रियाओ को नियन्त्रित अथवा निर्धारित करते हैं। इस प्रकार इन्ही मूल्यो के आधार पर समाज वैज्ञानिक अपने दृष्टिकोण का निर्माण करता है और फिर इन्ही

1 *W H Werkmeister* Values in Theory Construction, p 483-508

मूल्यों के आधार पर यह निर्धारित होना है कि अपने अध्ययन के दौरान अनुसन्धानकर्त्ता को वैज्ञानिक विधि के प्रयोग करने की स्वतन्त्रता दी जाए। इन्हीं के आधार पर अध्ययन-क्षेत्र, अध्ययन-उद्देश्य एव उन लक्ष्यों का भी चयन करता है जिनकी प्राप्ति के लिए उसके विज्ञान का उपयोग होना चाहिए।

इस प्रकार ये मूल्य वैज्ञानिक विधि, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, वैज्ञानिक कार्य-प्रणाली तथा मूल्यांकन के उन प्रतिमानों का निर्धारण करते हैं, जिनसे वैज्ञानिक प्रतिष्ठा, श्रेष्ठता एव अनुसन्धान के मापदण्ड निश्चित होते हैं। वस्तुनिष्ठता (Objectivity), सार्वभौमिकता (Universality), यथार्थता (Reality) आदि विज्ञान के मूल्यों के साथ वैज्ञानिक ज्ञान एव अनुसन्धान के मानदण्डों को भी जोडा जा सकता है।

विज्ञान के ये मूल्य प्रत्येक विज्ञान फिर चाहे वह प्राकृतिक हो या सामाजिक उसमे विज्ञान की स्वाभाविक विशेषता एव मापदण्डों का निर्धारण करते हैं। किन्तु ये मूल्य वैज्ञानिक खोज को इस रूप मे प्रभावित नहीं करते हैं कि वे वैज्ञानिक विधि, उपकल्पनाओं, सामान्यीकरण एव सिद्धान्त को प्रभावित नहीं करते। ये उस कसौटी के भी अग नहीं होते जिनसे वैज्ञानिक प्रमाणों अथवा सामग्री की जाँच होती है। ये तो केवल वे आदर्श अथवा मूल्य हैं जिनसे विज्ञान का विकास होता है, और जो हमारी वृहद् सस्कृति के एक अग के रूप मे हमारे व्यक्तित्व मे समाये रहते हैं। प्रत्येक विज्ञान, विशेष रूप से सामाजिक विज्ञान उस समाज एव सस्कृति का प्रतिबिम्ब होता है, जिसमे वह उत्पन्न हुआ है और फला-फूला है।

2 समाज विज्ञान के मूल्य (Values of Social Sciences)—प्रत्यक वैज्ञानिक अपने समाज का एक सक्रिय सदस्य भी होता है, और इस प्रकार वह उन मूल्यों के प्रति भी सजग रहता है जिनकी उपलब्धि के लिए वह अपने विज्ञान को साधन-स्वरूप प्रयोग करता है। वह कुछ मौलिक प्रश्नो की तलाश मे होता है, जैसे—समाज विज्ञान का उद्देश्य क्या हो? समाज विज्ञान का उपयोग किन लक्ष्यों के लिए हो? इस प्रकार इन उद्देश्यों एव लक्ष्यों को ही जिनको ढूँढने के लिए उसे प्रयत्न करना पडता है, 'समाज विज्ञान के मूल्य' कहा जाता है।

सामान्यत समाज वैज्ञानिक यह पता लगाने का प्रयास करते हैं कि सामाजिक यथार्थ क्या है? दूसरा, समाज के प्रमुक प्रघटनाएँ क्यों घटित होती हैं? तीसरी, ये प्रघटनाएँ कैसे घटित होती हैं? इस प्रकार 'क्या', 'क्यों' एव 'कैसे' के प्रश्नो को हल करने के लिए समाज वैज्ञानिक सामाजिक प्रघटनाओं का अध्ययन, विश्लेषण और निर्वचन करता है। किन्तु उनसे परे एक और प्रश्न समाज वैज्ञानिक के मन मे हमेशा रहता है वह यह कि इन सामाजिक प्रघटनाओं का अध्ययन व विश्लेषण 'किस लिए' किया जाए, अर्थात् वह अपने ज्ञान का क्या प्रयोग करे?

वस्तुत इस प्रश्न के दो सम्भावित उत्तर हो सकते हैं। प्रथम, किसी सामाजिक प्रघटना का ज्ञान स्वय ही मूल्यवान है क्योंकि वह ज्ञान वैज्ञानिक और अनेक जिज्ञासुओं की ज्ञान-तुष्टि को शान्त करता है- अर्थात् 'ज्ञान स्वय के मूल्यवान है।'

दूसरा सम्भावित प्रत्युत्तर यह हो सकता है कि ज्ञान मानवीय आकांक्षाओ और भावी योजनाओ को पूरा करने का एक सम्भावित आधार है, अत उसकी उपयोगिता है।

समाज विज्ञान का इस प्रकार दोहरा उद्देश्य है, जो निम्न है—

1 विशुद्ध ज्ञान (Pure Knowledge), एव

2 व्यावहारिक ज्ञान (Applied Knowledge)।

ज्ञान के इसी द्वि विभाजन से समाज विज्ञान मे दो प्रकार के दृष्टिकोणो ने जन्म लिया है। प्रथम प्रकार का दृष्टिकोण 'विशुद्ध समाज विज्ञान' पर जोर देता है और यह बताता है कि ज्ञान की प्राप्ति केवल ज्ञान के लिए होनी चाहिए। इसम विज्ञान का कार्य ज्ञान 'क्या है' (What is) के आधार पर ज्ञान प्राप्त करना माना जाता है। उस ज्ञान का क्या व कैसे प्रयोग किया जाए, यह इसमे सम्मिलित नही होता। इस दृष्टिकोण के समर्थको का विश्वास है कि समाज वैज्ञानिक की भूमिका यही तक सीमित होनी चाहिए कि वह सामाजिक घटनाओ का वर्णन एव निरूपण करे। सामाजिक घटनाएँ कैसी होनी चाहिए ? या उनमे कौनसे परिवर्तन मे सुधार लाया जा सकता है ? यह बताना किसी समाज सुधारक, सामाजिक कार्यकर्ता या प्रशासको का कार्य है, किसी समाज वैज्ञानिक का नही।

इस विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण के ठीक विपरीत 'व्यावहारिक समाज विज्ञान' का दृष्टिकोण है। ये विचारक ज्ञान की महत्ता और उसके सग्रहण पर तो जोर देते ही हैं परन्तु साथ ही साथ इससे आगे इस बात पर भी जोर देते हैं कि सामाजिक ज्ञान क्यो हो ? इसका क्या उपयोग हो ? स्पष्ट है कि प्रत्येक प्रकार का ज्ञान तभी सार्थक है जबकि उसका उपयोग मानवीय सुख एव समस्याओ के समाधान के लिए हो। इस दृष्टिकोण का यह भी मानना है कि जो समाज वैज्ञानिक समाज का ज्ञान प्राप्त करते हैं, वे ही उस ज्ञान का उपयोग मानवीय समस्याओ के समाधान करने के लिए सबसे अधिक सक्षम एव उपयुक्त हैं।

यह कहना तो बहुत कठिन है कि इन दोनो दृष्टिकोणो मे से कौन-सा दृष्टिकोण ठीक है और कौन-सा गलत। लेकिन यह कहा जा सकता है कि दोनो ही दृष्टिकोण समाज विज्ञान के मूल्यो को स्वीकार करते हैं। एक दृष्टिकोण इन मूल्यो का स्रोत स्वय उस ज्ञान मे देखते हैं जो वे अपनी जिज्ञासा शान्त करने के लिए प्राप्त करते हैं। दूसरे दृष्टिकोण के समर्थक ज्ञान व जिज्ञासा के मूल्यो को तो स्वीकार करते ही हैं साथ ही मानवीय समस्याओ के निराकरण के लिए उपयोगिता को भी विज्ञान का सबसे बडा मूल्य स्रोत मानते हैं। इन दोनों प्रकार के मूल्यो से ही समाज विज्ञान की दो प्रकार की भूमिकाएँ निकलती हैं। आज अनेक विद्वान समाज विज्ञान मे ऐसे हैं जो इन मूल्यो और उनसे निकलने वाली भूमिकाओ मे कोई विरोध नहीं देखते बल्कि उन्हें एक-दूसरे का पूरक मानते हैं।[1]

1 *Alex Inkeles* : What is Sociology, p. 103.

3 समाज विज्ञान मे मूल्य (Values in Social Sciences)—समाज विज्ञान मे मूल्यों से हमारा अभिप्राय उन मूल्यो से है जो समाज विज्ञान मे विशिष्ट समस्याग्रो को जन्म देते हैं। इन्हे हम 'पूर्वाग्रह' के रूप में देख सकते हैं।

इस प्रकार के मूल्य समाज विज्ञान के वैज्ञानिक दृष्टिकोण के लिए हानिकारक होते हैं और वे विशुद्ध वैज्ञानिक ज्ञान, उसके सामान्यीकरण, निष्कर्षों, सिद्धान्तो एव प्रमाणो को इतना प्रभावित कर सकते हैं कि समाज विज्ञान की वस्तुनिष्ठता (Objectivity) समाप्त होती दिखाई देने लगती है। इस प्रकार समाज विज्ञान की 'मूल्य-निरपेक्षता' खतरे मे पड जाती है।

भौतिक विज्ञानो म इस प्रकार के मूल्यो की समस्या उत्पन्न नही होती। समाज विज्ञान मे इस प्रकार की समस्या का कारण उसकी विषय-वस्तु की जटिलता है। सामाजिक विज्ञानो मे समाज वैज्ञानिक जिन घटनाओ का अपने अध्ययन-विषय के रूप मे चयन करता है, वे स्वय मनुष्यो के मूल्यो एव मानवीय क्रियाओ व मानवीय सम्बन्धो द्वारा निर्मित होती हैं।

समाज वैज्ञानिक स्वय एक मनुष्य और उसी मानवीय समाज का सदस्य होता है जिसका वह अध्ययन कर रहा है। ऐसी स्थिति मे उसका पूर्णत तटस्थ होकर अध्ययन करना सन्देहास्पद हो जाता है। प्राकृतिक विज्ञानो मे मूल्य तटस्थता एक तथ्य है क्योकि वे अपने अध्ययन हेतु केवल उन्ही घटनाओ का चयन करते हैं, जिन्हें मापन के द्वारा परिमाणात्मक अर्थो में अध्ययन किया जाता है। अत सामाजिक विज्ञानो मे अनुसन्धानकर्ता के स्वय के आदर्श विश्वास मान्यताएँ एव मूल्य उसके अध्ययन को प्रभावित कर सकते हैं। अत समाज विज्ञान के लिए मूल्य-मुक्तता अभी भी एक आदर्श की वस्तु है यद्यपि समाज विज्ञान इसे प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है।

सामाजिक विज्ञानो पर मूल्यो का प्रभाव
(Impact of Values on Social Sciences)

'मूल्य' वस्तुत समाज विज्ञान या सामाजिक विज्ञानो की परिस्थिति मे निहित गुण है। यह प्रश्न भी उठाया जाता रहा है कि मूल्य रहित सामाजिक विज्ञान हो सकता है अथवा नहीं। सामाजिक विज्ञान के आलोचको का कथन है कि सामाजिक घटनाओ से सम्बन्धित अध्ययन सदैव मूल्यो से प्रभावित होते हैं, इसलिए यह विज्ञान है ही नहीं, यह तो दर्शन है।

इसमे अधिक सन्देह नहीं है कि सामाजिक अध्ययन के विषयो के चयन पर मूल्यो का प्रभाव पडता है। जैसे आज कुछ पिछडे हुए राष्ट्रो मे प्रजातन्त्र डावाँडोल हो रहा है। इसलिए प्रजातन्त्र के मूल्यो को स्वीकार करने वाले सामाजिक वैज्ञानिक इस बात की खोज मे हैं कि प्रजातन्त्र के बनने और बिगडने के क्या कारण होते हैं। इसी प्रकार समाजवाद को पसन्द करने वाले लोग सामाजिक परिवर्तन के कारकों मे विशेष रुचि रखते हैं। इसलिए यह कहना कठिन नही है कि अध्ययन के

विषयो का चयन मूल्यो के आधार पर होता है। लेकिन इससे यह आशय नही लगाया जाना चाहिए कि इन अध्ययनो के निष्कर्ष भी मूल्यो से प्रभावित होते हैं। निष्कर्ष निकालने मे यदि वैज्ञानिक ढग या वैज्ञानिक विधि को प्रयुक्त किया गया है तो यह विश्वसनीय, यथार्थ एव सार्वभौमिक हो सकते हैं। उदाहरण के लिए चाहे किसी व्यक्ति को 'समाजवाद' कितना ही प्रिय क्यो न हो, अगर किसी राष्ट्रीयकृत उद्योग का अध्ययन करता है और उसे यह ज्ञात होता है कि वह उद्योग अकुशल रहा है तो उसे अपने अध्ययन मे उसकी अकुशलता को स्पष्ट करना ही होगा। सत्य तो यह है कि लगभग समस्त विज्ञानो मे विषयो का चयन शोधकर्त्ताओ की रुचि के अनुरूप ही होता है।

यह भी कहा जाता है कि कभी-कभी सामाजिक समस्याओ के समाधान के लिए सुझाव देते हुए सामाजिक वैज्ञानिको के मूल्य उनके विवेचन को प्रभावित कर देते हैं। यह कठिनाई थोडा-सी वास्तविक भी है, किन्तु यह मूल्यो और तथ्यो मे विवेक न करने के कारण पैदा होती है और दूसरे सामाजिक वैज्ञानिक इस प्रकार की भ्रान्ति को ढूँढ निकाल सकते हैं।

यही हमे यह भी स्पष्ट करना चाहिए कि सामाजिक विज्ञानो मे तथ्यो और मूल्यो दोनो का ही अध्ययन किया जाता है। सस्कृतियो के अध्ययन मे उनके मूल्यो के अध्ययन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। व्यक्तियो के अध्ययन के लिए भी उनके मूल्यो का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। मूल्य अभिवृत्ति (Attitude) का एक अग है, और अभिवृत्तियो का प्रभाव समस्त सामाजिक सम्बन्धो पर पडता है। अभिवृत्तियो का अध्ययन सामाजिक विज्ञान का महत्त्वपूर्ण अग बन गया है। प्रसिद्ध समाज-शास्त्री मिर्डल (Myrdal) ने भी लिखा है कि 'समाज विज्ञान' मे मूल्य और तथ्य समीक्षा एक दृष्टि मे इस प्रकार गुँथी रहती है कि मूल्यांकन ही तथ्यों की धारणा या परिभाषा तय करते हैं और वे इस प्रकार तथ्यों के वर्णन और व्याख्या मे भी प्रवेश कर जाते हैं।[1] लेकिन इसका आशय यह नहीं है कि 'मूल्य' व 'तथ्य' मे कोई भेद नही है। इनका भेद भी सिद्धान्तत स्पष्ट है। मूल्य सामान्यत उसे कहा जाता है जो वांछित हो और तथ्य उसे जो अस्तित्वमान हो। सिद्धान्तत मूल्यो और तथ्यों मे विभेद किया जाना चाहिए।

कई समाज वैज्ञानिक यह स्वीकार करते हैं कि एक समाज विज्ञान का दृष्टिकोण समाज अथवा सस्कृति से प्रभावित होता है जिसमे उसकी उत्पत्ति एव विकास हुआ है। वेबर (Weber) का मानना है कि प्रकृति मूल्यविहीन हो सकती है परन्तु सस्कृतिविहीन नहीं। प्रत्येक समाज विज्ञान हमारी सस्कृति का ही अग होता है। बिना मूल्यो के हम यह भी तय नही कर सकते कि कौन-से सामाजिक तथ्य हमारे लिए महत्त्वपूर्ण हैं और कौन-से नही, अतः मूल्य ही यह तय करते है कि समाज वैज्ञानिक किन तथ्यो मे रुचि लेता है, वे तथ्य कितने महत्त्वपूर्ण हैं और वे अध्ययन का विषय हो सकते हैं अथवा नही।

1 G *Myrdal* Value in Social Theory, p 53

इसी प्रकार समाज विज्ञानों में जो धारणाएँ प्रयुक्त होती हैं, वे भी वस्तुनिष्ठ (Objective) या मूल्य-युक्त (Value-free) नहीं होतीं। कोई दृष्टिकोण अपनाया जाए वह समाज का अध्ययन विशेष प्रारूप ही में करने को प्रेरित करता है। ये प्रारूप हमारी अनुभूतियों को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए हम समाज को 'व्यवस्था' (System) मानकर अध्ययन करें अथवा 'प्रक्रिया' (Process)। इसी से यह तय हो जाएगा कि समाज के किन तथ्यों का अध्ययन करें और किस प्रकार उनका विश्लेषण करें।

इतना ही नहीं बल्कि अनेक बार समाज विज्ञान की व्याख्याओं (Interpretations) में भी मूल्यों का प्रवेश हो जाता है। सामान्यतः मनुष्य की क्रिया किन्हीं मूल्यों के लिए ही होती है और उन्हीं के द्वारा उन्हें समझा जा सकता है। यदि मूल्यों पर ध्यान नहीं दिया गया तो मानवीय क्रियाओं को भी सही रूप में नहीं समझा जा सकता है, अतः समाज विज्ञान में सामाजिक घटना की व्याख्या उनमें लगे मूल्यों को ध्यान में रखे बिना नहीं हो सकती है। यहाँ हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ये मूल्य केवल उन कर्त्ताओं के हैं जो किसी सामाजिक घटना में लगे हुए हैं, न कि उस वैज्ञानिक के जो सामाजिक घटनाओं की व्याख्या करना चाहता है।

इसी प्रकार समाज विज्ञान के निष्कर्षों व निर्धारण में भी मूल्यों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मूल्य-निरपेक्ष समाज विज्ञान को सबसे बड़ी चुनौती का सामना तब करना पड़ता है जब यह आरोप लगाया जाता है कि स्वयं समाज वैज्ञानिक के मूल्य भी समाज विज्ञान के विश्लेषण और निष्कर्षों को प्रभावित करते हैं। प्रत्येक समाज वैज्ञानिक किसी समाज या संस्कृति का भी सदस्य होता है, उसके कुछ नैतिक मूल्य एवं प्रतिमान भी होते हैं, जिनके आधार पर वह अच्छी या बुरी सामाजिक व्यवस्थाओं, संस्थाओं या सम्बन्धों पर उसकी कुछ पूर्व-धारणाएँ भी होती हैं, यह पूर्व धारणाएँ समाज वैज्ञानिक की परिभाषाओं एवं अध्ययन पद्धति में भी प्रवेश कर जाती हैं। अनेक समाज वैज्ञानिक आज यह स्वीकार करते हैं कि सामाजिक प्रघटनाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण भी वैज्ञानिक की निजी धारणाओं एवं व्यक्तिगत मूल्यों से प्रभावित होता है।[1]

वस्तुतः यदि इसे सत्य मान लिया जाए तो समाज वैज्ञानिक की यह एक गम्भीर समस्या है। इसीलिए कुछ समाजशास्त्री अब मध्यम मार्ग सुझाने लगे हैं। उनका कहना है कि जब समाज विज्ञान में मूल्यों से छुटकारा ही नहीं है तो उन्हें अस्वीकारने से कोई लाभ नहीं होने वाला है। ऐसी स्थिति में यह ठीक होगा कि समाज वैज्ञानिक जिस समूह का अध्ययन करे उसके मूल्यों में स्पष्ट विवरण वह पहले से ही तैयार कर ले, और उसी आधार पर अपने अध्ययन में विश्लेषण, व्याख्या एवं भविष्यवाणी भी करे। उपर्युक्त तर्कों के आधार पर सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि समाज विज्ञान न तो मूल्य-निरपेक्ष है और न ऐसा हो भी सकता

1 *R. W. Friedrish* : The Impact of Sociology, p. 79-90.

है। समाज विज्ञान की स्थिति ऐसा है, जिसमे मूल्य प्रवेश हो जाते हैं, या हम यह भी कह सकते हैं कि समाज विज्ञान की स्थिति स्वय मूल्यो से ही बनी होती है, और ऐसी स्थिति मे मूल्य-निरपेक्ष समाज विज्ञान की बात व्यर्थ एव बेकार है।

मूल्य स्वतन्त्र सामाजिक विज्ञान
(Valuefree Social Science)

मूल्य-स्वतन्त्र सामाजिक विज्ञान की अवधारणा को लेकर समाज वैज्ञानिको मे व्यापक मतभेद है। प्रश्न यह है कि सामाजिक वैज्ञानिक अपने अनुसधान, शिक्षण, लेखन को मूल्यो से प्रभावित होने दें अथवा नही। इस विषय मे एक मत जैसे मैक्स वेबर (Max Weber) का यह है कि सामाजिक वैज्ञानिको को अपने कार्य मे किसी भी प्रकार मूल्यो से प्रभावित नहीं होना चाहिए।[1] दूसरा मत जैसे डाहरनडोर्फ (Dahrendorf) का यह है कि सामाजिक वैज्ञानिको के रूप म हमारा उत्तरदायित्व वैज्ञानिक अनुसन्धान के साथ समाप्त नही होता, वरन् यही से प्रारम्भ हो सकता है। हमे अपने अनुसन्धान काय के नैतिक परिणामो की बराबर परीक्षा करते रहना चाहिए।[2]

उदाहरण के लिए वर्तमान मे मानव-व्यवहार को नियन्त्रित करने का अधिकतम ज्ञान प्राप्त किया जा रहा है। मनोविज्ञान एव समाज विज्ञान मे अनुसन्धानो द्वारा पता लग रहा है कि लोगो के विचारो अभिवृत्तियो और पूरे व्यक्तित्व को ही किस प्रकार प्रभावित किया जा सकता है। यह सम्भावना है कि आगे आने वाले अधिनायक इस ज्ञान का उपयोग करेंगे और मानव की स्वतन्त्रता छिन जाएगी। ऐसी स्थिति मे प्रश्न यह है कि वैज्ञानिको को ऐसे निष्कर्षो को प्रकाशित करना चाहिए या नही जो इस परिणाम की ओर ले जा सकें। इसके दो उत्तर हो सकते हैं। प्रथम तो यह कि दूसरे उपकरणो की भाँति विज्ञान का भी अच्छा या बुरा उपयोग हो सकता है। वैज्ञानिक का कार्य शोध करना है, उसके बुरे उपयोग को वह नही रोक सकता। वैज्ञानिक के नाते ऐसा प्रयास भी उसे नही करना चाहिए। दूसरा उत्तर यह है कि वैज्ञानिक केवल वैज्ञानिक ही नही वरन् अपने समाज का एक सक्रिय सदस्य और एक मनुष्य भी है। उसका कर्तव्य है कि जो अनुसन्धान वह करता है उसके परिणाम भी देखे। यदि ये परिणाम घातक हो तो उसे वह शोध नही करनी चाहिए।

मूल्य-स्वतन्त्र या मूल्य-मुक्त समाज विज्ञान की इस धारणा को अधिक विस्तार से समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम वस्तुनिष्ठता (Objectivity) को समझें।

वस्तुनिष्ठता व्यक्तिनिष्ठता (Subjectivity) से परे उसकी वस्तुनिष्ठ (Objective) विशेषता से है, जिसका आशय है, किसी घटना का अध्ययन

1 *Max Weber* The Methodology of the Social Sciences 1949.
2 *Ralph Dahrendorf*. Essays in the Theory of Society, 1968

अध्ययनकर्त्ता के पूर्वाग्रहो, पूर्व धारणाओं, मान्यताओ, मूल्यों आदि से पूरी तरह स्वतन्त्र होकर तथ्यों का निष्पक्ष वर्णन करना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते है कि वस्तुनिष्ठता के साथ किया गया अध्ययन ही *मूल्य-स्वतन्त्र समाज विज्ञान* की रचना कर सकेगा और उसे *अधिक वैज्ञानिक बना* पाने मे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा।

किन्तु समाज विज्ञान के क्षेत्र मे वैज्ञानिक की यह भूमिका बहुत कठिन है। सामाजिक जीवन मे तथ्यो की परिभाषा और पहचान भी मूल्यो द्वारा होती है। यह कहना भी गलत ही है कि तथ्य स्वय ही बोलते हैं या स्वय ही प्रमाण हैं अथवा वे स्वय ही व्यवस्थित ज्ञान या सिद्धान्त मे परिणित हो जाते हैं। प्रत्येक विज्ञान अपने तथ्यो की व्याख्या एव निर्वचन करता है और यह सब समाज या संस्कृति द्वारा प्रदत्त मूल्यो *के द्वारा ही सम्भव है। प्रारम्भ से लेकर अन्त तक अनुसन्धान के प्रत्येक चरण पर* वैज्ञानिक को अपनी अध्ययन समस्या का चयन व उसका निर्धारण, अपनी पद्धति व दृष्टिकोण का चयन व सामग्री का सकलन एव निष्कर्षों का प्रस्तुतीकरण सब कुछ अपने मूल्यों के द्वारा ही करना पडता है। इतना ही नही, मूल्यो का यह प्रभाव इतना अनजाने मे होता है कि कभी-कभी स्वय वैज्ञानिक को भी इसका ज्ञान नहीं हो पाता।

अतः ऐसी परिस्थिति में 'मूल्य स्वतन्त्र' समाज विज्ञान की बात ठीक नहीं लगती है। ऐसा दिखाई देता है कि समाज विज्ञान को मूल्यो से सम्बन्ध तो रखना *ही पड़ेगा और इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि वह अपनी वैज्ञानिकता को* भी बनाए रखे, अत इसके लिए वैज्ञानिक को अपने सामाजिक मूल्यो और वैयक्तिक मूल्यो दोनो ही से अपने सम्बन्ध निश्चित करने होगे। सामाजिक मूल्यों से अपने सम्बन्ध निश्चित करने के लिए एक तरीका यह हो सकता है कि समाज विज्ञान सामाजिक मूल्यो को स्वीकार करे उनका बहिष्कार न करे। प्रत्येक सामाजिक विज्ञान प्रारम्भ मे ही कुछ मूल्यो को स्वीकार करे, जिनके आधार पर अनुसन्धान मे विषय एव सामग्री का चयन किया जाए और फिर उन्ही के द्वारा दी गई कसौटी पर अनुसधान सामग्री का प्रमाणीकरण भी किया जाए।

सामाजिक मूल्य किसी व्यक्ति अथवा समूह के कोई विशेष हित, आकांक्षाएँ *अथवा महत्त्वाकांक्षाएँ नहीं होते। सामाजिक मूल्यो से तात्पर्य किसी समूह की उन* जटिल रुचियो रुझानो, प्रवृत्तियो विश्वासो व नैतिक सिद्धान्तो से है जो उस समूह को एकीकृत और सगठित करने का कार्य करते हैं। इस प्रकार सामाजिक मूल्य व्यक्तिगत रुचियो, पूर्वाग्रहो, एव पूर्व-धारणाओ से पूरी तरह मुक्त होते हैं। समाज विज्ञान को विज्ञान बनने के लिए सामाजिक मूल्यो से तो एक विशेष सम्बन्ध जोड़ना होगा, किन्तु व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों को भी उसे बहिष्कृत करना होगा। यही शर्त मूल्य-स्वतन्त्र समाज विज्ञान की एक गारण्टी होगी। इस प्रकार मूल्यो की स्वीकारोक्ति *मूल्य-स्वतन्त्र विज्ञान की एक अनिवार्य शर्त है। समाज विज्ञान को* चाहिए कि वह किसी वैज्ञानिक अध्ययन मे अपनी मूल्य-व्यवस्थाओ का स्पष्ट कथन प्रस्तुत करे, उन्हें छुपाए नहीं। मूल्य ही उसके अध्ययन को दिशा प्रदान करते हैं

और उन्हीं के द्वारा उसके निष्कर्षों का महत्त्व भी अनुभव होता है। यही एक रास्ता है जिसके द्वारा समाज विज्ञान को पक्षपात और पूर्वाग्रहो से मुक्त किया जा सकता है। समाज विज्ञान मे पक्षपात वह स्थिति होती है जब वैज्ञानिक अपने मूल्यो, हितों अथवा पूर्वाग्रहो के विषय मे सचेत न हो। किन्तु जब मूल्यो का चयन कोई वैज्ञानिक जान-बूझकर करता है, अपने अध्ययन मे उन पर प्रकाश डालता है और उनका चयन भी स्वय के मनमाने तरीके से न कर समाज सस्कृति या उस समूह के स्वीकृत एव पूर्व स्थापित प्रतिमानो के अनुरूप करता है तो नि सन्देह वह मूल्य-स्वतन्त्र या *मूल्य-निरपेक्ष समाज विज्ञान को बनाता है।*

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान मे समाज विज्ञान के सामने दोहरा मानदण्ड उपस्थित है। वह मूल्य-स्वतन्त्र रहकर या दूसरे शब्दो मे मूल्य के सम्बन्ध मे अधिक से अधिक सचेत एव सावधान होकर उनकी स्पष्ट स्वीकारोक्ति करता हो और दूसरे वैज्ञानिको के द्वारा उसकी आगे जाँच-परख करने की छूट देता हो। दूसरी ओर वह पूरी तरह सभी तरह के मूल्यो से स्वतन्त्र रहकर प्राकृतिक विज्ञानों की भाँति ही अपने निष्कर्षों एव सिद्धान्तो की रचना करे। लेकिन हम पहले ही लिख आए हैं कि समाज विज्ञान की विशिष्ट प्रकृति के कारण यह रास्ता अत्यन्त दुरूह एवं कठिन है।

अत यह कहा जा सकता है कि मूल्यों के प्रति लगातार सावधानी ही मूल्य *स्वतन्त्र समाज विज्ञान की सबसे पहली आवश्यकता है।*

प्रस्थापना एवं न्याय-वाक्य के मध्य सम्बन्ध

(elationship between Proposition and Syllogism)

विज्ञान का प्रमुख उद्देश्य प्रघटनाओ की व्याख्या एव उनका स्पष्टीकरण करना है। किसी भी विज्ञान मे आज हम जो प्रगति देखते हैं, उसका अधिकांश श्रेय निर्वचन (*Interpretation*), *व्याख्या करने अथवा स्पष्टीकरण की प्रेरणा को* जाता है। स्पष्टीकरण की इच्छा ही विज्ञान को आगे बढाती है। इस इच्छा की उत्पत्ति किसी घटना की उपस्थिति को देखकर होती है। बाद मे यही घटना इसकी उपस्थिति के कारणो की खोज के लिए प्रेरित करती है। अधिकांश वैज्ञानिक अनुसन्धानों का इतिहास इस तथ्य की पुष्टि करता है।

ए वुल्फ (A Wolf) का कथन है कि "प्राकृतिक प्रघटना मे उसकी जटिलता तथा ऊपरी अस्पष्टता के बावजूद किसी नियम की खोज, विवेचना तथा समन्वय (Analysis and Synthesis) के द्वारा ही सम्भव है। ये विधियाँ किसी भी वैज्ञानिक अनुसन्धान के आधार हैं।"[1] इस प्रकार विज्ञान मे सग्रहीत सामग्री की अनेक प्रकार से विवेचना की जाती है। इसके लिए सम्पादन (Editing) के बाद उनका वर्गीकरण (Classification) किया जाता है। समस्त समूह को उसकी (तथ्यो की) समानता एव असमानता के आधार पर अनेक वर्गों तथा उपवर्गों मे विभाजित किया जाता है। इससे जटिल तथा अस्पष्ट समको का समूह सरल तथा

1 *A. Wolf*: Essentials of Scientific Method.

समझने योग्य बन जाता है और विवेचना के कार्य में सुगमता हो जाती है। इसके बाद सारणीयकरण (Tabulation) का स्थान आता है। सारणीयन या सारणीयकरण में हम वर्गीकृत तथ्यों को सरल व जटिल सारणियों में प्रदर्शित करते हैं। सारणीयन के बाद विवेचना या व्याख्या का स्थान महत्वपूर्ण है।

साधारण अर्थों में किसी घटना की व्याख्या से तात्पर्य यह प्रदर्शित करना होता है कि उक्त घटना के वर्णन करने वाले कथन का प्रमाण तार्किक विधियों (Logical Methods) द्वारा अन्य कथनों के सन्दर्भ में निरूपण करता है। तर्कशास्त्र (Logic) का यह आधारभूत नियम है कि प्रत्येक वैज्ञानिक स्पष्टीकरण (Scientific Explanat on) का कम से कम एक ऐसा आधार (Premise) अवश्य होना चाहिए जिसकी प्रकृति सार्वभौमिक प्रस्थापना (Universal Propo sition) की होनी चाहिए। म प्रकार जब कोई सार्वभौमिक प्रस्थापना आनुभविक और कारणात्मक (Causal) होती है तब इसे वैज्ञानिक सिद्धान्त (Scientific Theroy) कहा जाता है। सिद्धान्त व्याख्या अथवा स्पष्टीकरण की एक विधि है।

इससे पूर्व कि हम प्रस्थापन एवं न्याय वाक्य के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करें कारणात्मक परिणाम (Causal Inference) पर प्रकाश डालते चलें क्योंकि यह आवश्यक है कि प्रस्थापना अगर कारणात्मक होती है तभी उससे वैज्ञानिक सिद्धान्तों का निरूपण होता है। इसी प्रकार न्याय वाक्यों में जो कि मूल में निगमन (Deduction) का ही एक उदाहरण है भी कारणात्मक परिणाम को देखा जाता है। इस प्रकार वैज्ञानिक ढंग की सहायता से वैज्ञानिक नियमों की स्थापना करने में कारणात्मकता (Casuality) का केन्द्रीय स्थान है।

कारणात्मकता क्या है?
(What is Casuality)

कारणात्मकता (Casuality) की अवधारणा अत्यन्त जटिल है। साधारण शब्दों में कारणात्मकता की अवधारणा का स्पष्टीकरण इस रूप में किया जाता है कि एक अकेली घटना (कारण) एक अन्य अकेली घटना (प्रभाव) को सदैव उत्पन्न करती है। आधुनिक युग में वैज्ञानिक ढंग निर्धारक परिस्थितियों की बहुलता पर बल देता है। किन्तु सामान्य बुद्धि एवं वैज्ञानिक ढंग दोनों ही के अन्तर्गत घटना के घटित होने के लिए आवश्यक एवं पर्याप्त प्रतिबन्धों के अन्वेषण पर बल दिया जाता है। एक आवश्यक प्रतिबन्ध जैसा कि नाम में ही स्पष्ट है वह है जिसे अवश्य ही घटित होना चाहिए, यदि वह घटना घटित होनी है जिसका यह कारण है। यदि 'क' 'ख' का आवश्यक प्रतिबन्ध है तो इसका आशय यह है कि 'ख' को तब तक घटित नहीं होना चाहिए जब तक कि 'क' घटित न हो।

इसे एक उदाहरण से और भली भाँति समझा जा सकता है जैसे वर्षा का आना (ख) बादलों (क) पर निर्भर करता है। इस प्रकार बादल और वर्षा (क+ख) आवश्यक रूप से प्रतिबन्धित हैं। वर्षा (ख) तब तक नहीं आ सकती जब तक बादल (क) न आएँ। इस प्रकार एक पर्याप्त प्रतिबन्ध वह है जिसका

अनुमान सदैव उस घटना द्वारा किया जाता है जिसका यह कारण है। यदि 'क' 'ख' का पर्याप्त प्रतिबन्ध है तो जहाँ कहीं भी 'क' घटित होगा वहाँ 'ख' अवश्य घटित होगा। अर्थात् जहाँ कहीं भी बादल आएँगे वहाँ वर्षा अवश्य होगी।

एक प्रतिबन्ध एक घटना के घटित होने के लिए आवश्यक एवं पर्याप्त दोनों ही हो सकते हैं। ऐसी परिस्थिति में 'ख' तब तक नहीं घटित हो सकता जब तक कि 'क' घटित न हो तथा जब कभी भी 'क' घटित होगा 'ख' अवश्य घटित होगा। आवश्यक एवं पर्याप्त प्रतिबन्धों के अतिरिक्त तीन प्रकार के प्रतिबन्ध और हो सकते हैं, जिन पर विचार करना भी यहाँ उपयुक्त होगा। वे तीन प्रतिबन्ध (Conditions) निम्न हैं—

1 अंशदायी प्रतिबन्ध या दशाएँ (Contributory Condition)
2 आकस्मिक प्रतिबन्ध या दशाएँ (Contingent Condition)
3 विकल्पीय प्रतिबन्ध या दशाएँ (Alternative Condition)

अंशदायी प्रतिबन्ध या दशा वह है जो इस बात की सम्भावना को बढ़ा देती है कि एक निश्चित घटना घटित होगी। किन्तु इसका घटित होना निश्चित नहीं है क्योंकि यह उन अनेक कारकों में से एक है जो इस घटना के घटित होने के लिए एक साथ उत्तरदायी है। वे परिस्थितियाँ जिनमें एक चर (Variable) एक निश्चित घटना का अंशदायी कारण होता है आकस्मिक प्रतिबन्ध या दशा कहलाता है। विकल्पीय प्रतिबन्ध या दशा वे हैं जो एक घटना के घटित होने की सम्भावना बढ़ा देते हैं।

इन विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्धों को भी हम अपने समाज के एक उदाहरण द्वारा अधिक भली-भाँति समझ सकते हैं। मान लीजिए भारतीय समाज में लड़कियों (Girls) के विवाह (Marriage) में 'सुन्दरता' एक आवश्यक प्रतिबन्ध है, उनकी आर्थिक स्थिति एक पर्याप्त प्रतिबन्ध है उनकी शैक्षिक स्थिति अंशदायी प्रतिबन्ध है, उनमें अन्य कलात्मक निपुणताओं का पाया जाना एक आकस्मिक प्रतिबन्ध है, तथा उनकी पारिवारिक सामाजिक स्थिति एक विकल्पीय प्रतिबन्ध है।

कारणात्मक सम्बन्धों से परिणाम निकालने की विधियाँ
(Methods of Drawing Inferences from Casual Relationships)

प्रस्थापना (Proposition) एवं न्यायवाक्य (Syllogism) के सम्बन्ध को व्यवस्थित रूप से समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम कारणात्मक सम्बन्धों से परिणाम निकालने वाली प्रमुख विधियों का उल्लेख करें। कारणात्मक सम्बन्धों को प्रमाणित करने के लिए तीन प्रकार के परिणामों की आवश्यकता होती है—

1 साहचर्य (Association),
2 चरों के घटित होने के समय का क्रम, एवं
3 अन्य सम्भावित कारणात्मक कारकों का बहिष्कार।

तर्कशास्त्र (Logic) की विधि के अनुसार कारणात्मक सम्बन्धों से परिणाम

निकालने की पाँच प्रमुख विधियाँ हैं। इन विधियो का प्रयोग जॉन स्टुअर्ट मिल (John Stuart Mill) ने किया है। ये प्रमुख विधियाँ हैं—

1 समानता की विधि (Method of Agreement)
2 अन्तर की विधि (Method of Difference)
3 सयुक्त विधि (Joint Method)
4 शेषांश विधि (Method of Residues)
5 सह-विचरण विधि (Method-of Concomitant Variation)

यहाँ हम इन्हे थोडा विस्तार से समझने का प्रयास करेंगे—

1. समानता की विधि (Method of Agreement)—जब एक दी गई घटना के दो अथवा दो से अधिक वार घटित होने पर केवल एक और एक ही प्रतिबन्ध या दशा सामान्य रूप से दिखाई देना है या प्रकट होता है तो इस प्रतिबन्ध को घटना के कारण के रूप मे स्वीकार किया जाता है। समानता की इस विधि के प्रमुख रूप से दो लाभ हैं—

(क) गलती के सम्भव होने के बावजूद भी यह हमें अनेक कारको का पता लगाने मे सहायता करती है, जिसके परिणामस्वरूप हमारी अनुसन्धान समस्या सरल हो जाती है।

(ख) यह विधि हमे इस बात की भी सूचना प्रदान करती है कि कुछ कारक एक साथ घटित होते हुए प्रतीत हो रहे हैं। यह हमे एक मूर्त परिस्थिति के अन्तर्गत यह देखने की अनुमति प्रदान करती है कि एक अमुक कारक एक अन्य विशिष्ट कारक के पूर्व घटित होता है।

लेकिन इस विधि की एक बडी कमजोरी यह है कि हम अनेक महत्वपूर्ण कारकों पर कोई ध्यान देने का प्रयास नहीं करते है जो वास्तव म इसके कारण हो सकते हैं।

एक उदाहरण से इसे और स्पष्ट समझा जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि हम यह मान लें कि सभी अथवा अधिकांश शाकाहारी शिक्षित एव ग्रामीण दीर्घजीवी होते हैं तथा समस्त शाकाहारी अशिक्षित एव नगरीय भी दीर्घजीवी होते हैं, तो इससे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 'शाकाहार' एव दीर्घ जीवन' मे परस्पर कार्य-कारण का सम्बन्ध है, क्योंकि दोनो वर्गों मे फल समान है, किन्तु केवल एक तत्त्व शाकाहार ही ऐसा है जो दोनो मे पाया जाता है। समानता की यह विधि नकारात्मक (Negative) रूप मे भी प्रयुक्त की जा सकती है। जैसे–

क+ख+ग हीनता का फल र हीनना है।
ग हीनता+घ+ड का फल र हीनता है।
अतएव ग का फल र है।

2. अन्तर की विधि (Method of Difference)—यदि कोई घटना दो या दो से अधिक बार घटित होनी है तथा एक मे एक विशिष्ट परिस्थिति परिलक्षित होती है तथा यही विशिष्ट परिस्थिति अन्य घटनाओ के सन्दर्भ मे अनुपस्थित हो, **और इस विशिष्ट परिस्थिति के पाए जाने पर एक विशिष्ट परिस्थिति पाई जाए**

तथा न पाए जाने पर यही अन्य विशिष्ट परिस्थिति न पाई जाए तो यह बलपूर्वक कहा जा सकता है कि एक विशिष्ट परिस्थिति दूसरी विशिष्ट परिस्थिति का कारण है।

दूसरे शब्दो मे यह समानता की सकारात्मक (Positive) एव नकारात्मक (Negative) विधियो से मिलकर बनी है। इसके अनुसार यदि किसी घटना के सभी तत्त्व समान रहे, केवल एक तत्त्व मे परिवर्तन हो तथा उस तत्त्व के रहने पर कोई फल उपस्थित तथा न रहने पर अनुपस्थित हो तो दोनो मे कार्य-कारण का सम्बन्ध मानना चाहिए।

उदाहरण के लिए यदि हम यह मान ले कि सभी शाकाहारी, शिक्षित तथा ग्रामीण दीर्घायु होते हैं तथा सभी आमिष-भोजी शिक्षित ग्रामीण जल्दी ही मरते हैं। अतएव 'शाकाहार' को 'दीर्घ जीवन' का कारण समझना चाहिए।

3. संयुक्त विधि (Joint Method)—यह समानता एव अन्तर दोनो ही विधियो का सयुक्त रूप है। इस सयुक्त विधि के अनुसार यदि दो या अधिक उदाहरणो मे जिनमे कोई एक परिस्थिति समान रूप से पाई जाती है, कोई घटना घटित होती है, तथा अन्य दो या अधिक उदाहरणो मे जिनमे यह घटना घटित नही होती। अन्य परिस्थितियो के भिन्न रहने के साथ ही साथ वह विशेष परिस्थिति नही पाई जाती है, जो कि पूर्व के उदाहरणो मे पाई जाती है, तो हम कह सकते हैं कि उस विशेष परिस्थिति तथा घटना मे कार्य-कारण सम्बन्ध है। इस प्रकार इसमे समानता व अन्तर दोनो ही विधियो का उपयोग किया गया है। इसे हम चित्र द्वारा यो भी समझ सकते है—

अ+ब+स	का फल	'म' है।
अ+द+क	का फल	'म' है।
क+ख+अ नहीं	का फल	'म नहीं' है।
ग+घ+अ नहीं	का फल	'म नहीं' है।

अतएव 'अ' एव 'म' मे कार्य-कारण सम्बन्ध है। इस प्रकार यह तृतीय विधि प्रथम एव द्वितीय विधियो से अधिक श्रेयस्कर है। इसका उपयोग उन स्थानो पर हो सकता है, जहाँ पर प्रत्यक्ष प्रयोगात्मक विधियों का उपयोग नही किया जा सकता।

4. शेषांश की विधि (Method of Residues)—शेषांश की विधि का प्रयोग सर्वप्रथम 'सर जॉन हर्शेल' (Sir John Herschel) नामक ज्योतिषशास्त्री ने 18वी शताब्दी मे किया था।

शेषांश की विधि के अनुसार यदि कोई घटना किसी विशेष परिस्थिति मे घटित होती है तथा पूर्व ज्ञान के आधार पर यह ज्ञात है कि घटना के किसी एक अग का उन परिस्थितियो मे कुछ के साथ कार्य-कारण सम्बन्ध है तो ऐसा माना जाएगा कि शेष घटना का शेष परिस्थितियो के साथ भी कार्य-कारण सम्बन्ध है। 'नेपच्यून ग्रह' की खोज भी इसी विधि से हुई है। अनेक बार यह देखा गया था कि

यूरेनस ग्रह अपने निर्धारित पथ से विचलित हो गया, लागो ने इसका कारण जानने का प्रयास किया। परन्तु कोई निश्चित कारण न मिलने पर ऐसा समझा गया कि यह कोई अन्य ग्रह है। शनै-शनै नेपच्यून ग्रह की खोज हुई।

वातावरण मे 'आर्गन' की खोज भी इसी प्रकार हुई। ऐसा देखा गया कि वातावरण मे नाइट्रोजन के घनत्व तथा अन्य साधनो से प्राप्त नाइट्रोजन के घनत्व मे अन्तर पाया गया। अतएव यह समझा गया कि यह अन्तर किसी विशेष पदार्थ की उपस्थिति के कारण है। इस पदार्थ को ही बाद मे आर्गन नाम दिया गया।

इस प्रकार इस विधि के अन्तर्गत हमे घटना तथा कारणो का पूर्व ज्ञान आवश्यक होता है। उसी पूर्व ज्ञान के आधार पर हम यह कल्पना करते हैं कि किन्ही विशेष परिस्थितियो मे किसी घटना को विशेष प्रकार से घटित होना चाहिए। जब वह उससे भिन्न प्रकार से घटित होती है तो तुरन्त हम विचार करने लगते हैं कि यह अन्तर किसी विशेष परिस्थिति के कारण ही हुआ है। चित्र रूप म इसे यो समझा जा सकता है—

अ+ब+स+द	का फल	क ख ग घ है।
ब+स+द	का फल	ख ग घ है।

अतएव अ का फल क' है।

5 सह विचरण विधि (Method of Concomitant Variation)—सह विचरण से हमारा अभिप्राय यह है कि एक चर के घटित होने पर दूसरा चर अधिक बार घटित होता है अपेक्षाकृत उन परिस्थितियो के जिनम पहला चर घटित नहीं हुआ है। उदाहरण के लिए क विशेषता रखने वाली परिस्थितियो म ख विशेषता अधिक पाई जाती है अपेक्षाकृत उन परिस्थियो के जिनम क विशेषता नही पाई जाती है। इस प्रकार सह विचरण विधि म जब किसी एक घटना में एक विशेष दिशा मे विचलन किसी अन्य घटना मे भी विचलन उत्पन्न करता है तो दोनो मे कार्य-कारण सम्बन्ध माना जाता है। इस विधि म घटना म विशेष तत्व का अभाव अथवा उसकी उपस्थिति नही होती है परन्तु उसी घटना म वृद्धि अथवा कमी होती है। इस प्रकार यह विधि साँख्यिकीय प्रणाली अथवा सख्यात्मक माप का आधार है। उदाहरण के लिए यदि एक वस्तु की मात्रा म वृद्धि होने पर भाव मे वृद्धि हो और मात्रा मे कमी आने पर यदि भाव म कमी आए तो यह समझा जा सकता है कि 'मात्रा' व मूल्य' म कार्य कारण सम्बन्ध है।

प्रस्थापना एव न्याय-वाक्य
(Proposition and Syllogism)

कारणात्मकता (Casuality) एव कारणात्मक सम्बन्धो म परिणाम निकालने की विधियो को समझ लेने के बाद अब हम प्रस्थापना एव न्याय-वाक्य को समझ सकते हैं। हमे ध्यान रखना होगा कि इन दोनो ही अवधारणाओ को भली-भाँति विश्लेषित करने के लिए कारणात्मकता एव कारणात्मक विधियो का

ज्ञान आवश्यक है। प्रस्थापना एव न्याय-वाक्य मे सम्बन्ध स्थापित करने से पूर्व इन अवधारणाओ का अर्थ समझ लेना अधिक उपयुक्त होगा।

प्रस्थापना का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definition of Proposition)

प्रस्थापना या तर्क वाक्य (Proposition) सामान्यत तार्किक वाक्यो को कहा जाता है। प्रस्थापना एक ऐसा कथन होता है, जिसके अन्तर्गत किसी घटना से सम्बन्धित विभिन्न चरो (Variables) के परस्पर सम्बन्ध का निरूपण किया जाता है, ताकि उस पर विचार करते हुए अपेक्षित निष्कर्ष निकाले जा सकें।

प्रस्थापना को परिभाषित करते हुए लिखा गया है कि "प्रस्थापनाएँ यथार्थ (Reality) की प्रकृति के बारे मे दिए गए कथन (Statement) हैं, और इसी कारण वे सत्य एव असत्य के रूप मे मापे जा सकते हैं बशर्ते कि वे अवलोकनीय प्रघटना से सम्बन्धित हो।"

कोहेन एव नेगल ने भी लिखा है 'एक प्रस्थापना की परिभाषा किसी भी वस्तु के रूप मे की जा सकती है जो सत्य अथवा असत्य कहा जा सकता है।"[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि जब हम किसी प्रघटना के विषय में विचार करते हैं, और उसमे दो या अधिक चरो के मध्य सम्बन्ध स्थापित करते हैं तो इसे हम निर्णय (Judgement) कहते हैं। इसी निर्णय को भाषा मे अभिव्यक्त कर देने से प्रस्थापना (Proposition) का निर्माण होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि निर्णय आन्तरिक प्रक्रिया है एव तर्क-वाक्य उसी का बाह्य रूप है। अनभिव्यक्त रूप निर्णय है और अभिव्यक्त रूप तर्कवाक्य या प्रस्थापना है।

उदाहरण के लिए जब मैं फूल सूँघता हूँ और मेरे मन मे यह विचार होता है कि फूल सुगन्धित है तो यह निर्णय (Judgement) है और जब मैं यह कहता हूँ कि 'यह एक सुगन्धित फूल है।" तो यह एक प्रस्थापना है।

यह प्रस्थापना ही विचार (Idea) की इकाई है। तर्कशास्त्र मे इसी की तर्कशीलता का विचार किया जाता है, क्योकि हम अव्यक्त विचारो की विवेचना नही कर सकते हैं।

प्रस्थापना का विश्लेषण (Analysis of Proposition)

प्रस्थापना दो चरो के मध्य किसी सम्बन्ध का **कथन** होता है। उदाहरण के लिए "सुकरात विद्वान् व्यक्ति था।" इस प्रस्थापना मे 'सुकरात' एव 'विद्वता' के मध्य सम्बन्ध बतलाया गया है। इसी प्रकार 'फूल सुगन्धित है' मे 'फूल' एव 'सुगन्ध' मे सम्बन्ध बतलाया गया है।

प्रस्थापना मे मूलत तीन अग पाए जाते हैं—

1 उद्देश्य (Subject)–उद्देश्य वह पद है जिसके विषय मे कुछ कहा जाता है। यह कथन सकारात्मक एव नकारात्मक दोनो ही हो सकते हैं। उपरोक्त उदाहरणो मे 'सुकरात' एव 'फूल' उद्देश्य है।

1 *Cohen and Negal*, An Introduction to Logic, p 27

2. विधेय (Predicate)–विधेय वह पद होता है जिसका उद्देश्य के विषय में विधान या निषेध किया जाता है। ऊपर दिए गए उदाहरणों मे सुकरात एव फूल के विषय मे 'विद्वता' एव 'सुगन्ध' का विधान किया गया है।

3 सयोजक (Copula)—सयोजक वह पद है जो उद्देश्य और विधेय मे सम्बन्ध बतलाता है। यह सम्बन्ध भी सकारात्मक (Positive) एव नकारात्मक (Negative) दोनो ही हो सकते हैं। उपरोक्त उदाहरणो मे 'था' एव 'है' सकारात्मक सयोजक हैं। यदि यह कहा जाए कि "सुकरात विद्वान् व्यक्ति नही था" या "फूल सुगन्धित नहीं है।" तो इसमे 'नहीं था' के सम्बन्ध मे यह ध्यान रखना चाहिए कि सयोजक सदैव तर्कशास्त्रियो के अनुसार वर्तमान काल में होता है, अत सुकरात विद्वान् व्यक्ति था यह न कह कर हमे यह कहना चाहिए कि सुकरात वह व्यक्ति है जो विद्वान् नहीं था, या था। दूसरा उदाहरण 'फूल सुगन्धित है या नहीं है' सही है क्योकि यह वर्तमान काल मे ही है। इस प्रकार ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक स्थिति मे सयोजक का होना क्रिया का वर्तमान-कालिक रूप होना चाहिए जैसे हैं—हूँ, या हो आदि।

सामान्य वाक्यो और प्रस्थापनाओ मे अन्तर
(Difference between General Sentences and Propositions)

कोहेन एव नेगल कहते हैं कि "वाक्य भौतिक अस्तित्व रखते हैं। वे रुचि के अनुरूप हो सकते है और नही भी हो सकते हैं। परन्तु वे सत्य या असत्य नही होते। सत्यता एव असत्यता केवल उन प्रस्थापनाओ की होती है जिनका वे सकेत करते हैं।"[1]

यहाँ पर प्रस्थापनाओ के अर्थ को ठीक प्रकार से समझने के लिए व्याकरण के सामान्य वाक्यो (General Sentences) से प्रस्थापनाओ का अन्तर बतलाना अधिक उपयुक्त रहेगा, क्योकि इन दोनो मे अनेक समानताएँ हैं। ये दोनों ही सत्य का प्रतिपादन करते हैं, और दोनो ही उद्देश्य एव विधेय होते हैं। लेकिन फिर भी इन दोनो मे अन्तर किया जा सकता है, जो प्रमुख रूप से निम्न आधारो पर किया जा सकता है—

1 व्याकरण के सामान्य वाक्य प्रश्नवाचक, आज्ञासूचक, इच्छावाचक, विस्मयादिबोधक, यथार्थवाचक आदि हो सकते हैं। लेकिन इनमे से केवल यथार्थवाचक या तथ्यसूचक वाक्यो का ही न्यायशास्त्र मे स्थान दिया जाता है। अन्य प्रकार के वाक्यो का यहाँ कोई स्थान नहीं होता, क्योकि सामाजिक विज्ञानो में हमारा लक्ष्य घटना की यथार्थ प्रकृति या सत्य को समझना होना है।

2. व्याकरण के समाज वाक्य मे कभी-कभी दो या दो से अधिक उद्देश्य या विधेय होते हैं जैसे "राम और लक्ष्मण दशरथ के पुत्र थे।" लेकिन दूसरी और प्रस्थापना मे सदैव एक ही उद्देश्य एव एक ही विधेय होता है।

1 *Cohen and Negal* · Ibid, p 37

3 व्याकरण के वाक्य मे 'उद्देश्य' एव 'विधेय' सामान्यत दो ही भाग किए जाते हैं, जबकि प्रस्थापनाओ मे उद्देश्य, विधेय के साथ सयोजक भी होता है। अत इसे तीन भागो मे बाँटा जा सकता है। वस्तुत प्रस्थापनाओ का सयोजक (Copula) व्याकरण के वाक्यो मे विधेय मे ही सम्मिलित कर लिया जाता है।

4 व्याकरण के वाक्य भूत भविष्य एव वर्तमान तीनो कालो से सम्बन्ध रख सकते हैं, लेकिन प्रस्थापनाओ मे सयोजक सदैव वर्तमान काल (Present) मे ही रहता है।

5 इसी प्रकार व्याकरण के वाक्यो मे उद्देश्य का परिणाम और वाक्य का गुण व्यक्त करना आवश्यक नही है जबकि प्रस्थापनाओ मे गुण एव परिमाण व्यक्त करना अत्यन्त आवश्यक है।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन मे स्पष्ट है कि व्याकरण के सामान्य वाक्यो अर्थात् लौकिक वाक्यो मे प्रस्थापनाएँ कुछ मामलो मे समान होते हुए भी उनसे भिन्न होती हैं। इस प्रकार कोई वाक्य व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध हो सकता है परन्तु तार्किक दृष्टि से उसे शुद्ध नही माना जा सकता। उदाहरण के लिए पीछे दिया गया वाक्य 'सुकरात विद्वान् व्यक्ति था' व्याकरण की दृष्टि से सही वाक्य है परन्तु इसे प्रस्थापना बनाने के लिए यह कहा जाएगा कि 'सुकरात वह व्यक्ति है जो विद्वान् था।' समाजशास्त्र एव मनोविज्ञान मे प्रस्थापनाएँ सामान्यत दो या दो से अधिक अवधारणाओ (Concepts) मे सम्बन्ध स्थापित करने के दृष्टिकोण से बनाई जाती हैं।

उदाहरण के लिए सामान्यतः अनेक प्रस्थापनाओ का निर्माण, समाजशास्त्र मे किया जाता है। सामान्यत वे प्रस्थापनाएँ जिनमे दो या दो से अधिक कारको के मध्य सम्बन्ध स्थापित किया गया है अधिक उपयुक्त मानी जाती हैं, जबकि एक कारकीय प्रस्थापना का भी प्रयोग कभी कभी किया जाता है।

उदाहरण के लिए "नगरीय व्यक्तित्व के विकास मे सचार एव सन्देश-वाहन के साधन एक महत्वपूर्ण कारक है" एव "अमेरिका की आधी से अधिक जनसख्या एक वर्ष मे एक पुस्तक मे भी कम सामग्री पढती है" को ले सकते हैं।

ये दोनो ही प्रस्थापनाएँ (Propositions) हैं। ये प्रस्थापनाएँ इस अर्थ मे हैं कि इनमे यथार्थ की प्रकृति (Nature of Reality) की प्रकृति के बारे मे कथनो को सम्मिलित किया गया है, एव इन कथनो की परीक्षा की जा सकती है। प्रथम प्रस्थापना एक दूसरे के बारे मे दो कारकों का एव दूसरी प्रस्थापना केवल एक कारक का वितरण के स्पष्ट करती है।

समाजशास्त्र मे प्रस्थापनाओ का निर्माण सामान्यत कार्य-कारण सम्बन्धो (Cause-Effect Relationships) के सदर्भ मे किया जाता है। न केवल समाज-शास्त्र मे अपितु अन्य सामाजिक एव व्यावहारिक विज्ञानो (Behavioural Sciences) मे भी इन प्रस्थापनाओ का प्रयोग कार्य-कारण सम्बन्धो की स्थापना मे किया जाता है।

कार्य-कारण सम्बन्धो की स्थापना से सम्बन्धित विधियो का उल्लेख हम विस्तार से पीछे कर आए है। मूल मे इन्ही विधियो के द्वारा प्रस्थापनाओ का निर्माण किया जाता है।

संक्षेप मे प्रस्थापनाओ म निम्नांकित विशेषताएँ होती है—

1 प्रस्थापनाएँ एक प्रकार की तर्क-वाक्य या कथन (Statement) होती हैं।

2 प्रस्थापनाएँ यथार्थ की पद्धति (Nature of Reality) को स्पष्ट करती है।

3 इन प्रस्थापनाओ को परीक्षित किया जा सकता है।

4 इन प्रस्थापनाओ मे चरो के सम्बन्धो का निरूपण किया जाता है।

5 इन्ही प्रस्थापनाओ पर विचार करते हुए अपेक्षित निष्कर्ष प्राप्त किए जाते हैं।

6. यदि कोई प्रस्थापना सार्वभौमिक (Universal), कारणात्मक (Casual) एव आनुभविक (Empirical) या अवलोकनीय (Observational) होती है तो उसे वैज्ञानिक सिद्धान्त (Scientific Theory) कहा जाता है।

प्रस्थापनाओ के प्रकार
(Types of Proposition)

अनेक विद्वानो ने प्रस्थापनाओ को विभिन्न आधारो पर वर्गीकृत किया है। प्रस्थापनाओ को वर्गीकृत करने के मुख्य आधार मूल मे निर्माण, सम्बन्ध, गुण व परिणाम को माना गया है। इसके अतिरिक्त भी गतिशीलता एव तात्पर्य (Import) की दृष्टि से भी उन्हे विभिन्न वर्गों मे रखा गया है।

यहाँ हम इन प्रस्थापनाओ के प्रकारो का संक्षिप्त वर्णन करेंगे—

1 निर्माण के आधार पर (On the Basis of Construction)—प्रस्थापनाओ के निर्माण के आधार पर उन्हे दो भागो मे विभाजित किया गया है। वे हैं—

(A) सरल प्रस्थापनाएँ (Simple Propositions)—वे प्रस्थापनाएँ जिनमे केवल एक उद्देश्य एव एक ही विधेय होता है सरल प्रस्थापनाएँ कही जाती हैं। उदाहरण के लिए जैसे—'मनुष्य मरणशील है।'

(B) मिश्रित प्रस्थापनाएँ (Compound Propositions)—मिश्रित प्रस्थापनाओ मे उद्देश्य अथवा विधेय अथवा दोनो ही एक से अधिक होते है। इसीलिए इन्हे एक से अधिक प्रस्थापनाओ मे विभक्त किया जाता है। जैसे—'राम और सोहन दोनो बुद्धिमान हैं।' इसे सरल प्रस्थापनाओ मे इस प्रकार बदला जाएगा 'राम बुद्धिमान है' एव 'सोहन बुद्धिमान है।' मिश्रित प्रस्थापनाओ को पुन दो उपवर्गों मे विभाजित किया गया है—

(i) सन्निकृष्ट मिश्रित प्रस्थापना (Copulative Compound Proposition)—इसमें एक से अधिक अस्तिवाचक प्रस्थापनाएँ सम्मिलित होती हैं। जैसे 'राम धनी एवं विद्वान् है।' अब इसे दो अस्तिवाचक प्रस्थापनाओं में बदला जाएगा जैसे 'राम धनी है' एवं 'राम विद्वान् है।'

(ii) विप्रकृष्ट मिश्रित प्रस्थापना (Remotive Compound Proposition)—इसमें एक से अधिक निषेधात्मक (Negative) प्रस्थापनाएँ सम्मिलित होती हैं, जैसे 'न राम धनी है और न विद्वान्।' इसे भी दो भागों में बाँटा जाएगा जैसे 'राम धनी नहीं है' एवं 'राम विद्वान् नहीं है।'

2 सम्बन्ध के आधार पर (On the Basis of Relation)—सम्बन्ध के आधार पर भी प्रस्थापनाओं को दो वर्गों में रखा जा सकता है—

(A) निरपेक्ष प्रस्थापना (Categorical Proposition)—जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है यह वह प्रस्थापना है जिसमें उद्देश्य एवं विधेय के मध्य निरपेक्ष सम्बन्ध होता है अर्थात् उद्देश्य के बारे में विधेय का विधान या निषेध बिना किसी प्रतिबन्ध के किया जाता है। उदाहरण के लिए 'सब मनुष्य मृत्य हैं।' इस प्रस्थापना में मनुष्य के साथ 'मृत्य' का निरपेक्ष रूप में विधान किया गया है।

(B) सापेक्ष प्रस्थापना (Conditional Proposition)—इस प्रस्थापना में भी जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, उद्देश्य एवं विधेय में कुछ विशेष परिस्थितियों, हेतुओं, शर्तों अथवा प्रतिबन्धों में ही सम्बन्ध स्थापित रहता है। जैसे यदि यह कहा जाए कि 'बादल आएँगे तो वर्षा होगी', 'यदि मैं विद्वान् होता तो सुखी होता' तो इन उदाहरणों में किसी शर्त पर ही विधेय का उद्देश्य में विधान किया गया है। यह भी दो उपवर्गों में विभाजित किए गए हैं—

(i) हेतु-फलाश्रित सापेक्ष प्रस्थापना (Hypothetical Conditional Proposition)—यह वह प्रस्थापना है जिसमें दी हुई शर्त का उल्लेख 'यदि' शब्द या इसके किसी पर्यायवाची शब्द से किया जाता है। जैसे 'यदि समय पर वर्षा हुई तो फसल अच्छी होगी।' आदि।

(ii) वैकल्पिक सापेक्ष प्रस्थापना (Disjunctive Conditional Proposition)—जैसा कि नाम से स्पष्ट है इसमें विकल्प दिए जाते हैं, जिनका आकार 'या यह या वह' के प्रकार का होता है। जैसे 'या तो वह धूर्त है या मूर्ख'। इसमें किसी एक विकल्प का उद्देश्य पर लागू होना अनिवार्य होता है।

3 गुण के आधार पर (On the Basis of Quality)—प्रस्थापनाओं के गुण से हमारा अभिप्राय उसके अस्तिवाचक या नास्तिवाचक होने से है। इन्हें भी दो भागों में बाँटा जाता है—

(A) अस्तिवाचक प्रस्थापना (Affirmative Proposition)—इसका उद्देश्य उद्देश्य और विधेय में अस्तिवाचक सम्बन्ध के विधान से है। जैसे 'मनुष्य मरणशील है।'

(B) नास्तिवाचक प्रस्थापना (Negative Proposition)—इस प्रकार की प्रस्थापनाओं में उद्देश्य के विषय में विधेय का निषेध किया जाता है। जैसे 'मनुष्य ईश्वर नहीं है।' 'मैं विद्वान् नहीं हूँ' आदि। यहाँ संयोजक नास्तिवाचक होता है। वैकल्पिक प्रस्थापनाएँ नास्तिवाचक नहीं हो सकती।

4 **परिमाण के आधार पर (On the Basis of Quantity)**—परिमाण से यहाँ हमारा आशय प्रस्थापनाओं की सामान्यता एवं विशिष्टता से है। इसी आधार पर इन्हें दो वर्गों में रखा गया है—

(A) सामान्य प्रस्थापना (Universal Proposition)—सामान्य प्रस्थापना वह होती है जिसमें विधेय सम्पूर्ण उद्देश्य के विषय में होता है। जैसे समस्त मनुष्य मरणशील हैं।'

(B) विशिष्ट प्रस्थापना (Specific Proposition)—ये वे प्रस्थापनाएं हैं जिनमें उद्देश्य का विधान या निषेध सम्पूर्ण उद्देश्य पर नहीं बल्कि उसके किसी विशेष भाग के बारे में किया जाता है। जैसे 'कुछ मनुष्य स्वार्थी हैं।'

5. **गुण एवं परिमाण के आधार पर (On the Basis of Quality and Quantity)**—गुण एवं परिमाण दोनों के संयुक्त आधार पर इन्हें चार भागों में विभक्त किया गया है, वे हैं—

(A) सामान्य अस्तिवाचक प्रस्थापना (Universal Affirmative Proposition)—इसमें वे प्रस्थापनाएँ आती हैं जो एक ओर सामान्य हैं एवं दूसरी ओर अस्तिवाचक हैं, जैसे 'सब बच्चे नटखट होते हैं।' 'कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं है।' आदि।

(B) सामान्य नास्तिवाचक प्रस्थापना (Universal Negative Proposition)—ये वे प्रस्थापनाएँ हैं जो एक ओर सामान्य है जबकि दूसरी ओर नास्तिवाचक हैं। जैसे 'कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं है।' आदि।

(C) विशिष्ट अस्तिवाचक प्रस्थापना (Specific Affirmative Proposition)—इसमें वे प्रस्थापनाएँ आती हैं जो एक ओर विशिष्ट है एवं दूसरी ओर आस्तिवाचक हैं। जैसे 'कुछ मनुष्य ईमानदार हैं।' 'कुछ मनुष्य देशभक्त है।'

(D) विशिष्ट नास्तिवाचक प्रस्थापना (Specific Negative Proposition)—वे प्रस्थापनाएँ जो विशिष्ट होने के साथ-साथ निषेधात्मक भी हैं। जैसे 'कुछ मनुष्य ईमानदार नहीं हैं।' 'कुछ मनुष्य देशभक्त नहीं हैं।'

इन प्रस्थापनाओं को देखने से स्पष्ट होता है कि एक प्रकार की प्रस्थापना को दूसरे प्रकार की प्रस्थापना में बदला भी जा सकता है।

6. **गतिशीलता के आधार पर (On the Basis of Mobility)**—यहाँ गतिशीलता से हमारा आशय प्रस्थापना की सम्भावना या निश्चयात्मकता से है जो कि उद्देश्य के बारे में विधेय में पाई जाती है। इस प्रकार गतिशीलता सम्भावना की मात्रा है। इस प्रकार की प्रस्थापनाओं को तीन प्रकारों से विभक्त किया जाता है।

(A) **अनिवार्य प्रस्थापना** (Necessary Proposition)—इसे आवश्यक या निश्चित प्रस्थापना भी कहा जाता है। ये प्रस्थापनाएँ सभी देश, काल में सत्य होती हैं। जैसे 'समस्त मनुष्य मरणशील हैं।' 'त्रिभुज के तीन कोण दो समकोण के बराबर होते हैं।'

(B) **प्रतिज्ञात प्रस्थापना** (Assertory Proposition)—ये वे प्रस्थापनाएँ हैं जो न तो निश्चय प्रकट करती हैं न सन्देह, किन्तु हमारे अनुभव की सीमा में वे सत्य होती हैं। जैसे 'सब कौवे काले होते हैं।' 'कोयल का स्वर मीठा होता है।' चूँकि प्रतिज्ञात प्रस्थापना अनिवार्य नहीं होती इसलिए कुछ परिस्थितियों में उसके विरुद्ध प्रस्थापना के सत्य होने की सम्भावना होती है।

(C) **संदिग्ध प्रस्थापना** (Problematic Proposition)—संदिग्ध या समस्याग्रस्त प्रस्थापना वह होती है जिसमें उद्देश्य एवं विधेय में सम्भावना मात्र का सम्बन्ध हो। जैसे 'कदाचित् वह कल आएगा।' 'सम्भव है आज वर्षा हो।' आदि।

7 **तात्पर्य के आधार पर** (On the Basis of Idiom)—तात्पर्य के आधार पर भी प्रस्थापनाओं को दो भागों में रखा गया है—

(A) **शाब्दिक प्रस्थापना** (Verbal Proposition)—शाब्दिक प्रस्थापना विश्लेषणात्मक होती है, इसमें विधेय उद्देश्य के स्वभाव के किसी अंशमात्र का कथन करता है, जैसे 'मनुष्य मरणशील है।' आदि।

(B) **यथार्थ प्रस्थापना** (Real Proposition)—यह सश्लेषणात्मक प्रस्थापना (Synthetic Proposition) है। इसमें विधेय उद्देश्य के बारे में ऐसे कथन का प्रतिपादन करता है जो कि उद्देश्य के विश्लेषण से नहीं निकाला जा सकता है। जैसे 'गाय दूध देती है।' कुत्ता पालतू जानवर है।' गाय के विश्लेषण से यहाँ दूध देने का गुण नहीं निकलता और न पालतू होना कुत्ते के लिए आवश्यक है।

न्याय-वाक्य का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definition of Syllogism)

न्याय-वाक्य भी मूल में निगमन (Deduction) का ही एक प्रकार है। निगमन उस तर्क को कहा जाता है जिसमें आधार-वाक्यों (Premises) से आवश्यक निष्कर्ष निकाले जाते हैं। *यदि आधार-वाक्य सत्य हो तो निष्कर्ष भी सत्य होगा।* एक उदाहरण से इसे भलीभाँति समझा जा सकता है—

1. 'क' 'ख' से बड़ा है।
2 'ख' 'ग' से बड़ा है।

निष्कर्ष (Conclusion)—'क' 'ग' से बड़ा है।

न्याय-वाक्य (Syllogism) को परिभाषित करते हुए लिखा गया है कि "न्याय-वाक्य एक प्रकार के तार्किक कारणात्मकता का वह स्वरूप है जिसमें

सामान्यतः तीन प्रस्थापनाएँ होती हैं।" इस प्रकार जब कभी तीन प्रस्थापनाओं के मध्य एक प्रकार का तार्किक कारणात्मक (Logical Reason ng) सम्बन्ध स्थापित किया जाता है तो एक न्याय-वाक्य (Syllogism) का निर्माण होता है।

इस प्रकार न्याय-वाक्य (Syllogism) उसे कहा जाता है जिसमें दिए हुए दो वाक्यों में 'हेतु' नामक किसी मध्यम पद के द्वारा ऐसा निष्कर्ष निकाला जाता है, जो आधार वाक्यों (Premises) की अपेक्षा अधिक व्यापक नहीं होता। इसका कारण यह है कि न्याय-वाक्य निगमनात्मक अनुमान (Deductive Inference) का ही एक रूप है।

कोहेन एवं नेगल (Coben & Negal) ने 'एन इन्ट्रोडक्शन टू लॉजिक' में लिखा है कि "वास्तव में हम न्याय-वाक्यात्मक अनुमान (Syllogistic Inference) को पदों में प्रत्येक से और उनके तीसरे से सम्बन्ध की तुलना कह सकते हैं, ताकि दो पदों का परस्पर सम्बन्ध पता लगाया जा सके।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि निगमन की प्रक्रिया में एक सामान्य प्रस्थापना (Proposition) से विशेष निष्कर्ष निकाला जाता है, और इस प्रकार अनुमान आधार वाक्य (Premise) से अधिक व्यापक नहीं होता है। न्याय वाक्य का एक प्रचलित उदाहरण देखिए—

समस्त मनुष्य मरणशील हैं।
राम एक मनुष्य है।
अतएव राम मरणशील है।

एक और उदाहरण निम्न हो सकता है—

समस्त मनुष्य मरणशील हैं।
सब भारतवासी मनुष्य हैं।
अतएव सब भारतवासी मरणशील हैं।

उपरोक्त उदाहरण में अन्तिम प्रस्थापना (Proposition) अर्थात् निष्कर्ष प्रथम आधार-वाक्यों से कम व्यापक है। उपरोक्त न्याय-वाक्यों में बीच का वाक्य 'हेतु' है, क्योंकि उसी के आधार पर दी हुई प्रस्थापना से निष्कर्ष निकाला गया है।

इस प्रकार सम्पूर्ण न्याय-वाक्य में तीन पद हैं, वे हैं—

1 मनुष्य,
2 भारतीय,
3 मरणशील।

प्रत्येक न्याय-वाक्य में इस प्रकार के तीन पद अवश्य होते हैं।

इसी को चित्र रूप में हम इस प्रकार रख सकते हैं—

1	क	+	ख	(प्रस्थापना)
2	ग	+	क	(प्रस्थापना)
3	ग	+	ख	यही निष्कर्ष है।

उपरोक्त उदाहरण मे 'मनुष्य' हेतु पद है। मनुष्य होने के कारण ही समस्त मनुष्यो की मरणशीलता का अनुमान लगाया गया है। लघु एव बडा पद 'अन्त्य पद' भी कहे जाते हैं, *क्योकि ये प्रस्थापना के अन्तिम सिरो पर होते हैं।* 'मध्य' मे होने के कारण हेतु पद 'मध्य पद' कहलाता है। मध्यम पद अन्त्य या चरम पदो (Extremes) को अलग करता है। यह दोनो आधार-वाक्यो मे आता है, और दोनो मे समान रूप से होता है। मध्यम पद, प्रथम पद और अन्तिम पद मे सम्बन्ध स्थापित करता है। इस प्रकार उसका कार्य मध्यम पद जैसा है। दीर्घ वाक्य मे अथवा साध्य वाक्य मे दीर्घ पद की मध्यम पद से तुलना की जाती है और लघु वाक्य मे लघु पद की मध्यम पद से तुलना की जाती है। इसमे आश्रय पद और पक्ष पद मे सम्बन्ध स्थापित होता है। 'मध्यम पद' के कारण ही आधार-वाक्यो से *निष्कर्ष निकाला जाता है। अस्तु निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए 'मध्यम पद' अत्यन्त* आवश्यक है। पीछे दिए गए दूसरे उदाहरण मे 'मरणशील' दीर्घ पद है, क्योकि यह निष्कर्ष का विधेय है। 'भारतीय' लघु पद है क्योकि *यह निष्कर्ष का उद्देश्य* है। 'मनुष्य' मध्यम पद है, क्योकि वह दोनो आधार-वाक्यो मे उपस्थित है और उसी के कारण निष्कर्ष निकाला गया है। पहला वाक्य 'दीर्घ वाक्य' है क्योकि उसमे 'दीर्घ पद' का प्रयोग किया गया है। दूसरा वाक्य लघु-वाक्य है क्योकि उसमे 'लघु पद' है। न्याय-वाक्य मे तार्किक रूप से दीर्घ वाक्य सबसे पहले आता है। उसके बाद मध्यम वाक्य (जिसमे मध्य पद आता है) और सबसे अन्त मे निष्कर्ष वाक्य आता है। इसे हम इस *चित्र द्वारा भी समझ सकते हैं* —

न्याय-वाक्य (Syllogism)	समस्त मनुष्य मरणशील हैं। (दीर्घ वाक्य)
	(मध्यम पद) (दीर्घ पद)
	समस्त भारतवासी मनुष्य हैं। (लघु वाक्य)
	(लघु पद) (मध्यम पद)
	समस्त भारतवासी मरणशील हैं। (निष्कर्ष वाक्य)

इस प्रकार *हम देखते हैं कि न्याय-वाक्य (Syllogism) मे तीन अंग होते* हैं, जो क्रमश निम्न हैं—

1. दीर्घ वाक्य (Major Sentence)—यह वह वाक्य है जिसमे 'दीर्घ पद' का प्रयोग किया जाता है, और दीर्घ पद की मध्यम पद से तुलना की जाती है। यह न्याय-वाक्य मे सबसे पहले आता है।

2 लघु वाक्य (Minor Sentence)—इसमे 'लघु पद' का प्रयोग किया जाता है। यहाँ भी लघु पद की मध्यम पद से तुलना की जाती है। यह दीर्घ वाक्य के बाद मे आता है।

3 निष्कर्ष वाक्य (Conclusion Sentence) आधार-वाक्यो के अनुमान के आधार पर निकले हुए वाक्य को निष्कर्ष कहा जाता है।

न्याय-वाक्य की विशेषताएँ (Characteristics of Syllogism)

सामान्यत न्याय-वाक्य मे निम्नांकित विशेषताएँ पाई जाती हैं। यही विशेषताएँ उसे अनुमान के अन्य प्रकारो से भिन्न हैं—

1 दो आधार-वाक्यों से निष्कर्ष—जैसा कि हम स्पष्ट कर आए हैं, न्याय-वाक्य मे दो आधार-वाक्य होते हैं, और इनमे से किसी एक से नहीं बल्कि दोनो से मिलाकर निष्कर्ष निकाला जाता है। यह निष्कर्ष दोनो वाक्यो का योग नही होता बल्कि उनके मेल के आवश्यक परिणाम मे निकलता है। न्याय-वाक्य के पीछे दिए गए उदाहरण मे "समस्त भारतीय मनुष्य है।" यह निष्कर्ष पहले और दूसरे दोनो ही प्रस्थापनाओ का सम्मिलित परिणाम है।

2 न्याय वाक्य मे निगमन आधार वाक्य से अधिक व्यापक नहीं होता—*न्याय वाक्य की दूसरी विशेषता यह है कि यहाँ अनुमान से जो निष्कर्ष निकाला* जाता है, वह आधार-वाक्यो से अधिक व्यापक नहीं हो सकता, क्योकि निगमनात्मक विधि मे निष्कर्ष आधार-वाक्य से कम सामान्य होता है। पीछे दिए गए उदाहरण मे 'समस्त भारतीय मरणशाल हैं' यह निष्कर्ष 'समस्त मनुष्य मरणशील हैं' से कम सामान्य है, क्योकि मनुष्यो की तुलना मे भारतीय थोडे से मनुष्यो को कहा जाता है।

3 न्याय-वाक्य मे निष्कर्ष का सत्य आधार वाक्यों के सत्य पर निर्भर करता है—न्याय-वाक्य मे यदि आधार-वाक्य सत्य है तो निगमन या निष्कर्ष भी सत्य होगा। इस प्रकार निष्कर्ष या निगमन की सत्यता आधार-वाक्यो की सत्यता पर निर्भर करती है, किन्तु दूसरी ओर आधार-वाक्यो के असत्य होने पर निष्कर्ष का असत्य होना आवश्यक नही है। न्याय-वाक्य की इस विशेषता के कारण वह आकार *विषयक (Formal)* सत्यता रखता है, द्रव्य विषयक *(Material) या मौलिक* सत्यता नही रखता।

न्याय-वाक्य के प्रकार (Types of Syllogism)

अनेक विद्वानो ने *न्याय-वाक्यो के भी अनेक प्रकारो का उल्लेख किया है,* लेकिन न्याय वाक्यो का सबसे प्रचलित वर्गीकरण शुद्धता (Purity) के आधार पर किया गया है। शुद्धता की दृष्टि से न्याय-वाक्यो को दो वर्गों व उपवर्गों मे विभाजित गया किया है, जिसे हम इस चित्र द्वारा देख सकते हैं—
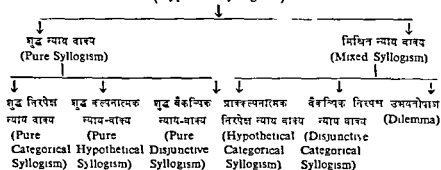
1. शुद्ध न्याय-वाक्य (Pure Syllogism)—शुद्ध न्याय-वाक्य में समस्त वाक्य एक ही प्रकार के होते हैं। सम्बन्ध के दृष्टिकोण से शुद्ध न्याय-वाक्य को तीन भागों में बाँटा गया है—

A. शुद्ध निरपेक्ष न्याय वाक्य (Pure Categorical Syllogism)—जिस न्याय-वाक्य में तीनों ही वाक्य निरपेक्ष होते हैं, वह शुद्ध निरपेक्ष न्याय-वाक्य कहलाता है।

B. शुद्ध प्राक्कल्पनात्मक न्याय-वाक्य (Pure Hypothetical Syllogism)—यदि किसी न्याय-वाक्य में समस्त वाक्य प्राक्कल्पनात्मक है तो वह शुद्ध प्राक्कल्पनात्मक न्याय-वाक्य कहलायेगा।

C. शुद्ध वैकल्पिक न्याय-वाक्य (Pure Distunctive Syllogism)—यदि किसी न्याय-वाक्य में सभी वाक्य शुद्ध वैकल्पिक वाक्य हैं तो वह शुद्ध वैकल्पिक न्याय-वाक्य है।

2 मिश्रित न्याय-वाक्य (Mixed Syllogism)—मिश्रित न्याय-वाक्य में समस्त वाक्य एक ही प्रकार के नहीं होते हैं बल्कि वे भिन्न-भिन्न सम्बन्ध वाले होते हैं। मिश्रित न्याय-वाक्य को भी तीन उपवर्गों में विभाजित किया गया है—

A प्राक्कल्पनात्मक निरपेक्ष न्याय-वाक्य (Hypothetical Categorical Syllogism)—यह वह न्याय-वाक्य होता है जिसमे दीर्घ वाक्य प्राक्कल्पनात्मक होता है, और लघु वाक्य तथा निष्कर्ष निरपेक्ष वाक्य होते है।

B वैकल्पिक निरपेक्ष न्याय-वाक्य (Disjunctive Categorical Syllogism)—जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इसमे दीर्घ वाक्य वैकल्पिक होता है, और लघु वाक्य एवं निष्कर्ष निरपेक्ष वाक्य होता है।

C उभयतोपाश (Dilemma)—इसमे दीर्घ वाक्य मिश्रित प्राक्कल्पनात्मक होता है, लघु वाक्य वैकल्पिक होता है तथा निष्कर्ष वाक्य वैकल्पिक अथवा निरपेक्ष होता है।

इस प्रकार न्याय-वाक्य को मूलतः दीर्घ वाक्य, लघु वाक्य एवं निष्कर्ष के आधार पर विभिन्न वर्गों मे रखा गया है।

सामाजिक विज्ञानों मे न्याय वाक्य की उपयोगिता एवं प्रकार्य
(Functions and Utility of Syllogism in Social Sciences)

प्रत्येक वैज्ञानिक अनुसन्धान मे ज्ञान से अज्ञान की जानकारी करने की आवश्यकता होती है। अनुमान पूरी तरह नवीन ज्ञान नही होता, वह हमारे वर्तमान ज्ञान के आधार पर भविष्य का ज्ञान है। इस प्रकार पूर्ण नवीन न होने पर भी वह पूरी तरह उपयोगी है। उसकी यह उपयोगिता अव्यक्त को व्यक्त करने मे है। वह हमें ऐसे निष्कर्षों (Conclusions) का बोध कराता है, जिन्हें हम अनुमान लगाने से पहले नही जानते थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि न केवल सामाजिक विज्ञानों के अन्वेषणों मे बल्कि प्रत्येक प्रकार के वैज्ञानिक अनुसन्धानों मे न्याय-वाक्यों की बड़ी उपयोगिता

है। यह ठीक है कि न्याय-वाक्यों में निष्कर्ष आधार-वाक्यों से निकाला जाता है, और वह पूर्णतया नवीन नहीं होता परन्तु फिर भी वह हमारे सामने कुछ ऐसी बातों को स्पष्ट करता है जिनको उस रूप में हम पहले नहीं जानते थे। उदाहरण के लिए हम एक न्याय-वाक्य ले सकते हैं।

ईमानदारी वाँछनीय है।
ईमानदारी सद्गुण है।
सद्गुण वाँछनीय है।

उपरोक्त उदाहरण में हम देखते हैं कि ईमानदारी, उदारता इत्यादि के विषय में हम यह ज्ञात था कि यह वाँछनीय है, और यह भी जानकारी थी कि यह सद्गुण है। इस न्याय-वाक्य में इन दो आधार-वाक्यों से यह निष्कर्ष निकाला गया कि सद्गुण वाँछनीय है।

इस प्रकार न्याय-वाक्यों की उपयोगिता के उपरोक्त विवेचन से उसके प्रकार्य भी स्पष्ट होते हैं। संक्षेप में न्याय-वाक्य के निम्नांकित कार्य हैं—

1 ज्ञात से अज्ञात की जानकारी प्रदान करना—आगमनात्मक और निगमनात्मक दोनों प्रकार के न्याय-वाक्यों में तर्क के द्वारा व्यक्ति ज्ञात आधार-वाक्यों से अज्ञात निष्कर्षों पर पहुँचता है। जैसे एक उदाहरण देखिए

कोई मनुष्य अमर नहीं है।
अरस्तु मनुष्य है।
अरस्तु अमर नहीं है।

उपरोक्त न्याय-वाक्यों में प्रथम दो आधार-वाक्यों से हमें यह ज्ञात नहीं होता कि 'अरस्तु अमर नहीं है।' यद्यपि अरस्तु के मनुष्य होने में उसकी नश्वरता छुपी हुई है। प्रस्तुत न्याय-वाक्यों में निष्कर्ष मनुष्य और नश्वरता के ज्ञात सम्बन्ध के आधार पर सुकरात की नश्वरता के अज्ञात तथ्य को स्पष्ट करता है। इसी प्रकार जब हम जीवन में नाना प्रकार के अनुभव प्राप्त करते हैं तो उन सब अनुभवों में से कोई सामान्य सिद्धान्त निकालना न्याय-वाक्य के बिना सम्भव नहीं होता। उदाहरण के लिए मनुष्य नश्वर प्राणी है, इस तथ्य पर पहुँचने के लिए भिन्न भिन्न मनुष्यों के निरीक्षण के आधार पर निम्नलिखित न्याय-वाक्य उपस्थित किया जा सकता है—

राम, मोहन, मोहन नश्वर हैं।
राम, मोहन, सोहन मनुष्य हैं।
सब मनुष्य नश्वर हैं।

2 सामान्य सिद्धान्तों का निर्माण करना—इस प्रकार न्याय-वाक्य की सहायता से जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सामान्यीकरण की प्रक्रिया के द्वारा सामान्य सिद्धान्तों पर पहुँचा जाता है। वास्तव में सामान्यीकरण वैज्ञानिक पद्धति है, न्याय-वाक्य उसे तर्कयुक्त सिद्ध करता है। इस दृष्टि से न्याय-वाक्य समस्त वैज्ञानिक सिद्धान्तों की तार्किकता सिद्ध करता है।

3. अव्यक्त को व्यक्त करना—हमें ध्यान रखना चाहिए कि न्याय-वाक्य कोई

सर्वथा नवीन ज्ञान नहीं प्रदान करता, अपितु उसका प्रमुख कार्य तो केवल आधार वाक्यों में छुपे हुए सामान्य अथवा विशिष्ट निष्कर्ष को व्यक्त कर देना है।

4. वैज्ञानिक युक्ति प्रदान करना—अन्त मे न्याय-वाक्य का एक और प्रमुख कार्य किसी वैज्ञानिक तथ्य अथवा सिद्धान्त के पक्ष मे वैज्ञानिक युक्ति प्रदान करना है। उदाहरण के लिए जैसे यदि कोई यह पूछता है कि "आप कैसे कह सकते हैं कि अरस्तु अवश्य मरेगा ?" तो हम अपने कथन की पुष्टि मे पीछे दिए गए आधार-वाक्य या प्रस्थापनाएँ प्रस्तुत करेंगे। अत न्याय-वाक्य हमे 'युक्ति' प्रदान करता है।

प्रस्थापना एवं न्याय-वाक्य मे आगमन एव निगमन

उपरोक्त प्रस्थापना एव न्याय-वाक्य की अवधारणाओ की पारिभाषिक विवेचना के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि प्रस्थापना एव न्याय-वाक्य दोनो का निर्माण सामाजिक विज्ञानो मे ही नही अपितु समस्त विज्ञानो मे विज्ञान की दो अत्यन्त लोकप्रिय विधियो से होता है वे विधियाँ हैं—

1 आगमन (Induction),

2 निगमन (Deduction)।

आगमन की विधि से प्रस्थापना (Proposition) या आधार-वाक्यो (Premises) की रचना होती है जबकि निगमन (Deduction) की विधि से न्याय-वाक्य (Syllogism) की रचना होती है, अत यहाँ आवश्यक है कि हम आगमन व निगमन को भली-भाँति समझ लें।

आगमन का अर्थ है अनेक तथ्यो के अवलोकन के बाद दृष्टान्तो के आधार पर सामान्यीकरण (Generalization)। बहुत सक्षेप मे आगमन का आशय है कुछ विशिष्ट इकाइयो की विशेषताओ को समूह पर लागू किया जाना। इस प्रकार आगमन मे विशिष्ट घटनाओ के आधार पर ही सामान्य नियमो के निर्माण की प्रक्रिया बलवती होती है। यही सामान्य नियम आधार-वाक्य या प्रस्थापनाएँ बन जाते हैं। दूसरे शब्दो मे हम व्यक्तिगत इकाइयो के अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर ही सामान्य नियमो की रचना करते हैं।

इस प्रकार हम सबसे पहले सम्बन्धित घटनाओ अथवा इकाइयों का एक-एक करके पृथक् रूप मे अध्ययन एव अवलोकन करते हैं और उन विशेषताओं का पता लगाते हैं जो कि समस्त घटनाओ अथवा इकाइयो मे समान रूप से पाई जाती हैं। फिर उन सामान्य विशेषताओ के आधार पर ही हम नियमो एव सामान्य धारणाओ की रचना करते हैं। इस प्रकार यहाँ हमारे तर्क की विधि विशिष्ट (Particular) से सामान्य (General) की ओर होती है। इस प्रणाली मे निरीक्षण, अवलोकन एव प्रयोग का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। इसके लिए हम घटनाओ से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण तथ्यो एवं आँकडो का भी एकत्रीकरण करते हैं।

आगमन विधि का सर्वप्रचलित उदाहरण इस प्रकार है—

रमेश मरणशील है।

मोहन मरणशील है।

रमेश एव मोहन दोनो मनुष्य हैं।

अत मनुष्य मरणशील है।

एक और उदाहरण से इसे हम स्पष्ट कर सकते हैं। जैसे यदि 'मलेरिया' के किसी रोगी को कुनेन नामक दवा दी जाए और वह ठीक हो जाए। इसके दूसरे रोगी को भी वही दवा दी जाए और वह भी ठीक हो जाए तो हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि मलेरिया की दवा कुनेन है। हमारा यह निष्कर्ष आगमन द्वारा निकाला हुआ माना जाएगा।

लेकिन यहाँ यह ध्यान रखने योग्य बात है कि आगमन मे यदि आधार-वाक्य (Premises) सत्य हो तो भी निष्कर्ष का सत्य होना आवश्यक नही है, केवल उसकी सत्यता सम्भाव्य होती है। कुछ इकाइयो या दृष्टान्तो के आधार पर निकाले गए निष्कर्षों के आधार पर हम निश्चित रूप से यह नही कह सकते कि वह सदा सत्य होगा। सम्भव है आगमन द्वारा ढूँढी हुई कुनेन 'मलेरिया' रोग के किसी रोगी को ठीक न कर सके। इस प्रकार आगमन द्वारा निकाले गए निष्कर्षों का सदा सत्य होना निश्चित नही होना। फिर भी आगमन हमे सत्य तक पहुँचाने मे सहायता प्रदान करता है।

सामाजिक और प्राकृतिक दोनो ही प्रकार के विज्ञानो मे आगमन का प्रयोग होता रहा है। इन विज्ञानो मे मुख्यत आगमन की ही सहायता से नियम एव सिद्धान्तो की रचना होती आई है।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि आगमन एव निगमन दोनो ही विज्ञान की महत्त्वपूर्ण पद्धतियाँ हैं जो नियम या निष्कर्ष निकालने मे मदद देती है।

निगमन एव आगमन का सम्बन्ध
(Relationship Between Induction and Deduction)

यहाँ हम निगमन व आगमन का सम्बन्ध व भेद भी स्पष्ट कर दें। निगमन व आगमन मे मुख्य भेद यह है कि निगमन (Deduction) (न्याय-वाक्य इसी निगमन का एक प्रकार है) के निष्कर्ष तो आधार-वाक्यों (Premises) के सत्य होने पर सत्य होते हैं, किन्तु आगमन (Induction) के निष्कर्षों का सत्य होना आवश्यक नही है। इसका कारण यह है कि आगमन कुछ इकाइयो या दृष्टान्तो पर आधारित होता है, अत वस्तुत जब तक कि उस वर्ग या समूह के समस्त दृष्टान्तो को न देख लिया जाए यह कहना कठिन होता है कि यह सार्वभौमिक सत्य (Universal Truth) है।

इसके विपरीत निगमन मे हम आधार-वाक्यो से आवश्यक निष्कर्ष निकालते हैं और ये निष्कर्ष समस्त दृष्टान्तो पर लागू होते हैं, अत ये सत्य होते हैं किन्तु यदि आधार-वाक्य गलत हैं तो निष्कर्ष भी गलत होगे।

लेकिन वस्तुत. आगमन व निगमन के कुछ भेदो (Differences) के आधार पर यह कहना भूल होगी कि दोनो एक-दूसरे के विरोधी हैं। यह भूल सामान्यतया होती है। इसका मुख्य कारण निगमन की गलत परिभाषा है। आगमन की परिभाषा तो आसान और सर्वमान्य है—विशिष्ट से सामान्य निष्कर्ष निकालना, लेकिन कभी-

कभी ठीक इसकी विपरीत परिभाषा निगमन की कर दी जाती है अर्थात् सामान्य से विशिष्ट निष्कर्ष निकालना। यह निगमन की पूरी तरह से सत्य परिभाषा नहीं है।

निगमन द्वारा सामान्य से विशिष्ट निष्कर्ष तभी निकाले जा सकते हैं। यदि कम से कम एक आधार-वाक्य किसी दृष्टान्त विशेष से सम्बन्धित हो। जैसे ऊपर दिए गए न्याय-वाक्य (Syllogism) के उदाहरण में 'राम एक मनुष्य है' राम के दृष्टान्त विशेष से सम्बन्धित है और इसीलिए हम राम के विषय में निष्कर्ष निकाल सकते हैं, किन्तु यदि किसी दृष्टान्त विशेष के बारे में हम ज्ञात न हो तो उससे सम्बन्धित निष्कर्ष हम नहीं निकाल सकेंगे।

निगमन और आगमन के सम्बन्ध को एक और दृष्टिकोण से भी समझा जा सकता है। जैसे यदि आगमन कुछ के स्थान पर सब दृष्टान्तों पर आधारित हो तो उसे पूर्ण आगमन (Perfect Induction) कहते हैं और यह निगमन का एक उदाहरण मात्र है। इसका कारण यह है कि यदि हमने उस प्रकार के समस्त दृष्टान्तों को देख लिया है तो निष्कर्ष अवश्य ही सत्य होगा।

इस प्रकार ये दोनों विधियाँ एक-दूसरे की पूरक हैं।

प्रस्थापना एवं न्याय-वाक्य में सम्बन्ध
(Relationship Between Proposition and Syllogism)

प्रस्थापना न्याय-वाक्य एवं इनके निर्माण हेतु आगमन व निगमन विधियों को समझ लेने के बाद अब यह उपयुक्त होगा कि हम इन दोनों अवधारणाओं में सम्बन्ध एवं भेद की विवेचना करें। यह तो स्पष्ट है कि प्रस्थापना (Proposition) एक प्रकार का प्रस्तावित कथन है जिसमें किसी घटना से सम्बन्धित चरों (Variables) व परस्पर सम्बन्धों का निरूपण किया गया है ताकि उस पर विचार करते हुए अपेक्षित निष्कर्षों को प्राप्त किया जा सके। और भी स्पष्ट रूप में ये यथार्थ की प्रकृति के बारे में एक प्रकार के ऐसे कथन (Statements) होते हैं जिनकी सत्यता व असत्यता को मापा जा सकता है यदि वे आनुभाविक या अवलोकनीय होते हैं। दार्शनिक और काल्पनिक कथनों से निर्मित प्रस्थापनाओं की सत्यता व असत्यता को मापा नहीं जा सकता क्योंकि वे आनुभविक (Empirical) एवं अवलोकनीय (Observational) नहीं होती, जबकि प्राकृतिक एवं सामाजिक दोनों ही विज्ञानों में प्रयुक्त प्रस्थापनाओं की परीक्षा सामान्यतः की जा सकती है क्योंकि उनका सम्बन्ध आनुभविक घटनाओं से होता है। इसके विपरीत न्याय-वाक्य (Syllogism) तीन प्रस्थापनाओं की तार्किक कारणात्मकता पर स्थापित किया गया एक स्वरूप होता है। मूल में न्याय-वाक्य निगमन (Deduction) का ही एक प्रकार है।

इसी आधार पर इनमें एक भेद यह किया जा सकता है कि आधार-वाक्यों (Premises) के आधार पर आगमन की प्रक्रिया से प्रस्थापनाओं का निर्माण किया जाता है, जबकि प्रस्थापनाओं के आधार पर न्याय वाक्यों का निर्माण किया जाता है, लेकिन यही भेद इनके सम्बन्ध को भी स्पष्ट करता है। न्याय वाक्य प्रस्थापनाओं के अभाव में (अधिक स्पष्ट रूप से सार्वभौमिक प्रस्थापनाओं) नहीं बनाए जा सकते।

3 सर्वेक्षण अनुसंधान : प्रश्नावली, अनुसूची, साक्षात्कार, अवलोकन, निदर्शन

(Survey Research ; Questionnaire, Schedule, Interview, Observation, Sampling)

सर्वेक्षण अनुसंधान
(Survey Research)

प्रत्येक विज्ञान को अपने अध्ययन और अनुसन्धान के लिए कुछ सुनिश्चित अनुसन्धान प्रविधियों का प्रयोग करना पड़ता है। सामाजिक विज्ञानों में भी आँकड़ों के संग्रह के लिए अनेक अनुसन्धान प्रविधियों का उपयोग किया जाता है। इन आँकड़ों के संग्रह का मुख्य उद्देश्य यही है कि इनके विश्लेषण एवं निर्वचन से कुछ निश्चित निष्कर्षों को प्राप्त किया जा सके।

सर्वेक्षण अनुसन्धान (Survey Research) भी आँकड़ों के संग्रहण की एक अत्यन्त लोकप्रिय विधि है। प्रायः सामान्य भाषा में 'सर्वे' शब्द का प्रयोग इन्जीनीयरों, ओवरसीयरों एवं योजना-आयोजकों द्वारा किया जाता है। जब वे किसी सड़क, भवन, कुएं या नदी के पुल आदि का कार्य करना चाहते हैं तो उन्हें वहाँ की दशाओं, परिस्थितियों तथा प्राप्त हो सकने वाली सुविधाओं का ऊपरी भली प्रकार निरीक्षण कर लेना होता है।

अंग्रेजी भाषा का 'Survey' ग्रीक भाषा के 'Sor' एवं 'Veeir' से बना है, जिसका आशय क्रमश 'Over' (ऊपर) एव 'See' (देखना) है। इस प्रकार सर्वेक्षण का शाब्दिक अर्थ है 'ऊपरी तौर पर देखना' (To look over) लेकिन सामान्यतः इस शब्द का प्रयोग किसी घटना के बारे में अनुसन्धान विधि के रूप में लिया जाता है या सुनिश्चित विधियों द्वारा सूचनाओं के एकत्रीकरण से लगाया जाता है।

सर्वेक्षण का प्रयोग सूचना एकत्रीकरण के एक ढग के रूप मे बहुत प्राचीन समय से होता आया है। हजरत ईसा से लगभग 300 वर्ष पहले मिस्र (Egypt) के सम्राट हिरोडोटस ने अपनी जनता की गणना व उनकी सम्पत्ति के बारे मे सूचनाएँ एकत्रित करने के लिए सर्वेक्षण किया। कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे भी हम भारत की सामाजिक-आर्थिक दशाओं के बारे मे देख सकते हैं।

लेकिन समुचित रूप से सर्वेक्षण का प्रारम्भ करने वाले लोगो मे फ्रेडरिक लिप्ले (Frederic Le-Play) एव चार्ल्स बूथ (Charles Booth) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रसिद्ध फ्रांसीसी अर्थशास्त्री एव समाज-सुधारक फ्रेडरिक लिप्ले ने पहली बार सामाजिक सर्वेक्षण मे अन्तर अनुशासनीय पद्धति (Inter Disciplinary Approach) का प्रयोग किया। आपने मजदूरो के परिवारो का लगभग बीस वर्षों तक क्षेत्रीय भ्रमण के द्वारा प्रत्यक्ष अवलोकन किया।

चार्ल्स बूथ ने भी लन्दन के प्रसिद्ध सांख्यिकीयशास्त्री के रूप मे लन्दन के सामुदायिक जीवन का विशद् अध्ययन लगभग इसी समय सर्वेक्षण पद्धति मे आयोजित किया।

बी एस. राउन्ट्री, आर्थर बाउले, पॉल केलॉग आदि के द्वारा किए गए अध्ययन कार्य भी सर्वेक्षण के क्षेत्र मे काफी प्रतिष्ठित हैं। किन्तु सर्वेक्षण अनुसधान मे निदर्शन प्रविधियो (Sampling Techniques) का प्रयोग 1930 के आस-पास प्रारम्भ हुआ, जब जॉर्ज गेलप एव एल्मो रोपर ने अपने जनमत सम्बन्धी अध्ययन साक्षात्कार (Interview) से सम्पन्न किए। आधुनिक समय मे सर्वेक्षण अनुसन्धान की विशेषता के एक रूप मे विश्लेषण का एक लोकप्रिय ढग बहुचरीय विश्लेषण (Multiple Variable Analysis) का एक विशिष्ट रूप है, जो अनेक विशेषताओं के मध्य पाए जाने वाले जटिल सम्बन्धों के अध्ययन एव विवेचन मे सहायता पहुँचाता है।[1]

इमाइल दुर्खीम, लेजार्सफील्ड, स्टूफर, हाइमन, केन्डाल आदि ने भी सामाजिक सर्वेक्षण के विकास मे अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

सर्वेक्षण अनुसन्धान का अर्थ एव परिभाषाएँ
(Meaning and Definitions of Survey Research)

सर्वेक्षण का प्रयोग इतने व्यापक स्तर पर किया गया है कि सर्वेक्षण की कोई भी सर्वमान्य परिभाषा प्रस्तुत करना बहुत कठिन हो गया है।

एन्डरसन एव लिन्डेमन ने भी लिखा है कि "निरन्तर तथ्य प्राप्त करने की आवश्यक आवश्यकता आधुनिक समाज की आवश्यकताओं के साथ बढती है। आज की आवश्यकताएँ सही ढगो एव सूचना की माँग करती हैं। प्रत्येक समस्या का अध्ययन इसके अपने ही शब्दो मे किया जाता है तथा यह विशेषज्ञो का कार्य है।"[2]

1 *P Lazarsfield & Rosenberg* The Language of Social Research, p 11.
2 *Anderson & Lindeman* · Quoted from P V Young's 'Scientific Social Surveys and Research', p. 130.

फिर भी कुछ समाज-वैज्ञानिकों ने सर्वेक्षण अनुसन्धान को परिभाषित करने का प्रयास किया है।

एफ एन कलिंगर ने अपनी पुस्तक 'फाउन्डेशन्स ऑफ बिहेवियरल रिसर्च' में लिखा है कि "सर्वेक्षण अनुसन्धान समाज वैज्ञानिक खोज की वह शाखा है, जो समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक चरों (Variables) की सापेक्ष घटना (Incidence), आवटन (Distribution) एवं पारस्परिक सम्बन्धों का पता लगाने के लिए समग्र से चुने हुए निदर्शनों (Samples) के चुनाव एवं अध्ययन द्वारा बड़ी एवं छोटी जनसंख्याओं (अथवा समग्रों) का अध्ययन करती है।"[1]

सी वाई ग्लांक ने 'सर्वे रिसर्च इन द सोशल साइंसेज' में लिखा है कि "सर्वेक्षण अनुसन्धान को अन्वेषण (Enquiry) के एक ऐसे ढंग के रूप में समझा जाना चाहिए जो आँकड़े संग्रह की एक विशिष्ट प्रणाली को विश्लेषण के एक विशिष्ट स्वरूप के साथ सम्बन्धित करता है।"[2]

ई डब्ल्यू बर्गेस ने लिखा है कि "किसी समुदाय का सर्वेक्षण अनुसन्धान सामाजिक विकास का रचनात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत करने हेतु उसकी दशाओं एवं *आवश्यकताओं का वैज्ञानिक अध्ययन है।*"[3]

पी वी यंग, सी ए मोजर, जॉन गालटुंग, मोर्स, केलांग, अब्राहम्स, वेल्स आदि अनेक समाज वैज्ञानिकों ने सर्वेक्षण अनुसन्धान को परिभाषित किया है। सामाजिक सर्वेक्षण की विशेषताओं को लेकर उपरोक्त विवेचनाओं के विश्लेषण से यह कहा जा सकता है कि सर्वेक्षण सामाजिक अनुसन्धान की एक ऐसी विशिष्ट शाखा है, जो काफी बड़ी संख्या में व्यक्तियों के विश्वासों, मनोवृत्तियों विचारधाराओं, सम्प्रेरणाओं एवं व्यवहारों, इन्हें प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों तथा इनके पारस्परिक सम्बन्धों का बहुकारकीय सांख्यिकीय विश्लेषण एवं विवेचन करने के लिए आवश्यक तथ्यों को एकत्र करती है।

सर्वेक्षण अनुसन्धान की विशेषताएँ

(*Characteristics of Survey Research*)

सर्वेक्षण अनुसन्धान के पारिभाषिक विश्लेषण के बाद सर्वेक्षण अनुसन्धान की अवधारणा के अधिक स्पष्टीकरण के लिए यह आवश्यक है कि हम इसकी विशेषताओं का उल्लेख करें। सर्वेक्षण अनुसन्धान की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं—

1. सर्वेक्षण अनुसन्धान की पद्धति परिमाणात्मक (Quantitative) होती है। *यद्यपि सर्वेक्षण अनुसन्धान में विभिन्न प्रकृति के परिमाणात्मक एवं गुणात्मक* (Qualitative) तथ्य एकत्रित किए जाते हैं लेकिन इनमें अधिकांश रूप से परिमाण अथवा संख्याओं से सम्बन्धित तथ्य या आँकड़े ही बड़ी मात्रा में एकत्रित किए जाते

1 *F N Kerlinger*: Foundations of Behavioural Research p 383
2 *C Y. Glank* · Survey Research in the Social Sciences, p 14
3 *E W Burgess*. American Journal of Sociology, xxi (*1961*), p 492

हैं। अब्राहम्स (Abrahms) ने तो सर्वेक्षण-अनुसन्धान को परिमाणात्मक तथ्यो से ही सम्बन्धित माना है।

2 सर्वेक्षण अनुसन्धान मे परिणाम ज्ञात करने के लिए आंकडो के सांख्यिकीय विश्लेषण (Statistical Analysis) की आवश्यकता होती है। अत सर्वेक्षण अनुसन्धान मे एकत्रित किए गए तथ्यो का सांख्यिकीय विश्लेषण एव निर्वचन किया जाता है।

3 सर्वेक्षण अनुसन्धान का प्रयोग सामान्यत: समूह या समुदाय की दशाओ एव समस्याओ के अध्ययन व विश्लेषण के लिए किया जाता है। इसमे समूहो के सामान्य जीवन से सम्बन्धित क्रियाओ एव सामूहिक व्यवहार को विशेष महत्त्व दिया जाता है।

4 सर्वेक्षण अनुसन्धान मे यद्यपि समूहो सगठनो, समितियो आदि को भी इकाई मानकर उनका अध्ययन किया जाता है, लेकिन सर्वाधिक उपयुक्त इकाई (Unit) के रूप मे व्यक्तियो का ही प्रयोग किया जाता है।

5 सर्वेक्षण अनुसन्धान म उत्तरदाताओ का चयन पूर्वपरिभाषित समग्र (Predefined Universe) म से निदर्शन (Sampling) विधि के द्वारा किया जाता है।

6 आवश्यक आंकडो के एकत्रीकरण के लिए सर्वेक्षण अनुसन्धान मे वैषयिकता (Objectivity) पर ध्यान दिया जाता है तथा एक निष्पक्ष एव तटस्थ निरीक्षक की दृष्टि से घटनाओ को देखने एव समझने और तथ्यो को सकलित करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार सर्वेक्षण अनुसन्धान को व्यक्तिगत या निजी प्रभावो से बचाकर उनमे वैषयिकता एव तटस्थता लाई जाती हैं।

7 सर्वेक्षण अनुसन्धान मे निदर्शन द्वारा चयनित उत्तरदाताओ से सम्पर्क स्थापित कर आंकडे प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। आंकडो के एकत्रीकरण के लिए सर्वेक्षण अनुसन्धान म प्राय साक्षात्कार (Interview), अनुसूची (Schedule), प्रश्नावली (Questionnaire) एव अवलोकन (Observation) आदि विधियो का प्रयोग किया जाता है।

8 सर्वेक्षण अनुसन्धान के दौरान अनुसन्धान पद्धतियो के अतिरिक्त कुछ प्रमाणीकृत उपकरणो (Standardized Tools) का भी उपयोग किया जाता है।

9 सर्वेक्षण अनुसन्धान म एक लम्बी प्रक्रिया (Process) के अन्तर्गत उसे विभिन्न चरणो मे विभाजित करके उन तथ्यो का विश्लेषण किया जाता है। उन्ही के आधार पर सामान्यीकरण (Generalization) निकाले जाते हैं, जो उपकल्पनाओ (Hypothesis) के निर्माण मे सहायक होते हैं। विभिन्न सामाजिक घटनाओ के कारण परिणाम जानने के लिए वैज्ञानिक कार्य प्रणाली अपनाई जाती है।

10 सर्वेक्षण अनुसन्धान मे विवरणात्मक (Descriptive) सहसम्बन्धात्मक एव स्पष्टीकरणात्मक प्रश्नो का उत्तर देने का प्रयास किया जाता है, ताकि वैज्ञानिक अनुसन्धान मे उनका उपयोग किया जा सके।

सर्वेक्षण अनुसन्धान के उद्देश्य
(Purposes of Survey Research)

सर्वेक्षण अनुसन्धान क्यो आयोजित किए जाते हैं ? अर्थात् सर्वेक्षण अनुसन्धान के उद्देश्य क्या हैं ? इसकी जानकारी किसी भी वैज्ञानिक के लिए महत्त्वपूर्ण होती है। सर्वेक्षण अनुसन्धान के द्वारा कभी हम नवीन तथ्यो को प्राप्त करना चाहते हैं तो कभी इसके माध्यम से हम पुराने सिद्धान्तो का पुनर्परीक्षण कर यह देखना चाहते है कि इनमे कितनी उपयोगिता रह गई है अथवा ये बिल्कुल अनुपयोगी हो गए हैं। इस प्रकार सर्वेक्षण अनुसन्धान के विभिन्न उद्देश्य हो सकते हैं।

सी ए मोजर (C A Moser) ने अपनी कृति 'सर्वे मेथड्स इन सोशल इन्वेस्टीगेशन' मे सर्वेक्षण अनुसन्धान के वर्णनात्मक (Descriptive) एव विवेचनात्मक (Explanatory) प्रयोजन पर ही अधिक बल दिया है। मोजर ने लिखा है "सर्वेक्षण अनुसन्धान सामान्य जीवन के किसी पक्ष पर प्रशासन सम्बन्धी तथ्यो की आवश्यकता, किसी कारण परिणाम सम्बन्ध की जानकारी अथवा समाजशास्त्रीय सिद्धान्त के किसी पक्ष पर नवीन प्रकाश डालने के उद्देश्य से किया जा सकता है।"[1]

इसी प्रकार सर्वेक्षण अनुसन्धान का उद्देश्य कही अनिश्चितता की स्थिति को स्पष्ट करना होता है तो कही-कही ये चरो के मध्य सह-सम्बन्धो की स्थापना करने का प्रयास भी करते हैं। एक अत्यन्त विकसित स्तर पर आयोजित किए जाने पर सर्वेक्षण अनुसन्धान *उपकल्पनाओ के निर्माण एव सत्यापन (Verification)* का उद्देश्य भी रखता है। सक्षेप मे एक सर्वेक्षण अनुसन्धान के निम्न उद्देश्य हो सकते हैं—

1 *सामाजिक तथ्यो का सकलन (Collection of Social Facts)*
2 सामाजिक घटनाओ का वर्णन (Description of Social Events)
3 कारण-परिणाम सम्बन्धो की खोज (Knowing Cause-effect Relations)
4. उपकल्पना का निर्माण एव सत्यापन (Construction and Verification of Hypothesis)
5 सामाजिक सिद्धान्तो का परीक्षण (Examining of Social Theories)
6 सामाजिक क्रियाओ व्यवहारो एव दशाओ का अध्ययन (Studies of Social Actions Behaviour & Conditions)

1 *C A Moser*: Survey Methods in Social Investigation., p 1.

यहाँ हम सक्षेप मे इन उद्देश्यो की विवेचना करेंगे—

1. सामाजिक तथ्यों का संकलन—वे समस्त बातें जो समाज के विभिन्न पक्षो के सम्बन्ध मे अनेक प्रकार की जानकारी प्रदान करती हैं, सामाजिक तथ्य कही जाती हैं। अधिकांश सर्वेक्षणो का मुख्य उद्देश्य विभिन्न सामाजिक तथ्य एव सूचनाएँ एकत्रित करना होता है। इससे विभिन्न सामाजिक क्रियाओ तथा सगठन सम्बन्धी तथ्यो की जानकारी प्राप्त की जाती है। अमेरिका मे सर्वेक्षण अनुसन्धान आन्दोलन का विकास ही मुख्यत आर्थिक जानकारी को लेकर हुआ है। अमेरिका मे औद्योगिक उत्पादन, व्यापार तथा उसके सामान्य जनता पर पडने वाले प्रभावों की जानकारी हेतु अनेक सर्वेक्षण किए गए हैं।

2 सामाजिक घटनाओं का वर्णन—मोजर के अनुसार "समाजशास्त्रियो के लिए सामाजिक सर्वेक्षण का उद्देश्य पूर्णतया वर्णनात्मक, जैसे सामाजिक दशाओ, सम्बन्धो अथवा व्यवहार इत्यादि का अध्ययन हो सकता है।"[1] अनेक बार सर्वेक्षण अनुसन्धान किसी विशेष उद्देश्य को न लेकर केवल सामाजिक घटनाओ के वर्णन मात्र के लिए किया जाता है। सामान्यतया सरकारी एव गैर-सरकारी सगठनो के सर्वेक्षणो का उद्देश्य केवल किसी पक्ष से सम्बन्धित आँकडो को एकत्रित करना मात्र ही होता है।

3 कारण-परिणाम सम्बन्धो की खोज—सामान्यतया प्रत्येक प्रघटना के घटित होने का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। विभिन्न प्रकार की सामाजिक घटनाएँ भी किसी न किसी कारण की वजह से अवश्य घटित होती हैं। इस प्रकार अमुक घटनाएँ क्यो व किन परिस्थितियो मे घटित हो रही हैं? इनकी पुनरावृत्ति के अमुक कारण क्या हैं? आदि बातो की खोज आजकल सर्वेक्षण अनुसन्धानो का मुख्य उद्देश्य हो गया है। अत कारण-परिणाम सम्बन्धो की खोज भी सर्वेक्षण अनुसन्धान का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है।

4 उपकल्पना का निर्माण एव सत्यापन—सामाजिक घटनाओ से विभिन्न परिस्थितियों मे घटित होने के लिए कुछ आधारो की कल्पना हम प्रारम्भ मे ही कर लेते हैं, चाहे यह ज्ञान पर आधारित हो अथवा अनुभवो पर। ऐसी पूर्व-कल्पनाओ को ही हम उपकल्पना (Hypothesis) कहते हैं। ये आधार कहाँ तक सही या गलत हैं? अर्थात् क्या हमारी उपकल्पना ठीक है और वह सर्वेक्षण के परिणामो को सही सिद्ध करती है या नहीं, इसकी जाँच या सत्यापन करना भी वर्तमान मे सर्वेक्षण अनुसन्धान का उद्देश्य है।

5 सामाजिक सिद्धान्तो का परीक्षण—सामाजिक सिद्धान्त स्वय भी, अनेक प्रकार के अध्ययनो से निकले हुए सामान्यीकरणो तथा निष्कर्षों का ही अन्तिम रूप होते हैं, इनमे भी परिवर्तन सम्भव हैं, क्योकि मनुष्य एव समाज परिवर्तनशील है। अत सामाजिक सिद्धान्त जो हमारे पूर्वजो के समय मे प्रचलित थे आज प्राय सत्य

1 *C A Moser* Ibid, p 2

नहीं उतरते हैं। मानव समाज विकास एवं प्रगति के पथ पर निरन्तर आगे बढ़ रहा है। इसीलिए व्यक्तियों और समूहों से मानसिक परिवर्तनों तथा नवीन सामाजिक दशाओं के साथ ही प्राचीन एवं अनुपयोगी सिद्धान्तों में कुछ सुधार एवं संशोधन करने या उनको पूर्णतया त्याग देने की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार सर्वेक्षण अनुसन्धान का एक उद्देश्य सामान्य सिद्धान्तों का परीक्षण भी है।

6. सामाजिक क्रियाओं, व्यवहारों एवं दशाओं का अध्ययन—इसी प्रकार मानवीय सामाजिक क्रियाओं, व्यवहारों एवं सामाजिक दशाओं का अध्ययन भी सर्वेक्षण अनुसन्धान का मुख्य उद्देश्य है। इसी प्रकार अनेक सर्वेक्षण अनुसन्धान मानवीय सामाजिक समस्याओं के अध्ययन हेतु भी किए जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सर्वेक्षण अनुसन्धान को आयोजित करने के अनेक उद्देश्य हो सकते हैं।

सर्वेक्षण अनुसन्धान के प्रकार
(Types of Survey Research)

आजकल सामाजिक संरचना एवं व्यवस्था में अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं, तथा सामाजिक क्रियाओं एवं व्यवहारों में भी जटिलता आती जा रही है। अतएव अपनी आवश्यकताओं, साधनों, परिस्थितियों तथा उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए विभिन्न प्रकार के अध्ययनों के लिए अनेक प्रकार के सर्वेक्षण अनुसन्धान आयोजित किए जाने लगे हैं। इसी प्रकार अनुसन्धान प्रविधियों में भी निरन्तर प्रगति होती जा रही है। इन सभी के परिणामस्वरूप अनेक आधारों पर सर्वेक्षण अनुसन्धान को अनेक प्रकारों में विभाजित किया जाता है।

मुख्यतः सर्वेक्षण के प्रकारों को निम्न आधारों पर विभाजित किया जाता है—

1. आकार के आधार पर (On the Basis of Size)
   - A. विस्तृत सर्वेक्षण (Wide-spread Survey)
   - B. सीमित सर्वेक्षण (Restricted Survey)
2. इकाइयों के आधार पर (On the Basis of Units)
   - A. संगणना सर्वेक्षण (Census Survey)
   - B. निदर्शन सर्वेक्षण (Sample Survey)
3. आवृत्ति के आधार पर (On the Basis of Frequency)
   - A. अन्तिम सर्वेक्षण (Final Survey)
   - B. पुनरावृत्ति सर्वेक्षण (Repetitive Survey)
4. आवश्यकता के आधार पर (On the Basis of Need)
   - A. नियमित सर्वेक्षण (Regular Survey)
   - B. कामचलाऊ सर्वेक्षण (Adhoc Survey)
5. उद्देश्य के आधार पर (On the Basis of Object)
   - A. सामान्य सर्वेक्षण (General Survey)
   - B. विशिष्ट सर्वेक्षण (Specific Survey)

6 विषय-वस्तु के आधार पर (On the Basis of Subject Matter)
 A मत-संग्रहण सर्वेक्षण (Opinion Survey)
 B. तथ्यात्मक सर्वेक्षण (Factual Survey)
7. महत्त्व के आधार पर (On the Basis of Importance)
 A. प्राथमिक सर्वेक्षण (Primary Survey)
 B द्वैतीयक सर्वेक्षण (Secondary Survey)
8 अन्वेषण के आधार पर (On the Basis of Exploration)
 A पूर्वगामी सर्वेक्षण (Pilot Survey)
 B मुख्य सर्वेक्षण (Main Survey)
9 प्रकृति के आधार पर (On the Basis of Nature)
 A सार्वजनिक सर्वेक्षण (Public Survey)
 B गोपनीय सर्वेक्षण (Secret Survey)
10 सामग्री के आधार पर (On the Basis of Data)
 A परिमाणात्मक सर्वेक्षण (Quantitative Survey)
 B गुणात्मक सर्वेक्षण (Qualitative Survey)
11 संगठन के आधार पर (On the Basis of Organization)
 A सरकारी सर्वेक्षण (Government Survey)
 B अर्द्ध-सरकारी सर्वेक्षण (Semi Government Survey)
 C गैर-सरकारी सर्वेक्षण (Non-Government Survey)
12 अवलोकन के आधार पर (On the Basis of Observation)
 A प्रत्यक्ष सर्वेक्षण (Direct Survey)
 B अप्रत्यक्ष सर्वेक्षण (Indirect Survey)
13 क्षेत्र के आधार पर (On the Basis of Area)
 A ग्रामीण सर्वेक्षण (Rural Survey)
 B नगरीय सर्वेक्षण (Urban Survey)
 C. जनजातीय सर्वेक्षण (Tribal Survey)

सर्वेक्षण अनुसन्धान आयोजन
(Survey-Research Planning)

आँकडों को एकत्रित और उन्हें विश्लेषित करने के रूप में सर्वेक्षण अनुसन्धान अनुसन्धान की एक अत्यन्त लोकप्रिय विधि है। सर्वेक्षण अनुसन्धान का आयोजन भी अत्यन्त सावधानी से किया जाना चाहिए। बिना पूर्व योजना के किए गए सर्वेक्षण अनुसन्धान में अनेक जटिलताओं का हो जाना स्वाभाविक है। जॉर्ज लुण्डबर्ग ने लिखा है 'उत्साहपूर्वक रूप से आँकड़ों के अधिक संकलन कर लेने मात्र से ही अध्ययनकर्त्ता का कार्य पूरा हो जाना, उसका केवल अनुभवहीनता एवं निरर्थक परिश्रम का ही लक्षण है।" इसी प्रकार किसी आयोजन विधि में अनेक उप क्रियाएँ होती हैं। पार्टेन ने लिखा है कि "सर्वेक्षण का आयोजन, संगठन तथा संचालन

किसी व्यापार को चलाने के समान है। दोनो के लिए विशेष तकनीकी ज्ञान तथा कुशलता, प्रशासकीय योग्यता तथा इसकी प्रकृति एव सगठित किए जाने वाले कार्य मे विशिष्ट अनुभव एव प्रशिक्षण आवश्यक होता है।"[1] आपने आगे और लिखा है कि "केवल सावधानीपूर्वक आरम्भ मे लेकर अन्त तक आयोजित सर्वेक्षण के ही परिणामो पर विश्वास किया जा सकता है, और अनेक दशाओ म निष्कर्ष प्रकाशन स्तर तक भी पहुँच सकते हैं।"[2]

सर्वेक्षण आयोजन मे आने वाली समस्याएँ
(Problems in Planning the Survey)

मिल्ड्रेड पार्टेन (Mildred Parten) ने अपनी कृति 'सर्वे, पोल्स एण्ड सेम्पल्स' मे सर्वेक्षण आयोजन मे आने वाली समस्याओ के निवारण हेतु कुछ प्रश्नो का उल्लेख किया है जिनका उत्तर प्राप्त करने का प्रयास सर्वेक्षण अनुसन्धान की विस्तृत योजना के निर्माण के पूर्व किया जाना चाहिए। वे प्रश्न है[3]—

1 किन प्रश्नो का उत्तर सर्वेक्षण द्वारा प्रदान किया जाना है ?
2 किन प्रश्नो को जनमत मतदान मे सम्मिलित किया जाना है ?
3 क्या चाही गई सूचना को प्राप्त करने का सर्वेक्षण अथवा मतगणना सर्वोत्तम उपाय है ?
4 परिणामो का प्रयोग कैसे व किसके द्वारा किया जाएगा ?
5 क्या सर्वेक्षण वग की सहायता से इस प्रकार के आँकडो का सग्रह सम्भव है ?
6 तथ्यो के एकत्रीकरण एव सारणीयकरण के पश्चात् कही ऐसा तो नही है कि सूचना बहुत प्राचीन प्रतीत होने लगे अथवा प्रयोग के योग्य नही रह जाए ?
7 सर्वेक्षण अनुसन्धान के लिए कितना धन इस समय उपलब्ध है, और कितना धन और उपलब्ध हो सकता है ?
8 क्या अध्ययन के लिए अन्य स्रोत उपलब्ध हो सकेंगे ?
9 क्या किसी अनुसन्धान सस्था से अपने तत्वावधान मे अनुसन्धान कार्य सचालित करने के लिए निवेदन करना उपयुक्त है ?
10 क्या समस्या का समाधान निश्चित ही अब तक अज्ञात है ?
11 सर्वेक्षण अनुसन्धान की आवश्यक सूचनाएँ किस प्रकार प्राप्त की जाएँगी ?
12. क्या सर्वेक्षण अनुसन्धान के सचालन के लिए आवश्यक अनुभव एव प्रशिक्षण हमारे पास उपलब्ध है।

इस प्रकार इन प्रश्नो का उत्तर प्राप्त कर लेने के पश्चात् ही हमे सर्वेक्षण अनुसन्धान का आयोजन करना चाहिए। सर्वेक्षण अनुसन्धान के आयोजन मे भी

1 *Mildred Parten* Survey, Polls & Samples, p 48
2 *Mildred Parten* Ibid, p 48
3 *Mildred Parten* Ibid, p 56

हमे अनेक चरणो का ध्यान रखना चाहिए । मुख्यत सर्वेक्षण आयोजन के निम्नांकित चरण हैं—

1 अध्ययन की जाने वाली समस्या (The Problem to be Studies)
   - A समस्या का चयन (Selection of the Problem)
   - B समस्या की प्रकृति (Nature of the Problem)
   - C उद्देश्य का निर्धारण (Determination of Purpose)
   - D अध्ययन-क्षेत्र का निर्धारण (Delimitation of Field of Study)
   - E. सर्वेक्षण-इकाई का चयन (Deciding the Unit of Survey)

2 प्रारम्भिक तैयारियाँ (Preliminary Preparations)
   - A प्रारम्भिक अध्ययन करना (Preparatory Studies)
   - B बजट का निर्माण (Formation of Budget)
   - C समय सीमा एव कार्य-तालिका (Time-limit and Work Scheme)
   - D उपकरणो का प्रयोग (Use of Tools)
   - F सर्वेक्षण का सगठन (Organization of Survey)
     - (i) सर्वेक्षणकर्त्ताओ का चयन,
     - (ii) कार्यालय की स्थापना, एव
     - (iii) सर्वेक्षणकर्त्ताओ का प्रशिक्षण ।

3 पूर्वगामी अध्ययन एव पूर्व-परीक्षण (Pilot Survey and Pre-Testing)
   - A पूर्वगामी अध्ययन (Pilot Studies)
   - B पूर्व-परीक्षण (Pre-Testing)

4 आँकडो का सकलन एव वर्गीकरण (Collection and Classification of Data)
   - A सकलन (Collection)
   - B सम्पादन (Editing)
   - C वर्गीकरण (Classification)
   - D सकेतन (Codification)
   - E सारणीयन (Tabulation)

5 सामान्यीकरण (Generalization)
   - A विश्लेषण एव निर्वचन (Analysis and Interpretation)
   - B निष्कर्ष (Conclusion)
   - C तुलना एव पूर्वानुमान (Comparision and Prediction)
   - D रिपोर्ट का प्रकाशन (Publication of Report)

सर्वेक्षण अनुसन्धान के गुण एवं दोष
(Merits and De-merits of Survey Research)

सर्वेक्षण अनुसन्धान भी अनुसन्धान की एक महत्वपूर्ण विधि है। अनुसन्धान की यह विधि अनेक गुण-दोषो एव लाभ-हानियो से युक्त है। सर्वेक्षण अनुसन्धान के प्रमुख गुणो (Merits) को निम्नांकित बिन्दुओ मे रखा जा सकता है—

1 सर्वेक्षण अनुसन्धान मे अनुसन्धानकर्त्ता को अध्ययन समस्या के प्रचलित स्वरूप को वास्तविक अर्थ मे समझने का अवसर प्राप्त होता है। वह अपने अध्ययन विषय के विभिन्न पक्षो का सूक्ष्म रूप से ध्यानपूर्वक निरीक्षण करता है। वह अपने अध्ययन को केवल दार्शनिक आधारो अथवा सिद्धान्तो तक ही सीमित नही रखता है। अध्ययनकर्त्ता को इस प्रकार अध्ययन-विषय से प्रत्यक्ष सम्बन्ध बनाने म मदद मिलती है।

2 सर्वेक्षण अनुसन्धान विस्तृत एव व्यापक समग्र (Comprehensive) के सम्बन्ध मे परिमाणात्मक सूचनाएँ प्रदान करता है जिस पर अधिक विस्तार के साथ सांख्यिकीय प्रविधियो को लागू किया जा सकता है।

3 इसी प्रकार सर्वेक्षण अनुसन्धान से प्राप्त सूचनाएँ गुणात्मक (Qualitative) दृष्टिकोण से भी महत्त्वपूर्ण होती है।

4 सर्वेक्षण अनुसन्धान से प्राप्त सूचनाओ मे वैषयिकता (Objectivity) सम्भव होती है। व्यक्तिगत अध्ययन मे सर्वेक्षण की निजी विचारधारा, उनके सस्कार, परम्पराएँ तथा परिस्थितियाँ एव पक्षपातपूर्ण व्यवहार अर्थात् व्यक्तिनिष्ठता (Subjectivity) का लक्षण सम्मिलित हो सकता है। सामान्यतः किसी सर्वेक्षक दल के द्वारा आयोजित सर्वेक्षण अनुसन्धानो मे यथार्थता एव निष्पक्षता अथवा वैषयिकता की अधिक तथा व्यक्तिनिष्ठता की कम सम्भावना होती है।

5 सर्वेक्षण अनुसन्धान सामान्यतया विशिष्ट वैज्ञानिक नियमो, प्रविधियो एव यन्त्रों आदि पर आधारित होते हैं, अत सर्वेक्षण अनुसन्धान के सिद्धान्तो मे सूक्ष्मता, शुद्धता एव उपयुक्तता पाई जाती है और उसके निष्कर्ष व सिद्धान्त निर्भरयोग्य (Dependable) होते हैं।

6 सर्वेक्षण अनुसन्धान के निष्कर्ष अनेक बार उपकल्पना निर्माण मे भी सहायक होते हैं। इस प्रकार उपकल्पनाओ की रचना का आधार भी प्रायः सफल सर्वेक्षण अनुसन्धान ही होते है।

लेकिन इन गुणो के बाद भी सर्वेक्षण अनुसन्धान मे अनेक प्रकार के दोष भी पाए जाते हैं। सामान्यत सर्वेक्षण अनुसन्धान के निम्नांकित दोष या सीमाएँ (Limitations) हैं—

1. सर्वेक्षण अनुसन्धान मे अधिक गहन (Deep) व आन्तरिक सूचनाएँ प्राप्त नही की जा सकती हैं। विचारो, विश्वासो तथा व्यवहारो की जटिलता को समझने मे सर्वेक्षण अनुसन्धान कोई विशिष्ट सहायता प्रदान नही कर पाते।

2 सर्वेक्षण अनुसन्धान को आयोजित करने मे अधिक धन एव अधिक समय की आवश्यकता होती है।

3. सर्वेक्षण अनुसन्धान मे, निदर्शन त्रुटि (Sampling Error) की सम्भावना भी अत्यधिक हो जाती है।

4 इसके अन्तर्गत इस बात की पर्याप्त सम्भावना रहती है कि उत्तरदाता अपनी वास्तविक स्थिति मे हटकर समाज द्वारा स्वीकृत मूल्यो एव मान्यताओ को ध्यान मे रखकर अवास्तविक सूचनाएँ प्रदान करे।

5 सर्वेक्षण अनुसन्धान के सचालन मे पर्याप्त ज्ञान एव अनुभव की आवश्यकता होती है, इसके अभाव से सर्वेक्षण अनुसन्धान को विधिवत् आयोजित नही किया जा सकता है।

6 सर्वेक्षण अनुसन्धानो मे सामान्यत' काफी बडी तादाद मे आँकडो का एकत्रीकरण किया जाता है, अत इन आँकडो को सम्भालने तथा इनका समुचित प्रयोग कर पाना कोई आसान काय नही है।

7 सर्वेक्षण अनुसन्धान मे उपकरणो के अधिक विस्तृत होने पर उत्तरदाता थकान का अनुभव करने लगते हैं, और तब वे उकता कर बिना सोचे-समझे मनमाने ढग से सूचना प्रदान करने लगत हैं।

8 इसी प्रकार सर्वेक्षण अनुसन्धानो म सर्वेक्षकों के व्यक्तित्व, सूचनाओ की प्रकृति म विभिन्नता तथा सर्वेक्षण यन्त्रो का आवश्यकतानुसार एव सही रूप मे चुनाव न होने पर विश्वसनीयता भी सन्देहपूर्ण हो जाती है।

प्रश्नावली
(Questionnaire)

सामाजिक अनुसन्धान प्रक्रिया मे अनुसन्धानकर्त्ता आँकडे एकत्रित करने के लिए जिन विधियो का प्रयोग करता है, उनमे प्रश्नावली (Questionnaire) का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रश्नावली अनेक प्रश्नो (Questions) से युक्त एक ऐसी सूची होती है, जिसम अध्ययन विषय से सम्बन्धित विभिन्न पक्षो के बारे मे पहले से तैयार किए गए प्रश्नो का समावेश होता है। अनुसन्धानकर्त्ता इस सूची को डाक (Mail) से उत्तरदाताओ के पास भेजता है। उत्तरदाता स्वय उसे पढकर, समझकर एव उसमे पूछे गए प्रश्नो के उत्तर भरकर पुन डाक मे उसे अनुसन्धानकर्त्ता को प्रेषित कर देते हैं।

आधुनिक अनुसन्धानो मे प्रश्नावली का उद्देश्य अध्ययन-विषय से सम्बन्धित प्राथमिक तथ्य-सामग्री (Primary Data) को एकत्र करना है। मोटे तौर पर प्रश्नावली का अर्थ उस सुव्यवस्थित तालिका से है जो विषय के सम्बन्ध मे सूचनाएँ प्राप्त करने मे सहयोगी है। सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक सर्वेक्षणो म तथ्यात्मक जानकारी प्राप्त करने के लिए, प्रश्नावली को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पद्धति माना जाता है।

प्रश्नावली का अर्थ एवं परिभाषाएँ
(Meaning & Definitions of Questionnaire)

साधारणतः किसी विषय से सम्बन्धित व्यक्तियों से सूचना प्राप्त करने के लिए बनाए गए प्रश्नो की सुव्यवस्थित सूची को प्रश्नावली की सज्ञा दी जाती है। उसे डाक द्वारा भेजकर सूचना प्राप्त की जाती है।

गुडे तथा हट्ट के शब्दो मे, "सामान्यतः, 'प्रश्नावली' शब्द प्रश्नो के उत्तर प्राप्त करने की उस प्रणाली को कहते हैं, जिसमे स्वय उत्तरदाता द्वारा भरे जाने वाले पत्रक (Form) का प्रयोग किया जाता है।"[1]

लुण्डबर्ग (Lundberg) के शब्दो मे, "मूलतः प्रश्नावली प्रेरणाओं का एक समूह है, जिसे शिक्षित लोगो के सम्मुख, उन प्रेरणाओं के अन्तर्गत उनके मौखिक व्यवहारो का अवलोकन करने के लिए प्रस्तुत किया जाता है।"[2]

विल्सनगी (Wilson Gee) के शब्दो मे, "यह (प्रश्नावली) बड़ी सख्या मे लोगो से अथवा छोटे चुने हुए एक समूह से जो विस्तृत क्षेत्र मे फैला हुआ है, सीमित मात्रा मे सूचना प्राप्त करने की एक सुविधाजनक प्रणाली है।"[3]

बोगार्डस के अनुसार, "प्रश्नावली विभिन्न व्यक्तियों को उत्तर देने के लिए दी गई प्रश्नो की एक तालिका है।"[4]

एफ एन कर्लिजर के अनुसार "प्रश्नावली का अभिप्राय किसी भी ऐसे उपकरण से है, जिसके अन्तर्गत प्रश्न अथवा मद पाए जाते हैं तथा जिनका उत्तर व्यक्ति प्रदान करते हैं, किन्तु प्रश्नावली शब्द मुख्यत स्वप्रशासित उपकरणो से सम्बन्धित है, जिनके अन्तर्गत प्राय बन्द अथवा निश्चित विकल्प प्रकार के मद पाए जाते हैं।"[5]

सिन पाओ यग लिखते हैं कि "अपने सरलतम रूप मे प्रश्नावली प्रश्नो की एक ऐसी अनुसूची है, जिसे सर्वेक्षण हेतु प्रदान किए गए प्रतिचयन से सम्बन्धित व्यक्तियो के पास डाक द्वारा भेजा जाता है।"[6]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मूलत प्रश्नावली प्रश्नो की एक ऐसी अनुसूची होती है, जिसे डाक या अन्य किसी मानवीय सस्था के माध्यम से उत्तरदाताओं को भेजी जाती है। अत आँकड़े एकत्रित करने की इस विधि से अनुसन्धानकर्त्ता व उत्तरदाता के मध्य कोई प्रत्यक्ष सम्पर्क नही होता। स्वय उत्तरदाता प्रश्नावली मे निहित प्रश्नो को समझकर एव उनके प्रत्युत्तरो को भर कर अनुसन्धानकर्त्ता को लौटाता है। प्रश्नावली का प्रयोग विशेषकर उन अनुसन्धानो के अन्तर्गत किया

1 *Goode and Hatt* Methods in Social Research, p 113
2 *George A Lundberg* Social Research, p 113
3 *Wilson Gee* Social Science and Research Methods, p 314
4 *E Bogardus* · Sociology, p 549
5 *F N Kerlinger*: Foundation of Behavioural Research, p 183.
6 *Hsin Pao Yang* . Fact Finding with Rural People, p 52.

जाता है, जिनमे बडी संख्या मे परिमापनीय एव योगात्मक आँकडो की आवश्यकता होती है ।

प्रश्नावली के प्रकार
(Types of Questionnaire)

सभी प्रश्नावलियाँ समान प्रकृति की नही होतीं । अध्ययन की प्रकृति, प्रश्नो के प्रकार तथा उत्तरदाताओ की विशेषताओ के दृष्टिकोण से एक-दूसरे से भिन्न अनेक प्रकार की प्रश्नावली बनाई जा सकती हैं । लुण्डबर्ग ने प्रश्नावली के दो मुख्य प्रकारो का उल्लेख किया है—तथ्य सम्बन्धी प्रश्नावली, तथा मत और मनोवृत्ति सम्बन्धी प्रश्नावली ।[1] प्रथम श्रेणी की प्रश्नावली वे हैं जिनका उपयोग किसी समूह की सामाजिक अथवा आर्थिक दशाओ से सम्बन्धित तथ्यो का संग्रह करने के लिए किया जाता है । दूसरी श्रेणी की प्रश्नावली का उद्देश्य एक विशेष विषय पर उत्तरदाताओ की रुचियों, विचारो अथवा मनोवृत्तियो को जानना होता है । पी. वी यग ने भी प्रश्नावली के दो भागों का उल्लेख किया है—सरचित प्रश्नावली तथा असरचित प्रश्नावली ।[2] प्रस्तुत विवेचन मे हम प्रश्नावली के उन सभी सामान्य प्रकारो का वर्गीकरण प्रस्तुत करेंगे जिनका उपयोग विभिन्न परिस्थितियो में किया जा सकता है—

(1) संचरित प्रश्नावली
(Structured Questionnaire)

सरचित प्रश्नावली सामाजिक सर्वेक्षण अथवा अनुसन्धान मे प्रयोग की जाने वाली वह प्रश्नावली है जिसकी रचना वास्तविक अध्ययन आरम्भ होने से पहले ही कर ली जाती है और साधारणतया बाद मे इसमे कोई परिवर्तन नही किया जाता है । पी वी यग ने लिखा है कि "सरचित प्रश्नावलियाँ वे होती हैं जिनमे कि निश्चित, स्पष्ट तथा पूर्व-निर्धारित प्रश्नो के अतिरिक्त ऐसे अतिरिक्त प्रश्न भी सम्मिलित रहते हैं जो अपर्याप्त उत्तरो का स्पष्टीकरण करने या अधिक विस्तृत उत्तर प्राप्त करने के लिए आवश्यक समझे जाते हैं ।"[3] सम्भवत इसी आधार पर जहोदा एव कुक ने सरचित प्रश्नावली को 'मानक प्रश्नावली' का नाम दिया है ।[4] ऐसी प्रश्नावली का उपयोग एक विस्तृत अध्ययन क्षेत्र मे फैले हुए व्यक्तियो से प्राथमिक तथ्यो का सकलन करने तथा सकलन तथ्यो की पुनर्परीक्षा करने के लिए किया जाता है । सरचित प्रश्नावली में जिन प्रश्नो का समावेश किया जाता है वे अत्यधिक निश्चित, क्रमबद्ध और स्पष्ट होते हैं तथा प्रत्येक उत्तरदाता के लिए इनकी प्रकृति समान होती है । इसके परिणामस्वरूप ऐसी प्रश्नावली से प्राप्त उत्तरो का वर्गीकरण करना अधिक सरल हो जाता है । साधारणतया किसी समूह की सामाजिक-आर्थिक विशेषताओ का अध्ययन करने अथवा प्रशासनिक स्तर पर परिवर्तन हेतु व्यक्तियो के सुझाव जानने के लिए ऐसी प्रश्नावली का उपयोग किया जाता है ।

1 *G A Lundberg* · op cit, p 183
2 *P. V Young* Scientific Social Survey and Research, p 177–180
3 *P V Young* Ibid, p 177
4 *Jahoda & Others* : Research Methods in Social Relations, p 255–268

(2) असंरचित प्रश्नावली
(Unstructured Questionnaire)

कैण्ट का कथन है कि "असंरचित प्रश्नावली वह होती है जिसमे कुछ निश्चित विषय क्षेत्रों का समावेश होता है और जिनके बारे में साक्षात्कार के दौरान ही सूचना प्राप्त करनी होती है लेकिन इस प्रणाली में प्रश्नों के स्वरूप और उनके क्रम का निर्धारण करने में अध्ययनकर्त्ता को काफी स्वतन्त्रता प्राप्त होती है।"[1] इससे स्पष्ट होता है कि असंरचित प्रश्नावली का निर्माण वास्तविक अध्ययन करने से पहले ही नहीं कर लिया जाता। इसके अन्तर्गत केवल उन विषयों का उल्लेख होता है जिनके सम्बन्ध में उत्तरदाता से सूचनाएँ प्राप्त करनी होती हैं। एक अध्ययनकर्त्ता ऐसी प्रश्नावली की सहायता से प्रारम्भ में यह जानने का प्रयत्न करता है कि किस प्रकार के प्रश्नों और उनके एक विशेष क्रम के द्वारा सर्वोत्तम सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। यही कारण है कि ऐसी प्रश्नावली 'साक्षात्कार निर्देशिका' हमें तभी लाभदायक होती है जब अध्ययन का क्षेत्र सीमित हो तथा प्रत्येक उत्तरदाता से सम्पर्क स्थापित करना सम्भव हो। इसके पश्चात् भी कुछ विद्वान् असंरचित प्रश्नावली को प्रश्नावली का एक प्रकार न मानकर साक्षात्कार विधि के आधार के रूप में देखते हैं। इसका कारण यह है कि प्रश्नावली के अन्तर्गत साक्षात्कार की प्रक्रिया का कोई स्थान नहीं होता। इस दृष्टिकोण से प्रश्नावली के प्रकारों में पी वी यंग द्वारा प्रस्तुत असंरचित प्रश्नावली का उल्लेख करना अधिक उपयुक्त प्रतीत नहीं होता।

(3) बन्द प्रश्नावली
(Closed Questionnaire)

प्रश्नावली का यह प्रकार अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक प्रश्न के सामने उसके अनेक सम्भावित उत्तर दे दिए जाते हैं तथा उत्तरदाता को उन्हीं उत्तरों में से किसी एक उत्तर को चुनकर अपने विचारों को अभिव्यक्त करना होता है। उदाहरण के लिए यदि प्रश्न की प्रकृति इस प्रकार हो कि—1984 के ग्राम चुनाव में आपने अपना वोट किस आधार पर दिया ? दल की नीतियों और कार्यक्रमों को ध्यान में रखते हुए/उम्मीदवार के गुणों को देखते हुए/यह देखते हुए कि अधिक लोग किसे वोट दे रहे हैं/पड़ौसियों के दबाव को देखते हुए/कोई निश्चित आधार नहीं; तो ऐसे प्रश्न को हम 'बन्द प्रश्न' तथा इस प्रकार के प्रश्नों से बनने वाली प्रश्नावली को बन्द अथवा प्रतिबन्धित प्रश्नावली कहेंगे। ऐसे प्रश्नों के अनेक दूसरे भी उदाहरण हो सकते हैं—जैसे आप किस आय वर्ग के अन्तर्गत आते हैं ? 100 रु मासिक से कम/100 से 200 रु तक/200 से 300 रु तक/300 से 400 रु तक/400 रु से अधिक। स्पष्ट है कि बन्द प्रश्नों का उत्तर देने के लिए उत्तरदाता को अनेक विकल्पों में से किसी एक विकल्प का चयन करना पड़ता है।

1 *P. V. Young* : op. cit., p. 180.

ऐसी प्रश्नावली का प्रमुख लाभ यह है कि इनसे प्राप्त सूचनाओं का सरलता से सारणीयन करके उनका वर्गीकरण किया जा सकता है।

(4) खुली हुई प्रश्नावली (Open Questionnaire)

इस प्रकार की प्रश्नावली मे प्रश्नो के साथ उनके सम्भावित उत्तर नही दिए जाते बल्कि उत्तरदाता से यह आशा की जाती है कि वह अपनी इच्छानुसार कोई भी उत्तर दे। इसमे प्रत्येक प्रश्न के सामने कुछ स्थान रिक्त छोड दिया जाता है जिससे उस खाली स्थान पर उत्तरदाता अपना उत्तर लिख सके।

(5) चित्रमय प्रश्नावली (Pictorial Questionnaire)

साधारणतया प्रश्नावली का उपयोग केवल शिक्षित समूह के लिए ही किया जाता है लेकिन यदि कोई समूह कम शिक्षित हो और दूसरी ओर वहाँ व्यक्तियो से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करना किसी कारण कठिन समझा जाता हो तो ऐसी स्थिति मे चित्रमय प्रश्नावली के द्वारा तथ्यो का सग्रह करने का प्रयत्न किया जाता है। ऐसी प्रश्नावली मे प्रत्येक प्रश्न को बहुत सरल ढग से प्रस्तुत किया जाता है और उसके सम्भावित उत्तरो के स्थान पर विभिन्न चित्र इस प्रकार प्रदर्शित किए जाते हैं जिससे उत्तरदाता चित्रो के आधार पर अपने उत्तर को सरलता से चिह्नित कर सके। उदाहरण के लिए यदि प्रश्न यह हो कि आप गाँव मे रहना पसन्द करेंगे अथवा नगर मे ? तथा प्रश्न के आगे नगर और गाँव का चित्र बना दिया जाए तो उत्तरदाता सरलता से किसी एक पर चिह्न लगाकर अपनी पसन्द अभिव्यक्त कर सकता है। बच्चो की मनोवृत्तियो अथवा रुचि का अध्ययन करने के लिए भी ऐसी प्रश्नावलियाँ उपयोग मे लाई जाती हैं।

(6) मिश्रित प्रश्नावली (Mixed Questionnaire)

जैसा कि नाम से स्पष्ट है, मिश्रित प्रश्नावली वह होती है जिसमे प्रश्नो की प्रकृति किसी एक स्वरूप तक ही सीमित न होकर अनेक प्रकार के प्रश्नो से सम्बन्धित होती है। ऐसी प्रश्नावली मे साधारणतया बन्द और खुले हुए सभी प्रकार के प्रश्नो का समावेश होता है। एक विशेष सूचना अथवा विचार प्राप्त करने के लिए जिस प्रकार के प्रश्न को सबसे अधिक उपयुक्त समझा जाता है, उसका ऐसी प्रश्नावली मे समावेश कर लिया जाता है। वास्तविकता यह है कि सामाजिक तथ्य इतने जटिल और विविधतापूर्ण होते हैं कि एक विशेष प्रकृति के प्रश्नो द्वारा ही उन सभी को ज्ञात कर सकना बहुत कठिन होता है। विषय का व्यापक और गहन अध्ययन करने के लिए मिश्रित प्रश्नावली का उपयोग करके ही विश्वसनीय तथ्य प्राप्त किए जा सकते हैं। यही कारण है कि सामाजिक सर्वेक्षण तथा अनुसधान मे मिश्रित प्रश्नावली का उपयोग सबसे अधिक किया जाता है।

प्रश्नावली के निर्माण में सावधानियाँ

(Precautions in Constructing Questionnaire)

प्रश्नावली प्राथमिक तथ्यो को प्राप्त करने का एक उत्तम साधन है। इसकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि इसके निर्माण मे क्या-क्या सावधानियाँ

बरती गई हैं, अन्यथा प्रश्नावली का सम्पूर्ण उद्देश्य ही निरर्थक हो जाएगा, अतः इन सावधानियों पर गौर किया जाना चाहिए।

1. विषय का पूर्ण विश्लेषण (A Thorough Analysis of the Subject)– प्रायः समस्या के विभिन्न पक्ष होते हैं जिनमे कुछ अधिक महत्त्व के होते हैं तो कुछ कम महत्त्व के। अध्ययनकर्त्ता को यह सावधानी रखनी चाहिए कि प्रश्नावली सन्तुलित होनी चाहिए ताकि समस्त पक्षों का प्रतिनिधित्व प्रश्नावली में हो सके। इसके लिए वह अपने अनुभव, मित्रों का सहयोग, अन्य साहित्य-स्रोत इत्यादि को काम में ला सकता है, अत समस्त पक्षों का उचित विश्लेषण करने के पश्चात् ही प्रश्नावली को तैयार किया जाना चाहिए।

2 उपयोगिता (Utility)—प्रश्नो को प्रश्नावली मे स्थान देने से पूर्व यह देख लेना चाहिए कि अध्ययन के सम्बन्ध में उनकी उपयोगिता है या नहीं। निरर्थक प्रश्नो को स्थान नहीं दिया जाना चाहिए क्योंकि इसमे न केवल समय व धन का ही दुरुपयोग होता है बल्कि उद्देश्य की प्राप्ति भी नही होती।

प्रश्नावली की प्रकृति
(Nature of the Questionnaire)

प्रश्नावली की प्रकृति व अन्य पहलुओं पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध मे कुछ सुझाव निम्नलिखित हैं—

(i) प्रश्नों का आकार (Size of Questions)—प्रश्नो का आकार बड़ा नही होना चाहिए क्योंकि उत्तरदाता बड़े आकार को देखते ही विचलित हो जाता है, अत छोटी प्रश्नावलियाँ अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

(ii) भाषा की स्पष्टता (Clarity of Language)—प्रश्नावलियों की भाषा इतनी सरल और स्पष्ट होनी चाहिए कि एक साधारण उत्तरदाता उनके अर्थ व प्रयोग को समझ सके। भाषा को जटिल या मुहावरेदार नहीं बनाना चाहिए। किसी प्रकार की पारिभाषिक शब्दावलियों, बहुअर्थक शब्दों को जहाँ तक सम्भव हो सके, स्थान नहीं देना चाहिए। जितने प्रश्न सरल होगे, उनके उत्तर उतने ही स्पष्ट होगे।

(iii) इकाइयों की स्पष्टता (Clarity of Units)—अध्ययनकर्त्ता जिन इकाइयों को प्रयोग मे ला रहा है, उनको स्पष्ट रूप से परिभाषित करना चाहिए ताकि अलग-अलग उत्तरदाता अपने-अपने दृष्टिकोण से उनकी व्याख्या न करें।

(iv) उपयोगी प्रश्न (Useful Questions)—प्रश्न उपयोगी होने चाहिए। अनर्गल प्रश्नो से उत्तरदाता स्वय भी परेशान होता है और अनुसन्धानकर्त्ता का स्वय का भी उद्देश्य पूरा नही हो पाता है, अत ऐसे योग्य प्रश्न पूछे जाने चाहिए जिनसे कि उत्तरदाता भी इनका जवाब नि सकोच होकर दे।

(v) विशिष्ट प्रश्नों से बचाव (Avoidance of Specific Questions)– कुछ प्रश्नों का सम्बन्ध व्यक्तिगत जीवन, भावनाओं तथा रहस्यात्मक जीवन से होता है अतः ऐसे प्रश्नों से बचना चाहिए। कोई व्यंगात्मक प्रश्न भी नहीं पूछे जाने चाहिए,

क्योंकि उत्तरदाता की भावनाओं को ठेस पहुँच सकती है। यदि इस प्रकार के प्रश्नों से नहीं बचा गया तो अनुसन्धान का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा।

एक अच्छी प्रश्नावली की विशेषताएँ
(Features of a Good Questionnaire)

ए एल. बाउले (A. L Bowley) के अनुसार अच्छी प्रश्नावली की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

(1) प्रश्नों की संख्या कम होनी चाहिए।
(2) प्रश्न ऐसे होने चाहिए जिनका उत्तर 'हाँ' या 'नहीं' में दिया जा सकता हो।
(3) प्रश्नों की संरचना ऐसी होनी चाहिए कि व्यक्तिगत पक्षपात प्रवेश ही न कर पाए।
(4) प्रश्न सरल, स्पष्ट व एक-अर्थक होने चाहिए।
(5) प्रश्न एक-दूसरे को पुष्ट करने वाले हों।
(6) प्रश्नों की प्रकृति ऐसी होनी चाहिए कि अभीष्ट सूचना को प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त किया जा सके।
(7) प्रश्न अशिष्ट नहीं होने चाहिए।

प्रश्नावली की विश्वसनीयता
(Reliability of Questionnaire)

अब प्रश्न यह उठता है कि उत्तरदाताओं ने जो कुछ सूचनाएँ दी हैं, वे कहाँ तक विश्वसनीय हैं। विश्वसनीयता का पता तभी लग जाता है जब अधिकतर प्रश्नों के अर्थ अलग-अलग लगाए गए हों, ऐसी स्थिति में शंका उत्पन्न होती है—

अविश्वसनीयता की समस्या निम्नलिखित कारणों से उत्पन्न होती है—

(1) गलत एवं असंगत प्रश्न (Wrong and Irrelevant Questions)—जब गलत और असंगत प्रश्नों को प्रश्नावली में सम्मिलित किया जाता है तो उनके उत्तर भी उत्तरदाता अपने-अपने दृष्टिकोण से देते हैं। ऐसी स्थिति में उत्तरदाताओं द्वारा दी गई सूचनाएँ विश्वसनीय नहीं हो सकती।

(2) पक्षपातपूर्ण निदर्शन (Biased Sample) —निदर्शन का चयन करते समय यदि सावधानी नहीं रखी जाती है तो उसके परिणामों में विश्वसनीयता नहीं आ सकती। यदि सूचनादाताओं के चयन में अनुसन्धानकर्ता प्रभावित हुआ है तो निश्चित रूप से प्राप्त सूचना प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं हो सकती।

(3) नियन्त्रित व पक्षपातपूर्ण उत्तर (Controlled and Biased Responses)—प्रश्नावली प्रणाली द्वारा प्राप्त उत्तर अक्सर कम सही होते हैं। कुछ गोपनीय एवं व्यक्तिगत सूचनाएँ देने से वे संकोच करते हैं क्योंकि वे अपने हाथ से लिखकर देने से डरते हैं, अतः उनके उत्तरों में पक्षपात की भावना होती है। उनके उत्तरों में या तो तीव्र आलोचना मिलेगी या पूर्ण सहमति मिलेगी। सन्तुलित उत्तर प्राप्त नहीं हो पाते हैं।

(4) विश्वसनीयता की जांच (Test of Reliability)—प्रश्नावलियों में दिए गए उत्तरों में विश्वसनीयता प्रायः कम पाई जाती है इसीलिए उनकी जाँच कर लेनी चाहिए। इसके कतिपय तरीके निम्नवत् हैं—

(i) प्रश्नावलियों को पुनः भेजना (Sending Questionnaire Again)—विश्वसनीयता की परख के लिए प्रश्नावलियों को उत्तरदाताओं के पास पुनः भेज देना चाहिए। यदि उनके उत्तर इस बार भी पहले की तरह मेल खाते हैं तो प्राप्त सूचना पर विश्वास किया जा सकता है। यह जांच तभी उपयोगी सिद्ध हो सकती है जब उत्तरदाता की सामाजिक, आर्थिक या मानसिक परिस्थिति में कोई परिवर्तन न हुआ हो।

(ii) समान वर्गों का अध्ययन (Study of Similar Groups)—विश्वसनीयता की जाँच के लिए वही प्रश्नावली अन्य समान वर्गों के पास भेजी जाए, यदि उनसे प्राप्त उत्तरों में व पहले वाले वर्गों द्वारा दिए गए उत्तरों में समानता है तो दी गई सूचना पर विश्वास किया जा सकता है, लेकिन यदि दोनों में काफी अन्तर है तो विश्वास नहीं किया जा सकता।

(iii) उपनिदर्शन का प्रयोग करना (Using a Sub-sample)—यह भी जाँच करने की एक महत्त्वपूर्ण विधि है। प्रमुख निदर्शन में से एक उपनिदर्शन का चयन कर, प्रश्नावली की परख की जा सकती है। उपनिदर्शन से प्राप्त सूचनाओं और प्रमुख निदर्शन से प्राप्त सूचनाओं में यदि काफी अन्तर पाया जाता है तो प्रश्नावली अविश्वसनीय समझी जाएगी। यदि दोनों में बहुत कम असमानता है तो इसे विश्वसनीय समझा जाएगा।

(iv) अन्य तरीके (Miscellaneous Methods)—प्रश्न-पद्धतियों में साक्षात्कार, अनुसूची एवं प्रत्यक्ष निरीक्षण को सम्मिलित किया जा सकता है। इन विधियों द्वारा प्रश्नों के उत्तर लगभग समान हों तो प्रश्नावली को विश्वसनीय समझा जाएगा, अन्यथा नहीं।

प्रश्नावली के गुण या लाभ
(Merits of Questionnaire)

प्राथमिक तथ्यों को प्राप्त करने में प्रश्नावली-प्रणाली बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसके गुणों के कारण तथ्यों को आसानी से एकत्र किया जा सकता है। कुछ गुण या लाभ निम्नांकित हैं—

(i) विशाल अध्ययन (Vast Study)—इस पद्धति द्वारा विशाल जनसंख्या का अध्ययन सफलतापूर्वक हो सकता है। अन्य प्रणालियों में विशाल समूह के अध्ययन के लिए धन, समय और परिश्रम अधिक खर्च होता है और साथ-साथ सूचनादाताओं के पास भटकना पड़ता है। इन समस्त बुराइयों से यह प्रणाली बची हुई है।

(ii) कम व्यय (Less Expenses)—इस प्रणाली में क्षेत्रीय कार्यकर्त्ताओं को नियुक्त करने की आवश्यकता नहीं रहती, धन व्यय की बचत होती है। केवल छपाई व डाक खर्च ही होता है।

(iii) सुविधाजनक (Convenient)—इस प्रणाली की सबसे बड़ी सुविधा यह है कि सूचनाओं को कम समय के अन्दर ही प्राप्त कर लिया जाता है। प्रश्नावलियों को उत्तरदाताओं के पास भेज दिया जाता है और कुछ ही समय के भीतर इनको उत्तरदाता सूचना सहित भेज देते हैं। अनुसूची, साक्षात्कार आदि प्रणालियों मे अध्ययनकर्त्ता स्वय को व्यक्तिगत रूप से जाना पडता है और सूचना एकत्र करनी पडती है। अत इस दुविधा से बचने के लिए प्रश्नावली-प्रणाली बडी सुविधाजनक है।

(iv) पुनरावृत्ति की सम्भावना (Possibility of Repetition)—अलग-अलग समय मे प्रश्नावलियों को उत्तरदाताओं के दृष्टिकोण को पता लगाने के लिए भेज दिया जाता है या कुछ ऐसे अनुसन्धान होते हैं जिनमे निश्चित समय के बाद कई बार सूचना प्राप्त करनी होती है तो उसके लिए प्रश्नावली-पद्धति बडी उपयोगी है।

(v) स्वतन्त्र एव निष्पक्ष सूचना (Free and Impartial Information)—प्रश्नो के उत्तर देने मे उत्तरदाताओं को पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। इस प्रणाली मे अनुसन्धानकर्त्ता को व्यक्तिगत रूप से उत्तरदाता के समक्ष नही आना पडता है, अत उत्तरदाता बिना सकोच व हिचकिचाहट के स्वतन्त्र और निष्पक्ष सूचना देने का प्रयत्न करता है। अत इस पद्धति द्वारा प्राप्त सूचना अधिक विश्वसनीय व प्रामाणिक होती है।

प्रश्नावली के दोष या सीमाएँ
(Demerits or Limitations of Questionnaire)

यह प्रणाली पूर्ण रूपेण दोष रहित नही है। इसकी कुछ अपनी सीमाएँ हैं, जो इस प्रकार हैं—

(i) प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन की सम्भावना नहीं (No Possibility of Representative Sampling)—चूँकि प्रश्नावली का प्रयोग केवल शिक्षित व्यक्तियों से तथ्य सामग्री प्राप्त करने के लिए किया जाता है, अत. प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शनों का चयन नही हो सकता।

(ii) गहन अध्ययन के लिए अनुपयुक्त (Unsuitable for Deeper Study)—प्रश्नावली द्वारा केवल मोटे-मोटे तथ्यो को एकत्र किया जाता है। प्रश्न की गहराई तक नही पहुँचा जा सकता। साक्षात्कार द्वारा मनुष्य के मनोभाव, प्रवृत्तियों व आन्तरिक मूल्यो का गहराई से अध्ययन हो सकता है जबकि प्रश्नावली द्वारा केवल सहायक सूचनाएँ प्राप्त हो सकती हैं। पार्टन के शब्दो मे, "इसमे कोई सन्देह नही है कि सर्वोत्तम प्रश्नावली की अपेक्षा उत्तम साक्षात्कार द्वारा अधिक गहन अध्ययन किया जा सकता है।"

(iii) पूर्ण सूचना की कम सम्भावना (Less Possibility of Complete Information)—प्रश्नावली के सम्बन्ध मे यह कटु अनुभव है कि उत्तरदाता अक्सर अधिक दिलचस्पी नही लेते क्योंकि पहली बात तो यह है कि उनका अनुसन्धानकर्त्ता

से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता और दूसरी बात यह है कि उनका स्वयं का कोई प्रयोजन हल नहीं होता, अत वे लापरवाही से जवाब देते हैं। शब्दों का अर्थ अलग अलग लगाया जाता है, अत उनके उत्तर भी विश्वसनीय नहीं होते।

(iv) उत्तर-प्राप्ति की समस्या (Problem of Response)–प्रश्नावलियों के उत्तर न तो समय पर आते हैं और न उनके उत्तर ही सही आते हैं। बार-बार याद दिलाने पर भी वे समय पर नहीं लौटाई जातीं, अत कई बार अनुसन्धानकर्त्ता परेशान होकर उनको लिखना ही छोड देता है। ऐसी स्थिति मे वास्तविकता व सत्यता का पता नहीं लग सकता।

इन दोषों के बावजूद भी प्रश्नावली द्वारा तथ्य-सामग्री को एकत्र करने मे काफी सुविधा रहती है। जहाँ अध्ययन का क्षेत्र विस्तृत होता है, प्रश्नावलियों द्वारा, तथ्यों को एकत्र करने मे और भी सुविधा रहती है। इस पद्धति द्वारा प्राप्त सूचना या सामग्री अनावश्यक प्रभावों से मुक्त होती है। अनुसन्धानकर्त्ता के बारे मे सूचनादाताओं की अज्ञानता भी प्रातरिक सूचनाओं के प्राप्त होने मे वरदान सिद्ध होती है। इसी कारण तथ्यों को सकलित करने के लिए इसको अधिक अपनाया जा रहा है।

प्रश्नावली का निर्माण
(Construction of Questionnaire)

सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करने अथवा सामग्री का सकलन करने मे प्रश्नावली का स्थान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इस स्थिति मे प्रश्नावली का निर्माण जितना सावधानीपूर्वक तथा व्यवस्थित रूप से किया जाता है, सामग्री के सकलन मे यह विधि उतनी ही उपयोगी बन जाती है। विभिन्न स्तरों पर प्रश्नावली के निर्माण की प्रक्रिया मे जिन सावधानियों को ध्यान मे रखना आवश्यक है, उन्हे निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है—

(1) वाञ्छित सूचनाओं का निर्धारण–प्रश्नावली के निर्माण के प्रारम्भिक स्तर पर सर्वप्रथम अध्ययन विषय का समुचित विश्लेषण करना आवश्यक होता है। ऐसे विश्लेषण की सहायता से ही यह निर्धारित किया जा सकता है कि अध्ययनकर्त्ता को विषय के किन-किन पक्षों से सम्बन्धित तथ्यों का सग्रह करना है। उदाहरण के लिए यदि हम किसी क्षेत्र मे अस्पृश्यता की समस्या का अध्ययन करना चाहते हैं तो सबसे पहले यह आवश्यक होगा कि इस समस्या के अर्थ, सम्बन्धि क्षेत्र, समस्या की पृष्ठभूमि, समस्या की वर्तमान स्थिति, उसके पक्ष और विपक्ष मे लोगों के विचार, समस्या के समाधान के लिए व्यक्तियों के सुझाव आदि विभिन्न पक्षों को समुचित रूप से समझ लिया जाए। दूसरे स्तर पर यह जानना आवश्यक होगा कि इस समस्या के अध्ययन के लिए किस क्षेत्र से और किस प्रकृति के उत्तरदाताओं से सूचनाएँ को प्राप्त करना है। इसी स्तर पर अध्ययन-विषय से सम्बन्धित विभिन्न शब्दों अथवा इकाइयों के अर्थ को भी इस प्रकार सुनिश्चित कर लेना आवश्यक है जिससे प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उनका समान अर्थों मे उपयोग किया जा

सके। इस प्रकार अध्ययन-विषय का समुचित विश्लेषण करने से ही यह ज्ञात किया जा सकता है कि अध्ययनकर्त्ता को कौनसी और किस प्रकार की सूचनाओं की आवश्यकता है।

(2) **प्रश्नावली के प्रकार का निर्धारण**—अध्ययन-विषय का समुचित विश्लेषण कर लेने के बाद यह निर्धारित करना आवश्यक है कि किस प्रकार की प्रश्नावली के द्वारा वांछित सूचनाओं को सर्वोत्तम ढग से प्राप्त किया जा सकता है। प्रश्नावली के प्रकार का निर्धारण अध्ययन की प्रकृति, उत्तरदाताओं की प्रकृति तथा अध्ययनकर्त्ता को उपलब्ध साधनों को ध्यान मे रखते हुए किया जाना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि प्रश्नावली के अन्तर्गत बन्द प्रकृति के प्रश्न अधिक उपयुक्त रहेंगे, खुली हुई प्रकृति के या मिश्रित प्रकृति के इसका निर्धारण करना अध्ययनकर्त्ता के लिए बहुत आवश्यक होता है। इसी स्तर पर यह भी निर्धारित कर लेना आवश्यक है कि प्रश्नो के लिए किस प्रकार की भाषा अधिक उपयुक्त रहेगी।

(3) **प्रश्नो का निर्माण**—प्रश्नावली के निर्माण का यह सबसे बड़ा महत्त्वपूर्ण चरण है जिसके अन्तर्गत अध्ययनकर्त्ता को प्रश्नो का इस प्रकार निर्माण करना आवश्यक होता है जिससे वह अधिक से अधिक यथार्थ और गहन सूचनाएँ प्राप्त कर सके। इस सम्बन्ध मे प्रश्न यह उठता है कि प्रश्नावली म किस प्रकार के प्रश्नो का समावेश होना चाहिए ? अथवा यह है कि एक प्रश्नावली मे सम्मिलित किए जाने वाले उपयुक्त प्रश्न कौन से होते हैं ? इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित सावधानियो के आधार पर प्रश्नो का निर्माण सर्वोत्तम ढग से किया जा सकता है—

1 सर्वप्रथम प्रश्नो का निर्माण करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि विषय के एक पक्ष से सम्बन्धित सभी प्रश्न एक स्थान पर ही आयोजित हो तथा उन प्रश्नो के बीच एक क्रमबद्धता हो। इसी की सहायता मे उत्तरदाता विषय पर व्यवस्थित रूप से विचार करके उनके समुचित उत्तर दे सकता है।

2 प्रश्नो की भाषा बहुत सरल और स्पष्ट होनी चाहिए। प्रश्न मे यदि किसी विशेष तकनीकी शब्द का प्रयोग किया जा रहा है तो उसके अर्थ का उल्लेख पादटिप्पणी (Foot Note) के रूप म कर देना चाहिए। लम्बे प्रश्नो से उत्तरदाता कभी-कभी इतना भ्रमित हो जाता है कि वह प्रश्न का समुचित उत्तर नही द पाता। साथ ही, प्रश्न की भाषा इस प्रकार की भी होनी चाहिए कि उसका उत्तर अधिक से अधिक सक्षेप मे दिया जा सके।

3 यह ध्यान रखना आवश्यक है कि प्रश्न इतना स्पष्ट हो कि उत्तरदाता उसे सरलता से समझ सके। उदाहरण के लिए यह पूछने की जगह कि "क्या आप शिक्षित हैं ?" यह प्रश्न करना अधिक उपयुक्त रहता है कि 'आपने किस स्तर तक शिक्षा प्राप्त की है ?"

4 व्यक्तिगत विचारो से सम्बन्धित प्रश्न इस प्रकार बनाए जाने चाहिए जिससे उत्तरदाता के सामान्य उत्तर के बाद भी उसकी वास्तविक विचारधारा अथवा मनोवृत्ति को सरलता से समझा जा सके। उदाहरण के लिए "क्या आप जातिवाद को अच्छा समझते हैं ?" जैसा प्रश्न न पूछकर यदि यह पूछा जाए कि "आपके विचार से जाति-विभाजन किस सीमा तक उपयुक्त है ?" तो सम्बन्धित व्यक्ति की मनोवृत्ति को अधिक सरलता से समझा जा सकता है। प्रश्न इस प्रकार का भी नही होना चाहिए जिससे उत्तरदाता सच बात को कहने में भी अप्रसन्नता का अनुभव करे। उदाहरण के लिए यदि हम मद्यपान की समस्या का अध्ययन करना चाहते हैं तो अध्ययनकर्त्ता से यह प्रश्न करना कि "क्या आप रोज शराब पीते हैं ?" उसे तुरन्त अप्रसन्न कर सकता है। इसके स्थान पर यह प्रश्न इस प्रकार भी किया जा सकता है कि "साधारणतया आपके मासिक बजट का कितना प्रतिशत मद्यपान पर व्यय होता है ?"

5 उत्तरदाता को भी प्रश्न व्यक्तिगत आरोप के रूप में प्रतीत नही होना चाहिए। उदाहरण के लिए "आप एक वर्ष में कितना आयकर बचाते हैं ?" "क्या आपने कभी पुलिस को रिश्वत दी है ?" "क्या आप अपने पति के साथ रहना पसन्द करती हैं ?" आदि ऐसे प्रश्न हैं जिनका मूल से भी प्रश्नावली में समावेश हो जाने से इस बात की अधिक सम्भावना हो जाती है कि उत्तरदाता प्रश्नावली को भरकर वापस न भेजे। व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित प्रश्न पूछना यदि आवश्यक ही हो तो ऐसे प्रश्नो का निर्माण बहुत सावधानीपूर्वक इस प्रकार किया जाना चाहिए कि उत्तरदाता को वह प्रश्न अपने वैयक्तिक जीवन से सम्बन्धित प्रतीत न हो।

6 प्रश्नावली में किसी भी काल्पनिक दशा से सम्बन्धित प्रश्नो का समावेश नहीं होना चाहिए। उदाहरण के लिए यह प्रश्न करना कि "यदि आपके नाम से पाँच लाख रुपये की लाटरी खुल जाए तो आप उस धन का उपयोग किस प्रकार करेंगे ?" एक गलत और अवैज्ञानिक प्रश्न है। इसी प्रकार बहिर्विवाह के क्षेत्र को समझने के लिए यह प्रश्न करना कि "यदि आपको उच्च अध्ययन के लिए अमेरिका जाने का अवसर मिल जाए तो क्या आप किसी अमेरिकन स्त्री से विवाह करना पसन्द करेंगे ?" भी एक त्रुटिपूर्ण प्रश्न होगा।

7 यह ध्यान रखना अत्यधिक आवश्यक है कि कोई भी प्रश्न किसी भी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के नाम से सम्बन्धित न हो। यदि हम यह प्रश्न करें कि "महात्मा गांधी मद्यपान को सबसे बड़ी सामाजिक बुराई समझते थे, इस सम्बन्ध में आपके विचार क्या हैं ?" तो उत्तरदाता कभी भी प्रश्न के उत्तर में अपने व्यक्तिगत विचार स्पष्ट नही कर सकेगा।

8 प्रश्नावली में ऐसे प्रश्नो का भी समावेश नही होना चाहिए जो उत्तरदाता को एक विशेष उत्तर देने का अप्रत्यक्ष रूप से सकेत करते हो। उदाहरण के लिए यह प्रश्न करना कि "भारत के राजनीतिक जीवन को अधिक स्वस्थ बनाने के लिए

क्या आप यह आवश्यक समझते हैं कि चुनाव मे उम्मीदवार बनने के लिए प्रत्याशी को कम से कम हाई स्कूल पास अवश्य होना चाहिए ?" इसी प्रकार का प्रश्न है जिसका उत्तर प्रश्न के पक्ष मे ही मिलने की सम्भावना रहेगी। ऐसे प्रश्न उत्तरदाता के स्वतन्त्र विचार मे बाधक होते हैं।

9 प्रश्नावली का आकार सीमित रखने के लिए इसमे ऐसे प्रश्नो को सम्मिलित नही करना चाहिए जिनसे सम्बन्धित सूचना को अन्य साधनो से भी प्राप्त किया जा सकता है।

10 अनेक प्रश्न ऐसे हो सकते हैं जिनका अध्ययन-विषय से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता लेकिन अध्ययनकर्त्ता कभी-कभी अपनी जिज्ञासा का समाधान करने के लिए ही उन प्रश्नो को महत्त्वपूर्ण मान लेता है। इस प्रकार के प्रश्नों को भी प्रश्नावली मे नही रखा जाना चाहिए।

प्रश्नो के निर्माण से सम्बन्धित इन सभी सावधानियो से स्पष्ट होता है कि एक प्रश्नावली की सफलता बहुत कुछ प्रश्नो की प्रकृति और उनकी भाषा पर ही निर्भर है।

(4) प्रश्नों में संशोधन—प्रश्नावली के लिए प्रश्नो का निर्माण कर लेने के पश्चात् उसकी समुचित परीक्षा करना आवश्यक होता है। इस स्तर पर यदि कोई प्रश्न अनुपयोगी, दोषपूर्ण अथवा पक्षपातपूर्ण प्रतीत हो तो प्रश्नावली मे से उसे निकाल कर प्रश्नो मे संशोधन करना आवश्यक होता है। एक अध्ययनकर्त्ता संशोधन का यह कार्य प्रश्नो का सूक्ष्म रूप से अवलोकन करके भी कर सकता है लेकिन इसके लिए अधिक वैज्ञानिक तरीका यह है कि प्रश्नावली का पूर्व-परीक्षण कर लिया जाए। पूर्व-परीक्षण वह विधि है जिसके अन्तर्गत अध्ययनकर्त्ता अध्ययन-विषय से सम्बन्धित तीन-चार जागरूक उत्तरदाताओं मे प्रश्नावली का वितरण करके उनके द्वारा दिए गए उत्तरो के आधार पर यह देखने का प्रयत्न करता है कि विभिन्न प्रश्नो के प्रति उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया कैसी है तथा प्राप्त उत्तर व्यवस्थित और स्पष्ट हैं अथवा नहीं। इस विधि से प्राप्त किया गया अनुभव प्रश्नो के संशोधन मे बहुत सहायक सिद्ध होता है। प्रश्नावली को सरल बनाने के लिए यह कार्य सदैव ही अत्यधिक आवश्यक समझा जाता है।

(5) अनुमापों का निर्माण—प्रश्नावली मे अनेक प्रश्न इस प्रकार के होते हैं, जो एक विषय विशेष पर उत्तरदाताओं की मनोवृत्तियों अथवा व्यवहारों की प्रकृति को स्पष्ट करने वाले होते हैं। ऐसे प्रश्नों से सम्बन्धित उत्तर प्राप्त करने के लिए आवश्यक होता है कि कुछ विशेष अनुमापों अथवा पैमानों का निर्माण किया जाए। उदाहरण के लिए यदि हम अन्तर्जातीय विवाह करने वाले व्यक्ति से यह प्रश्न करें कि "अन्तर्जातीय विवाह की सफलता के बारे मे आपके अनुभव क्या हैं ?" तो सम्भव है कि उत्तरदाता अपने विचार को व्यवस्थित रूप से स्पष्ट न कर सके। दूसरी ओर यदि हम लिकर्ट के पैमाने के आधार पर प्रश्न इस प्रकार करें कि "अन्तर्जातीय विवाह से आप कितने सन्तुष्ट हे ''—बहुत अधिक सन्तुष्ट/सन्तुष्ट/

अनिश्चित/असन्तुष्ट/पूर्णतया असन्तुष्ट-तो स्वाभाविक रूप से उत्तरदाता को अपने विचारों की निकटतम सीमा को स्पष्ट करने वाली एक ऐसी श्रेणी मिल जाती है जिसे चिन्हित करके वह अपनी भावना को अभिव्यक्त कर सकता है। इसी प्रकार विभिन्न समूहों, वर्गों अथवा लोगों के प्रति निकटता अथवा दूरी को जानने से सम्बन्धित प्रश्नों के लिए बोगार्डस के 'सामाजिक दूरी के पैमाने' का उपयोग किया जा सकता है। प्रश्नावली के अन्तर्गत अनुमापों का निर्माण जितना सफलतापूर्वक कर लिया जाता है, प्रश्नावली उतनी ही अधिक उपयोगी बन जाती है।

(6) बाह्य आकृति पर ध्यान—प्रश्नावली का निर्माण करने की प्रक्रिया में इसके बाहरी स्वरूप पर ध्यान देना भी अत्यधिक आवश्यक होता है। बाह्य आकृति का तात्पर्य है कि प्रश्नावली का आकार, कागज का रंग-रूप तथा उसकी छपाई इतनी आकर्षक हो कि उत्तरदाताओं से सरलतापूर्वक उत्तर प्राप्त किए जा सकें। अनेक सर्वेक्षण से यह सिद्ध हो चुका है कि प्रश्नावली की बाह्य आकृति जितनी आकर्षक होती है, प्राप्त उत्तरों का प्रतिशत भी उतना ही अधिक होता है। इस सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि प्रश्नावली का आकार क्या होना चाहिए? वास्तव में प्रश्नावली के आकार का निर्धारण प्रश्नों की संख्या को देखते हुए निर्धारित किया जाना चाहिए। साधारणतया 8″×10″ के आकार की प्रश्नावली इसलिए उपयुक्त समझी जाती है कि इसके अन्तर्गत उत्तर लिखने के लिए पर्याप्त स्थान मिल जाता है। प्रश्नावली किसी भी आकार में हो लेकिन इसमें कुछ चित्रों तथा चार्टों का समावेश करके इसे आकर्षक बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। यह भी आवश्यक है कि प्रश्नावली के लिए उपयोग में लाया जाने वाला कागज अच्छी किस्म का हो जिसमें उसके शीघ्र ही फट जाने की सम्भावना न रहे। प्रश्नावली उत्तरदाता के पास क्योंकि डाक द्वारा प्रेषित की जाती है, अतः उसके प्रति उत्तरदाता को आकर्षित करने के लिए हल्के और आकर्षक रंग के कागज का उपयोग करना अधिक उपयुक्त रहता है। अनेक व्यावसायिक सर्वेक्षणों से यह तथ्य सामने आया है कि हल्के पीले, नीले और हरे रंग पर छपी प्रश्नावलियों से अधिक संख्या में उत्तर प्राप्त हो सके है। यदि एक सर्वेक्षण के लिए उत्तरदाताओं के पास दो या तीन बार पृथक्-पृथक् प्रश्नावलियाँ भेजने की आवश्यकता हो तो सभी प्रश्नावलियों के कागज का रंग एक दूसरे से भिन्न रखना अधिक उपयोगी होता है। प्रश्नावली की छपाई पूर्णतया त्रुटिरहित होनी चाहिए। सभी शीर्षकों और प्रश्नों के पूर्णतया स्पष्ट होने से उत्तरदाता सहज ही प्रश्नावली को भरने के लिए तैयार हो जाता है।

उपयुक्त विधि के द्वारा प्रश्नावली का निर्माण करने के साथ ही यह जानना भी अत्यधिक आवश्यक है कि प्रश्नावली का प्रयोग किस विधि के द्वारा किया जाना चाहिए? एक प्रश्नावली जब डाक द्वारा उत्तरदाता के पास भेजी जाती है तो सर्वप्रथम इसके साथ अध्ययनकर्त्ता द्वारा लिखित एक सहगामी पत्र संलग्न करना अत्यधिक आवश्यक होता है। इस पत्र में अध्ययन के उद्देश्य को बहुत संक्षेप में स्पष्ट करने के साथ ही उत्तरदाता से अत्यधिक विनम्र शब्दों में अपना सहयोग देने

और एक निश्चित अवधि के अन्दर निर्धारित पते पर प्रश्नावली को भरकर लौटाने का निवेदन किया जाता है। इसी पत्र के द्वारा उत्तरदाता को यह विश्वास भी दिलाया जाता है कि उसके द्वारा दी गई समस्त सूचनाएँ पूर्णतया गोपनीय रहेंगी और किसी भी सूचना का उपयोग किसी व्यक्ति के नाम से नहीं किया जाएगा। इसके पश्चात् भी प्रश्नावली के द्वारा उत्तर प्राप्त करना साधारणतया एक कठिन कार्य होता है। इस स्थिति में यह आवश्यक समझा जाता है कि उत्तरदाता को यदि प्रश्नावली वापस करने के लिए 20 दिन का समय दिया गया हो तो 10 दिन के पश्चात् ही उसे एक अनुगामी पत्र भेज कर प्रश्नावली को वापस करने का स्मरण कराया जाए। ऐसे अनुगामी पत्र निर्धारित अवधि के समाप्त होने के बाद भी उन उत्तरदाताओं के पास भेजना उपयोगी होता है जिनसे उत्तर प्राप्त नहीं हो सके हैं। इन प्रयत्नों के बाद भी अध्ययनकर्त्ता को सभी उत्तरदाताओं से भरी प्रश्नावलियाँ वापस नहीं मिलतीं। साधारणतया यदि डाक द्वारा प्रेषित प्रश्नावलियों में आधी प्रश्नावलियाँ भी वापस मिल जाती हैं तो इसे अध्ययन की सफलता मानना चाहिए। वास्तव में कम प्रश्नावलियों का वापस आना स्वयं इस विधि की एक सीमा है। यही कारण है कि यदि कोई अध्ययन 250 उत्तरदाताओं के विचारों के आधार पर करना उपयोगी समझा जाता है तो प्रारम्भिक स्तर पर साधारणतया 500 उत्तरदाताओं का चयन करके उनके पास प्रश्नावली भेजी जाती है।

अनुसूची
(Schedule)

अनुसूची' तथा 'प्रश्नावली' का साधारणतया समान अर्थों में ही प्रयोग कर लिया जाता है। ऐसी धारणा बहुत भ्रमपूर्ण है। यह सच है कि बाह्य रूप से अनुसूची तथा प्रश्नावली का स्वरूप एक दूसरे के बहुत समान होता है तथा इनके निर्माण में भी समान प्रकार की सावधानियाँ रखना आवश्यक होता है लेकिन इन दोनों की प्रकृति और उपयोग की प्रक्रिया एक-दूसरे से अत्यधिक भिन्न है। वास्तव में अनुसूची अनेक प्रश्नों की एक ऐसी लिखित सूची है जिसे लेकर अध्ययनकर्त्ता उत्तरदाता के पास स्वयं जाता है और विभिन्न प्रश्नों को पूछकर स्वयं ही उनके उत्तरों का आलेखन करता है। इसका तात्पर्य है कि अनुसूची को उत्तरदाता के पास कभी भी डाक द्वारा प्रेषित नहीं किया जाता बल्कि यह साक्षात्कार का एक सरल माध्यम है। पूर्व विवेचन से यह स्पष्ट हो चुका है कि प्रश्नावली प्रविधि के अपने अनेक दोष हैं। प्रश्नावली के द्वारा अध्ययनकर्त्ता को कोई ऐसा अवसर नहीं मिल पाता जिससे वह उत्तरदाता के समक्ष अपने वास्तविक प्रयोजन को स्पष्ट कर सके अथवा उसके द्वारा दी गई सूचनाओं की सत्यता को समझ सके। अनुसूची ऐसे सभी दोषों से मुक्त है। वास्तविकता तो यह है कि प्राथमिक सामग्री का सकलन करने के लिए अनुसूची एक ऐसी प्रविधि है जिसमें अवलोकन, साक्षात्कार तथा प्रश्नावली की विशेषताओं का समन्वय होता है। इसके अन्तर्गत अध्ययनकर्त्ता प्रश्नों की एक निश्चित सूची लेकिन उत्तरदाताओं से साक्षात्कार के रूप में विभिन्न सूचनाएँ प्राप्त

करता है तथा स्वय विभिन्न तथ्यो का अवलोकन करके दिए गए उत्तरो की सत्यता को जाँचने का प्रयत्न करता है। इस आधार पर अनेक विद्वान् अनुसूची को एक ऐसी प्रविधि के रूप मे देखते हैं जिसका उद्देश्य 'साक्षात्कार अनुसूची' (Interview Schedule) भी कहा जाता है। अनुसूची की मौलिक मान्यता यह है कि किसी घटना पर नियन्त्रण रख सकना अत्यधिक कठिन होने के कारण यह आवश्यक है कि स्वय अध्ययनकर्त्ता अथवा साक्षात्कारकर्त्ता के व्यवहार पर नियन्त्रण रखा जाए।

अनुसूची का अर्थ एवं परिभाषाएँ
(Meaning and Definitions of Schedule)

सामान्य अर्थों म अनुसूची प्रश्नो की एक लिखित सूची है जो अध्ययनकर्त्ता द्वारा अध्ययन विषय को ध्यान मे रखकर बनाई जाती है। इसमे अनुसन्धानकर्त्ता स्वय घर घर जाकर प्रश्नो के उत्तर अनुसूचियो द्वारा प्राप्त करता है। एम एच गोपाल के शब्दो मे, "अनुसूची एक ऐसी प्रविधि है जिसे विशेष रूप से सर्वेक्षण प्रणाली के अन्तर्गत क्षेत्रीय सामग्री एकत्र करने मे प्रयोग किया जाता है।"

गुडे तथा हट्ट के अनुसार, 'अनुसूची उन प्रश्नो के समूह का नाम है जो साक्षात्कारकर्त्ता द्वारा किसी अन्य व्यक्ति के आमने सामने की स्थिति मे पूछे और भरे जाते है।"[1]

इन सभी परिभाषाओ से स्पष्ट होता है कि अनुसूची बहुत-से प्रश्नो की अथवा अध्ययन-विषय से सम्बन्धित विभिन्न पक्षो की एक ऐसी व्यवस्थित और वर्गीकृत सूची है जिसका उपयोग अध्ययनकर्त्ता द्वारा उत्तरदाताओ से साक्षात्कार की प्रक्रिया द्वारा करके आवश्यक सूचनाओ का सग्रह किया जाता है। इस दृष्टिकोण मे अनुसूची की प्रकृति को इसकी निम्नांकित विशेषताओ के द्वारा सरलतापूर्वक समझा जा सकता है—

(1) अनुसूची अध्ययन-विषय के विभिन्न पक्षो से सम्बन्धित अनेक शीर्षको और प्रश्नो की एक व्यवस्थित और वर्गीकृत सूची है।

(2) इसका उपयोग स्वय अध्ययनकर्त्ता द्वारा उत्तरदाता से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करके इस प्रकार किया जाता है जिससे उत्तरदाता अध्ययन-विषय के विभिन्न पक्षो से सम्बन्धित अधिक से अधिक सूचनाएँ प्रदान कर सके।

(3) अनुसूची मे अवलोकन के गुणो का समावेश होता है। अध्ययनकर्त्ता केवल प्रश्नो के द्वारा ही सूचनाएँ प्राप्त नहीं करता बल्कि स्वय भी घटनाओ का अवलोकन करके सूचनाओ की सत्यता को जानने का प्रयत्न करता है।

(4) अनुसूची अध्ययनकर्त्ता पर नियन्त्रण बनाए रखने की भी एक प्रविधि है। इसका तात्पर्य है कि अनुसूची के द्वारा किए जाने वाले अवलोकन और साक्षात्कार मे अध्ययनकर्त्ता अपने विषय से अलग नहीं हट पाता।

(5) साधारणतया अनुसूची का प्रयोग अशिक्षित उत्तरदाताओ से सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए किया जाता है लेकिन यदि अध्ययन-विषय बहुत जटिल अथवा

1 *Goode and Hatt*, op cit, p 133

भावनात्मक प्रकृति का हो तो शिक्षित उत्तरदाताओं से सूचनाएँ प्राप्त करने में भी यह प्रविधि बहुत उपयोगी होती है।

(6) अनुसूची एक छोटे क्षेत्र में किए जाने वाले अध्ययन के लिए अधिक उपयुक्त होती है लेकिन विशेष परिस्थितियों में एक बड़े क्षेत्र में फैले हुए सीमित संख्या वाले उत्तरदाताओं से सूचनाएँ एकत्रित करने में भी इसका महत्त्व बहुत अधिक होता है।

अनुसूची की प्रकृति से यह स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में अनुसूची की उपयोगिता प्रश्नावली से भी अधिक है। इस प्रविधि के प्रयोजन अथवा उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए डॉ गोपाल ने लिखा है कि "अनुसूची का मुख्य उद्देश्य विभिन्न स्रोतों से प्रत्यक्ष रूप से निश्चित, परिमाणात्मक और वस्तुनिष्ठ सामग्री को प्राप्त करना होता है।" वास्तविकता यह है कि अनुसूची के द्वारा एक ओर अधिक प्रामाणिक और वस्तुनिष्ठ सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती है तो दूसरी ओर इसकी सहायता से अपूर्ण सूचनाओं के दोष को दूर करके सूचनाओं का सत्यापन करना भी सम्भव हो जाता है। अनुसूची का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य आवश्यक तथ्यों का बहिष्कार करके उपयोगी सूचनाओं का इस प्रकार आलेखन करना होना है जिससे तथ्यों का समुचित रूप में वर्गीकरण करके व्यवस्थित निष्कर्ष प्रस्तुत किए जा सकें। ये सभी उद्देश्य इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में अनुसूची को एक अत्यधिक उपयोगी प्रविधि के रूप में देखा जाने लगा है।

अनुसूची के उद्देश्य
(Objects of Schedule)

(i) *प्रामाणिक अध्ययन (Valid Study)*—प्रामाणिक उत्तर प्राप्त करने के लिए, अनुसन्धानकर्त्ता स्वयं व्यक्तिगत रूप में व्यक्तियों से सम्बन्ध स्थापित करता है। अनुसन्धानकर्त्ता वही उत्तर प्राप्त करने का प्रयत्न करता है जो उसकी दृष्टि में उपयोगी व सार्थक है, अतः उत्तरदाताओं को विभिन्न अर्थ लगाने का अवसर नहीं मिलता। इससे अध्ययन में प्रामाणिकता आती है।

(ii) *अनुपयोगी सकलन से बचाव (Guard against useless collection)*—अनुसूची का उद्देश्य विषय में सम्बन्धित प्रश्नों का क्रमबद्ध उत्तर प्राप्त करना होता है। अनुसूची अपनी स्मरण शक्ति पर आवश्यक रूप से भरोसा करने के जोखिम से अनुसन्धानकर्त्ता को बचाती है। अनुसूची में ऐसी कोई गलती नहीं हो सकती क्योंकि प्रश्न लिखित व क्रमबद्ध हैं। अतः इसमें केवल सम्बन्धित तथ्यों को ही सकलित किया जाता है।

(iii) **संख्यात्मक आँकड़ों के सकलन में उपयोगी (Useful in collecting numerical facts)**—यह प्रविधि सख्यात्मक सूचनाओं एवं आँकड़ों के सकलन में अधिक उपयोगी है। विचारात्मक सूचनाओं या भावनात्मक जानकारी के लिए यह प्रविधि उपयुक्त नहीं है।

अनुसूची के प्रकार
(Types of Schedule)

जॉर्ज लुण्डबर्ग ने सभी अनुसूचियों को तीन प्रमुख भागों में विभाजित कर इनकी प्रकृति को स्पष्ट किया है--(क) वस्तुनिष्ठ तथ्यों को लिपिबद्ध करने वाली अनुसूचियाँ, (ख) अभिवृत्तियों तथा मतों का निर्धारण और उनकी माप करने वाली अनुसूचियाँ तथा (ग) सामाजिक संगठनों तथा संस्थाओं की स्थिति और कार्यों को जानने से सम्बन्धित अनुसूचियाँ। पी वी यंग ने अनुसूची के चार प्रकारों का उल्लेख किया है–अवलोकन अनुसूची मूल्यांकन अनुसूची, प्रलेख अनुसूची तथा संस्था-सर्वेक्षण अनुसूची। अनेक दूसरे विद्वानों ने भी अनुसूची के विभिन्न प्रकारों को स्पष्ट किया है। इन सभी विवेचनाओं के आधार पर अनुसूची के निम्नांकित पाँच प्रमुख प्रकारों को स्पष्ट किया जा सकता है–

(1) अवलोकन अनुसूची (Observation Schedule)—जैसा कि नाम से स्पष्ट है यह अनुसूची वह प्रकार है जिसमें साक्षात्कार के लिए किन्हीं निश्चित प्रश्नों का समावेश नहीं होता। ऐसी अनुसूची का उद्देश्य विभिन्न शीर्षकों अथवा अध्ययन-विषय से सम्बन्धित उन पक्षों को स्पष्ट करना होता है जिनके आधार पर अध्ययनकर्त्ता घटनाओं का स्वयं अवलोकन करके प्रमुख तथ्यों को संकलित कर सके। इस आधार पर अवलोकन अनुसूची को 'अवलोकन प्रदर्शिका' भी कहा जाता है। अध्ययनकर्त्ता ऐसी अनुसूची का दो प्रकार से सहयोग ले सकता है–प्रथम, इसमें अंकित बातें अध्ययनकर्त्ता को विभिन्न तथ्यों का अध्ययन करने के लिए मार्गनिर्देशन दे सकती हैं और दूसरी ओर इसकी सहायता से अध्ययनकर्त्ता अध्ययन-विषय से दूर नहीं हट पाता। इस दृष्टिकोण से अवलोकन अनुसूची कार्य स्वयं अध्ययनकर्त्ता पर नियन्त्रण स्थापित करना है।

(2) मूल्यांकन अनुसूची (Rating Schedule)—इस प्रकार की अनुसूची का उपयोग सूचनादाताओं की मनोवृत्तियों, अभिरुचियों, राय अथवा पसन्द का मूल्यांकन करने के लिए किया जाता है। विभिन्न सामाजिक घटनाओं तथा समस्याओं का मूल्यांकन करने अथवा उनकी तुलनात्मक स्थिति का निर्धारण करने में भी ऐसी अनुसूचियाँ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती हैं। मूल्यांकन अनुसूची में विभिन्न प्रश्नों के उत्तरों का महत्त्व संख्या में निर्धारित कर लिया जाता है और उत्तरदाता विभिन्न उत्तरों के क्रमिक महत्त्व को समझते हुए एक विशेष उत्तर देता है। इस प्रकार यह मालूम हो जाता है कि यदि कोई व्यक्ति किसी घटना अथवा स्थिति के कितने पक्ष या विपक्ष में है।

(3) प्रलेख अनुसूची (Document Schedule)—पी वी यंग के अनुसार "प्रलेख अनुसूचियों का उपयोग ऐसी सामग्री का आलेखन करने के लिए किया जाता है जिन्हें विभिन्न प्रकार के प्रलेखों व्यक्तिगत जीवन इतिहासों तथा अन्य प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है।" इसका तात्पर्य है कि ऐसी अनुसूची उत्तरदाताओं की

सहायता से द्वैतीयक सामग्री के स्रोतों को जानने के एक सरल माध्यम के रूप में कार्य करती है।

(4) संस्था सर्वेक्षण अनुसूची (Institution Survey Schedule)—इस प्रकार की अनुसूची का प्रयोग किसी संस्था जैसे धर्म, परिवार, विवाह, शिक्षा आदि के विशिष्ट पहलू का अध्ययन करने के लिए किया जाता है। कोई संस्था अपनी प्रकृति से जितनी अधिक जटिल होती है उसके अनुसार ऐसी अनुसूची का आकार भी अपेक्षाकृत अधिक बड़ा हो जाता है। इसका कारण यह है कि जटिल तथ्यों के अध्ययन के लिए निर्धारित प्रश्नों की संख्या अधिक होने से ही उपयोगी सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। ऐसी अनुसूची के कार्य-क्षेत्र और उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए पी वी यंग ने लिखा है कि "इन अनुसूचियों की रचना किसी संस्था के समक्ष उत्पन्न होने वाली अथवा उसमें विद्यमान समस्याओं की जानकारी करने के लिए की जाती है।" वर्तमान समय में सरकारी समितियों, पंचायतों की कार्य-पद्धति शिक्षा संस्थाओं तथा पुलिस प्रशासन जैसे विषयों के अध्ययन में ऐसी अनुसूचियों का उपयोग करना अधिक उपयोगी समझा जाता है।

(5) साक्षात्कार अनुसूची (Interview Schedule)—यह अनुसूची किसी विशेष विषय पर कुछ व्यक्तियों का साक्षात्कार करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। इसके अन्तर्गत अध्ययन-विषय के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित प्रश्नों का इस प्रकार समावेश किया जाता है, जिससे अध्ययनकर्ता किसी व्यक्ति का व्यवस्थित रूप से साक्षात्कार करके सूचनाओं का संकलन कर सके। ऐसी अनुसूची के द्वारा उत्तरदाता द्वारा दिए गए वर्णनात्मक उत्तरों का भी संक्षेप में आलेखन करके उनका सरलतापूर्वक वर्गीकरण और सारणीयन किया जा सकता है। साक्षात्कार अनुसूची में प्रश्नों का संयोजन जितना व्यवस्थित होता है, उनसे उतनी ही उपयोगी सूचनाएँ प्राप्त करना सम्भव हो जाता है।

आवश्यक स्तर
(Essential Stages)

उपर्युक्त अनुसूचियाँ को तथ्यों के संकलन के लिए काम में लाया जाता है। अनुसूची द्वारा सामग्री प्राप्त करने के लिए कुछ आवश्यक स्तरों (Stages) से गुजरना पड़ता है, जिन्हें हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं—

(1) उत्तरदाताओं का चयन (Selection of Respondents)—अनुसूची के प्रयोग करने में सर्वप्रथम उत्तरदाताओं का चयन किया जाता है जिनसे कि सूचना एकत्र करनी होती है। इसके अन्तर्गत दो प्रकार की प्रणालियाँ को अपनाया जा सकता है—सगणना पद्धति (Census Method) और निदर्शन पद्धति। जहाँ समूह के सभी व्यक्तियों से साक्षात्कार करके अनुसूची को भरा जाए, उसमें सगणना पद्धति को अपनाया जाता है। सगणना पद्धति को अपनाने से पूर्व अनुसन्धानकर्त्ता देख लेता है कि अध्ययन-समस्या की प्रकृति किस प्रकार की है। वह समूह को कई उप समूहों में भी विभाजित कर सकता है। इसके बावजूद भी उन सबके उत्तरों का अनुसूची

मे स्थान नहीं दे सकता तो निदर्शन पद्धति को काम मे लाया जाता है। निदर्शन पद्धति द्वारा कुछ उत्तरदाताओ का चयन कर उनका साक्षात्कार कर लिया जाता है और उनसे प्राप्त सूचनाओ को अनुसूचियो मे भर दिया जाता है। चुने हुए व्यक्तियो का पूरा ब्यौरा अर्थात् उनके बारे मे प्रारम्भिक जानकारी को तुरन्त लिख लिया जाना चाहिए। इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि उत्तरदाता उपलब्ध होगे अथवा नहीं। उनसे सम्पर्क बनाए रखना चाहिए।

(2) **जाँचकर्त्ताओं का चयन एव प्रशिक्षण (The Selection and Training of Investigators)**—जहाँ कुछ लोगो का साक्षात्कार करना है, वहाँ अनुसधानकर्त्ता स्वय जाकर उनसे अभीष्ट सूचना प्राप्त कर उसे अनुसूची मे भर सकता है। यदि साक्षात्कारदाताओ की सख्या अधिक हो तो अनुसधानकर्त्ता कुछ ऐसे जाँचकर्त्ताओ का चयन कर सकता है जो बडी ही कुशलता, सूझबूझ, धैर्य और हाशियारी से अनुसूची मे साक्षात्कार द्वारा सूचना को भर सकता हो। उनके चयन मे अनुसधानकर्त्ता को बडी सावधानी रखनी पडती है क्योकि बिना अनुभव वाले जिन जाँचकर्त्ताओ का चयन किया जा रहा है वे यदि अनुपयुक्त सिद्ध होते हो तो अनुसधान कार्य सही रूप मे सचालित नही हो सकता। अत. उन्हे विशेष रूप से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। उनके लिए प्रारम्भिक प्रशिक्षण शिविर होने चाहिए ताकि उन्हे अध्ययन की प्रकृति, क्षेत्र, उद्देश्य, अनुसूचियो को भरने के तरीके, साक्षात्कार के तरीके, कौनसी सूचनाओ को प्राथमिकता देना आदि बातो का पूरा ज्ञान एव प्रशिक्षण दिया जाए।

(3) **तथ्य सामग्री का सकलन (Collection of Data)**—तथ्य सामग्री के सकलन के लिए अध्ययनकर्त्ता या जाँचकर्ता को साक्षात्कार करने के लिए निश्चित स्थान पर पहुँचना पडता है। उत्तरदाताओ से सूचना प्राप्त करके उसे अनुसूची म भरना होता है, लेकिन इसके लिए एक क्रमिक प्रक्रिया को अपनाना पडता है जिसका वर्णन निम्नाकित रूप मे किया जाता है—

(a) **सूचनादाताओं से सम्पर्क (Contact with Informants)**—साक्षात्कार द्वारा सूचना प्राप्त करने से पूर्व, सूचनादाताओ से सम्पर्क करना होता है। इस सम्पर्क स्थापित करने मे क्षेत्रीय कार्यकर्त्ताओ को कुशलता, चतुरता, धैर्य व शान्ति से काम लेना पडता है। यदि प्रारम्भ मे ही कार्यकर्त्ता, सूचनादाता को प्रभावित नही कर पाया तो उससे सूचना प्राप्त करना मुश्किल हो जाता है। यदि सूचनादाता के मस्तिष्क मे, कार्यकर्त्ता के प्रति कुछ गलत धारणाएँ बैठ गई या कोई सशय पैदा हो गया तो ऐसी स्थिति मे सूचना प्राप्त करना बिलकुल असम्भव है। अत कार्यकर्त्ता को चाहिए कि वह बडे ही प्रभावशाली ढग से अपना परिचय दे, अपनी मधुर वाणी और सौम्य स्वभाव से उसका हृदय जीत ले। उसे अत्यन्त विनम्र ढग से अभिवादन करके, उसके स्वभाव, आदर्शों एव व्यवहार के साथ तारतम्य स्थापित करना चाहिए। अत उसे ऐसी स्थिति उत्पन्न करनी चाहिए कि सूचनादाता स्वय उत्साहित

होकर सूचना दे। इसीलिए कार्यकर्त्ता को उसके बारे मे संक्षिप्त जानकारी पहले ही कर लेनी चाहिए। कार्यकर्त्ता को यह ध्यान रखना चाहिए कि उससे प्रश्न कब पूछे जाएँ। यदि सूचनादाता किसी काम मे व्यस्त हो गया हो तो उसके काम मे विघ्न नही पहुँचाना चाहिए। उसे धैर्य रखकर समयानुकूल परिस्थिति मे ही प्रश्न पूछने चाहिए।

(b) साक्षात्कार (Interview)—सूचनादाता से सम्पर्क स्थापित करने के पश्चात् साक्षात्कार का कार्य शुरू किया जाता है। साक्षात्कार करना भी उतना ही कठिन है जितना कि सूचनादाताओं से सम्पर्क स्थापित करना। साक्षात्कार करते समय, अनुसंधानकर्त्ता को यह विशेष ध्यान रखना चाहिए कि वह प्रश्नों की बौछार एकदम न कर दे। उसका उद्देश्य साक्षात्कारदाता से अधिक से अधिक विश्वसनीय जानकारी प्राप्त करना होता है, यह तभी सम्भव हो सकता है जब अनुसंधानकर्त्ता एक स्वाभाविक वातावरण मे सूचनादाता के मनोभावो को ध्यान मे रखते हुए, सूचना प्राप्त करता है। बीच मे थोडा रुककर कुछ इधर-उधर की बातें करनी चाहिए ताकि सूचनादाता की अभिरुचि बनी रहे। साक्षात्कार को रोचक बनाने के लिए कुछ हँसी मजाक की बात भी कर लेनी चाहिए या कोई उपयुक्त दृष्टान्त दे देना चाहिए, ताकि सूचनादाता, साक्षात्कार को कोई बोझ न समझ कर एक 'रुचिपूर्ण भेंट' समझे।

(c) सूचना प्राप्त करना (To Obtain Information)—साक्षात्कार करते समय यह समस्या पैदा हो जाती है कि सूचनादाता से किस प्रकार सगतपूर्ण एव विश्वसनीय सूचनाएँ प्राप्त की जाएँ। साक्षात्कारकर्त्ता को अनुसूची मे से एक-एक करके प्रश्न कर सूचना प्राप्त करनी चाहिए। लेकिन साक्षात्कारदाता के दिमाग मे यह आशका पैदा न हो कि अनुसंधानकर्त्ता उससे कोई गुप्त जानकारी प्राप्त कर रहा है या उसे किसी उलझन मे डाल रहा है। यदि उत्तरदाता सूचना देते समय मुख्य विषय से हट जाता है तो उसे ऐसी स्थिति मे बडी सावधानीपूर्वक उसका ध्यान मुख्य विषय की ओर केन्द्रित करना चाहिए या उसे साक्षात्कार के बीच मे कुछ अन्य बातें करके, बन्द कर देना चाहिए। यह भी सम्भव हो सकता है कि प्रश्नो के स्पष्ट न होने के कारण सूचनादाता उसका कुछ और ही अर्थ समझ बैठे जिसके फलस्वरूप वह मुख्य विषय से विचलित हो जाता है। अत अनुसंधानकर्त्ता या अध्ययनकर्त्ता को चाहिए कि वे सटीक एव स्पष्ट प्रश्नो का निर्माण करें।

अनुसूचियो का सम्पादन
(Editing of Schedules)

जब जांचकर्त्ताओ से अनुसूचियाँ प्राप्त हो जाती हैं तो उनका सम्पादन किया जाता है, जिसकी प्रक्रियाएँ इस प्रकार हैं—

(i) अनुसूचियों की जांच (Checking the Schedules)—सर्वप्रथम कार्यकर्त्ताओ द्वारा भेजी हुई अनुसूचियो की जाँच की जाती है। वहाँ यह ध्यान रखा जाता है कि सभी अनुसूचियाँ प्राप्त हुई हैं अथवा नही। इसके पश्चात् सूचियो का

वर्गीकरण किया जाता है। यह वर्गीकरण कार्यकर्त्ताओं या जाँचकर्त्ताओं के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक जाँचकर्त्ता द्वारा भेजी गई अनुसूचियों की फाइल अलग-अलग तैयार की जाती है और उस फाइल पर चिट लगाकर कार्यकर्त्ता का नाम, क्षेत्र, सूचनादाताओं की संख्या आदि लिख दी जाती है।

(ii) प्रविष्टियों की जाँच (Checking the Entries)—अनुसंधानकर्त्ता समस्त प्रविष्टियों की जाँच करता है। यदि कोई खाना नहीं भरा गया हो या गलत खाने में उत्तर लिख दिया गया हो तो उनके कारण का पता लगाकर उस त्रुटि को दूर करने का प्रयत्न करता है। यदि वह स्वयं गलती को ठीक कर सकता है तो उसे उसी वक्त ही ठीक कर देता है अन्यथा अनुसूची को कार्यकर्त्ता के पास लौटा दिया जाता है जिसमें या तो वह स्वयं ही संशोधन कर देता है या उत्तरदाता से पुनः मिलकर सही सूचना प्राप्त करता है।

(iii) गन्दी अनुसूचियाँ (Dirty Schedules)—अनुसंधानकर्त्ता, गन्दी अनुसूचियों को अलग कर देता है जो पढ़ने योग्य न हो या फट गई हों या अन्य किसी कारण से सूचना देने योग्य न हो, वे कार्यकर्त्ता के पास भेज दी जाती हैं ताकि यथार्थ सूचना प्राप्त हो सके।

(iv) संकेत (Coding)—अनुसंधानकर्त्ता सारणीयन के कार्य में असुविधा दूर करने के लिए संकेतन का कार्य करता है। वह सभी उत्तरों का निश्चित भागों में वर्गीकरण कर देता है। प्रत्येक वर्ग को संकेत-संख्या प्रदान की जाती है।

अनुसूची के गुण एवं लाभ
(Merits of Schedule)

1. प्रत्यक्ष सम्पर्क (Direct Contact)—अनुसंधानकर्त्ता, सूचनादाताओं से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करता है जिससे वह महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त कर लेता है। यदि अनुसंधानकर्त्ता का व्यक्तिगत सम्पर्क न हो तो सूचनादाता स्वयं भी सूचनाएँ भेजने में आलस्य करता है एवं उसकी अभिरुचि नहीं रहती। अनुसंधानकर्त्ता को सामने देखकर उसमें भी उत्साह की भावना तीव्र होती है क्योंकि सूचनादाता स्वयं भी तो उसके बारे में जानने का इच्छुक रहता है।

2 ठोस सूचनाएँ प्राप्त करना (Securing Concrete Informations)—अनुसूची प्रणाली का यह एक महत्त्वपूर्ण गुण है कि इसके द्वारा प्राप्त सूचनाएँ ठोस होती हैं। अनुसन्धानकर्त्ता की उपस्थिति से सूचनादाता के मन में यह रहता है कि वह कहीं गलत सूचना न दे दे क्योंकि अनुसंधानकर्त्ता स्वयं के उपस्थित होने के कारण वह उसके द्वारा दिए उत्तर की सत्यापनशीलता या असत्यापनशीलता सिद्ध कर सकता है। साथ-साथ अनुसंधानकर्त्ता अवलोकन द्वारा भी वास्तविक ज्ञात करता रहता है। इसमें तथ्यों की पुष्टि की जा सकती है।

3. अधिकतम सूचनाओं की प्राप्ति (Obtaining Maximum Informations)—ठोस सूचनाएँ प्राप्त करने के अतिरिक्त, अनुसन्धानकर्त्ता अनुसूची को

भरकर सूचनाएँ प्राप्त करता है। यह सुविधा साक्षात्कार मे नहीं है क्योंकि उसमें प्रश्न निश्चित नही होते। अनुसन्धानकर्त्ता के समक्ष, अनुसूची स्पष्ट रूप से होने के कारण उसका उद्देश्य अधिकतम सूचना प्राप्त करना होता है।

4 सारणीयन मे सहायक (Helpful in Tabulation)—प्रश्नो को क्रमबद्ध और श्रेणियो मे विभाजित करने से सारणीयन का कार्य आसान हो जाता है। इससे उत्तरो का प्रयोग सांख्यिकीय सूत्रो के अन्तर्गत किया जा सकता है।

5. अभिनति की सम्भावना नहीं (No Possibility of Bias)—अनुसूची के प्रश्न स्पष्ट एव पूर्व निर्धारित होते हैं अत. उन्हीं प्रश्नो के उत्तर प्राप्त करने होते हैं, जिनका सम्बन्ध अनुसन्धान से है। साक्षात्कार मे सूचनादाता उत्तर देते हुए कभी-कभी इतना भाव-विभोर हो जाता है कि वह अपने विषय से हटकर अपने दृष्टिकोण को ही प्रस्तुत करने मे सलग्न रहता है, इसकी गुंजाइश इसमे नही रहती। अनुसन्धानकर्त्ता स्वय भी निष्पक्ष-सा ही रहता है क्योंकि उसको भी वे ही उत्तर प्राप्त करने हैं जो अनसूची मे हैं, अत अपनी तरफ से इसमे कुछ हेरफेर नही कर सकता।

6 अवलोकन की गहनता मे वृद्धि (Increase in the Intensity of Observation)—अलग-अलग इकाइयो का अलग अलग अध्ययन करने से अवलोकन मे गहनता एव प्रामाणिकता की वृद्धि होती है। चूंकि अनुसन्धानकर्त्ता विभिन्न सूचनादाताओ से उत्तरो को प्राप्त करता है, अतः उसके अवलोकन मे उतनी ही गहनता आती है।

लुण्डबर्ग के अनुसार "अनुसूची एक समय म एक तथ्य को पृथक् करने का तरीका है एव इस प्रकार हमारे अवलोकन को गहन बनाती है।"

अत अनुसूची हमारे मार्गदर्शन एव वैषयिक सूचना प्राप्त करने का एक उत्तम साधन है। इसके आधार पर अनुसधान के क्षेत्र निश्चित किए जा सकते हैं। पी वी यग के शब्दो मे, अनुसूची को वह (अनुसधानकर्त्ता) एक पथ-प्रदर्शक, जाँच के क्षेत्र को निश्चित करने का एक साधन, स्मरण-शक्ति का सयन्त्र, लेखबद्ध करने का तरीका बनाता है।"

अनुसूची की सीमाएँ या दोष
(Limitations or Demerits of Schedule)

(i) अनुसूची का प्रयोग छोटे क्षेत्र मे किया जा सकता है। विस्तृत क्षेत्र मे इसीलिए अनुपयोगी रहता है कि उसमे कई व्यावहारिक कठिनाइयाँ, जैसे—उत्तरदाता बिखरे हुए हों, आ जाती हैं।

(ii) ऐसे सामान्य प्रश्नो का निर्माण नही किया जा सकता जिनको प्रत्येक व्यक्ति समझकर उत्तर दे सके।

(iii) इसके परिणाम ज्ञान निदर्शन पर आधारित नहीं होते।

(iv) विभिन्न सस्कृति, विभिन्न समुदाय, विभिन्न जीवन-स्तर एव शिक्षा के कारण सभी प्रश्नो को एक समान लागू करना सम्भव नहीं है।

(v) अनुसधानकर्त्ता द्वारा सूचनादाता प्रेरित करने से अभिनति की सम्भावना रहती है क्योकि सूचनादाता समझ जाता है कि उसके अनुसधान का प्रयोजन क्या है, अत वह ऐसे ही उत्तर देता है जो अनुसधानकर्त्ता अपनी अनुसूची मे भरना चाहता है।

(vi) अनुसूची द्वारा प्राप्त सूचनाओ को एकत्र करने मे काफी समय व धन खर्च होता है।

अनुसूची एव प्रश्नावली मे अन्तर
(Difference between Schedule and Questionnaire)

अनुसूची तथा प्रश्नावली के उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट होता है कि प्राथमिक सामग्री के सकलन मे अनुसूची और प्रश्नावली दोनो ही महत्त्वपूर्ण प्रविधियाँ हैं। बाह्य रूप से इन दोनो के बीच इतनी अधिक समानता पाई जाती है कि कभी-कभी इनके बीच कोई भी स्पष्ट भेद कर सकना अत्यधिक कठिन हो जाता है। यदि हम प्रश्नावली और अनुसूची की समानता के दृष्टिकोण से इनका मूल्यांकन करें तो स्पष्ट होता है कि ये दोनो ही प्रश्नो की एक व्यवस्थित सूचियाँ हैं जिनके द्वारा प्राथमिक सूचनाओ का सकलन किया जाता है। अपने आकार और रूप-रग में भी यह एक-दूसरे से बहुत मिलती-जुलती प्रतीत होती है। जहाँ तक इनके निर्माण की विधि का प्रश्न है प्रश्नावली तथा अनुसूची दोनो मे ही प्रश्नो का निर्माण करते समय समान सावधानियाँ रखने की आवश्यकता होती है तथा दोनो का ही उद्देश्य अध्ययन-विषय से सम्बन्धित सख्यात्मक तथा गुणात्मक तथ्यो को एकत्रित करना होता है।

इन समानताओं के पश्चात् भी प्रश्नावली तथा अनुसूची मे अनेक ऐसी आधारभूत भिन्नताएँ हैं जिनके कारण इन्हें एक दूसरे से भिन्न दो पृथक् प्रविधियो के रूप मे देखा जाता है। इनमे से कुछ प्रमुख भिन्नताओ को सक्षेप मे निम्नांकित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है—

1 अनुसूची प्रश्नो की एक ऐसी सूची है जिसका उपयोग अध्ययनकर्त्ता द्वारा क्षेत्र मे जाकर स्वय किया जाता है। जबकि प्रश्नावली उत्तरदाताओ के पास डाक द्वारा प्रेषित की जाती है। इस प्रकार इसका उपयोग करने के लिए उत्तरदाता तथा अध्ययनकर्त्ता के बीच कोई प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित नही होता।

2 अनुसूची का उपयोग एक छोटे भौगोलिक क्षेत्र अथवा सीमित अध्ययन क्षेत्र मे ही तथ्यो का सग्रह करने के लिए किया जाता है, जबकि प्रश्नावली एक ऐसी प्रविधि है जिसके द्वारा कितनी ही दूर-दूर फैले हुए बहुत बडी सख्या वाले उत्तरदाताओ से सूचनाएँ एकत्रित की जा सकती हैं।

3 अनुसूची का प्रयोग करने के लिए साक्षात्कार विधि का प्रयोग करना आवश्यक होता है तथा साक्षात्कार के दौरान उत्तरदाता से कहीं अधिक गहन सूचनाएँ प्राप्त होने की सम्भावना रहती है, जबकि प्रश्नावली के

अन्तर्गत अध्ययनकर्त्ता उत्तरदाता के बीच किसी प्रकार का प्रत्यक्ष सम्पर्क न होने के कारण केवल वही सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं जिनसे सम्बन्धित प्रश्नो का प्रश्नावली मे समावेश होता है।

4 अनुसूची एक अनौपचारिक विधि है जिसमे अध्ययनकर्त्ता को अनेक ऐसे प्रश्न करने का भी अवसर मिल जाता है जो परिस्थिति और वैयक्तिक विशेषताओ के अनुकूल होते हैं। साथ ही उत्तरदाता से प्राप्त सूचनाओ का आलेखन भी उसी समय कर लिया जाता है लेकिन प्रश्नावली के अन्तर्गत अध्ययनकर्त्ता अथवा उत्तरदाता किसी को भी निर्धारित प्रश्नो से बाहर जाने की कोई स्वतन्त्रता नही होती। प्रश्नो के उत्तरो का आलेखन भी उत्तरदाता द्वारा ही किया जाता है। इस दृष्टिकोण से यह प्रविधि कम लोचपूर्ण है।

5 अनुसूची का प्रयोग शिक्षित और अशिक्षित सभी श्रेणियो के उत्तरदाताओं के लिए समान रूप से किया जा सकता है क्योकि उत्तरदाता सभी सूचनाएँ केवल मौखिक रूप से प्रदान करता है जबकि प्रश्नावली का प्रयोग केवल शिक्षित उत्तरदाताओ के लिए ही किया जा सकता है। इसके उपयोग के लिए उत्तरदाताओं का कम से कम इस सीमा तक शिक्षित होना आवश्यक होता है कि वे प्रश्नो को सही ढग से समझकर उनका व्यवस्थित ढग से उत्तर लिख सकें।

6 अनुसूची के उपयोग के लिए जिस निदर्शन का चुनाव किया जाता है वह तुलनात्मक रूप से अधिक वैज्ञानिक होता है। इसका कारण यह है कि निदर्शन की किसी विधि के द्वारा जिन इकाइयो का भी चयन हो जाता है उन सभी से अनुसूची के द्वारा सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं लेकिन प्रश्नावली का उपयोग करने के लिए एक ऐसा निदर्शन लेना आवश्यक होता है जिसमे केवल शिक्षित व्यक्तियो का ही समावेश हो। ऐसा निदर्शन अपूर्ण होने के साथ ही कभी-कभी अध्ययन विषय से सम्बन्धित सम्पूर्ण समूह का वास्तविक प्रतिनिधित्व नही कर पाता।

7 अनुसूची एक ऐसी प्रविधि है जिसे अधिक स्पष्ट और सुविधापूर्ण समझा जाता है। इसका कारण यह है कि किसी भी प्रश्न की भाषा अथवा अर्थ स्पष्ट न होने की स्थिति मे इसे अध्ययनकर्त्ता द्वारा सरल शब्दो मे अभिव्यक्त किया जा सकता है, जबकि प्रश्नावली इस अर्थ मे लोच रहित होती है कि उत्तरदाता को प्रश्न से सम्बन्धित कोई भ्रम होने पर उसके निराकरण का उसे कोई अवसर प्राप्त नही हो पाता। प्रश्न को गलत रूप से समझ लिए जाने पर उसका उत्तर भी अक्सर गलत हो जाता है।

8 अनुसूची द्वारा प्राप्त उत्तरो का प्रतिशत किसी भी दूसरी विधि की तुलना मे कहीं अधिक होता है। उत्तरदाता की उदासीनता अथवा व्यस्तता के बाद भी अध्ययनकर्त्ता को उससे सूचनाएँ प्राप्त करने का अवसर मिल

जाता है। जबकि प्रश्नावली के द्वारा प्राप्त उत्तरों का प्रतिशत इतना कम रहता है कि कभी-कभी डाक द्वारा भेजी गई कुल प्रश्नावलियों में से दस प्रतिशत भरी हुई प्रश्नावली भी वापस नहीं मिल पातीं। यदि उन्हीं के आधार पर निष्कर्ष दे दिए जाते हैं तो यह निष्कर्ष पूरे समूह के सभी वर्गों की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व नहीं कर पाते।

9 अनुसूची की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता इसके अन्तर्गत अवलोकन के गुणों का समावेश होना है। अध्ययनकर्त्ता साक्षात्कार के अतिरिक्त अवलोकन के द्वारा भी तथ्यों की परीक्षा करने अथवा नए तथ्यों का सकलन करने का प्रयत्न करता है जबकि प्रश्नावली के अन्तर्गत साक्षात्कार और अवलोकन का अभाव होने के कारण अध्ययन से सम्बन्धित ऐसे अनेक महत्त्वपूर्ण पक्ष छूट जाते हैं जिनकी अध्ययनकर्त्ता प्रश्नावली का निर्माण करते समय कल्पना नहीं कर सका था।

10 अनुसूची के अन्तर्गत उत्तरदाता और अध्ययनकर्त्ता के बीच प्रत्यक्ष सम्पर्क होने के कारण गोपनीय सूचनाओं का सकलन कर सकना बहुत कठिन होता है। साथ ही यह विधि जोखिमपूर्ण भी है जबकि प्रश्नावली के द्वारा सूचनाएँ देने मे उत्तरदाता स्वय को बहुत स्वतन्त्र और अज्ञात महसूस करता है, अतः वह गोपनीय सूचनाएँ भी दे सकता है। इसके अतिरिक्त इस प्रविधि के उपयोग मे अध्ययनकर्त्ता को किसी तरह का कोई खतरा भी नहीं होता।

11 अनुसूची प्रविधि एक महँगी प्रविधि है। इसके उपयोग में बहुत अधिक धन और समय की आवश्यकता होती है जबकि प्रश्नावली के द्वारा अपेक्षाकृत कम समय और धन में ही बहुत अधिक सूचनाओं का सग्रह करना सम्भव हो जाता है।

12 अनुसूची द्वारा तथ्यों का सकलन करने के लिए अध्ययनकर्त्ता का अत्यधिक कुशल, अनुभवी, प्रशिक्षित और मृदुभाषी होना आवश्यक है। व्यक्तिगत गुणों के अभाव में इस प्रविधि द्वारा सूचनाओं का सकलन नहीं किया जा सकता जबकि प्रश्नावली तुलनात्मक रूप से एक सरल प्रविधि है क्योंकि इसका उपयोग वे व्यक्ति भी कर सकते हैं जो कम प्रशिक्षित और कम व्यवहार कुशल हो।

उपर्युक्त भिन्नताओं के पश्चात् भी यह नहीं समझ लेना चाहिए कि प्रश्नावली और अनुसूची मे से एक प्रविधि दूसरे की तुलना मे अधिक या कम महत्त्वपूर्ण है। इन दोनों प्रविधियों की भिन्नताएँ केवल अध्ययन-क्षेत्र, सूचनादाताओं की प्रकृति तथा उपयोग की भिन्नता से ही सम्बन्धित हैं। इसका तात्पर्य है कि अध्ययन-क्षेत्र और सूचनादाताओं की विशेषताओं को देखते हुए ही यह निर्धारित किया जाना चाहिए कि अधिकतम और सर्वोत्तम सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए प्रश्नावली अधिक उपयुक्त हो सकती है अथवा अनुसूची। जहाँ तक भारत का प्रश्न है, यहाँ आज भी

प्रश्नावली की अपेक्षा अनुसूची के उपयोग द्वारा सामग्री का सकलन करना अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। हमारे देश मे आज भी अशिक्षित व्यक्तियो की सख्या बहुत अधिक है। विभिन्न क्षेत्रो की सांस्कृतिक विशेषताएँ ही एक दूसरे से भिन्न नही हैं बल्कि प्रत्येक क्षेत्र की भाषा भी दूसरे से कुछ भिन्न है। व्यक्तियो मे इतनी जागरूकता भी नही है कि वे प्रश्नावली द्वारा मांगी गई सूचनाओ को प्रेषित करना अपना नैतिक और सामाजिक दायित्व मान सकें। अधिकांश व्यक्ति आज भी व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित सूचनाएँ देने मे सकोच और कभी-कभी डर का अनुभव करते हैं। इस स्थिति मे अनुसूची के द्वारा ही ऐसी भ्रान्तियों तथा समस्याओ का निराकरण करके वस्तुनिष्ठ तथ्यो का सग्रह करना सम्भव हो सकता है।

साक्षात्कार
(Interview)

किसी भी विज्ञान का विकास इस बात पर निर्भर होता है कि उसके अनुसधान की विधियाँ तथा तथ्य सकलन के साधन कितने विकसित हैं। प्राकृतिक विज्ञानो मे अनुसन्धान की विधियाँ तथा उपकरण अत्यन्त विकसित हो चुके हैं। सामाजिक विज्ञान जैसे समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र लोक-प्रशासन आदि विज्ञान प्राकृतिक विज्ञानो की अपेक्षा इस क्षेत्र मे काफी पीछे हैं। गुडे एव हट्ट (Goode & Hutt) ने इसका कारण बताते हुए लिखा है कि "सामाजिक विज्ञानो के अध्ययन की वस्तु मानव है, मानव स्वय एक जटिल प्राणी है जिसका स्वभाव निरन्तर बदलता रहता है, अध्ययन-वस्तु (Subject Matter) एव वैज्ञानिक (Scientist) दोनो मानव होने के कारण पक्षपात आदि की सम्भावना रहती है।"[1]

मानव मे क्षमता है कि स्वय के सम्बन्ध मे मानव वैज्ञानिक द्वारा की गई भविष्यवाणी को गलत सिद्ध कर सके। इन सीमाओ के होते हुए भी कुछ और ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनकी वजह से सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान मे कुछ विशिष्ट तथ्य सकलन की पद्धतियो का प्रयोग करता है। वैज्ञानिक अध्ययन की वस्तु से आमने-सामने के सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। अध्ययन की वस्तु से बात कर सकता है व पत्र-व्यवहार के द्वारा सामग्री एकत्र कर सकता है।

सामाजिक अनुसन्धान मे अनेक विधियो का प्रयोग किया जाता है जैसे अवलोकन, अनुसूची, प्रश्नावली, पुस्तकालीय पद्धति, अनुमापन, समाजमिति, साक्षात्कार इत्यादि।

साक्षात्कार विधि के अनेको गुणो एव प्रकारों के कारण इसे सामाजिक अनुसन्धान मे एक विशेष स्थान प्राप्त है।[2] इस विधि के द्वारा उन तथ्यो को एकत्र किया जाता है जो अन्य विधियो-अवलोकन, प्रश्नावली एव अनुसूची से सामान्यतया सम्भव नहीं है। यग ने इस गुण पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि साक्षात्कार

1 *Goode & Hutt*. Methods in Social Research, p 2.
2 *Goode and Hutt* Methods in Social Research, p 2

पद्धति के द्वारा व्यक्तियो के आन्तरिक जीवन मे प्रवेश करके जानकारी एकत्रित की जाती है ।[1](सूचनादाताओ के आन्तरिक जीवन मे प्रवेश की सम्भावना के कारण साक्षात्कार पद्धति व्यक्तियो की भावना, आन्तरिक विचारो और मनोवृत्तियो का अध्ययन करने के लिए विशेष उपयोगी प्रणाली है ।)

साक्षात्कार का अर्थ एव परिभाषा
(Meaning and Definition of Interview)

साक्षात्कार पद्धति की समाजशास्त्रीय परिभाषा देते हुए गुडे और हट्ट ने लिखा है कि, साक्षात्कार मौलिक रूप से सामाजिक अन्त क्रिया की एक प्रक्रिया है ।[2] इन्होने आगे लिखा है कि इसका प्राथमिक उद्देश्य चाहे अनुसन्धान हो लेकिन यह उद्देश्य क्षेत्र-कार्यकर्त्ता के लिए है । उत्तरदाता के लिए इसका अर्थ और आधार भिन्न हो सकता है ।[3]

(साक्षात्कार प्रणाली मे वैज्ञानिक (साक्षात्कारकर्त्ता) और उत्तरदाता दोनो आमने-सामने के सम्बन्ध मे होते हैं ।)साक्षात्कारकर्त्ता प्रश्न पूछता है तथा उत्तरदाता उनके उत्तर देता है । साक्षात्कारकर्त्ता का निरन्तर यह प्रयास रहता है कि सूचनादाता बराबर अनुसन्धान की समस्या से सम्बन्धित अपने विचार व्यक्त करे लेकिन उत्तरदाता कर्म विषयकर्त्ता (वस्तुपरक) से हटकर विषयपरक सामग्री प्रदान करने लग जाता है । हैडर और लिडमैन ने साक्षात्कार पद्धति की परिभाषा देते हुए इस लक्षण पर स्पष्ट प्रकाश डाला है । इन्होने लिखा है कि, 'साक्षात्कार दो व्यक्तियो या अनेक व्यक्तियो के बीच सवाद और मौखिक प्रत्युत्तर है । जब ये प्रत्युत्तर कर्म-विषयक अर्थ म मौखिक होते हैं तब वे अन्य कई कारको द्वारा निर्धारित होते हैं, जिनम से कुछ कर्म विषयक होते हैं और कुछ वैषयिक ।'[4]

हैडर और लिडमैन ने भी साक्षात्कार पद्धति की व्याख्या करते हुए बताया कि साक्षात्कारकर्त्ता और उत्तरदाता मे प्रश्न और उत्तर मौखिक होने के कारण कई कारक इसे प्रभावित करते हैं जिनमे उत्तरदाता का प्रभाव अधिक पडता है क्योकि वह बार-बार वस्तुपरक से विषयपरक जानकारी देने लग जाता है । एम एन बसु के अनुसार "साक्षात्कार को व्यक्तियो के आमने-सामने किसी बिन्दु पर मिलने के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है ।"[5]

पी वी यग ने साक्षात्कार पद्धति को ऐसी विधि बताया है जिसके द्वारा अपरिचित व्यक्ति के आन्तरिक जीवन से सम्बन्धित तथ्य एकत्र करना सम्भव है । यग की परिभाषा निम्नलिखित है—

'साक्षात्कार एक व्यवस्थित विधि मानी जा सकती है जिसके द्वारा एक व्यक्ति (वैज्ञानिक) दूसरे व्यक्ति के आन्तरिक जीवन मे अधिक या कम कल्पनात्मक

1 *P V Young* Scientific Social Survey and Research p 216
2-3 *Goode and Hutt* Ibid, p 186
4 *Hader & Lindman* Dynamic Social Research, p. 129
5 *M N Basu* Field Methods in Anthropology, p. 29

रूप से प्रवेश करता है जो उसके लिए सामान्यतया तुलनात्मक रूप से अपरिचित होता है।"[1])

यग ने यह भी बताया है कि अनुसन्धानकर्त्ता कल्पनात्मक रूप से सूचनादाता के जीवन मे प्रवेश करता है तथा उसके जीवन के भूत, वर्तमान तथा भविष्यकाल की सूचना एकत्र करता है।[2] वी एम पामर ने साक्षात्कार पद्धति को समझाते हुए लिखा है कि "साक्षात्कार दो व्यक्तियो के बीच एक सामाजिक परिस्थिति का निर्माण करता है जिसमे मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के लिए दोनो व्यक्ति पारस्परिक प्रत्युत्तर करते हैं।"[3]

पामर ने साक्षात्कार प्रणाली को समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से समझाते हुए लिखा है कि इसमे सामाजिक सम्बन्ध दो व्यक्तियो म स्थापित होते हैं, एक अनुसन्धानकर्त्ता होता है तथा दूसरा सूचनादाता। सूचनादाता से अनुसन्धानकर्त्ता प्रश्नो को पूछकर तथ्य एकत्र करता है।

सिन पाग्रो यग न साक्षात्कार विधि के अनेक लक्षणो पर प्रकाश डाला है। यग ने बताया कि इस विधि का उपयोग व्यवहारो को देखने, कथनो को लिखने तथा अन्त क्रियाओ के वास्तविक परिणामो की जांच करने के लिए किया जाता है। इन्ही के शब्दो मे साक्षात्कार की परिभाषा निम्नलिखित है—

"साक्षात्कार क्षेत्रीय कार्य की एक विधि है जिसका प्रयोग व्यक्ति या व्यक्तियो के व्यवहार को देखने, कथनो को लिखने तथा सामाजिक या सामूहिक अन्त क्रिया के वास्तविक परिणामो का निरीक्षण करने के लिए किया जाता है।"[4]

अन्तः अन्त मे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गुडे और हट्ट, हेडर और लिडमैन और एम एन बसु के अनुसार साक्षात्कार पद्धति एक सामाजिक अन्त क्रिया की प्रक्रिया है, जिसमे साक्षात्कारकर्त्ता और सूचनादाताओ मे परस्पर आमने-सामने के सम्बन्ध किसी बिन्दु पर प्रश्नोत्तर करने के लिए स्थापित होते हैं। पी वी यग और वी एम पामर ने साक्षात्कार को समझाते हुए लिखा है कि इस पद्धति के द्वारा वैज्ञानिक दूसरे अपरिचित व्यक्ति के जीवन मे कल्पनात्मक रूप से प्रवेश करता है तथा मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के लिए एव सूचना एकत्र करने के लिए एक दूसरे से प्रश्नोत्तर करता है।

साक्षात्कार के प्रकार
(Types of Interview)

(साक्षात्कारो के प्रकारों का वर्गीकरण अनेक वैज्ञानिको ने किया है) वर्गीकरण के कुछ आधार होते हैं। साक्षात्कार के वर्गीकरण मे वैज्ञानिको ने अनेक चरो या परिवर्तियो का सहारा लिया है। चरो के आधारो का चुनाव वैज्ञानिक के

1-2 *P V Young* op cit p 206-216
3 *V M Palmer* Field Studies in Sociology p 170
4 *Hsin Pao Young* Fact Finding with the Rural People, p 38

ज्ञान तथा विश्लेषण की क्षमता पर निर्भर करता है। जिन वैज्ञानिको ने साक्षात्कारो का वर्गीकरण किया है उनमे मुख्य-मुख्य वैज्ञानिक पी वी यग, जॉन मेज, गुडे और हट्ट, सेलटिज, जहोडा, डवाइश और कुक हैं। कुछ अन्य वैज्ञानिक और भी हैं जिन्होने साक्षात्कार के विशिष्ट प्रकारो का निर्माण तथा अनुसन्धान मे प्रयोग अवश्य किया है। ऐसे वैज्ञानिको का यग ने उल्लेख किया है। जैसे मर्टन और मैण्डल द्वारा केन्द्रित साक्षात्कार का उपयोग, लेजा संफील्ड तथा उनके सहयोगियो द्वारा पुनरावृत्ति साक्षात्कार का उपयोग इत्यादि। अब हम क्रम से विभिन्न वैज्ञानिको द्वारा दिए गए प्रकारो को देखेंगे—

जॉन मेज ने साक्षात्कार के दो प्रमुख प्रकार बताए हैं[1]—

1 स्वरूपात्मक साक्षात्कार (Formative Interviews)
2 सामूहिक साक्षात्कार (The Mass Interviews)

स्वरूपात्मक साक्षात्कार के इन्होने फिर चार उप प्रकारो का उल्लेख किया, जो निम्न हैं—

1 अनिर्देशित साक्षात्कार (Non-Directive Interview)
2 केन्द्रित साक्षात्कार (Focused Interview)
3 जीवन-इतिहास साक्षात्कार (Life-Histories Interview)
4 औपचारिक साक्षात्कार (The Formal Interview)

गुडे और हट का कहना है कि सामाजिक अनुसन्धान म साक्षात्कारो के प्रकारो का अत्यधिक उपयोग हुआ है जिनको अनेक प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है। सबसे सरल वर्गीकरण का आधार साक्षात्कार मे गहनता है।[2] अर्थात् साक्षात्कार मे कितनी अधिक पूछताछ की जाती है। इन्होने साक्षात्कार के निम्न प्रकार बताए हैं—

1 अनिर्देशित साक्षात्कार (Non-Directive Interview)
2 गहन साक्षात्कार (Intensive Interview)
3 निर्वाचन साक्षात्कार (Polling Interview)
4 सरचित साक्षात्कार (Structured Interview)

पी वी यग ने साक्षात्कारो का वर्गीकरण कई आधारो पर किया है[3]—

(क) उनके कार्यों के आधार पर—

1. लक्षण-परीक्षण साक्षात्कार (Diagnostic Interview)
2 उपचार साक्षात्कार (Treatment Interview)
3 अनुसन्धान साक्षात्कार (Research Interview)
4. निदर्शन साक्षात्कार (Sample Interview)

1 *John Madge* · The Tools of Social Science, p 153–178.
2 *Goode and Hatt*: op. cit, p 194–95
3 *P V. Young*: op cit, 217–222.

(ख) भाग लेने वाले सूचनादाताओं की सख्या के अनुसार—
  1 समूह साक्षात्कार (Mass Interview)
  2 व्यक्तिगत साक्षात्कार (Individual Interview)
(ग) सम्पर्क की अवधि—
  1 थोडे सम्पर्क वाले साक्षात्कार (Short Contact Interview)
  2 लम्बे सम्पर्क वाले साक्षात्कार (Long Contact Interview)
(घ) उपागम के प्रकार—
  1 निर्देशित साक्षात्कार (Directive Interview)
  2 अनिर्देशित साक्षात्कार (Non-Directive Interview)

अथवा

  1 सरचित साक्षात्कार (Structured Interview)
  2 असरचित साक्षात्कार (Non-Structured Interview)

यग ने केवल उन साक्षात्कारो के प्रकारो का विस्तार से वर्णन किया है जो साक्षात्कारकर्त्ता और उत्तरदाता की भूमिका पर आधारित है—

1 अनिर्देशित साक्षात्कार (Non-Directive Interview)
2 निर्देशित साक्षात्कार (Directive Interview)
3 केन्द्रित साक्षात्कार (Focused Interview)
4 पुनरावृत्ति साक्षात्कार (Repeated Interview)
5 गहन साक्षात्कार (Depth Interview)

1 निर्देशित साक्षात्कार (Directive Interview)

(साधारणतया यह साक्षात्कार प्रश्नावली का रूप ले लेता है। सेलटि, जहोदा डवाइश और कुक के अनुसार निर्देशित साक्षात्कार बहुत अधिक नियन्त्रित और व्यवस्थित होता है।[1] इसमे प्रश्नो के प्रकार क्रम और शब्दावली निश्चित होती है।) प्रत्येक उत्तरदाता से प्रश्न एक ही क्रम मे पूछे जाते हैं। साक्षात्कारकर्ता को प्रश्नो का क्रम और शब्दावली बदलने की स्वतन्त्रता नही होती है। यही कारण है कि अनेक वैज्ञानिको ने निर्देशित साक्षात्कार का उल्लेख प्रश्नावली प्रणाली के साथ-साथ किया है। गुडे और हट्ट,[2] यग,[3] सेलटिज तथा अन्यो[4] के अनुसार (इस साक्षात्कार का उपयोग तब किया जाता है जब प्रश्नावलियाँ लौटकर नही आती हैं और वैज्ञानिक स्वय सूचनादाताओं के पास जाता है तथा उनसे आमने-सामने के सम्बन्ध स्थापित करके प्रश्नोत्तरो की प्रक्रिया के द्वारा प्रश्नावलियाँ भरता है।)

1 *Seltiz, Jahoda, Deutsch & Cook* Research Methods in Social Relations p 255
2 *Goode and Hatt* op cit p 194
3 *P V Young*, op cit p 21 218
4 *Seltiz & Others* op cit, p 262 268

निर्देशित साक्षात्कार में दो प्रकार के प्रश्नों का उपयोग किया जाता है—

(क) बन्द प्रश्न (Closed Question) एव

(ख) खुले प्रश्न (Open Question) ।

बन्द प्रश्नो मे प्रश्नो से सम्भावित उत्तर, उत्तरदाताओं की सुविधा के लिए प्रश्नो के नीचे दिए होते हैं तथा खुले प्रश्नों को इसलिए पूछा जाता है कि उत्तरदाता स्वतन्त्र होकर प्रश्नो से सम्बन्धित अपनी जानकारी दे। खुले प्रश्नों के नीचे सम्भावित उत्तर नही दिए जाते हैं। बन्द प्रश्नो के नीचे उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' मे हो सकते हैं या क्रमो मे सम्भावित उत्तर दिए होते हैं। उत्तरदाता अपनी जानकारी के अनुसार उत्तर के आगे सही (√) का चिह्न लगा देता है। खुले प्रश्न उत्तरदाताओं को अपने विचार व्यक्त करने के लिए पूर्ण छूट देते हैं न कि किसी सीमा मे बाँधते हैं। खुले प्रश्न केवल किसी बात से सम्बन्धित प्रश्न उठाते हैं और उत्तरदाता उनसे सम्बन्धित उत्तर देते हैं जो सूचनादाता के अपने दृष्टिकोणों, विचार तथा ज्ञान पर आधारित होते हैं।

2 अनिर्देशित साक्षात्कार

(Non Directive Interview)

अधिकतर साक्षात्कारो मे साक्षात्कारकर्त्ता को यह स्वतन्त्रता होती है कि वह दिए हुए विषय से सम्बन्धित प्रश्नो को पूछे। लेकिन वह प्रश्न पूछते समय उत्तरदाता के उत्तरो को अपने प्रश्नो द्वारा पक्षपातपूर्ण न होने दे। इसकी उसे हिदायत तथा चेतावनी दी जाती है। अनिर्देशित साक्षात्कार मे साक्षात्कारकर्त्ता पर पूर्ण नियन्त्रण नही होता है। वह पूर्व-निर्देशित व्यवस्थित तथा सगठित प्रश्न नहीं पूछता है। इसलिए यह साक्षात्कार अव्यवस्थित और अनियन्त्रित साक्षात्कार भी कहलाता है। इस साक्षात्कार मे उत्तरदाता को स्वतन्त्रता से और बिना किसी झिझक के अपने विचार व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इसमें साक्षात्कारकर्त्ता थोडी देर मे ऐसी बात कहता रहता है या टिप्पणी करता रहता है कि जिसमे उत्तरदाता अधिक जानकारी देने के लिए उत्साहित होता रहे। ये टिप्पणियाँ अथवा प्रश्न हो सकते है जैसे आपने मुझे नई जानकारी दी, या आप मुझे और बताइए या क्यों या क्या यह रुचिकर बात नही है, इत्यादि। साक्षात्कारकर्त्ता को ऐसा वातावरण बनाना चाहिए जिससे उत्तरदाता अपने आपको बिना किसी डर या झिझक के व्यक्त कर सके। साक्षात्कारकर्त्ता को किसी प्रकार का सुझाव नही देना चाहिए, पक्ष या विपक्ष से भी अपने विचार व्यक्त नहीं करने चाहिए। वैज्ञानिकों ने कहा है कि साक्षात्कारकर्त्ता को उत्तरदाताओं को सोचने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए और इसलिए अनिर्देशित साक्षात्कार व्यक्तियो के विचार, दृष्टिकोण और भावना को मालूम करने के लिए एक अच्छी तथ्य सकलन की प्रणाली है।

निर्देशित और अनिर्देशित साक्षात्कारो के लाभ तथा हानियाँ

इन दोनो ही साक्षात्कारो के लाभ तथा हानियाँ एक-दूसरे से भिन्न हैं। निर्देशित साक्षात्कार साधारणतया प्रश्नावली व्यवस्थित तथा नियन्त्रित होता है।

इसमे दो प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं, बन्द तथा खुले प्रश्न । निर्देशित साक्षात्कार मे बन्द प्रश्न तथा अनिर्देशित साक्षात्कार मे खुले प्रश्न अधिक पूछे जाते हैं । बन्द और खुले-प्रश्नो के अपनी लाभ-हानियाँ एव सीमाएँ हैं, जो निर्देशित और अनिर्देशित साक्षात्कारो के लाभ और हानियो को भी प्रभावित करती हैं। बन्द प्रश्नो को आसानी से पूछा जा सकता है और इनका विश्लेषण भी कम खर्चीला होता है । खुले प्रश्नो के विश्लेषण, वर्गीकरण, सारणीयन इत्यादि समय, धन और श्रम अधिक चाहता है । बन्द प्रश्न मे सम्भावित उत्तर प्रश्न के नीचे दिए होते हैं जो उत्तरदाताओ को प्रश्नो को समझने मे भी सहायता देते हैं जबकि खुले प्रश्नो मे इसकी व्यवस्था नही होती है । ये निर्देशित साक्षात्कार के लाभ हैं वहाँ इसमे कमियाँ भी हैं । इसमे बन्द प्रश्नो के अधिक उपयोग के कारण उत्तरदाता प्रश्नो के उत्तर देने के लिए बँध जाता है और वह नहीं जानता, या मालूम नही, या कह नहीं सकता उत्तर नही देता है क्योकि ये उत्तर उत्तरो के क्रम मे सबसे अन्त मे होते हैं । उत्तरदाता प्रश्नो के सम्भावित उत्तरो मे से कुछ के आगे सही (√) का चिह्न लगा देता है ।

इसके समानान्तर अनिर्देशित साक्षात्कार में खुले प्रश्न पूछे जाते हैं जिसमे उत्तरदाता से और अधिक पूछने की सम्भावना रहती है जिससे कि वह प्रश्न से सम्बन्धित अपनी जानकारी और विचार स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सकता है । अत बन्द प्रश्न जहाँ पक्षपापूर्ण उत्तर देने के लिए प्रभावित करते हैं वहाँ खुले प्रश्नो मे यह बात नही होती है। निर्देशित साक्षात्कारो मे प्रश्नो की शब्दावली सभी उत्तरदाताओ के लिए समान होती है और भिन्न-भिन्न उत्तरदाता उनके अर्थ अलग-अलग लगाते हैं जिससे उनके उत्तरो मे भी भिन्नता आ जाती है । बन्द प्रश्न कुछ वास्तविकताओ से सम्बन्धित जानकारी एकत्र करने के लिए अधिक लाभकारी होते हैं, जैसे आयु, शिक्षा व्यवसाय, मकान का किराया इत्यादि । निर्देशित साक्षात्कार अधिक खर्चीली प्रणाली है । पहले प्रश्नावलियाँ भेजी जाती हैं और जब प्रश्नावलियाँ केवल 5 प्रतिशत से 10 प्रतिशत ही लौटकर आती हैं तब निर्देशित साक्षात्कार का प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक सूचनादाता के पास जाना होता है इसलिए यह प्रणाली अधिक खर्चीली हो जाती है ।

अनिर्देशित साक्षात्कार मे एक साक्षात्कार की तुलना दूसरे साक्षात्कार से करना बहुत कठिन हैं । इस साक्षात्कार के अन्तर्गत (केन्द्रित, पुनरावृत्ति और गहन) खुले प्रश्नो का प्रयोग किया जाता है । साक्षात्कार प्रश्नो को पूछने, क्रम को बदलने तथा शब्दावली को बदलने के लिए स्वतन्त्र होता है । यह स्वतन्त्रता जहाँ एक ओर अच्छी जानकारी, (विचार, दृष्टिकोण, भावना, विश्वास आदि) प्राप्त करने के लिए है वहाँ इसकी कुछ कमियाँ भी हैं ।

अनिर्देशित साक्षात्कार खुले प्रश्नो पर आधारित है इसलिए यह अधिक खर्चीली प्रणाली है । अनिर्देशित साक्षात्कार अच्छे साक्षात्कारकर्ताओ द्वारा ही लिया जा सकता है जो प्रशिक्षित तथा अनुभवी होते हैं । अन्यथा इस प्रकार के साक्षात्कार

किसी भी उपयोगिता के नही होते हैं। इस साक्षात्कार विधि से उपकल्पनाओं की जाँच भी नही की जा सकती है। ये साक्षात्कार निर्देशित, व्यवस्थित और नियन्त्रित साक्षात्कारों मे कम निपूर्ण विधियाँ हैं।

3 केन्द्रित साक्षात्कार
(Focused Interview)

यह साक्षात्कार मर्टन और उनके साथियों द्वारा प्रयुक्त एव परिभाषित किया गया है। उन्होंने अपने लेख मे इस पर काफी विचार व्यक्त किए हैं। उनके अनुसार केन्द्रित साक्षात्कार मे साक्षात्कारकर्त्ता को मुख्य कार्य किसी विशेष अनुभव से सम्बन्धित सूचनादाता का ध्यान केन्द्रित करना है, जिसके लिए साक्षात्कारकर्त्ता पहले से विषय से सम्बन्धित प्रश्न और उसके विभिन्न पहलुओं की अच्छी जानकारी कर लेना है। मर्टन और कण्डल ने केन्द्रित साक्षात्कार को अन्य साक्षात्कारों से निम्न लक्षणों के आधार पर अलग किया है—

(1) केन्द्रित साक्षात्कार केवल उन व्यक्तियों से किया जाता है जो किसी विशेष घटना मे भाग ले चुके हैं

(2) यह उन घटनाओं का परिस्थितियों से सम्बन्धित साक्षात्कार होता है जिनका पहले से अध्ययन किया जा चुका है,

(3) यह साक्षात्कार साक्षात्कार निर्देशिका के आगे बढ़ता है। साक्षात्कार निर्देशिका मे अध्ययन से सम्बन्धित मुख्य मुख्य पहलुओं और प्रश्नों को निर्धारित कर लिया जाता है और उपकल्पना से सम्बन्धित तथ्य एकत्र किए जाते हैं, और

(4) यह साक्षात्कार सूचनादाता के अनुभव पर केन्द्रित होता है जैसे उनके दृष्टिकोण, भावना प्रतिक्रियाएँ इत्यादि। यग का कहना है कि केन्द्रित साक्षात्कार अर्द्ध निर्देशित साक्षात्कार है। केन्द्रित साक्षात्कार के द्वारा उन सूचनाओं को एकत्र करना सम्भव है जो कि व्यक्तिगत प्रतिक्रियाएँ भावनाएँ इत्यादि से पहले ही परिस्थिति से सम्बन्धित पहलुओं का विश्लेषण कर चुका होता है और उसके बाद साक्षात्कार लेने जाता है। यह साक्षात्कार बहुत अधिक सतर्कता, तैयारी और कुशलता चाहता है।

4 पुनरावृत्ति साक्षात्कार
(Repeated Interview)

यग ने इस साक्षात्कार की परिभाषा देते हुए लिखा है कि यह साक्षात्कार विशेष रूप से ऐसे अध्ययनों के लिए लाभकारी है जिसमें हम किसी विशिष्ट सामाजिक या मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के विकास का अध्ययन करना चाहते हैं। जैसे प्रगतिशील क्रिया, कारक, दृष्टिकोण जो किसी निश्चित दिए हुए व्यवहार के प्रतिमान या सामाजिक परिस्थिति का निर्णय करते हैं। इस साक्षात्कार के द्वारा

हम दृष्टिकोण, क्रिया या प्रगतिशील विचारों के विकास का अध्ययन कर सकते हैं। पुनरावृत्ति साक्षात्कार समय, धन तथा श्रम के दृष्टिकोण मे अधिक खर्चीली प्रणाली है। यह साक्षात्कार केन्द्रित साक्षात्कार की तरह एक विशिष्ट घटना और विशिष्ट तथ्यों के सकलन के लिए प्रयोग किया जाता है। इसके द्वारा एकत्र तथ्यों का सारणीयन कर सकते हैं, माप सकते हैं। इसमे सांख्यिकीय विधियों का भी प्रयोग कर सकते है।

5. गहन साक्षात्कार
(Depth Interview)

एक कार्फ[1] के अनुसार(गहन साक्षात्कार वह है जिसका उद्देश्य अचेतन तथा दूसरे प्रकार की वह सामग्री जो विशेष रूप से व्यक्तित्व की गतिशीलता और अभिप्रेरण से सम्बन्धित होती है)को मालूम करना है। गहन साक्षात्कार सामान्यतया एक दीर्घ विधि है जिसका निर्माण स्वतन्त्र रूप से प्रभावित सूचना को व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित करना है। इसका उपयोग विशेष उपकरणों के साथ जैसे स्वतन्त्र सम्पर्क तथा अन्य तकनीकी के साथ कर सकते है। जब इसका उपयोग बुद्धिमत्तापूर्ण और सतर्कतापूर्ण, विशेष प्रशिक्षण प्राप्त साक्षात्कारकर्ता द्वारा किया जाता है तब गहन साक्षात्कार सामाजिक मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों के महत्वपूर्ण पहलुओं को स्पष्ट करता है। बिना इसके उत्तर तुरन्त प्राप्त नहीं हो सकते तथा जो अवलोकित व्यवहार और कहे गए या बनाए गए विचार तथा दृष्टिकोणों को समझने के लिए महत्वपूर्ण होते है।) यंग का कहना है कि अगर अनुसन्धानकर्ता विशेष प्रशिक्षित नहीं है तो उत्तम यही है कि गहन साक्षात्कार का उपयोग नहीं किया जाए।

साक्षात्कार के लाभ
(Merits of Interview)

साक्षात्कार प्रणाली तथ्य सकलन की अधिक खर्चीली प्रणाली है। गुडे और हट्ट[2] ने कहा है कि अगर इसका तत्काल खर्च देखें तब तो यह अधिक खर्चीली प्रणाली है लेकिन इसके द्वारा जो सामग्री एकत्र की जाती है उसके आधार पर हम कह सकते हैं कि यह एक विश्वसनीय प्रणाली है। इसके द्वारा प्राप्त तथ्य सत्य और प्रमाणित होते हैं। साक्षात्कार के द्वारा ऐसे लोगों से तथ्य एकत्र कर सकते हैं जो अशिक्षित और अनपढ़ हैं। साक्षात्कार द्वारा सभी प्रकार तथा वर्गों के सूचनादाताओं से तथ्य एकत्र किए जा सकते हैं। सभी प्रकार की निदर्शन प्रणालियां (टिप्पट कार्ड, लाटरी, नियमित एवं अनियमित अकन, स्तरीकृत) का साक्षात्कार मे प्रयोग कर सकते हैं।

साक्षात्कार प्रणाली अधिक लचीली प्रणाली है, जिसमे कि उत्तरदाताओं के सामने प्रश्नों को बार-बार दोहराया जा सकता है। यह प्रणाली पूर्वगामी अध्ययनों

1 *F Karpf* Quoted from *P V Young*, op cit, p 220
2 *Goode & Hatt* op cit, p 175.

और पूर्व-परीक्षणों में अधिक उपयोगी है। प्रश्नावली और अनुसूची की जाँच भी साक्षात्कार द्वारा ही की जाती है। ऐसे प्रश्न को क्या पूछना चाहिए, कैसे पूछना चाहिए इत्यादि समस्याओं का समाधान भी साक्षात्कार प्रणाली के द्वारा किया जाता है।

इस प्रणाली में साक्षात्कारकर्ता अवलोकनकर्ता के रूप में भी कार्य करता है कि उत्तर देते समय उत्तरदाता के कैसे और किस तरह के हावभाव थे। उत्तरों की सत्यता के सम्बन्ध में शक होने पर साक्षात्कर्ता पूरक प्रश्न पूछकर या कुछ अन्तर पर अन्य प्रश्न पूछकर मालूम कर सकता है कि वास्तविक तथ्य या उत्तर क्या हैं। यंग के अनुसार साक्षात्कार प्रणाली एक पूरक प्रणाली है जिसका उपयोग और प्रणालियों के साथ करना चाहिए। जब इसका उपयोग अवलोकन और सांख्यिकीय प्रणालियों के साथ किया जाता है तब अच्छे और उत्तम परिणाम निकलते हैं। साक्षात्कारकर्ता जब अनुभवी और निपुण होता है तो उत्तरदाता उसे सही उत्तर देता है। उत्तर देते समय वह स्वतन्त्र अनुभव करता है। ऐसी परिस्थितियों में उत्तरदाता अपनी भावना और जीवन की दुखद घटनाओं की जानकारी भी दे देता है। प्रश्नावली प्रणाली से ऐसी सूचना प्राप्त नहीं की जा सकती है।

साक्षात्कार की सीमाएँ
(Limitations of Interview)

इस प्रणाली में साक्षात्कारकर्ता को प्रत्येक सूचनादाता के पास जाकर तथ्य संकलन करने पड़ते हैं। प्रत्येक सूचनादाता के घर जाकर सम्पर्क करने से इसमें काफी समय, धन और श्रम लगता है। इस खर्च को समूह साक्षात्कार के द्वारा कम किया जा सकता है। लेकिन समूह साक्षात्कार में एक समय में 8 से 10 व्यक्तियों का साक्षात्कार लेना सम्भव है जिससे खर्च तो कम हो जाता है लेकिन उत्तरों की प्रामाणिकता और वास्तविकता में कमी आ जाती है। समूह साक्षात्कार उपकल्पनाओं के निर्माण के लिए तो उपयोगी है लेकिन तथ्य संकलन और उपकल्पनाओं की जाँच करने की अच्छी प्रणाली नहीं है। टेलीफोन के द्वारा साक्षात्कार प्रति-साक्षात्कार की कीमत कम कर देती है लेकिन यह साक्षात्कार भी अपनी कुछ सीमाएँ रखता है। यह साक्षात्कार संक्षिप्त होना चाहिए। इसके द्वारा दैव निदर्शन जनसंख्या का अध्ययन नहीं किया जा सकता क्योंकि हर एक के पास टेलीफोन नहीं होते हैं। साक्षात्कारों की सामग्री की तुलना नहीं कर सकते। साक्षात्कारकर्ताओं तथा सूचनादाताओं के व्यक्तित्व में भिन्नता होती है। इस भिन्नता के कारण उत्तरों में भिन्नता आ जाती है। इस भिन्नता के कारण वास्तविक तथ्य एकत्र करने में बाधा आ जाती है। साक्षात्कारकर्ता उत्तरदाताओं का नाम, पता, व्यवसाय तथा अन्य बातों को जानना चाहता है इसलिए कभी-कभी उत्तरदाता सही जानकारी नहीं देते हैं।

जहोडा सैलटिज तथा अन्य ने कहा कि जब साक्षात्कार और प्रश्नावली प्रणालियों का साथ-साथ उपयोग किया गया तो प्रश्नावली प्रणाली द्वारा प्राप्त तथ्य अधिक सही पाए गए तथा साक्षात्कार द्वारा प्राप्त तथ्य के निष्कर्ष वास्तविक

व्यवहार से भिन्न पाए गए। इस प्रणाली मे उत्तरदाताओ की स्मरण शक्ति का भी काफी प्रभाव पडता है। वह कई बार त्रुटिपूर्ण स्मरण के कारण उल्टी-सीधी जानकारी देता है जो वास्तविक जानकारी से काफी भिन्न होती है।

वर्ड के अनुसार उत्तरदाता उपयुक्त परिस्थितियो मे ही विस्तृत तथा सत्य जानकारी अपने निकट के सम्बन्ध मे या तो वे लोग उन घटनाओ को भूल जाते हैं या जानबूझकर उन घटनाओ की चर्चा नही करते हैं। भूली हुई घटनाएँ या दबे हुए अनुभव से सम्बन्धित जानकारी गहन साक्षात्कार के द्वारा प्राप्त करना सम्भव है लेकिन गहन साक्षात्कार भी कुछ ही अनुभवी और प्रशिक्षित साक्षात्कारकर्त्ता ही अच्छे ढग से कर सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि साक्षात्कार की अनेक उपयोगिताएँ भी हैं तो कई कमियाँ भी हैं।

साक्षात्कार के चरण
(Steps of Interview)

साक्षात्कार के द्वारा तथ्य सकलन की प्रक्रिया इस तथ्य पर आधारित है कि साक्षात्कार का कौनसा प्रकार काम मे लिया जा रहा है। सामाजिक अनुसन्धान मे साक्षात्कार के कौन-कौन से चरण होने चाहिए इस सम्बन्ध मे पी वी यग, गुडे और हट्ट, जॉन मेज इत्यादि के द्वारा बताए गए चरण महत्त्वपूर्ण हैं।

जॉन मेज ने साक्षात्कार के तीन चरण बताए हैं[1]—

1 प्रारम्भिक साक्षात्कार,
2 तथ्यो को एकत्र करना, तथा
3 *साक्षात्कार मे प्रेरणा देना।*

पी वी यग ने साक्षात्कार के निम्न चरण बताए हैं[2]—

1 प्रारम्भिक विचार,
2 साक्षात्कार की ओर प्रयास,
3 सहानुभूतिपूर्ण,
4 सम्मानित श्रोता की खोज,
5 साक्षात्कार में जटिल बिन्दु, और
6 साक्षात्कार की समाप्ति।

मुख्य रूप से साक्षात्कार की प्रक्रिया को निम्नलिखित चार चरणो मे व्यवस्थित कर सकते हैं—

1 साक्षात्कार की तैयारी,
2. साक्षात्कार की प्रक्रिया,
3 साक्षात्कार की समाप्ति, और
4 रिपोर्ट लिखना।

1 *John Madge* : op cit, p 146
2 *P V. Young* : op cit., p 224.

1. साक्षात्कार की तैयारी
(Preparation for Interview)

साक्षात्कार के द्वारा क्षेत्र में जाकर तथ्य संकलन के लिए सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि साक्षात्कारकर्त्ता जिस समस्या से सम्बन्धित तथ्य एकत्र करना चाहता है उस समस्या की पूर्ण जानकारी पहले से होनी चाहिए। जैसे अध्ययन का उद्देश्य क्या है, उसके किन-किन पहलुओं से सम्बन्धित प्रश्न पूछने हैं, सूचनादाताओं से किस प्रकार की जानकारी एकत्र करनी है, आदि। इसके अलावा साक्षात्कार की तैयारी में सूचनादाताओं का चयन भी आ जाता है। यह भी पूर्व निश्चित होना चाहिए कि सूचनादाताओं से किस समय और किस स्थान पर बातचीत करनी है। यंग का कहना है कि सूचनादाताओं को भी यह जानकारी पहुँचा देनी चाहिए कि कब और कहाँ साक्षात्कारकर्त्ता उनसे मिलेगा जिससे कि साक्षात्कारकर्त्ता के नाम बताने पर वह उसे तुरन्त पहिचान ले।

साक्षात्कार के इसी चरण में साक्षात्कार निर्देशिका का निर्माण किया जाता है। अनुसन्धानकर्त्ता को वास्तविक साक्षात्कार के लिए जाने से पहले इसका निर्माण कर लेना चाहिए। साक्षात्कारकर्त्ता निर्देशिका की सहायता से उत्तरदाताओं से प्रश्न पूछता है। साक्षात्कार निर्देशिका, समस्या से सम्बन्धित प्रश्नों पर आधारित होनी है जिससे साक्षात्कारकर्त्ता क्रमबद्ध प्रश्न पूछकर उत्तरदाताओं से सामग्री प्राप्त कर सके। सूचनादाताओं से आसानी से सहयोग प्राप्त करने के लिए समुदाय या सांस्कृतिक समूह के अगुआओं या प्रतिष्ठित व्यक्तियों का साक्षात्कार पहले लेना चाहिए। सूचनादाताओं की दिनचर्या और दूसरी बातों की जानकारी भी पहले से होनी चाहिए।

2 साक्षात्कार की प्रक्रिया
(Process of Interview)

प्रारम्भिक सम्पर्क में साक्षात्कारकर्त्ता के सूचनादाता की संस्कृति के अनुसार अभिनन्दन करने के बाद साक्षात्कार के उद्देश्य की व्याख्या करनी चाहिए। साक्षात्कारकर्त्ता को उत्तरदाता की शिक्षा, ज्ञान के स्तर तथा समझने की स्थिति के अनुसार अध्ययन का उद्देश्य और समस्या को स्पष्ट करना चाहिए। उसे यह भी बताना चाहिए कि सूचना प्राप्ति के लिए उस साक्षात्कारकर्त्ता का चुनाव कैसे हुआ है। यंग ने कहा है कि उत्तरदाता से सहयोग प्राप्त करने के लिए कुछ वाक्य जैसे—कुछ लोग ही ऐसे हैं जो ऐसी सूचना रखते हैं जैसे आप, जो कुछ आप कह रहे हैं वह बहुत मूल्यवान बात है, आपने मुझे नया दृष्टिकोण बताया है, आपने बहुत-से नए तथ्यों पर प्रकाश डाला है, जहाँ तक मैं जानता हूँ आप उन कुछ लोगों की स्थिति में हैं जो ऐसी सूचना देते हैं आदि बीच-बीच में कहते रहना चाहिए। उत्तरदाता से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के बाद प्रश्न पूछने चाहिए।

अनुभवी साक्षात्कारकर्त्ताओं का यह कहना है कि सुनते रहना एक कठिन कार्य है। यह स्वयं पर नियन्त्रण और अनुशासन चाहता है। यंग का कहना है कि

लिख लेना चाहिए। स्मरण शक्ति पर अधिक विश्वास नहीं करना चाहिए। साक्षात्कार के बाद भी जो कुछ बातचीत हुई है उसे विस्तार से लिख डालना चाहिए। टेपरिकार्डर का भी प्रयोग किया जा सकता है लेकिन उससे उत्तरदाता को शंका हो सकती है और वह स्वतन्त्र होकर गोपनीय तथा व्यक्तिगत जानकारी सम्भव है नहीं दे। एक अच्छे साक्षात्कारकर्त्ता की स्मरण शक्ति अच्छी होना और सूचनाओं को अधिक से अधिक संक्षिप्त में लिखना भी एक महत्त्वपूर्ण कार्य है और वह उसकी कार्यकुशलता को बढ़ाने के लिए आवश्यक है।

3 साक्षात्कार की समाप्ति
(Completion of Interview)

प्रत्येक साक्षात्कार की समाप्ति स्वाभाविक रूप से स्वतः ही हो जाती है। साक्षात्कार की प्रक्रिया धीरे-धीरे क्रम से समाप्त होनी चाहिए। झटके के साथ समाप्त नहीं होनी चाहिए। अच्छे परिणाम तब आते हैं जब प्रत्येक साक्षात्कार ऐसी स्थिति में समाप्त हो जब उत्तरदाता उत्साही हो और कुछ कहना चाहता हो। दूसरी बातचीत की बैठक के लिए सुझाव देता हो। अगर दोनों शारीरिक और मानसिक थकावट की स्थिति में पहुँच जाते हैं तो साक्षात्कारकार की दूसरी बैठक के लिए उत्साह नहीं रहता तथा सम्भावना भी कम हो जाती है। इसलिए पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए तथा समाप्ति के समय साक्षात्कारकर्त्ता को पूछना चाहिए हमने क्या छोड़ दिया है। हम किन-किन बातों को करने में असफल रहे या क्या आप कुछ और कहना चाहेंगे। साक्षात्कारकर्त्ता को साक्षात्कार समाप्त करते समय पुनः एक बार देख लेना चाहिए कि कोई बातें करने से रह तो नहीं गई हैं। उत्तरदाता को धन्यवाद देना चाहिए और उससे सन्तुष्ट मुद्रा में विदा लेनी चाहिए।

4 रिपोर्ट लिखना
(Report Writing)

साक्षात्कार की प्रक्रिया का अन्तिम चरण रिपोर्ट लिखना है। जहाँ तक हो सके साक्षात्कारकर्त्ता को साक्षात्कार के बाद जितना जल्दी हो सके रिपोर्ट लिख लेनी चाहिए। जितनी वह देर करेगा उतने ही अधिक तथ्य वह भूल जाएगा। साक्षात्कार से लौटने के बाद अपने द्वारा लिखी संक्षिप्त टिप्पणियों की सहायता से रिपोर्ट लिखने का कार्य पूर्ण कर लेना चाहिए। स्मरण शक्ति के आधार पर क्रम से निष्पक्ष तथ्यों को जो कि अनुसन्धान के लिए महत्त्वपूर्ण हैं, लेखबद्ध कर लेना चाहिए।

साक्षात्कार निर्देशिका
(Interview Guide)

गुडे और हट्ट ने साक्षात्कार निर्देशिका की परिभाषा देते हुए कहा है 'साक्षात्कार निर्देशिका बिन्दुओं के विषयों की एक सूची है जिसको साक्षात्कारकर्त्ता साक्षात्कार के समय पूर्ण करे।'[1] इनमें बहुत कुछ लचीलापन होता है। इसमें भाषा क्रम, पूछने का ढंग प्रश्नों को पूछने के सम्बन्ध में गतिशील होता है।

1 *Goode and Hatt* op cit, p 133

1 साक्षात्कार निर्देशिका अध्ययन के महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं की ओर ध्यान केन्द्रित करने मे सहायता प्रदान करती है।

2 विभिन्न साक्षात्कारो मे तुलनात्मक तथ्य एक या अनेक साक्षात्कार-कर्त्ताओ द्वारा एकत्र करने मे मदद करती है।

3. निर्मित उपकल्पनाओ की जाँच करने अथवा एक ही प्रकार के आइटम्स से सम्बन्धित विश्लेषणात्मक तथ्यो के सकलन करने म मदद करती है।

4 जीवन-इतिहास से सम्बन्धित गुणात्मक अध्ययन विशिष्ट एव ठोस जानकारी एकत्र करने के लिए मदद करते हैं। इसके द्वारा गुणात्मक जीवन इतिहास का अध्ययन किया जा सकता है। साक्षात्कार निर्देशिका बहुत अधिक उपयोगी बात होती है जब उसकी विभिन्न छोटी-छोटी बातें पुन वर्गीकृत होती हैं और साक्षात्कारकर्त्ता द्वारा अच्छी तरह से याद करली जाती है और जिनका उपयोग वह आवश्यकतानुसार करता है। साक्षात्कार मे यह आवश्यक नही है कि निर्देशिका मे दिए गए क्रम से ही प्रश्नो को पूछा जाए। साक्षात्कार निर्देशिका कोई मौखिक प्रश्नावली नही है। निर्देशिका के उद्देश्य बेकार हो जाते हैं अगर उसे बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता है। गुडे और हट्ट का कहना है कि साक्षात्कार निर्देशिका का निर्माण काफी कुछ उसी प्रकार से किया जाता है जैसे प्रश्नावली और अनुसूची का किया जाता है। साक्षात्कार निर्देशिका अध्ययन की समस्या व पहलुओ से सम्बन्धित मुख्य-मुख्य प्रश्नो की चुनी होती है, जिनके आधार पर साक्षात्कारकर्त्ता साक्षात्कार की प्रक्रिया पूरी करता है। जब साक्षात्कार विधि के द्वारा अनेक सूचनादाताओ से तथ्य एकत्र करने होते हैं तो ऐसी स्थिति मे कई साक्षात्कारकर्त्ता होते हैं जो समस्या से सम्बन्धित एकरूपता तथा तुलनात्मक जानकारी एकत्र करते हैं। इसके लिए साक्षात्कार निर्देशिका एक बहुत सहायक उपकरण का कार्य करती है। निर्देशिका के द्वारा सभी पहलुओ से सम्बन्धित तथ्य एकत्र करना सम्भव है। स्मरण शक्ति के आधार पर सम्भव है कि साक्षात्कारकर्त्ता प्रश्नोत्तर के समय कुछ पहलुओ से सम्बन्धित प्रश्न पूछना भूल जाए जबकि निर्देशिका की सहायता मे इस गलती से बचा जा सकता है तथा साक्षात्कार की प्रक्रिया क्रमबद्ध चलती रहती है और उसम स्वाभाविकता बनी रहती है एव उसमे किसी तरह की रुकावट या विघ्न नहीं आ पाता है।

अवलोकन
(Observation)

पिछले कुछ वर्षों मे सामाजिक यथार्थ (Social Reality) के अध्ययन मे अवलोकन विधियो के प्रयोग मे भारी वृद्धि हुई है। इनसे प्राप्त अनुभवो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अवलोकन द्वारा सामाजिक व्यवहार के न केवल क्षेत्रीय अध्ययनो मे अपितु प्रयोगशालायी परीक्षणो मे भी विश्वसनीय तथा सैद्धान्तिक रूप मे अर्थपूर्ण तथ्य प्राप्त किए जा सकते हैं। अवलोकन के प्रयोग के साथ-साथ अवलोकन विधियो मे भी परिष्करण हुआ है। उदाहरणार्थ आजकल कुछ विशिष्ट

पृथक ही अर्थ है। ऑक्सफोर्ड कनसाइज शब्दकोष में अवलोकन की परिभाषा इस प्रकार की गई है "प्रकृति में घटनाएँ जिस रूप में घटती हैं, उनके कारण तथा प्रभावों अथवा उनके पारस्परिक सम्बन्धों को सही रूप में देखने तथा उनको अंकित करने की विधि को अवलोकन कहते हैं।"[1]

सी ए मोजर ने लिखा है कि 'सामाजिक विज्ञानों में बहुधा इस संज्ञा का प्रयोग अधिक विस्तृत अर्थों में किया जाता है। सही अर्थों में एक सहभागिक अवलोकनकर्ता उद्यम समुदाय के जीवन तथा क्रियाओं में भाग लेता हुआ उन सब बातों का अवलोकन नहीं करता जो उसके आस पास घटती है अपितु अवलोकित की हुई घटनाओं को वार्तालाप, साक्षात्कार (Interview) तथा प्रलेखों (Records) के अध्ययनों द्वारा पूर्ण बनाता है। विस्तृत अर्थों में अवलोकन की विशिष्टता इस बात से प्रकट होती है कि अपेक्षित सूचनाओं का संग्रहण अन्य व्यक्तियों की कही सुनी बातों की अपेक्षा प्रत्यक्ष किया जाता है। व्यक्तियों के व्यवहार के अध्ययन में भी एक व्यक्ति यह देख सकता है कि वह क्या करता है इसकी अपेक्षा कि वह जो कुछ करता है उसके सम्बन्ध में वह क्या कहता है।"[2]

साइमन्स ने लिखा है कि 'सहभागिक अवलोकन कोई विधि नहीं है अपितु कई विधियों तथा तकनीकों का एक संयोग है।

पी वी यंग के अनुसार 'घटनाओं को स्वतः घटित होने के समय आँखों द्वारा एक व्यक्ति तथा सुविचारित रूप में अध्ययन करने को अवलोकन कहते हैं।'[3] इस विवेचना से स्पष्ट है कि अवलोकन में आँखों का प्रयोग ही मुख्य है और अन्य इन्द्रियों पर आधारित विधियों जैसे साक्षात्कार अथवा वार्तालाप आदि इसमें गौण हैं।

सी ए मोजर ने इस बात को स्वीकार किया है 'सही अर्थों में, कानों तथा वाणी की अपेक्षा आँखों का प्रयोग ही अवलोकन कहलाता है।'[4]

ए वल्फ ने अवलोकन विधि के सम्बन्ध में लिखा है कि 'वस्तुओं तथा घटनाओं उनकी विशेषताओं एवं उनके मूर्त सम्बन्धों को समझने और उनके सम्बन्ध में हमारे मानसिक अनुभवों की प्रत्यक्ष चेतना को जानने की क्रिया को अवलोकन कहते हैं।'[5] इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि अवलोकन के द्वारा मात्र घटनाओं को देखा ही नहीं जाता है वरन् उनकी विशेषताओं और अन्तसम्बन्धों को जानने का प्रयास भी किया जाता है।

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि अवलोकन प्रविधि प्राथमिक सामग्री के संग्रहण की प्रत्यक्ष प्रविधि है। अवलोकन का तात्पर्य उस प्रविधि से है जिसमें नेत्रों द्वारा नवीन अथवा प्राथमिक तथ्यों का विचारपूर्वक संकलन किया जाता हो,

1 Concise Oxford Dictionary Quoted by C A Moser Survey Methods in Social Investigation p 165
2 C A Moser Ibid p 245
3 *Pauline V Young* Scientific Social Survey and Research p 156
4 *C A Moser* op cit p 171
5 *A Wolf* Essentials of Scientific Methods

साथ ही इस प्रविधि मे अनुसन्धानकर्त्ता अध्ययन के अन्तर्गत आए समूह के दैनिक जीवन मे भाग लेते हुए अथवा उससे दूर बैठकर उनके सामाजिक एव व्यक्तिगत व्यवहारो का अपनी ज्ञानेन्द्रियो द्वारा निरीक्षण या अवलोकन करता है।

सामान्य देखना बनाम वैज्ञानिक अवलोकन

हम अपने आस-पास होने वाली घटनाओ को निरन्तर देखते हैं। सुबह होने पर हम अपनी खिडकी से यह देखते हैं कि सूर्य उदय हुआ है या नही, कहीं बाहर वर्षा तो नही हो रही है। यदि हम मोटर चला रहे होते हैं तो यह ध्यान रखते हैं कि कही कोई बालक हमारी गाडी से कुचल न जाए, कहीं हमारी गाडी टकरा न जाए साथ ही यह ध्यान रखते हैं कि सडक पर मार्गदर्शक लाल रोशनी है अथवा हरी आदि। इस प्रकार के अनेक ऐसे उदाहरण दिए जा सकते हैं जो यह प्रकट करते हैं कि निद्रावस्था को छोडकर हमारी आँखें निरन्तर कुछ न कुछ देखने मे व्यस्त रहती हैं। आँखो का प्रयोग केवल जीवन की दैनिक क्रिया-कलापो को देखने के लिए ही नही किया जाता अपितु देखना वैज्ञानिक शोध की एक आधारभूत विधि है।

यद्यपि हम सभी अपने आस-पास घटित होने वाली घटनाओ को देखते हैं किन्तु अवलोकन इससे भिन्न है। उदाहरण के लिए हम अपने सामान्य अनुभव के आधार पर यह कहते हैं कि पृथ्वी सापेक्षिक रूप मे चपटी है इस बात की पुष्टि कोई भी व्यक्ति थोडा-सा देखकर कर सकता है। किन्तु जैसा कि हमे अपने वैज्ञानिक अनुभवो द्वारा पता है कि वास्तव मे जिस प्रकार की पृथ्वी को हम देखते हैं, वह चपटी न होकर गोल है। यह एक उदाहरण ही सामान्य देखने तथा वैज्ञानिक देखने के बीच के अन्तर को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है। सामान्य देखने के द्वारा हम प्रमाणित परिणामों को प्राप्त करने की आशा नहीं कर सकते, अत देखना हमारे जीवन के बहुत सारे अनुभवो का आधार होते हुए भी वैज्ञानिक रूप से देखने से भिन्न है। इस भिन्नता को परिलक्षित करने के लिए तथा वैज्ञानिक देखने के लिए हम अवलोकन शब्द का प्रयोग कर रहे हैं।

सैलिज, जहोवा, डेयुटस्च तथा कुक के अनुसार सामान्य देखना एक वैज्ञानिक पद्धति के रूप मे अवलोकन का रूप धारण कर लेता है जब उसमे निम्न विशेषताएँ जुड जाती हैं[1]—

(1) जब अवलोकन का एक विशिष्ट उद्देश्य हो।

(2) जब अवलोकन नियोजित तथा सुव्यवस्थित रूप मे किया गया हो।

(3) जब अवलोकन की प्रामाणिकता तथा विश्वसनीयता पर आवश्यक नियन्त्रण एव प्रतिबन्ध लगाया गया हो।

(4) जब अवलोकन के निष्कर्षों को क्रमबद्ध रूप मे लिखा गया हो तथा सामान्य उपकल्पना के साथ उसका सह-सम्बन्ध स्थापित किया गया हो।

1 *Selltiz, Jahoda, Deutsch and Cook* Research Methods in Social Relations, p 252.

पी वी यग ने वैज्ञानिक अवलोकन की निम्न विशेषताओ का उल्लेख किया है[1]—

(1) निश्चित उद्देश्य,

(2) योजना तथा प्रलेखन की व्यवस्था,

(3) वैज्ञानिक परीक्षण तथा नियन्त्रण हेतु उपयोगी ।

इन विशेषताओ के अतिरिक्त श्रीमती यग ने अवलोकन के सम्बन्ध मे एक और महत्त्वपूर्ण बात की ओर ध्यान आकर्षित किया है कि अवलोकनकर्त्ता को अप्रत्याशित तथा आकस्मिक घटनाओ के प्रति भी सतर्क रहना चाहिए तथा उन पर विशेष ध्यान देना चाहिए । उनका विचार है कि "ऐसी अप्रत्याशित घटनाओ का अवलोकन कभी-कभी महत्त्वपूर्ण तथ्यो को प्राप्त करने तथा नवीन उपकल्पनाओ एव सिद्धान्तो को जन्म देने की शोध प्रक्रिया मे एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं ।"[2]

सेलिज, जहोदा एव कुक तथा पी वी यग के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वैज्ञानिक अवलोकन एक विशिष्ट ढग से किया जाता है उसकी कुछ विशेषताएँ हैं जो उसे सामान्य देखने की प्रक्रिया मे भिन्न करती हैं ।

1 अवलोकन का एक उद्देश्य होता है

अवलोकन का अर्थ सामान्य अनुभव प्राप्त करने के लिए केवल मात्र इधर-उधर देखना नही होता अपितु वैज्ञानिक अवलोकन सतर्कतापूर्ण, पूर्व-निर्धारित उद्देश्य को ध्यान म रखकर किया जाता है । चार्ल्स डारविन ने एक स्थान पर लिखा था कि यह कितना अजीब है कि किसी भी व्यक्ति को सभी कुछ नही देखना चाहिए, अवलोकन तभी लाभप्रद हो सकता है जब अवलोकन किसी दृष्टि बिन्दु के पक्ष अथवा विपक्ष म किया गया हो । इसी प्रकार के कुछ विचार पी वी यग ने अभिव्यक्त किए हैं । हम बहुत सारी जटिल घटनाओ को देखते रहते हैं किन्तु हमारा देखना तभी अत्यधिक अर्थपूर्ण होना है जब हमारी आँखें किसी अध्ययन के लिए अपनाई गई विचार दृष्टि तथा प्रारम्भिक उपकल्पना के अनुरूप कार्य करती हो । उदाहरण के लिए यदि हम यह जानना चाहते हैं कि सडको पर दुर्घटनाएँ क्यो होती हैं ? सडको पर दुर्घटनाएँ तग अथवा टूटी फूटी सडको के कारण नहीं होती जैसा कि सामान्य रूप मे समझा जाता है अपितु दुर्घटनाएँ वाहनो की तेज रफ्तार के कारण होती हैं । यह उपकल्पना हमारे अवलोकन का उद्देश्य हो सकती है । इस उद्देश्य के अनुसार जब हम अपना ध्यान वाहनो की रफ्तार तथा उसके परिणामो पर केन्द्रित करते हैं तब हम अपना ध्यान इधर-उधर की बातो जैसे सडको पर से गुजरने वाले विभिन्न प्रकार के वाहनो, सडक की परिपाटियो, सडक की दिशा, वाहन चालक अथवा उनकी वेश-भूषा, वाहन के यात्री, वाहन का रग अथवा नम्बर आदि से हटाकर पूर्णतया वाहन की रफ्तार पर केन्द्रित कर देते हैं, ताकि हम अपनी

1 *P V Young* : op cit, p 156
2 *P V. Young* : Ibid, p 156

उपकल्पना की परीक्षा कर सकें। उपरोक्त उपकल्पना यदि हमारे परीक्षण द्वारा सिद्ध नहीं होती तब हम दूसरी उपकल्पना का निर्माण करेंगे और उसके अनुरूप ही हम सार्थक घटनाओं का अवलोकन करेंगे।[1]

इस उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि अवलोकन हेतु निर्धारित लक्ष्य हमारी दिशा का निर्देशन करता है तथा सार्थक तथ्यों पर बल देता है जिस पर हम अपना ध्यान केन्द्रित करना होता है।

2 अवलोकन में एक व्यवस्था होती है

अवलोकन में एक व्यवस्था होती है। वैज्ञानिक अवलोकन मनमाने ढंग से नहीं किया जाता है, वरन् यह नियोजित ढंग से किया जाता है। अवलोकन करने से पूर्व 'किन', 'कब', 'क्यों', कैसे तथा 'कहाँ' प्रश्नों के सम्बन्ध में एक पूर्ण विचार कर लिया जाता है।

3 अवलोकन चयनात्मक होता है

हमारी आँखों के सामने जो घटनाएँ घटित होती हैं, उनमें से हम देखते समय कुछ चीजों तथा घटनाओं को ही देखते हैं तथा कुछ को अकारण रुचि-अरुचि के आधार पर छोड़ देते हैं किन्तु वैज्ञानिक अवलोकन में सामान्य देखने की भाँति अवलोकित की जाने वाली घटनाओं का चुनाव रुचि-अरुचि के द्वारा नहीं किया जाता अपितु शोध के उद्देश्य के आधार पर किया जाता है। गुडे तथा हट्ट ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि 'हम सभी कुछ चीजों को देखते हैं किन्तु कुछ को नहीं देख पाते। हमारी सतर्कता तथा प्रायमिकताएँ हमारे ज्ञान की गहनता तथा विस्तार तथा हमारा लक्ष्य जिसे हम प्राप्त करना चाहते हैं ये सभी हमारे चयनात्मक अवलोकन के रूप का निर्धारण करते हैं। बहुत कम ही ऐसे छात्र होते हैं जो सामाजिक व्यवहार का अध्ययन सोच समझकर करते हैं।'[2] इसे हम एक उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं। यदि हम विद्यार्थियों के एक समूह को कोई कारखाना (Factory) दिखाने ले जाएँ और उन्हें अपने अवलोकन की एक रिपोर्ट लिखने को कहें तो इस रिपोर्ट से यह ज्ञात होगा कि अधिकांश विद्यार्थियों ने सामाजिक व्यवहार की सूक्ष्मताओं को देखने की अपेक्षा ऐसी क्रियाओं अथवा प्रक्रियाओं को देखने में अधिक रुचि प्रदर्शित की, जो एक समाज विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए महत्त्वहीन थी। जैसे कारखाने में घूमते समय किसी मशीन के चलने के ढंग उसकी रफ्तार उसमें निकलने की आवाज, प्रदर्शन कक्ष में रखी हुई नारी का मॉडल देखने में उन्होंने अधिक समय गुजारा और सामाजिक व्यवहार की कुछ आवश्यक बातों को वे नोट करना भूल गए, जैसे कारखाने में शोरगुल-पूर्ण वातावरण में कर्मचारी आपस में किस प्रकार एक-दूसरे से बातचीत करते हैं कारखाने में मजदूरों का वितरण आयु तथा लिंग के आधार किस प्रकार हुआ है, आदि।

1 *P V Young* Ibid, p 156

2 *Goode and Hatt* op cit, p 121

संक्षेप में हम स्पष्ट दिखने वाले व्यवहार के प्रति सजग रहते हैं किन्तु हम में से बहुत कम हमारे आस-पास होने वाली सामाजिक अन्त क्रियाओं की सूक्ष्मता को जान पाते हैं।

4. अवलोकन का प्रलेखन

अवलोकन किए जाने के तुरन्त बाद अथवा जितना शीघ्र हो सके उसका प्रलेखन किया जाता है जिससे अवलोकित घटनाओं के किसी भी पक्ष को भुलाया न जा सके, इसके लिए अनुसूची अथवा अन्य साधनो जैसे कैमरा, टेपरिकार्डर आदि का प्रयोग भी इसी कार्य हेतु किया जाता है।

5 प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा अवलोकन

वैज्ञानिक अवलोकन एक तकनीकी प्रक्रिया है अत. इसके लिए एक सामाजिक वैज्ञानिक को अपने आपको प्रशिक्षित करना होता है। उदाहरण के लिए किसी भी यन्त्र का प्रयोग व्यक्ति सही ढग से तभी कर सकता है जब उसने उस यन्त्र के प्रयोग का प्रशिक्षण लिया हो।[1]

6. अवलोकन के परिणामो का परीक्षण तथा प्रमाणीकरण

वैज्ञानिक अवलोकन की एक और विशेषता यह है कि व्यवस्थित अवलोकन द्वारा प्राप्त परिणामों का परीक्षण ही नहीं अपितु प्रमाणीकरण भी सम्भव है। यह प्रमाणीकरण अन्य अवलोकनकर्त्ताओं द्वारा प्राप्त परिणामो से अथवा इसी अध्ययन को दुबारा करके किया जा सकता है।

अवलोकन की विशेषताएँ
(Characteristics of Observation)

1. मानव-इन्द्रियों का प्रयोग—अवलोकन में मानव-इन्द्रियों का प्रयोग होता है। इसमें आँख, कान व वाणी का प्रयोग कर सकते हैं परन्तु नेत्रों के प्रयोग पर अधिक बल दिया जाता है। मोजर के अनुसार, 'सच्चे अर्थ में अवलोकन में कानों तथा वाणी की अपेक्षा नेत्रों का उपयोग ही विशेष रूप से सम्मिलित है।"

2 प्राथमिक सामग्री को प्राप्त करना (To Obtain Primary Data)—अवलोकन की मुख्य विशेषता घटनास्थल पर जाकर वस्तुस्थिति को देख, प्राथमिक सामग्री का सकलन करना है।

3 सूक्ष्मता (Minuteness)—निरीक्षण के अन्तर्गत मात्र देखना ही नहीं है वरन् घटना का गहरा एव सूक्ष्म अध्ययन करना भी है। सूक्ष्म अध्ययन से वह उद्देश्य की प्राप्ति में सफल हो जाता है अन्यथा इधर-उधर भटकना रहेगा।

4 कारण और परिणाम के सम्बन्ध का पता लगाना (To Find out the Relationship of Cause and Effect)—अवलोकन का शाब्दिक अर्थ देखना या निरीक्षण करना है, वैज्ञानिक अर्थ में इसका उद्देश्य कारण-परिणाम के सम्बन्ध का

1 *P V. Young*: op. cit., p 154.

पता लगाता है निरीक्षणकर्त्ता स्वय घटना (Phenomenon) को देखकर आवश्यक कारणो तथा परिणामो के मध्य सम्बन्ध स्थापित करता है ।

5. व्यावहारिक या अनुभवाश्रित अध्ययन (Empirical Study)—अवलोकन कल्पना पर आधारित न होकर अनुभव पर आधारित है । अनुभवाश्रित अध्ययन चाहे किसी समस्या का हो या समुदाय का, सामाजिक अनुसन्धान मे बडा उपयोगी है ।

6 निष्पक्षता (Impartiality)—चूंकि अध्ययनकर्त्ता स्वय अपनी आंखो से घटना का निरीक्षण करता है व उसकी भली-भांति जाँच करता है, अत उसका निर्णय दूसरो के निर्णय या कहने-सुनने पर आधारित नही होता । स्वय का सूक्ष्म व गहन अध्ययन उसे अभिनति से बचाता है ।

अवलोकन के गुण

(Merits of Observation)

सी ए. मोजर ने लिखा है कि प्रत्यक्ष अवलोकन के कई लाभ हैं । हम यहाँ प्रत्यक्ष अवलोकन के कुछ गुणो का वर्णन करेंगे—

1 सूचनादाताओं को अध्ययन करने का प्रत्यक्ष साधन—मोजर ने इस सम्बन्ध मे उचित ही लिखा है कि व्यक्तियो की दैनिक क्रियाओ का अवलोकन समाजशास्त्रियो को इस प्रकार के तथ्य प्रदान करने मे सक्षम होता है, जो कि वह किसी अन्य साधन द्वारा कठिनाई से ही विश्वसनीय रूप से प्राप्त कर सकता है ।[1] साक्षात्कार मे व्यक्ति जो कुछ करते हैं उसके विषय मे वे क्या सोचते हैं, क्या बताते हैं लेकिन जो कुछ वे बताते हैं वह बहुत कुछ उनके वास्तविक व्यवहार से भिन्न होता है । यही नही कई व्यक्ति अपने सम्बन्ध मे सही सूचनाएँ देने योग्य होते हुए भी देना पसन्द नही करते । ऐसी घटनाओ के अध्ययन के लिए अवलोकन सर्वाधिक उपयोगी है ।

2 स्वाभाविक व्यवहार का वास्तविक अध्ययन—अवलोकन के द्वारा मानवीय व्यवहार का उसकी स्वाभाविक स्थिति मे अध्ययन किया जाना सम्भव होता है जो कि किसी भी अन्य विधि द्वारा नही किया जा सकता । विस्तृत जीवन इतिहास तथा गहन साक्षात्कारो के द्वारा भी वह वास्तविकता नही आ पाती, जो अवलोकन के द्वारा आती है । सैलिज तथा उनके सहयोगी लेखको ने लिखा है कि "अवलोकन विधियो का सर्वाधिक गुण यही है कि इन विधियों द्वारा घटनाओ का उस समय ही अध्ययन किया जाना सम्भव होता है जबकि वे घटती हैं ।"[2]

3. सूचनादाताओं को सूचना देने की योग्यता से स्वतन्त्र—जब सूचनादाता सूचना देने के अयोग्य होते हैं अथवा अपर्याप्त सूचना देते हैं या दे पाते हैं ऐसी

1 *C A Moser* op cit, p 167
2 *Selitz and Others* op cit, p 201.

स्थिति मे अवलोकन विधि ही सही सूचनाओ को एकत्रित करने मे एकमात्र साधन होती है।

4 सूचनादाताओं की सूचना देने की इच्छा से स्वतन्त्र—सामाजिक शोध मे कई बार ऐसे अवसर आते हैं जब अध्ययन किए जाने वाले व्यक्ति अथवा समूह सूचना देना नही चाहते हैं। कई बार वे सूचना देना तो चाहते हैं किन्तु उनके पास समय नही होता है अथवा वे साक्षात्कार किया जाना पसन्द नही करते हैं या जो प्रश्न उनसे किए जाते हैं, उनके पास नही होते, आदि। ये सभी स्थितियाँ अवलोकन विधि के प्रयोग पर बल देती हैं। इसमे कोई सन्देह नही है कि अवलोकन विधि मे अन्य विधियो की अपेक्षा सूचनादाताओ के सक्रिय सहयोग की कम आवश्यकता पडती है।

5 सूचनादाताओं की स्मरण शक्ति से स्वतन्त्र—साक्षात्कार द्वारा प्राप्त सूचनाएँ कभी-कभी अविश्वसनीय होती हैं क्योकि वे सूचनादाताओ की स्मरण शक्ति पर निर्भर करती हैं। कुछ विषयो पर याददाश्त की कमजोरी के कारण तथ्य गम्भीर रूप से विकृत हो जाते हैं। ऐसा कभी अवलोकन विधि मे नही होता, क्योकि अवलोकन घटनाओ को स्वभाविक स्थिति मे किए जाने के कारण इसमे कुछ भूल जाने की सम्भावना कम होती है।

6 प्रत्युत्तर मे त्रुटियो की कम सम्भावना—सूचना देते समय सही उत्तर देने के योग्य होते हुए भी यह नही कहा जा सकता है कि वे सही उत्तर देंगे ही। सूचनादाता कई बार प्रश्न को गलत समझने के कारण असत्य उत्तर देता है। ये कमियाँ हमको प्रत्यक्ष अवलोकन मे दिखाई नही देती हैं किन्तु साक्षात्कार की भाँति अवलोकन म अभिनति आने की सम्भावना रहती है। यह अवलोकनकर्त्ता द्वारा घटनाओ क अभिमान पर निर्भर रहता है।

7 घटनाओ का गहन अध्ययन सम्भव है—अवलोकन विधि के द्वारा ही हम जटिल घटनाओ को गहराई से समझ सकते हैं। पी वी यग ने लिखा है कि, 'किसी भी समूह की भावनाओ, विचारो तथा क्रियाओ के पीछे छुपे हुए अर्थ को ढूंढना सम्भव है। यह विधि सामाजिक परिवेश, अर्थात् समूह तथा उसके सदस्यों के मध्य पाए जाने वाले सम्बन्धो को समझने तथा उनका अर्थ जानने म सहायता करती है।''

अवलोकन विधि की सीमाएँ
(Limitations of Observation)

प्रत्यक्ष अवलोकन ज्ञान प्राप्ति की सबसे सरल एव अत्यधिक प्रयोग की जाने वाली एक विधि है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी अवलोकन सत्य एव पूर्णत सही होते हैं। इसमे सन्देह नही है कि अवलोकन विधि का सामाजिक अनुसन्धान मे अपना पृथक् महत्त्व है, फिर भी इस प्रविधि की कुछ सीमाएँ हैं। मुकदमो मे साक्षियो के द्वारा दिए गए एक दूसरे से पूर्णतया विरोधी बयान,

अखबारो तथा पत्र-पत्रिकाओ मे एक ही घटना के सम्बन्ध मे छपी हुई विज्ञप्ति कभी-कभी आकस्मिक और उद्देश्यहीन किए गए प्रतिदिन के अवलोकन की कमियो को परिलक्षित करती है। इस प्रकार के अवलोकन व्यक्तिगत अभिनीतियो से भरे होते हैं जो प्रेषक को, मुख्यत उन्ही वस्तुओ अथवा घटनाओ को देखने के लिए लालायित करते हैं, जिनमे उनकी रुचि होती है। अवलोकनकर्त्ता उन्ही बातो को याद रख पाता है, जो उसे अच्छी लगती हैं और इस प्रकार कभी-कभी वह अवलोकन की महत्त्वपूर्ण बातो को नजर-अन्दाज करके भुला देता है। अवलोकन की ये कठिनाइयाँ अवलोकन की सीमाओ पर प्रकाश डालती हैं किन्तु इनमे से अधिकांश कठिनाइयाँ वैज्ञानिक अवलोकन की अपेक्षा सामान्य अवलोकन से जुडी हुई हैं। जैसा कि बताया जा चुका है कि सामान्य अवलोकन और वैज्ञानिक अवलोकन मे अन्तर है। वैज्ञानिक अवलोकन मे सामान्य अवलोकन की कमियो पर विभिन्न साधना तथा विधियो द्वारा अकुश लगाने का प्रयास किया गया है जिससे व्यक्तिगत अभिनीति से बचाव हो सके। फिर भी इस विधि की कुछ सीमाएँ इस प्रकार हैं—

पी. वी. यग के अनुसार "सभी घटनाएँ अवलोकन के लिए स्वतन्त्र अवसर प्रदान नही करती, सभी घटनाएँ जिनका अवलोकन किया जा सकता है, उस समय नहीं घटती जब अवलोकनकर्त्ता उपस्थित होता है, सभी घटनाओ का अध्ययन अवलोकन विधियो के द्वारा किया जाना सम्भव नही है।"[1] इससे स्पष्ट है कि अवलोकन विधि का प्रयोग प्रत्येक स्थिति मे सरलता से नहीं किया जा सकता है।

अवलोकन की कुछ सीमाओ का उल्लेख पी वी यग ने किया है—

1 **सभी घटनाएँ प्रेक्षण के लिए स्वतन्त्र नहीं होतीं**—कुछ इस प्रकार के सामाजिक सम्बन्ध तथा घटनाएँ होती हैं जिनका अवलोकन प्राय निषिद्ध होता है। यदि किसी प्रेमी-प्रेमिका के व्यक्तिगत एव व्यावहारिक जीवन का निरीक्षण करना हो तो शायद कोई भी व्यक्ति इसके लिए तैयार नहीं होगा।

2 **निश्चित समय व स्थान**—कुछ घटनाएँ इस प्रकार की होती हैं जिनका निश्चित समय व स्थान नहीं होता है, उदाहरण के लिए यदि किसी को गृह कलह के *कारणो/दशाओ का अध्ययन करना है तो यह निश्चित नहीं है कि कब पति-पत्नी* का झगडा होगा। हो सकता है जब झगडा हो तो अवलोकनकर्त्ता उपस्थित न हो और ऐसा होता भी है।

3. **कुछ घटनाओं का अवलोकन असम्भव है**—अनेक प्रकार के सामाजिक अनुसन्धान अमूर्त तथ्यो से सम्बन्धित रहते हैं। ये अमूर्त तथ्य व्यक्ति के विचार, उद्वेग, भावनाएँ, प्रवृत्तियाँ आदि हो सकते हैं। इनका अवलोकन वास्तव मे सम्भव नहीं है।

4 **पिछली बातों का अवलोकन सम्भव नहीं है**—ऐतिहासिक घटनाओं का अध्ययन अवलोकन विधि द्वारा सम्भव नही है। बीती हुई बातो अथवा पुरानी

1 *P V Young* op cit, p 157

घटनाओं के सम्बन्ध मे हमे दस्तावेजो के निरीक्षण के साथ-साथ व्यक्तियो के कथनो पर, यह जानते हुए भी कि उनमे याददाश्त सम्बन्धी त्रुटि रह सकती है, निर्भर रहना पडता है ।

इसके अतिरिक्त अवलोकनकर्त्ता के स्वय के आदर्श, मूल्य व विचारो का उसके अध्ययन मे अवश्य प्रभाव पडता है क्योकि तथ्यो और घटनाओ को देखने में व्यक्ति अपना दृष्टिकोण प्रयोग मे लाता है जो कि वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिए अत्यन्त हानिकारक है । इसके साथ ही इसमे कमी यह भी है कि जब व्यक्तियो को यह पता चल जाता है कि उनके व्यवहार का अध्ययन किया जा रहा है तो उनके व्यवहार मे कृत्रिमता आ जाती है ।

अवलोकन की इन सीमाओ के अतिरिक्त भी यह एक अत्यन्त साध्य विधि है । एक परिवार के खर्चे के प्रतिमान के अध्ययन के लिए उस परिवार के साथ एक लम्बे समय तक रहने की अपेक्षा थोडे से समय मे साक्षात्कार कर परिवार के खर्चे का पता लगाया जा सकता है ।

इस विधि के द्वारा व्यवहारो की आवृत्ति का अध्ययन भी कठिनत ही सम्भव है । एक व्यक्ति एक महीने मे कितनी बार सिनेमा जाता है इसे जानने के लिए उसके व्यवहार का एक महीने तक अवलोकन किए जाने की अपेक्षा उससे इस सम्बन्ध मे पूछना अधिक सरल है ।

समाज की शक्ति सरचना (अर्थात् वर्ग या जातिगत सम्बन्ध) तथा मूल्य व्यवस्था भी मुक्त अवलोकन पर एक रोक का कार्य करती है । यह बात विशेषत सहभागिक अवलोकन के सम्बन्ध मे ज्यादा चरितार्थ होती है क्योकि इसमे अवलोकनकर्त्ता को अधिक समुदाय के साथ रहना पडता है ।

अवलोकन का एक सबसे बडा और अवगुण यह है कि अवलोकन चयनात्मक ढग से किया जाता है । एक घटना जो अवलोकनकर्त्ता के लिए अर्थपूर्ण हो सकती है, वह सम्भव है दूसरे अवलोकनकर्त्ता के लिए अर्थपूर्ण न हो । इसका कारण यह है कि अवलोकन करते समय अवलोकनकर्त्ता का पिछला अनुभव तथा अभिज्ञान की शक्ति, आदि उसे प्रभावित करती है । वास्तव मे अवलोकन हमारी आँखो, कानो अथवा हाथो की प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया नही होती, अपितु यह प्रतिक्रिया हमारी बहुत सारी पुरानी आदतो, शारीरिक अनुक्रियाओ तथा गतिविधियो पर निर्भर करती है । हम अपने सम्पूर्ण पिछले मानसिक अनुभवो के आधार पर प्रेक्षण करते हैं ।

इन सीमाओ तथा अन्य कई कमियो के बावजूद भी अवलोकन वैज्ञानिक अन्वेषण की एक महत्त्वपूर्ण तथा प्रारम्भिक विधि है । मोजर ने साक्षात्कार से अवलोकन विधि की तुलना करते हुए यह लिखा है कि, "व्यक्तियों से यह पूछने की अपेक्षा कि वे क्या किया करते हैं, अध्ययनकर्त्ता यह स्वय देख सकता है कि वे क्या करते है और इस प्रकार वह अतिशयोक्ति, प्रतिष्ठा, प्रभाव तथा स्मृति सम्बन्धी त्रुटियो द्वारा अभिनति से बच सकता है ।"[1]

1 C. A Moser, op cit., p 167

विशेषकर समाजशास्त्रीय अध्ययनों के क्षेत्र में अवलोकन विधि से अधिक सरल, विश्वसनीय निरन्तर उपयोगी एवं सत्यापन सुविधा प्रदान करने वाली और कोई प्रविधि नहीं है। समयानुसार इस विधि का उत्तरोत्तर विकास होता रहा है और होता रहेगा।

अवलोकन के प्रकार
(Types of Observation)

अवलोकन विधियों का वर्गीकरण कई प्रकार से किया गया है। विभिन्न लेखकों ने विभिन्न अवलोकन विधियों को समझाने के लिए अपनी ही शब्दावली का प्रयोग किया है।

गुडे तथा हट्ट ने अवलोकन विधि को मोटे तौर पर दो भागों में बाँटा है—(1) सामान्य अवलोकन विधियाँ—इसमें उन्होंने अनियन्त्रित, सहभागिक तथा असहभागिक विधियों को सम्मिलित किया है, (2) व्यवस्थित अवलोकन विधि—इसमें उन्होंने नियन्त्रित अवलोकन के दोनों प्रकारों, अवलोकनकर्त्ता पर नियन्त्रण तथा अध्ययन घटना पर नियन्त्रण को सम्मिलत किया है।

पी वी यंग ने भी अवलोकन विधि को दो भागों में बाँटा है-(1) अनियन्त्रित अवलोकन (2) नियन्त्रित अवलोकन। इन्होंने भी सहभागिक तथा असहभागिक अवलोकन को अनियन्त्रित अवलोकन के अन्तर्गत रखा है।

सेलिज, राइटमेन तथा कुक ने अवलोकन विधियों को, (1) संरचित, (2) असंरचित दो भागों में बाँटा है। उन्होंने अपने इस वर्गीकरण के लिए विलियम्स के इन शब्दों को उद्धृत किया है कि अवलोकन-शोध क्रियाओं को करने के कई तरीके हो सकते हैं किन्तु स्वाभाविक शोध योजनाओं का चित्रण शोधकर्त्ता द्वारा किए गए अवलोकन की संरचना के आधार पर किया जा सकता है।

लुण्डबर्ग, मोजर एवं काल्टन, मारग्रेट स्टेसी तथा फोरेक्स एवं रिचर आदि ने भी अवलोकन विधियों के दो प्रकार बताए हैं—(1) सहभागिक अवलोकन विधि, (2) असहभागिक अवलोकन विधि।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अवलोकन विधियों का वर्गीकरण अलग-अलग विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से किया है। अध्ययन की सुविधा के दृष्टिकोण से अवलोकन को प्रायः कई भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रमुख रूप से अवलोकन का निम्नवत् वर्गीकरण किया जा सकता है—

(1) अनियन्त्रित अवलोकन (Uncontrolled Observation)
(2) नियन्त्रित अवलोकन (Controlled Observation)
(3) सहभागी अवलोकन (Participant Observation)
(4) असहभागी अवलोकन (Non Participant Observation)
(5) अर्द्ध-सहभागी अवलोकन (Quasi Participant Observation)
(6) सामूहिक अवलोकन (Collective Observation)

इसे हम निम्नांकित रेखाचित्र से भी समझ सकते हैं—

1 अनियन्त्रित अवलोकन
(Non-Controlled Observation)

अनियन्त्रित अवलोकन ऐसे अवलोकन को कहा जाता है जबकि उन व्यक्तियों पर, जिनका कि हम अवलोकन कर रहे हैं उन पर अवलोकन करते समय किसी प्रकार का नियन्त्रण न रहे।

डॉ. पी. वी. यंग ने अनियन्त्रित अवलोकन की व्याख्या करते हुए लिखा है कि अनियन्त्रित अवलोकन मे हम वास्तविक जीवन की घटनाओं का सतर्कतापूर्वक अध्ययन करते हैं। *इस विधि मे न तो हम सूक्ष्मता-मापक यन्त्रों का प्रयोग करते हैं* और न ही अवलोकित घटना की यथार्थता की परख करने का कोई प्रयास करते हैं।[1] जिन दिशाओं के अन्तर्गत अवलोकन किया जाता है तथा सामग्री का चयन कर उन्हें प्रलेखित किया जाता है, उन सबको अवलोकनकर्त्ता तथा उन कारकों पर छोड़ दिया जाता है जो उन्हें प्रभावित करते हैं। इस कथन से स्पष्ट है कि इस विधि मे अवलोकनकर्त्ता को अवलोकन की दशाओं, सामग्री का चयन तथा प्रलेखन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। इस प्रकार के अवलोकन मे अवलोकनकर्त्ता तथा अध्ययन की जाने वाली घटना पर *किसी प्रकार के नियन्त्रण का प्रयोग नहीं किया जाता* है। अधिकांश अध्ययनों का आरम्भ किसी न किसी प्रकार के अनियन्त्रित अवलोकन द्वारा ही हुआ है।

वास्तव मे सामाजिक अनुसन्धान मे अनियन्त्रित अवलोकन विधि अत्यधिक प्रयुक्त होती है। गुडे एव हट्ट ने तो यहाँ तक कहा है कि, 'मनुष्य के पास सामाजिक सम्बन्धों के बारे मे जो कुछ भी ज्ञान है, उसका अधिकांश भाग अनियन्त्रित अवलोकन द्वारा ही प्राप्त हुआ है, चाहे यह अवलोकन सहभागी हो या असहभागी।"[2]

अनियन्त्रित अवलोकन के गुण (Merits of Non-Controlled Observation)—यह विधि सामान्यतः अध्ययित घटना का मूल्यवान तथा अधिक प्रत्यक्ष

1 *P V. Young* : op cit., p. 157.
2 *Goode and Hatt* : op. cit., p. 120.

ज्ञान उपलब्ध करवाती है। इसमें अवलोकनकर्त्ता घटना पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं लगाता है तथा घटना की वास्तविक जटिलताओं का यथारूपेण अध्ययन करता है।

इस प्रकार का अवलोकन सामाजिक जीवन की दशाओं को प्रभावित करने वाली घटनाओं को अधिक व्यवस्थित रूप में अध्ययन करने का मार्ग प्रशस्त करता है। सामान्यतः इस अवलोकन विधि का प्रयोग किसी शोध योजना के प्रारम्भिक चरण में किया जाता है।

सेलिज, जहोदा एवं कुक ने इस विधि के दो गुणों का उल्लेख किया है—

(1) यह प्राक्कल्पना की रचना में सहायता करती है।

(2) इसके द्वारा घटना का गहन अध्ययन सम्भव है।

पी वी यंग ने इस सम्बन्ध में उचित ही लिखा है कि, "ऐसी बहुत कम जीवन की घटनाएँ हैं जिन्हें नियन्त्रित तथा अस्वाभाविक दशाओं में ठीक प्रकार से अध्ययन किया जा सकता है। अधिकांश घटनाओं की वास्तविकताओं को परखने के लिए घटना स्थल पर ही उनका अध्ययन सबसे उपयुक्त होता है।"

अनियन्त्रित अवलोकन की सीमाएँ (Limitations of Non-Controlled Observation)—अनियन्त्रित अवलोकन विधि की अत्यधिक आलोचना की गई है। इसमें अवलोकनकर्त्ता पर अवलोकन के समय किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं होता है, जिसमें उसके व्यक्तिगत विचार आवश्यक रूप से अध्ययन में प्रवेश पा जाते हैं जिसके कारण निष्कर्षों में वैज्ञानिकता नहीं आ पाती। अनियन्त्रित अवलोकन की कमियों पर प्रकाश डालते हुए जैसा बरनार्ड ने लिखा है कि, "अनियन्त्रित अवलोकन यह आशंका उत्पन्न करता है कि यह सम्भव है कि इस विधि के प्रयोग द्वारा हमें यह अनुभव होने लगे कि जो कुछ वास्तव में हमने देखा है, उससे हम ज्यादा जानते हैं। अध्ययन सामग्री इतनी वास्तविक तथा सजीव होती है कि हमारी भावनाएँ उसके प्रति दृढ़ हो जाती हैं कि कभी-कभी हम अपने अपार मनोवेगों को ही व्यापक ज्ञान का स्थान देने की भूल कर जाते हैं।"[1]

2 नियन्त्रित अवलोकन

(Controlled Observation)

जिस प्रकार सामाजिक विज्ञानों का शनै-शनै विकास होता है उसी प्रकार सामाजिक अनुसन्धान की प्रविधियों का भी उत्तरोत्तर विकास होता गया है। नियन्त्रित अवलोकन अनियन्त्रित अवलोकन के विकसित स्वरूप के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। वास्तव में अनियन्त्रित अवलोकन के अनेक दोषों को दूर करने के लिए ही नियन्त्रित अवलोकन का सूत्रपात हुआ है।

पीटर एच मान ने लिखा है कि, "नियन्त्रण से हमारा तात्पर्य वैज्ञानिक

1 *Jessie Bernard* The Sources and Methods of Social Psychology.

परिशुद्धता की दृष्टि से सीमा अवलोकन को प्रमाणीकृत करना है।"[1] इस प्रकार की अवलोकन विधि की एक मुख्य विशेषता यह है कि इसमे अवलोकनकर्ता पर तो नियन्त्रण होता ही है, साथ ही साथ अवलोकन करने वाली सामाजिक घटना पर भी नियन्त्रण किया जाता है परन्तु समाजशास्त्र मे अवलोकन को प्रायोगिक विधि के रूप मे नियन्त्रित न करके अन्य रूप मे नियन्त्रण किया जाता है। एक समाजशास्त्री बहुधा एक खगोलशास्त्री, एक ज्वालामुखी विशेषज्ञ अथवा एक तुलनात्मक मनोवैज्ञानिक जैसी स्थिति मे होता है जो पशु-जीवन का अध्ययन उनके वास्तविक प्राकृतिक परिवेश से ही करता है। इसी प्रकार एक खगोलशास्त्री भी चाँद-सितारो पर अपने परीक्षण के लिए उन्हे अपनी प्रयोगशाला मे लाकर उन पर नियन्त्रण स्थापित नहीं कर सकता, अपितु इन नक्षत्रो को इनकी स्वाभाविक स्थिति मे ही अपनी प्रमाणीकृत वैज्ञानिक विधियो तथा उपकरणो की सहायता से अध्ययन करता है। इस प्रकार वह अवलोकित वस्तु पर नियन्त्रण न लगाकर स्वय अपने पर नियन्त्रण लगाता है। अवलोकन विधि मे नियन्त्रण का प्रयोग दो रूपो मे किया जाता है—

(1) अवलोकनकर्ता पर नियन्त्रण (Control over Observer)
(2) सामाजिक घटना पर नियन्त्रण (Control over Social Phenomena)

(1) अवलोकनकर्त्ता पर नियन्त्रण—नियन्त्रित अवलोकन मे स्वय अवलोकनकर्ता पर नियन्त्रण होता है। यह मानी हुई बात है और वह भी चाहता है कि उसके अध्ययन पर किसी प्रकार के निजी अथवा व्यक्तिगत प्रभाव की छाया न पड़े। इसके लिए यह आवश्यक है कि वह स्वय पर कुछ नियन्त्रणो को स्वीकार ले। इस प्रकार के नियन्त्रण के लिए कई प्रकार के साधनो का प्रयोग किया जाता है जैसे–अवलोकन की विस्तृत योजना पहले ही बना लेना, अनुसूची व प्रश्नावली का प्रयोग, मानचित्र का प्रयोग, क्षेत्रीय नोट्स एव अन्य यन्त्र जैसे–डायरी, फोटोग्राफ, केमरा, टेपरिकार्डर आदि का प्रयोग, आदि।

(2) सामाजिक घटना पर नियन्त्रण—इस प्रविधि मे अवलोकन करने वाली घटना को नियन्त्रित किया जाता है। इसको हम सामाजिक प्रयोग भी कह सकते हैं। जिस प्रकार भौतिक वैज्ञानिक, भौतिक दुनिया की परिस्थितियो को प्रयोगशाला को नियन्त्रित अवस्थाओ या दशाओ के अन्तर्गत लाकर अपने अध्ययन-विषय का अध्ययन करते हैं उसी प्रकार समाजशास्त्री भी सामाजिक घटनाओ को सामाजिक परिस्थितियो के अन्तर्गत नियन्त्रित करने का प्रयत्न करते हैं। इसके लिए सामाजिक वैज्ञानिक को अत्यन्त सूझ-बूझ, कुशलता एव अनुभव से कार्य लेना पड़ता है। इसी प्रविधि द्वारा किए गए कुछ अध्ययनो मे थकान का अध्ययन, समय तथा गति का अध्ययन, उत्पादकता का अध्ययन आदि अर्द्ध-सामाजिक विषय विशेष

1 *Peter H Mann* : Methods of Sociological Enquiry, p 83.

रूप से उल्लेखनीय हैं । समाजशास्त्रीय क्षेत्र में बालको के व्यवहार से सम्बन्धित कई अध्ययनों का उल्लेख किया जा सकता है ।

इस प्रविधि मे यह दोष है कि जब व्यक्तियो को यह मालूम हो जाता है कि उनका अवलोकन किया जा रहा है और उन्हे किन्ही विशिष्ट दशाग्रो मे रहने के लिए बाध्य किया गया है तब उनके व्यवहार मे परिवर्तन आने की सम्भावना रहती है जिससे स्वाभाविक स्थिति का अध्ययन नही हो सकता ।

अधिकांश विद्वानो ने इस विधि की प्रशसा की है । गुडे एव हट्ट के अनुसार क्योकि सामाजिक अनुसन्धान के लिए अनुसन्धान विषय पर नियन्त्रण रखना अति कठिन होता है अ". उसे अपने ऊपर नियन्त्रण अवश्य रखना चाहिए ।

नियन्त्रित और अनियन्त्रित अवलोकन मे अन्तर
(Difference between Controlled and Non-Controlled Observation)

नियन्त्रित एव अनियन्त्रित अवलोकन की उपरोक्त विवेचना के आधार पर हम इन दोनो मे निम्नलिखित अन्तरो का उल्लेख कर सकते हैं—

(1) नियन्त्रित अवलोकन मे उन अवस्थाग्रो या घटनाग्रो पर नियन्त्रण किया जाता है जिनका कि हमे अध्ययन करना है । इसके अन्तर्गत हो सकता है कि हम कुछ बालको को अपनी इच्छानुसार कुछ इच्छित परिस्थितियो मे रखकर उनके व्यवहारो का अध्ययन करें अर्थात् बालक और परिस्थिति दोनो पर ही हमारा नियन्त्रण होता है । इसके विपरीत, अनियन्त्रित अवलोकन मे इनमे से किसी पर भी हमारा नियन्त्रण नहीं होता । इसमें लोग जैसे भी एव जैसी भी परिस्थिति मे हैं उसी रूप मे उनका अध्ययन किया जाता है ।

(2) इस रूप मे नियन्त्रित अवलोकन कृत्रिम है जबकि अनियन्त्रित निरीक्षण स्वाभाविक है । अनियन्त्रित अवलोकन मे चूंकि परिस्थिति और व्यक्ति दोनो ही अपनी स्वाभाविक स्थिति मे होते हैं, इसलिए इस प्रकार के निरीक्षण से जीवन की विभिन्न वास्तविक परिस्थितियो मे मनुष्य के स्वाभाविक व्यवहारो या क्रियाकलापो का अध्ययन होता है, पर नियन्त्रित निरीक्षण मे कृत्रिम नियन्त्रण होने के कारण यह स्वाभाविकता नष्ट हो जाने की आशका सदा ही रहती है ।

(3) नियन्त्रित अवलोकन मे स्वय अनुसन्धानकर्ता पर भी नियन्त्रण रखा जाता है और उसे कुछ निश्चित ढग व प्रविधियो द्वारा ही निरीक्षण कार्य करने की छूट होती है । इसके विपरीत, अनियन्त्रित अवलोकन मे अनुसन्धानकर्त्ता पर कोई भी नियन्त्रण नही होता और उसे स्वतन्त्रतापूर्वक समुदाय मे घूमने-फिरने और सूचनाओ को एकत्रित करने की स्वतन्त्रता रहती है ।

(4) नियन्त्रित अवलोकन म कुछ साधनो तथा यन्त्रो को काम मे लाया जाता है, जैसे–निरीक्षण-अनुसूची, क्षेत्रीय नोट्स, मानचित्र आदि । इसके विपरीत, अनियन्त्रित अवलोकन मे किसी भी कृत्रिम साधन का उपयोग नहीं किया जाता ।

(5) **नियन्त्रित अवलोकन** मे निरीक्षण की एक योजना पहले से ही बना ली जाती है और उसी के अनुसार निरीक्षण-कार्य को आयोजित किया जाता है। इसके विपरीत, अनियन्त्रित अवलोकन मे कोई खास योजना बनाने की आवश्यकता नहीं होती क्योकि इसमे तो घटनाओं या परिस्थितियों को उसी रूप मे देखना होता है जैसी कि वे स्वाभाविक रूप में हैं।

(6) **नियन्त्रित अवलोकन** चूंकि कृत्रिम होता है, इस कारण इसके द्वारा घटनाओं का गहन और सूक्ष्म अध्ययन आवश्यक सम्भव नही होता। साथ ही, समूह या समुदाय के जीवन से सम्बन्धित गुप्त तथ्यो को भी खोला नही जा सकता पर अनियन्त्रित अवलोकन (जिसका कि एक प्रकार सहभागी अवलोकन है) के द्वारा घटनाओं का गहरा व सूक्ष्म अध्ययन तथा गोपनीय पक्ष का भी ज्ञान सम्भव है।

(7) **नियन्त्रित अवलोकन** मे चूंकि निरीक्षण करने वाले पर भी नियन्त्रण रखा जाता है, इस कारण इसमे निरीक्षण के परिणामो पर उसके अपने व्यक्तिगत आदर्श, मूल्य, मिथ्या-झुकाव, पक्षपात आदि की छाप नही पडने पाती। पर अनियन्त्रित अवलोकन का निरीक्षणकर्त्ता अपनी व्यक्तिगत पसन्द, पक्षपात, आदर्श आदि के द्वारा निरीक्षण के परिणामो को विकृत कर सकता है।

3 सहभागी अवलोकन
(Participant Observation)

(सहभागी अवलोकन शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम लिण्डमैन ने 1924 मे अपनी पुस्तक 'सोशल डिस्कवरी' म किया।) उन्होने सामाजिक शोध की प्रत्यक्ष विधियो की कुछ आलोचना की है। किसी भी घटना के प्रत्यक्ष (असहभागिक) अवलोकन में जो कमियाँ रह जाती हैं उन्ह ध्यान मे रखत हुए इन्होने सहभागी अवलोकन के प्रयोग का सुझाव दिया है।

प्रो लिंडमैन सहभागी अवलोकन के पक्ष मे अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि, 'सहभागी अवलोकन इस सिद्धान्त पर आधारित है कि किसी भी घटना का विश्लेषण तभी शुद्ध हो सकता है, जबकि वह बाह्य तथा आन्तरिक दृष्टिकोण से मिलकर बना हो। इस प्रकार उस व्यक्ति का दृष्टिकोण जिसने घटना मे भाग लिया तथा जिसकी इच्छाएँ एव स्वार्थ उसमे किसी न किसी रूप मे निहित थे, उस व्यक्ति के दृष्टिकोण से निश्चित ही कही अधिक यथार्थ व भिन्न होगा जो सहभागी न होकर केवल ऊपरी द्रष्टा या विवेचनकर्त्ता के रूप मे रहा है।"[1]

सामाजिक शोध मे सहभागिक अवलोकन के पीछे मुख्यत यही विचारधारा कार्य करती है।

(सहभागी अवलोकन क्या है ? सहभागी अवलोकन से हमारा क्या तात्पर्य है ? यह एक जटिल प्रश्न है–जिसका प्रत्युत्तर कुछ शब्दो मे दिया जाना कठिन है।) इस प्रविधि का मूल प्रयोग रूप मे मानव विज्ञान मे आदिवासियो के अध्ययनो स

1 *J Hader Lindman* Dynamic Social Research, p 147

प्रारम्भ हुआ। किसी भी समाज की गहराइयो मे पहुँचने तथा व्यवहार एव प्रतीको के पीछे छुपे हुए मन्तव्यो को जानने के लिए अध्ययन किए जाने वाले समूह का सदस्य बनना आवश्यक है। अतः साधारण शब्दो मे सहभागिता से हमारा तात्पर्य अध्यित समूह की सदस्यता ग्रहण करने से है। जैसा कि फोरेक्स तथा रिचर ने लिखा है कि, "सहभागिक अवलोकन मे शोधकर्त्ता अध्ययन किए जाने वाले समूह का सदस्य बन जाता है।"[1] समूह के सदस्य बनने से क्या तात्पर्य है? इस प्रश्न का प्रत्युत्तर पी वी यग ने इन शब्दो मे दिया है—"सामान्यत. अनियन्त्रित अवलोकन का प्रयोग करते हुए, एक सहभागिक अवलोकनकर्त्ता अध्ययन किए जाने वाले समूह के साथ रहता है अथवा उनकी जीवन की गतिविधियो मे भाग लेता है।"

डॉ. एम एच गोपाल के अनुसार, "सहभागी अवलोकन इस मान्यता पर आधारित है कि किसी घटना की व्याख्या या अर्थ (Interpretation) तभी अधिक विश्वसनीय और विस्तृत हो सकता है जब अनुसन्धानकर्त्ता परिस्थिति की गहराइयो मे पहुँच जाता है।"[2] अर्थात् अनुसन्धानकर्त्ता स्वय सहभागी के रूप मे परिस्थितियों की गहराइयो मे पहुँचकर वैषयिक परिणाम (Objective results) प्राप्त कर सकता है।

पीटर एच मान के शब्दो मे, "सहभागी अवलोकन का अभिप्राय प्रायः ऐसी स्थिति से होता है जिसमे निरीक्षणकर्त्ता अपने अध्ययन समूह के उतने ही निकट होता है जितना कि उसका कोई सदस्य होता है तथा उसकी सामान्य क्रियाओ मे भाग लेता है।"[3]

लुण्डबर्ग और मारग्रेट लॉसिग के मतानुसार, "इस पद्धति के लागू करने मे यह अनुभव करना आवश्यक है कि न केवल अध्ययनकर्त्ता ही यह अनुभव करे कि वह सामूहिक जीवन मे भाग ले रहा है बल्कि समूह के सदस्य, भी उसके विषय मे ऐसा ही अनुभव करें।"[4]

गुडे तथा हट्ट के अनुसार, "इस कार्य-प्रणाली का प्रयोग उस समय किया जाता है जबकि अनुसन्धानकर्त्ता अपने को समूह के सदस्य के रूप मे स्वीकृत हो जाने योग्य बना लेता है।"[5]

रेमण्ड फर्थ (Raymond Firth) के शब्दो मे, "किसी विशेष सस्कार या उत्सव मे लोग किसी सहयोगी की ही कल्पना कर सकते हैं निरीक्षणकर्त्ता की नही। ऐसी स्थिति मे यह आवश्यक है कि कोई समूह के बाहर न रह कर उसका ही अग बन कर रहे।"[6]

1. *Foreck and Richer* Social Research Method, p 143.
2. *M H Gopal*. An Introduction to Research Procedure in Social Sciences, p 171
3. *Peter H Mann* Methods of Sociological Enquiry, p 88
4. *Lundberg and Margret*. "The Sociolography, Some Community Relation", American Sociological Review
5. *Goode and Hatt*. op cit, p 121
6. *Raymond Firth*: 'We, The Tikopia', p 11

पी वी. यग के मतानुसार, "सहभागी निरीक्षणकर्त्ता अध्ययन किए जाने वाले समूह के बीच मे रहता है अथवा अन्य प्रकार से उसके जीवन मे भाग लेता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओ के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सहभागी निरीक्षणकर्त्ता समूह का अग बन कर रहता है, जिससे वह जीवन के प्रत्येक अग की गहराई से छानबीन कर सके। वह तटस्थ होकर जीवन के विविध पक्षो का अध्ययन नही कर सकता। इसमे यह सावधानी अवश्य रखनी पडती है कि वह जिन पक्षो का अवलोकन करता है, वह अनुसन्धान की सामग्री के अनुरूप होना चाहिए।

इस बात को मोजर ने इस प्रकार स्पष्ट किया है—"निरीक्षणकर्त्ता अध्ययन किए जाने वाले समूह अथवा सगठन के प्रतिदिन के जीवन मे बीतने वाली घटनाओ मे भाग लेता है। वह *यह देखता है कि समुदाय मे क्या-क्या होता है, वे किस प्रकार* व्यवहार करते हैं *तथा* वह *उनसे यह जानने के लिए बातचीत भी करता है कि घटित घटनाओ के प्रति उनकी क्या प्रतिक्रियाएँ हैं, वे उनका क्या अर्थ लगाते हैं।"*

सहभागी अवलोकन की इस व्याख्या से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस विधि मे केवल घटनाओ का ही अवलोकन नही किया जाता, अपितु घटनाओ की वास्तविकताओ को जानने के लिए समुदाय के सदस्यो मे बातचीत की जाती है। इस प्रकार सहभागिक अवलोकन विधि, जन औपचारिक साक्षात्कार तथा अवलोकन दोनो विधियो *का एक सम्मिश्रण है।*

सहभागी अवलोकन मे अवलोकनकर्त्ता से यह आशा की जाती है कि वह अध्ययन किए जाने वाले समूह का सदस्य बने। शोधकर्त्ता को समूह का सदस्य बनने के लिए किस प्रकार की भूमिका अपनानी चाहिए इसे हम तीन शीर्षको के अन्तर्गत समझेंगे—

(अ) सहभागिता तथा लगाव की मात्रा—सहभागी द्रष्टा का पहला कार्य उद्धृत समुदाय के जीवन मे प्रवेश पाना है। सहभागी द्रष्टा की परिभाषा देते हुए जॉन मैज ने लिखा है "जहाँ द्रष्टा के हृदय की धडकनें समूह के अन्य व्यक्तियो की धडकनो से मिल जाती हैं तथा वहाँ किसी दूरस्थ प्रयोगशाला मे आए हुए तटस्थ प्रतिनिधि के समान नही रह जाता तो समझना चाहिए कि उसने सहभागी द्रष्टा कहलाने का अधिकार प्राप्त कर लिया है।"[1]

सहभागी अवलोकन मे शोधकर्त्ता को यथार्थ रूप मे उद्धृत समूह मे इतना ही मिलना चाहिए कि उसे यह ध्यान रहे कि वह अपने उद्देश्य को न भूले अर्थात् उसे यह ध्यान रखना चाहिए कि वह पहले एक शोधकर्त्ता है और बाद मे किसी समूह का सदस्य है।

(ब) सहभागिता का प्रकट रूप—सहभागिक द्रष्टा को अपनी भूमिका के

1 *John Madge* : The Tools of Social Science, p 117.

सम्बन्ध मे अध्ययित समूह को बताना चाहिए या नहीं । इस सम्बन्ध मे समाज वैज्ञानिको मे एक-मत्यता नही है । कुछ वैज्ञानिक इसके पक्ष मे है और कुछ इसके विपक्ष मे हैं । कुछ वैज्ञानिको ने इन दोनो स्थितियो की कमियों को ध्यान में रखते हुए आंशिक गुप्तता की बात कही है । ऐसी स्थिति म शोधकर्ता अपना परिचय तो देता है परन्तु अपने म तथ्य को नही बताता है । इससे यह लाभ होता है कि वह समूह के व्यवहार को प्रभावित करने से बच जाता है ।

(स) सहभागिक निरीक्षण या अवलोकनकर्ता की भूमिका—एक सहभागिक अवलोकनकर्ता मे यह गुण होना चाहिए कि वह ऐसी भूमिका निभाए जिससे वह समुदाय के जीवन का सम्पूर्ण तथा पक्षपातरहित एक चित्र प्राप्त कर सके ।

सहभागिक अवलोकन के गुण
(Merits of Participant Observation)

(1) सहभागिक व्यवहार का अध्ययन– यदि किसी अध्ययित समूह के सदस्य यह नही जानते कि उनके व्यवहार का अवलोकन किया जा रहा है, तब उनके व्यवहार मे स्वाभाविकता रहेगी तथा अवलोकनकर्त्ता की स्थिति से अपेक्षाकृत कम प्रभावित होने की सम्भावना बनी रहेगी । एक सामाजिक वैज्ञानिक के रूप मे हमारा अन्तिम लक्ष्य किसी भी सामाजिक समूह के प्रतिदिन के स्वाभाविक व्यवहार का अध्ययन करना होता है अत जितना ही एक अवलोकनकर्त्ता अध्ययित समूह के व्यक्तियो म अपने आपको घुला-मिला लेता है, उतना ही अधिक वह उसके स्वाभाविक व्यवहार के अध्ययन के लिए सक्षम बन जाता है ।

(2) गहन अनुभवों की प्राप्ति—सहभागिक अवलोकन मे एक अवलोकन-कर्त्ता कोई न कोई भूमिका अदा करता है । अवलोकनकर्त्ता की यह स्थिति उसे समूह की गहराइयो म जाने का अवसर प्रदान करती है जो कि एक तटस्थ अवलोकनकर्त्ता के लिए सम्भव नही होता । उसे कभी-कभी अपनी सहभागिक अवलोकनकर्ता की भूमिका के कारण वे सूचनाएँ प्राप्त हो जाती हैं जो मात्र एक अवलोकनकर्त्ता को प्राप्त नही होती । समूह की भावनाओ के साथ तादात्म्य स्थापित करने से अवलोकनकर्त्ता किसी जनजातीय-नृत्य की थकावट तथा उल्लास अथवा किसी कारखाने मे काम करने वाले मजदूरो के प्रति उनके फोरमैन द्वारा किए गए कठोर व्यवहार के सम्बन्ध मे स्वय अनुभव प्राप्त कर सकता है ।

(3) विस्तृत सूचनाओं का सकलन—रेमण्ड फर्थ ने सहभागिक प्रेक्षण के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "किसी भी समूह के सामाजिक तथा आर्थिक सम्बन्धो की सरचना तथा प्रकार्यों की जटिलताओ का अध्ययन करने का यह एकमात्र तरीका है ।' चूँकि एक सहभागिक अवलोकनकर्ता की समयावधि कई महीनो तक चल सकती है अत: उसके द्वारा प्राप्त सामग्री एक लम्बे साक्षात्कार द्वारा प्राप्त सूचनाओ से भी अधिक विस्तृतता लिए हुए होगी ।

अन्य विधियो की अपेक्षा इस विधि से प्राप्त तथ्य अधिक विश्वसनीय होते हैं, क्योंकि घटनाओ के घटित होने के अवसर पर अवलोकनकर्त्ता स्वय उपस्थित

रहता है। इस विधि की एक और अन्य विशेषता यह है कि यह विधि अवलोकनकर्त्ता को समूह की भावनाओं, विचारों तथा व्यवहारों के पीछे छुपे हुए भावों को जानने के लिए आवश्यक सूक्ष्म दृष्टि प्रदान करती है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि अधिकांश व्यक्ति अपने व्यवहार को एक तटस्थ अवलोकन द्वारा अध्ययन किए जाने के प्रति प्रसन्न नहीं होते, अपितु वे अवलोकन के लिए कभी स्वीकृति नहीं दें तो यह बात विशेषत अपचारी समूह या उच्च प्रस्थिति वाले समूह के व्यक्तियों के लिए चरितार्थ होती है। एक डाकू गिरोह कभी भी अपने समूह की क्रियाओं का अवलोकन ऐसे व्यक्तियों को करने की अनुमति नहीं देगा जो उनके समूह से बाहर का व्यक्ति हो ऐसी स्थितियों में अवलोकनकर्त्ता के समक्ष एक ही विकल्प रह जाता है कि या तो वह उस समूह का एक सहभागिक अवलोकनकर्त्ता के रूप में सदस्य बनकर अवलोकन या अवलोकन विधि को त्याग दे।

सहभागिक अवलोकन की सीमाएँ (Limitations of Participant Observation)—गुडे एवं हट्ट ने सहभागिक अवलोकन विधि को शोध कार्य में प्रयोग किए जाने के प्रति यह चेतावनी दी है कि इस विधि के जहाँ कुछ गुण हैं, वहाँ इसके कुछ स्पष्ट अवगुण भी हैं। अतः इसका प्रयोग सावधानी से किया जाना चाहिए। यहाँ हम इस विधि के कुछ मुख्य अवगुणों पर विचार करेंगे—

(1) **वस्तुपरकता की कमी**—सहभागिक अवलोकनकर्त्ता अध्ययन समूह का सक्रिय सदस्य बन जाता है इस कारण समूह के प्रति अवलोकनकर्ता की घनिष्ठता तथा आत्मीयता की प्रवृत्ति अत्यधिक विकसित हो जाने से अध्ययन समूह के प्रति उसमें लगाव होने की सम्भावना रहती है। कई बार यह लगाव की भावना उसे समूह की भावनाओं में बह जाने के लिए बाध्य कर देती है और घटनाओं की वास्तविकताओं को जानने तथा इन्हें नोट करने से वंचित कर देती है।

(2) **अनुभवों की सीमा का संकुचन**—एक अत्यधिक संस्तरित समुदाय में इस विधि का प्रयोग अलाभकर सिद्ध हो सकता है क्योंकि अवलोकनकर्त्ता का किसी समुदाय के वर्ग में सहभागिक होने का अवसर उसे समुदाय के दूसरे वर्ग में सहभागिक होने से वंचित कर सकता है। सहभागिक अवलोकनकर्त्ता को समुदाय में कोई एक भूमिका अपनानी होती है। यह भूमिका उस समुदाय में उसके एक विशिष्ट मैत्री समूह का निर्माण करती है अतः जितना अधिक वह अपने मैत्री समूह सम्बन्ध में जाता जाता है उतना ही वह मैत्री समूह के बाहर के व्यक्तियों के सम्बन्ध में अनभिज्ञ हो जाता है। भारतीय गाँवों के अध्ययन में सहभागिक अवलोकनकर्त्ता की यह भूमिका उसे अपने से निम्न अथवा उच्च जातियों के सम्बन्ध में जानने के अवसर के द्वारों को बन्द कर देती है। रायले ने इसे अभिनतिपूर्ण दृष्टि का प्रभाव कहा है, जिसके द्वारा शोधकर्त्ता के द्वारा अपनाई गई भूमिका के कारण उसका दृष्टिकोण अभिनतिपूर्ण बन जाता है।

(3) **तथ्यो की प्रमाणिकता मे कमी**—इस विधि के प्रयोग द्वारा तथ्यो की समरूपता को बनाए रखना कठिन होता है। विभिन्न विषयो पर प्रत्येक व्यक्ति से घर पर जाकर सूचनाओ को एकत्र करना तथा मनोवृतियो का परीक्षण करना इस विधि द्वारा सम्भव नही हो पाता। सहभागिक तथा असहभागिक दोनो विधियो मे अवलोकन की समस्याएँ ज्यो की त्यो बनी रहती हैं। जिस सीमा तक एक अवलोकनकर्त्ता सहभागिक बन जाता है, उसके अनुभवो मे एक विशिष्टता आ जाती है। उसके इन अनुभवो को किसी अन्य शोधकर्त्ता द्वारा दुहराया जाना कठिन होता है।

(4) **अत्यधिक समय तथा क्षमताओ का नष्ट होना**—इस विधि मे कई बार घटनाओं के लिए एक लम्बा इन्तजार करना होता है जिसमे अत्यधिक समय भी लगता है तथा क्षमताओ का व्यय भी होता है। शोधकर्त्ता इच्छानुसार घटनाओ का परीक्षण नही कर सकता है।

(5) **अपरिचितता के लाभ का अभाव**—कभी-कभी हम एक अपरिचितता की भूमिका मे जो सूचनाएँ किन्ही व्यक्तियो के सम्बन्ध मे प्राप्त कर लेते हैं वे हमे समूह की क्रियाओ मे भाग लेने से प्राप्त नही हो पाती। समूह के साथ हमारा पूर्ण एकीकरण हो जाने से हम कभी-कभी कुछ बातो को सामान्य समझकर छोड देते हैं। जबकि एक अपरिचित व्यक्ति के लिए ऐसी सूचनाएँ भी आकर्षित होती हैं और वह उन्हे नोट करना नही भूलता। इसे वाइटे ने आपरिचितता के लाभ का आभाव कहा है।

(6) **सर्वांग दृष्टिकोण का अभाव**—फारेक्स तथा रिचर ने लिखा है कि जब कभी हम किसी समूह के अत्यन्त आत्मीय सदस्य बन जाते हैं तब घटनाओ को सम्पूर्णता मे देखने का हमारा परिप्रेक्ष्य प्राय लुप्त हो जाता है कि हम पेडो को देखने मे कभी-कभी सम्पूर्ण जगल की वास्तविकता से अनभिज्ञ रह जाते हैं। समूह के एक सदस्य के रूप में हम कुछ सदस्यो के सम्बन्ध मे बहुत कुछ जान जाते हैं किन्तु कुछ अन्य सदस्यो के सम्बन्ध में हमारी जानकारी अपूर्ण रह जाती है।

गुडे तथा हट्ट ने लिखा है कि शोध की कई ऐसी स्थितियाँ होती हैं जिनमे एक बाध्य व्यक्ति के लिए हर प्रकार से सहभागिक बनना कठिन होता है। उदाहरणार्थ एक सह-समाजशास्त्री एक अपराधी गिरोह के अध्ययन करने के लिए अपराधी नही बन सकता। इसी प्रकार रेमण्ड फर्थ ने लघु अवधि मे किए सहभागिक अवलोकन की निम्न सीमाएँ बताई हैं—

(i) सम्पूर्ण अर्थ के बोध का अभाव।
(ii) अस्थाई दशाओ को सामान्य दशाएँ समझने की भूल।
(iii) अभिनति की समस्या।
(iv) आत्मीय सूचनादाताओ को अधिक महत्त्व देने से उत्पन्न अभिनति।
(v) शोधकर्त्ता की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि से उत्पन्न अभिनति।
(vi) शोधकर्त्ता द्वारा तथ्यो के चयन की प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न अभिनति।

सहभागिक अवलोकन के प्रयोग मे आने वाली ये कुछ सीमाएँ हैं, तथा इसके नकारात्मक पहलू हैं। अन्त मे हम मोजर तथा कालटेन के शब्दों द्वारा सहभागिक अवलोकन की विवेचना को समाप्त करते हैं।

.जैसा कि हमने देखा है कि सहभागिक अवलोकन एक अत्यन्त वैयक्तिक विधि है। एक व्यक्ति इसके द्वारा न तो पूर्णत विश्वसनीय तथा वस्तुपरक चित्र ही प्राप्त कर सकता है और न ही कोई अवलोकनकर्त्ता एक ही घटना के अपने अवलोकन द्वारा सामान्य परिणाम प्राप्त कर सकता है।

यही कारण है कि इस विधि का प्रयोग अधिकांशत अन्वेषणात्मक शोध हेतु उपयोगी अवधारणाओं तथा प्राक्कल्पनाओं को विकसित करने के लिए किया जाता है। इस कार्य मे सहभागिक अवलोकन विधि ने बहुत योगदान दिया है।

4 असहभागी अवलोकन
(Non-Participant Obsrevation)

सहभागी अवलोकन विधि की कमजोरियो को दूर करने मे असहभागी अवलोकन विधि सहायता करती है। असहभागी अवलोकन अनियन्त्रित अवलोकन का एक प्रमुख स्वरूप है। इस प्रकार के अवलोकन मे अवलोकनकर्त्ता समूह या समुदाय का, जिसका कि उसे अध्ययन करना है, अवलोकन एक तटस्थ दृष्टि एव वैज्ञानिक भावना से करता है। इस प्रकार के अवलोकन मे अवलोकनकर्त्ता समुदाय या समूह का न तो अस्थाई सदस्य बनता है और न ही उसकी क्रियाओं मे भागीदार बनता है दूर से ही जो कुछ देखता है उनकी गहराइयों तक पहुँचने का प्रयास करता है। सामाजिक जीवन की ऐसी अनेक स्थितियां है जहाँ सहभागी अवलोकन करना सम्भव नही होना है। वहाँ यह विधि अत्यधिक उपयुक्त होती है यही नही यह विधि बहुत कुछ रायो के अभिनतिपूर्ण दृष्टि का प्रभाव मे रहित तथा बाहरी के अपरिचिता के लाभ मे युक्त होती है। उदाहरण के लिए शिशुओं के व्यवहार के अध्ययन मे सहभागिक विधि का प्रयोग सम्भव नही है। कोई भी शोधनकर्त्ता बालको अथवा शिशुओ के अध्ययन हेतु अल्पकाल के लिए पुन शिशु अथवा बालक नही बन सकता। इस प्रकार कई स्थितियो मे एक शोधकर्त्ता मे पूर्ण का सहभागिक बनना यदि सम्भव नहीं तो कम से कम दुष्कर अवश्य है।

फोरेक्स तथा रिचर ने असहभागिक अवलोकन को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "असहभागिक अवलोकन मे अवलोकनकर्त्ता अपने व्यक्तित्व को बिना छुपाए घटना का अवलोकन करता है। शोधकर्त्ता अध्ययित समूह को शोध के उद्देश्य को बता देता है तथा इस आधार पर समूह मे प्रवेश करने का प्रयास किया जाता है।"[1]

इस परिभाषा से स्पष्ट है कि अवलोकनकर्त्ता समूह मे उपस्थित तो रहता है परन्तु अध्ययित समूह की क्रियाओं तथा व्यवहारो मे भाग नही लेता तथा वह उनका अवलोकन एक तटस्थ अवलोकनकर्त्ता अर्थात् समूह से एक पृथक् व्यक्ति मे करता है।

1 *Forex & Richer* op cit, p 144

असहभागिक अवलोकन स्वभाविक तथा प्रयोगात्मक दोनो स्थितियो मे किया जाता है।

(अ) स्वाभाविक स्थिति मे असहभागिक अवलोकन

इस प्रकार के अवलोकन मे अवलोकनकर्त्ता किसी भी समूह के व्यवहार को उसकी स्वाभाविक स्थिति मे अध्ययन करता है। वार्नर तथा लन्ट ने ऐसी बहुत सारी स्थितियो तथा सामाजिक अन्त क्रियाओ का उल्लेख किया है जिनका अध्ययन इस प्रविधि द्वारा किया जा सकता है जैसे जन्म, विवाह अथवा मृत्यु सस्कारो के अध्ययन के लिए इस विधि का चुनाव किया जा सकता है।

इस विधि मे सबसे बडी कमी यह है कि अवलोकनकर्त्ता के प्रभाव से अवलोकन प्रभावित हो सकता है जब कभी खेल के मैदान मे बालको के व्यवहार का अध्ययन किया जा रहा हो तब अवलोकनकर्त्ता की उपस्थिति के कारण बालको के व्यवहार मे परिवर्तन आने की सम्भावना रहती है। कभी-कभी इस स्थिति से बचने के लिए एकतरफा पर्दे अथवा शीशे का प्रयोग किया जाता है जिससे अध्यित समूह को यह पता न चले कि उनके व्यवहार का अध्ययन किया जा रहा है परन्तु यह प्रयोग केवल सीमित मात्रा मे किया जा सकता है।

(ब) प्रयोगात्मक स्थिति मे असहभागिक अवलोकन

इस प्रकार की विधि मे किसी भी समूह का अवलोकन अपेक्षतया अस्वाभाविक स्थिति मे करने का प्रयास किया जाता है अर्थात् अवलोकन किए जाने वाले समूह के लिए एक विशिष्ट परिवेश का निर्माण किया जाता है जैसे बालको के किसी समूह का एक प्रयोगशाला मे उनका अध्ययन।

असहभागिक अवलोकन के प्रयोग द्वारा वे लाभ प्राप्त होते हैं जो विशेषत सहभागिक अवलोकन की सीमाओ अथवा अवगुणो द्वारा उत्पन्न होते हैं। इस विधि मे धन, समय तथा क्षमता तीनो का व्यय सहभागिक अवलोकन की अपेक्षा कम होता है। साथ ही साथ इस विधि मे अवलोकनकर्त्ता का अध्यित समूह से कोई लगाव न होने के कारण अभिनति पक्षपात अथवा व्यक्ति-परकता के अवगुणो से भी बचाव हो जाता है।

सहभागी और असहभागी अवलोकन मे अन्तर
(Difference between Participant & Non Participant Observation)

सहभागी और असहभागी अवलोकन की उपरोक्त विवेचना के आधार पर हम इन दोनो मे निम्नलिखित अन्तरो का उल्लेख कर सकते हैं—

(1) सहभागी अवलोकन अनियन्त्रित अवलोकन का वह प्रकार है जिसमे अनुसन्धानकर्त्ता स्वय उस समुदाय मे जाकर बस जाता है जिसका कि उसे अध्ययन करना है इसके विपरीत असहभागी अवलोकन मे अवलोकनकर्त्ता उस समुदाय मे जाकर बस नहीं जाता अपितु कभी कभी आवश्यकतानुसार वहाँ जाकर एक तटस्थ दर्शक के रूप मे निरीक्षण करता है।

(2) सहभागी अवलोकन अनुसन्धानकर्त्ता न केवल जाकर उस समुदाय में बस जाता है अपितु उसकी एक अभिन्न इकाई भी बन जाता है और उस रूप मे समस्त क्रियाकलापो, उत्सवो, संस्कारो आदि मे भी भाग लेता है परन्तु असहभागी अवलोकन मे निरीक्षणकर्त्ता एक बाहर का आदमी ही बना रहता है और समुदाय के क्रियाकलापो मे प्रत्यक्षत भाग नही लेता।

(3) सहभागी अवलोकन मे समुदाय के जीवन के गहरे स्तर तक पहुँचकर उसका गहरा आन्तरिक एव सूक्ष्म अध्ययन करना सम्भव है। इसके विपरीत असहभागी अवलोकन के द्वारा सामुदायिक जीवन के केवल बाह्य पक्षो अर्थात् ऊपर ही ऊपर दिखाई देने वाली घटनाओ का ही अध्ययन किया जा सकता है।

(4) सहभागी अवलोकन के द्वारा एक समुदाय या समूह के गुप्त पक्षो के सम्बन्ध मे भी जानकारी प्राप्त की जा सकती है जबकि असहभागी अवलोकन में अनुसन्धानकर्त्ता एक अजनबी होने के कारण सभी गुप्त पक्ष उसके लिए गुप्त ही रह जाते हैं।

(5) सहभागी अवलोकन मे अनुसन्धानकर्त्ता स्वय ही विभिन्न सामाजिक परिस्थितियो मे बार-बार भाग लेता है अत सकलित सूचनाओ की शुद्धता की परीक्षा करने का अवसर उसे कई बार मिलता है। पर असहभागी अवलोकन में निरीक्षणकर्त्ता कभी कभी समुदाय में जाता है, अत सूचनाओ की शुद्धता की परीक्षा करने का अधिक अवसर उसे नही मिलता।

(6) सहभागी अवलोकन मे चूंकि अनुसन्धानकर्त्ता सामुदायिक जीवन मे घुल मिल जाता है और वहाँ के लोगो को यह जानने नही देता कि उसका अध्ययन किया जा रहा है। इसलिए घटनाओ का अवलोकन उनके सरल स्वाभाविक रूप मे सम्भव होता है और किसी भी अपरिचित विपरीत असहभागी अवलोकन मे अनुसन्धानकर्त्ता एक अपरिचित व्यक्ति होता है और किसी भी अपरिचित व्यक्ति क सम्मुख कोई भी आदमी अपने सरल स्वाभाविक रूप को प्रकट नही करता। जब लोगो को यह पता हो जाता है कि बाहर का कोई आदमी उनके व्यवहार को देख रहा है तो सहज ही उनके व्यवहार, क्रिया कलापो मे अनेक कृत्रिमताएँ पनप जाती हैं, अत असहभागी अवलोकन के द्वारा घटनाओं को उनके स्वाभाविक रूप मे देखना कठिन होता है।

(7) अन्त मे सहभागी अवलोकन प्रविधि अत्यधिक खर्चीली है और साथ ही अधिक समय खच करने वाली भी है क्योंकि अनुसन्धानकर्त्ता को कई महीने और कभी कभी कई साल उस समुदाय म जाकर रहना पडता है। इसकी तुलना म असहभागी अवलोकन मे कम समय और कम धन की जरूरत पडती है क्योकि अनुसन्धानकर्त्ता को निरीक्षण के लिए कभी-कभी समुदाय मे जाना पडता है।

5 अर्द्ध-सहभागी अवलोकन

(Semi Participant Observation)

वास्तव मे पूर्णत सहभागी अवलोकन कठिनत ही सम्भव है। अवलोकन

विधि के अनेक उदाहरण यह प्रकट करते हैं कि वास्तव मे उनका स्थान सहभागी तथा असहभागी अवलोकन दोनो के बीच का है। पूर्ण सहभागिक तथा असहभागिक की इन दोनो सीमाओ के मध्य पाई जाने वाली विधि को ही अर्द्ध-सहभागी अवलोकन विधि कहते हैं।

इस प्रकार के अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता अध्ययन किए जाने वाले समुदाय के कुछ साधारण कार्यों मे ही भाग लेता है, यद्यपि अधिकांशत वह तटस्थ भाव से बिना भाग लिए उसका अवलोकन करता है। प्रो विलियम ह्वाइट का कहना है कि हमारे समाज मे जो जटिलता के कारण पूर्ण एकीकरण का दृष्टिकोण अव्यावहारिक रहता है एक वर्ग के साथ एकीकरण से अन्य वर्गों के साथ उसका सम्बन्ध समाप्त हो जाता है। इसलिए अर्द्ध-तटस्थ नीति बनाए रखना ही अति उत्तम है जैसे सामाजिक उत्सवो मे भाग लेना, खेलो मे भाग लेना, समय-समय पर आयोजित होने वाले अन्य कार्यक्रमो मे भाग लेना और फिर अपनी स्थिति को इस प्रकार बनाए रखना कि हमारा अन्तिम व मुख्य उद्देश्य अनुसन्धान है। वास्तव में इस प्रकार के प्रेक्षण मे पहले वर्णित किए गए दोनो ही प्रकार के अवलोकनो के लाभ प्राप्त होने की सम्भावना रहती है।

6 सामूहिक अवलोकन
(Collective Observation)

सामूहिक अवलोकन नियन्त्रित और अनियन्त्रित विधियो का मिश्रण है। इस प्रविधि मे एक ही समस्या या सामाजिक घटना का अवलोकन कई अनुसन्धान-कर्त्ताओ द्वारा होता है जो कि उस सामाजिक घटना के विभिन्न पहलुओ के विशेषज्ञ होते हैं।

श्री सिन पाओ यांग ने सामूहिक अवलोकन को निम्न ढग से स्पष्ट किया है—"यह नियन्त्रित व अनियन्त्रित अवलोकन का सम्मिश्रण होता है। इसमे कई व्यक्ति मिलकर सामग्री एकत्रित करते हैं और बाद मे एक केन्द्रीय व्यक्ति द्वारा उन सबकी देन का सकलन एव उससे निष्कर्ष निकाला जाता है।"[1]

इस प्रविधि का सर्वप्रथम प्रयोग जमैका मे वहाँ की स्थानीय दशाओ के अध्ययन के लिए किया गया था। इसके लिए वहाँ प्रत्येक माह मे सामुदायिक जीवन के एक विशेष पहलू का अध्ययन किया जाता था। इसके लिए विभिन्न अवलोकन-कर्त्ताओ को जिलो मे आँकडे एकत्रित करने के लिए भेजा जाता था, इसके बाद वे सभी आँकडे केन्द्रीय कार्यालय को भेजे जाते थे और वहाँ पर एक मीटिंग होती थी जिसमे इन एकत्रित आँकडो के आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते थे।

इस प्रविधि मे यद्यपि अधिक धन की आवश्यकता पडती है परन्तु इस विधि मे अनुसन्धान कार्य बहुत अच्छे ढग से होता है।

निदर्शन
(Sampling)

सामाजिक विज्ञानो मे निदर्शन पद्धति (Sampling Method) का अत्यन्त

1 *Goode and Hatt*: Ibid, p 57.

महत्त्वपूर्ण स्थान है । निदर्शन की प्रक्रिया अर्थात् सम्पूर्ण (Whole) या समग्र (Universe) मे से उसके एक ऐसे अश का चुनाव, जिसके आधार पर समग्र के बारे मे परिणाम निकाले जाते हैं, का विकास जन-शताब्दियो मे ही हुआ है । मिल्ड्रेड पर्टिन के मत में 1900 के पूर्व मे निदर्शन के उपयोग के लिखित प्रमाण बहुत कम सख्या मे उपलब्ध होते हैं । 1920 के उपरान्त ही निदर्शन का प्रयोग आरम्भ हुआ माना जाता है । सयुक्तराज्य अमेरिका की जनगणना ब्यूरो ने इसका सर्वप्रथम प्रयोग 1940 मे किया ।

ए एल बाऊले ने लन्दन मे विभिन्न समूहो मे से कछ परिवारो का चयन करके उस अध्ययन के आधार पर जो निष्कर्ष प्रस्तुत किए वे बहुत बडी मात्रा मे उस स्थान की सम्पूर्ण जनसख्या की विशेषताओ का प्रतिनिधित्व करते थे । बाद मे आगे चलकर चार्ल्स बूथ एव राउन्ट्री ने उसी समुदाय का व्यापक अध्ययन कर जो निष्कर्ष प्रस्तुत किए वे बहुत कुछ बाऊले के निष्कर्षों के समान थे, अत सामाजिक विज्ञानो मे बाऊले द्वारा प्रयुक्त निदर्शन प्रणाली की उपयोगिता इस बात को लेकर स्थापित हो गई कि निदर्शन के द्वारा न केवल बहुत अधिक धन व समय की बचत की जा सकती है, बल्कि अध्ययन के निष्कर्षों म विश्वसनीयता व उपयोगिता मे भी कोई अन्तर नही पडेगा, अत. शनै शनैः निदर्शन पद्धति समस्त विज्ञानो मे अत्यन्त लोकप्रिय होती गई । ए वुल्फ ने लिखा है कि ' विज्ञान एव दैनिक जीवन के अन्तर्गत वास्तविक प्रयोग मे हम उस बात पर विश्वास करते हैं जिसे शुद्ध निदर्शनो का सिद्धान्त कहा जा सकता है ।"[1]

(समाजशास्त्र मे निदर्शन पद्धति सामाजिक यथार्थ को समझने के लिए आज एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण एव उपयोगी विधि मानी जाती है एव लगभग समस्त सामाजिक अनुसन्धान मे इसका प्रयोग किया जाता है ।)

निदर्शन का अर्थ एव परिभाषाएँ
(Meaning and Definitions of Sampling)

(सामाजिक अनुसन्धानो मे अध्ययन समस्या के चयन, व्याख्या, लक्ष्य एव उद्देश्यो को परिभाषित करने के उपरान्त क्षेत्र (Field) का निर्धारण करना अनिवार्य होता है ।(क्षेत्र का निर्धारण अध्ययन के उद्देश्य एव प्रकृति पर निर्भर होता है । क्षेत्र निर्धारण के बाद सूचना एकत्रित करने की दो महत्त्वपूर्ण विधियाँ हैं–

1 सगणना विधि (Census Method)
2. निदर्शन विधि (Sampling Method))

सगणना विधि मे अनुसन्धान के क्षेत्र से सम्बन्धित समग्र या सम्पूर्ण समूह की प्रत्येक इकाई की जाँच की जाती है । अनुसन्धानकर्त्ता समूह की जाँच करता है और सभी इकाइयो का विस्तारपूर्वक अध्यन करता है ।

1 *A. Wolf*: Essentials of Scientific Method, p 114-115

निदर्शन विधि में समग्र या सम्पूर्ण का अध्ययन न किया जाकर उसके एक अंश, पक्ष या एक भाग का या और भी स्पष्ट रूप में कुछ चुने गए व्यक्तियों का अध्ययन किया जाता है और यह अपेक्षा की जाती है कि यह भाग, अंश या चुने गए व्यक्ति समग्र का प्रतिनिधित्व करेंगे।

इस प्रकार निदर्शन का आशय सम्पूर्ण या समग्र में से कुछ इकाइयों का चयन करना होता है। यह कुछ इकाइयों का चयन कुछ ऐसी स्वीकृत कार्यविधियों के द्वारा किया जाता है जिससे यह अपेक्षा की जाती है कि ये चुनी गई इकाइयाँ सम्पूर्ण का उचित प्रतिनिधित्व करें।

अनेक समाजशास्त्रियों ने निदर्शन को परिभाषित किया है। यहाँ हम कुछ महत्त्वपूर्ण परिभाषाओं को देख सकते हैं—

गुडे एवं हट्ट ने अपनी कृति 'मेथड्स इन सोशल रिसर्च' में लिखा है "एक निदर्शन जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, एक विस्तृत समूह का अपेक्षाकृत छोटा प्रतिनिधि है।"[1]

जॉन गाल्टुंग लिखते हैं कि "अध्ययन के लिए चुनी गई इकाइयों का समूह सम्भावित इकाइयों के सम्पूर्ण समूह का उप-समूह है। इस उप-समूह को एक निदर्शन तथा सम्पूर्ण समूह को एक समग्र के नाम से सम्बोधित किया जाता है।"[2]

पी वी यंग ने लिखा है कि "एक सांख्यिकी निदर्शन उस सम्पूर्ण समूह अथवा योग का एक अति लघु चित्र है जिसमें से निदर्शन लिया गया है।"[3]

बोगार्डस के शब्दों में, "निदर्शन एक पूर्व-निर्धारित योजना के अनुसार इकाइयों के एक समूह में से एक निश्चित प्रतिशत का चुनाव है।"[4]

फ्रैंक याटन (Frank Yaton) की दृष्टि में "निदर्शन शब्द का प्रयोग केवल किसी समग्र चीज की इकाइयों के एक सैट या भाग के लिए किया जाना चाहिए जिसे इस विश्वास के साथ चुना गया है कि वह समग्र का प्रतिनिधित्व करेगा।"

मिल्ड्रेड पार्टन के मतानुसार, 'एक निश्चित संख्या में व्यक्तियों, मामलों या निरीक्षणों को एक समग्र विशेष में से निकालने की प्रक्रिया या पद्धति अथवा अध्ययन हेतु एक समग्र समूह म से एक भाग को चुनना निदर्शन-पद्धति कहलाती है।"

निदर्शन के आधार
(Bases of Sampling)

1 समग्र की एकरूपता (Homogeneity of Universe)—यदि समग्र की विभिन्न इकाइयों में अधिक भिन्नताएँ नहीं हैं तो जिन इकाइयों को चुना जाएगा वे प्रतिनिधित्वपूर्ण होंगी। थोड़ी-बहुत तो भिन्नता मिलेगी, परन्तु सामान्यत उनमें एकरूपता मिलेगी अत चयनित इकाइयों के आधार पर निकाला गया परिणाम

1 *Goode and Hatt* Methods in Social Research, p 209
2 *John Goltung* Theory and Methods of Social Research, p 49
3 *Pauline V Young* op cit., p 329.
4 *Bogardus* ; op cit , p 548

अधिक विश्वसनीय व लाभप्रद होगा । लुण्डबर्ग के अनुसार, "यदि तथ्यो मे अत्यधिक एकरूपता पाई जाती है अर्थात् सम्पूर्ण तथ्यो की विभिन्न इकाइयो मे अन्तर बहुत कम है तो सम्पूर्ण मे से कुछ या कोई इकाई समग्र का उचित प्रतिनिधित्व करेगी ।"[1]

भौतिक वस्तुओ मे जो समानता पाई जाती है वह मानवीय जगत मे तो दृष्टिगोचर नहीं होती क्योकि भौतिक वस्तुओ की उत्पादन प्रणाली मे समानता होती है परन्तु सामाजिक घटनाओ, मानव-प्रवृत्तियो, आदतो व स्वभाव मे समानता न होने के कारण निदर्शन का चुनाव कठिन हो जाता है । स्टीफेन (Stephen) के अनुसार जीवन के प्रत्येक पक्ष मे विविधता होने से एक दूसरे को अलग करना कठिन होता है । इस प्रकार के स्पष्ट विभाजनो के अभाव के कारण उस निदर्शन का चुनाव जटिल हो जाता है जो समुदाय मे विद्यमान समस्त विविधताओ का प्रतिनिधित्व कर सके ।[2] इसीलिए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि निदर्शन के चुनाव में विभिन्न इकाइयो मे विविधता होने के बावजूद भी निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण होना चाहिए ।

2 **प्रतिनिधित्वपूर्ण चयन (Representative Selection)**—इस पद्धति के अन्तर्गत समग्र मे से इकाइयो को इस प्रकार चुना जाता है कि वे समग्र का प्रतिनिधित्व करें । इकाइयो का चयन करते समय बडी सावधानी की आवश्यकता है । एक दो इकाइयो को चुनकर हम प्रतिनिधित्वपूर्ण निष्कर्ष नही निकाल सकते । प्रतिनिधित्व का यह आधार है कि विशेष गुण या गुण समूह के आधार पर समस्त समूह को कुछ निश्चित वर्गों मे बाँट दिया जाता है और प्रत्येक वर्ग की कुछ इकाइयो को चुनने से समग्र का प्रतिनिधित्व सम्भव हो जाता है ।

3 **अधिक परिशुद्धता की सम्भावना (Possibility of Much Accuracy)** यद्यपि निदर्शन मे शत-प्रतिशत परिशुद्धता लाना मुश्किल है, तथापि यही कोशिश होनी चाहिए कि निदर्शन अधिक से अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण हो । प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन वास्तविक स्थिति का प्रतिबिम्ब होता है और उसके निष्कर्ष भी लगभग ठीक होते हैं । सामाजिक घटनाओ की विविधताओ के कारण निदर्शन का चुनाव यदि उचित रूप से कर लिया जाता है तो शुद्धता की सम्भावना काफी रहती है । उदाहरणार्थ, यदि हम महाविद्यालय के 300 विद्यार्थियो का अध्ययन निदर्शन पद्धति द्वारा करें तब अन्त मे पता चलता है कि उनमे से 7 प्रतिशत की महाविद्यालयो मे देरी से आने की आदत है और जब समस्त विद्यार्थियो का अध्ययन करें तो हमे मालूम होता है कि देरी से आने वालो की सख्या 7 5 प्रतिशत है । इससे हमारे निष्कर्ष पर कोई विशेष प्रभाव नही पडता है । हम कह सकते हैं कि हमारे परिणामों मे काफी शुद्धता है, अर्थात् वे विश्वसनीय हैं ।

1 *George A Lundberg*, Social Research, p 135.

2 "...This lack of clear cut division complicates the selection of a sample which will be representative of all the varieties present in the community" —*Stephen*

निदर्शन के गुण
(Advantages of Sampling)

इस बात से इन्कार नही किया जा सकता है कि निदर्शन पद्धति दिन-प्रतिदिन लोकप्रिय होती जा रही है क्योकि सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक घटनाओ की जटिलता के कारण, जनगणना पद्धति अनुपयुक्त व कष्टदायक है, अत. अधिकतर इसी पद्धति का उपयोग किया जाता है। फिर इसमे त्रुटियो की सम्भावना भी कम रहती है, अत इसके निष्कर्षों पर निर्भर रहा जा सकता है। रोजेण्डर के शब्दो मे, "यदि सावधानी से चुना जाए तो निदर्शन न केवल पर्याप्त सस्ता ही रहता है, बल्कि ऐसे परिणाम भी देता है जो बिल्कुल सत्य होते हैं तथा कभी-कभी तो सगणना के परिणामो से भी सत्य होते हैं। अतएव सावधानीपूर्वक चुना गया निदर्शन वास्तव मे एक त्रुटिपूर्ण रूप से नियोजित तथा क्रियान्वित सगणना से अधिक श्रेष्ठ होता है।"[1]

इसके प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं—

1 समय की बचत (Saving of Time)—निदर्शन के अन्तर्गत कुछ चुनी हुई इकाइयों का अध्ययन किया जाता है, अत स्वाभाविक है कि सगणना पद्धति मे जहाँ समग्र का अध्ययन करने से बहुत समय व्यर्थ चला जाता है, वहाँ इस प्रणाली द्वारा वास्तविक समय की बचत होती है। अनुसन्धानकर्त्ता के लिए समय बहुत महत्वपूर्ण होता है और यदि वह समय व्यर्थ गँवाता है तो वह अनुसन्धान के नवीन यन्त्रो, साधनो व प्रणालियो से परिचित नही हो सकता। इस प्रणाली को अपनाने से अनुसन्धानकर्त्ता अपने शेष समय का भी सदुपयोग कर सकता है।

2 धन की बचत (Saving of Money)—इस पद्धति के अन्तर्गत जब कि कुछ ही इकाइयो का अध्ययन करना होता है तो उस पर किया गया खर्च भी अधिक नही हो सकता। उदाहरणार्थ, जब इकाइयो की सख्या सीमित है या छोटी है तो उससे सम्बन्धित खर्च, जैसे डाक-व्यय, साक्षात्कार लेने के लिए किया गया व्यय, सम्पूर्ण स्टेशनरी के सामान इत्यादि का व्यय कम हो जाएगा। सम्पूर्ण मे एक तो यन्त्र इतना व्यापक होता है फिर उस पर साधारण अनुसन्धानकर्त्ता तो खर्च कर ही नही सकता, उसे जो व्यय वहन करना पडता है वह कभी-कभी उसकी सीमा से बाहर की बात हो जाती है, अत इस पद्धति को प्रयोग मे लाने से आर्थिक बचत अपेक्षाकृत अधिक ही होती है।

3 परिणामों की परिशुद्धता (Accuracy of Results)—चूँकि इस पद्धति मे कुछ ही इकाइयो को लिया जाता है जो उस समग्र या समूह का प्रतिनिधित्व

1 "The careful designed, the sample is not only considerably cheaper but may give results which are just accurate and sometimes more accurate than those of a census Hence a carefully designed sample may actually be better than a poorly planned and executed census" —*A. C. Rosander*

करती हैं। इससे परिणामों मे शुद्धता की गुंजाइश अधिक रहती है परन्तु यह इस बात पर निर्भर करता है कि निदर्शन का चुनाव बडी सतर्कता व चतुरता से किया गया है। अमेरिका मे राष्ट्रपति के चुनाव मे प्रत्याशियो के जीतने व हारने की जो सम्भावनाएँ इस पद्धति के आधार पर की गई, वे आज भी हमें आश्चर्य मे डालने वाली हैं। चूंकि ध्यान कुछ ही इकाइयो पर केन्द्रित रहता है, अतः इस आधार पर उनकी शुद्धता का पता लग सकता है जो अनुसन्धान का प्रथम गुण है।

4 गहन अध्ययन (Intensive Study)—जनगणना पद्धति मे अनुसन्धानकर्त्ता का ध्यान अनेक इकाइयो, मे बँट जाने से केवल प्रमुख बातो का ही पता लग सकता है, अनेक बारीकियो का अध्ययन नहीं हो पाता है, अत इस पद्धति द्वारा सीमित इकाइयो का अध्ययन बडी गहराई से किया जा सकता है क्योकि सभी इकाइयो के लिए इतना समय देना व इतनी ही एकाग्रचित्तता (Concentration) से अध्ययन सम्भव नही होता है।

5 प्रबन्ध की सुविधा (Convenience of Management)—निदर्शन के अन्तर्गत कम इकाइयो का अध्ययन करना होता है, अत अधिक सख्या मे कार्यकर्त्ताओ को नियुक्त करने की आवश्यकता नही पडती है और दूसरी बात कुछ ही लोगो से सूचना प्राप्त करनी होती है, अत साधन भी सुगमतापूर्वक उपलब्ध हो जाते हैं, सूचना के मिलने मे भी कोई देरी व असुविधा नही रहती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिन चयनित इकाइयो का अध्ययन किया जाता है, उस सम्बन्ध मे प्रबन्ध इतना जटिल व व्यापक नहीं होता, अत सम्पूर्ण सर्वेक्षण आसान व सुविधाजनक होता है।

6 लचीलापन (Flexibility)—चूंकि निदर्शनो की सख्या अधिक नही होती है, अतः इसमे कभी-कभी सख्या को घटाया या बढाया जा सकता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि अनुसन्धान की प्रकृति कैसी है, समग्र की प्रकृति कैसी है, इनके आधार पर इसमे हेर-फेर या परिवर्तन आसानी से किया जा सकता है जबकि जनगणनात्मक पद्धति मे सम्पूर्ण अध्ययन करने के कारण, यह सम्भव नही है।

7 संगणना पद्धति के उपयोग की असम्भावना (Impossibility of Using the Census Method)—कभी ऐसी परिस्थितियाँ भी पैदा हो सकती हैं जिनमे सगणना पद्धति को उपयोग मे नहीं लाया जा सकता। जब समग्र विस्तृत या जटिल हो अथवा भौगोलिक दृष्टि से बहुत दूर-दूर बिखरा हो जहाँ पहुँचने तक के साधन उपलब्ध न हो, तो ऐसी स्थिति मे सगणना पद्धति के स्थान पर निदर्शन पद्धति ही अधिक उपयोगी है।

निदर्शन पद्धति के दोष
(Demerits of Sampling Method)

निदर्शन पद्धति के अनेक लाभ होने के बावजूद भी इसमे कुछ न कुछ दोष अवश्य हैं। इसका प्रयोग सीमाओ के अन्दर ही किया जा सकता है। बिना नियन्त्रण

के निदर्शन पद्धति उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती। इसमें निम्नलिखित दोष पाए जाते हैं—

1 उचित प्रतिनिधित्व की समस्या (Problem of Proper Representation)—इसका प्रथम दोष यह है कि प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन का चयन करना एक बहुत बड़ी समस्या है। जिसका कारण यह है कि सामाजिक व राजनीतिक इकाइयों में भिन्नता और विविधता बहुत अधिक होती है और जितनी अधिक भिन्नताएँ व विविधताएँ होंगी उतना ही प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन का चुनाव करना कठिन होता है। जब निदर्शन सही प्रतिनिधित्व नहीं कर पाता है तो उसके निष्कर्षों की विश्वसनीयता व प्रामाणिकता पर कम विश्वास किया जाता है। इसका प्रतिनिधित्वपूर्ण होना इस बात पर निर्भर रहता है कि कौन सी पद्धति को अपनाया गया है। यदि चुनाव पद्धति में ही गलती हो गई तो निदर्शन भी प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं हो सकता।

2 पक्षपात की सम्भावना (Possibility of Bias)—इसका अन्य दोष यह है कि निदर्शन का चुनाव निष्पक्ष नहीं हो पाता। जब इसके चयन में ही पक्षपातपूर्ण व्यवहार प्रवेश कर जाता है तो इस पद्धति में यह आशा नहीं की जा सकती कि इसके परिणाम बिल्कुल सत्य तटस्थ व निष्पक्ष होंगे। प्राय जब किसी विशेष उद्देश्य के लिए निदर्शन का चयन किया जाता है तो अभिनति या पक्षपात स्वत ही आ जाती है और निकाले गए निष्कर्ष भी सामान्यतया अविश्वसनीय व भ्रांतिपूर्ण हो सकते हैं।

3 आधारभूत व विशेष ज्ञान की आवश्यकता (Basic and Special Knowledge Required)—निदर्शनों का चुनाव बहुत जटिल कार्य है। जिन इकाइयों का चयन किया जा रहा है उनकी प्रकृति का ज्ञान व उनकी आधारभूत बातों की जानकारी आवश्यक है। इस कार्य के लिए बड़े धैर्य ज्ञान सूझ बूझ तथा अनुभव की आवश्यकता होती है। इन गुणों का समान रूप से सभी अनुसन्धानकर्त्ताओं में पाया जाना मुश्किल है। इस कार्य के लिए कुछ ही ऐसे अनुभवशील योग्य व विशेषज्ञ होते हैं जो इस पद्धति का सफलतापूर्वक उपयोग करने में समर्थ हैं।

4 निदर्शन पालन की समस्या (Problem of Sticking to Sampling)—इस पद्धति के अन्तर्गत कुछ इकाइयों के आधार पर निष्कर्ष निकालने में असुविधा होती है क्योंकि यह पद्धति इस बात पर जोर देती है कि जिन इकाइयों को निदर्शन के रूप में चुना गया है केवल उनका ही अध्ययन किया जाए। परन्तु व्यवहार में यह होता है कि चुनी हुई इकाइयों से भौगोलिक दूरी सामाजिक व राजनीतिक भिन्नता के कारण सम्पर्क भी स्थापित नहीं किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में अनुसन्धानकर्त्ता उन्हें या तो अपने अध्ययन से ही निकाल देता है या उनके स्थान पर किसी एक को चुन लेता है जो कि सम्भव हो प्रतिनिधित्वपूर्ण हो न हो। कई बार ऐसा होता है कि लोग सूचना देने में आनाकानी करते हैं अत मूल निदर्शन पर कायम रहना मुश्किल है।

5. अनुसन्धान में इसके प्रयोग की असम्भावना (Impossibility of its use in Research)—सगणना पद्धति की भाँति यह भी कहीं-कहीं असम्भव सिद्ध हो जाती है। जहाँ समग्र बहुत छोटा हो, एकजातीयता या एकरूपता का अभाव हो या विरोधाभास हो, ऐसी स्थिति में इसका प्रयोग सम्भव नहीं है। यदि परिणाम प्राप्त करने की कोशिश की गई तो अन्तिम निष्कर्ष सत्य सिद्ध नहीं हो सकते। अत ऐसी स्थिति में सगणना पद्धति को ही प्रयोग में लाया जाता है।

इन दोषों के बावजूद भी इसके महत्त्व को कम नहीं किया जा सकता। इस प्रणाली द्वारा प्राप्त निष्कर्ष पर्याप्त सीमा तक शुद्ध एवं सत्य होते हैं।

निदर्शन पद्धतियाँ
(Methods of Sampling)

निदर्शन पद्धति की सहायता से प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन का चुनाव किया जाता है। निष्कर्षों की यथार्थता के लिए यह आवश्यक है कि निदर्शन समग्र का पर्याप्त प्रतिनिधित्व कर सके। निदर्शन के चयन की प्रमुख पद्धतियाँ निम्नलिखित हैं—

निदर्शन पद्धतियाँ
(Sampling Methods)

दैव निदर्शन (Random Sampling)	उद्देश्यपूर्ण निदर्शन (Purposive Sampling)	स्तरीकृत निदर्शन (Stratified Sampling)	अन्य निदर्शन (Other Sampling)

दैव निदर्शन (Random Sampling):
1 लॉटरी प्रणाली
2 कार्ड प्रणाली
3 नियमित अकन प्रणाली
4 अनियमित अकन प्रणाली
5 टिप्पेट प्रणाली
6 ग्रिड प्रणाली

अन्य निदर्शन (Other Sampling):
1 क्षेत्रीय निदर्शन प्रणाली
2 बहु-स्तरीय निदर्शन प्रणाली
3 सुविधाजनक निदर्शन प्रणाली
4 स्वय चयनित निदर्शन प्रणाली
5 पुनरावर्ती निदर्शन प्रणाली
6 कम्बद्ध निदर्शन प्रणाली
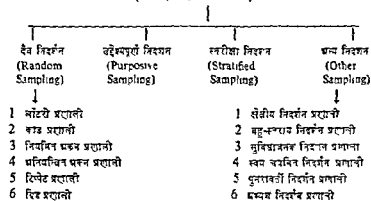
1 दैव (संयोग) निदर्शन पद्धति
(Random Sampling Method)

(समग्र की प्रत्येक इकाई को समान रूप से चुने जाने का अवसर देना ही इस पद्धति का उद्देश्य है। इसमे सम्पूर्ण समूह के सभी अंकों के चुने जाने की सम्भावना रहती है क्योंकि सबको समान महत्त्व का माना जाता है।) यह प्रणाली अध्ययनकर्त्ता की इच्छा या पक्षपात से प्रभावित नहीं होती व पद्धति के अन्तर्गत किन-किन इकाइयों को निदर्शन मे शामिल किया जाएगा यह अध्ययनकर्त्ता के व्यक्तिगत चुनाव या इच्छा पर निर्भर न होकर संयोग पर निर्भर करता है। कहने का आशय यह है कि इकाइयों का चुनाव व्यक्ति के हाथ से निकल कर दैव संयोग से होता है। थॉमस

कारसन का मत है, "दैव निदर्शन मे भाने या निकल जाने का अवसर घटना के लक्षण से स्वतन्त्र होता है।"[1]

इसकी परिभाषाएँ कई विद्वानो जैसे पार्टेन (Parten), हार्पर (Harper), गुडे तथा हट्ट (Goode and Hutt), मोजर (Moser) इत्यादि ने दी हैं। पार्टेन के अनुसार, 'दैव निदर्शन पद्धति चयन की उस पद्धति को कहते हैं जिसमे कि समग्र मे से प्रत्येक व्यक्ति को चुने जाने के समान अवसर हो, चयन दैव योग से हुआ माना जाता है।"[2] हार्पर के शब्दो मे, "एक दैव निदर्शन वह निदर्शन है जिसका चयन इस प्रकार हुआ हो कि समग्र की प्रत्येक इकाई को सम्मिलित होने का समान अवसर प्राप्त हुआ हो।[3]

दैव निदर्शन की चयन विधियाँ (The Selection Methods of Random Sampling)—दैव निदर्शन पद्धति के अनुसार दैव निदर्शन के चयन की प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैं—

(i) लॉटरी प्रणाली (Lottery Method)
(ii) कार्ड प्रणाली (Card Method)
(iii) नियमित अकन प्रणाली (Regular Marking Method)
(iv) अनियमित अकन प्रणाली (Irregular Marking Method)
(v) टिप्पेट प्रणाली (Tippet Method)
(vi) ग्रिड प्रणाली (Grid Method)

(i) लॉटरी प्रणाली (Lottery Method)—सम्पूर्ण समूह की समस्त इकाइयो के नाम अथवा नम्बर कागज की चिटो (Chits) पर लिख दिए जाते हैं फिर किसी बर्तन मे डालकर खूब हिला दिया जाता है ताकि वे पूर्णत अव्यवस्थित हो जाएँ। फिर आँख बन्द कर उतनी पर्चियाँ निकाल ली जाती हैं जितने निदर्शन छाँटने हो। अधिक इकाइयो की स्थिति मे यह पद्धति अधिक उपयुक्त नहीं रहती है।

(ii) कार्ड या टिकट प्रणाली (Card of Ticket Method)—इस प्रणाली मे एक ही आकार, रग, मोटाई व चौडाई के कार्डों अथवा टिकटो पर सम्पूर्ण समूह की समस्त इकाइयों के नाम अथवा नम्बर अथवा कोई चिह्न अकित कर दिए जाते है और बाद मे एक ड्रम मे भर दिए जाते हैं। फिर इसी ड्रम को हिलाकर, घुमाकर उसमे पडे कार्ड एक-एक करके निकाले जाते हैं। जितनी इकाइयों का चयन करना हो, उतने कार्ड निकाले जाते हैं। लॉटरी प्रणाली मे आँखें बन्द करके पर्ची निकाली जाती है, लेकिन इसमे कोई भी व्यक्ति आँखें खुली रखकर कार्ड निकाल सकता है।

1 *Thomas Carson* Elementary Social Statistics p 224

2 "Random sampling is the term applied when the method of selection assures each individual or element in the universe an equal chance of being chosen. The selection is regarded as being made by chance" —*Parten*

3 "A random sample is a sample selected in such a way that every item in the population has an equal chance of being included" —*W M Harper.*

(iii) **नियमित अकन प्रणाली** (Regular Marking Method)—इस प्रणाली के अन्तर्गत, सम्पूर्ण समूह की इकाइयो की क्रम सख्या डालते हुए एक सूची तैयार कर ली जाती है तथा यह तय कर लिया जाता है कि निदर्शन के लिए हमे कितनी इकाइयो का चयन करना है। तत्पश्चात् सूची को सामने रखकर एक सख्या से प्रारम्भ कर पाँच, दस, पन्द्रह या अन्य किसी अक को नियमित कर अगली सख्याएँ चुनी जाती हैं। उदाहरण के लिए पचास बालको मे से 5 बालक चुनने हैं तो प्रत्येक दसवाँ बालक हमारे चयन मे आता जाएगा।

(iv) **अनियमित अकन प्रणाली** (*Irregular Marking Method*)–इसमे समस्त इकाइयो की सूची बनाकर उसमे से प्रथम तथा अन्तिम अक को छोडकर शेष अन्य इकाइयो की सूची मे से अध्ययनकर्त्ता अनियमित तरीके से इन विविध इकाइयो म उतने ही निशान लगाएगा जितने निदर्शन का चयन करना है। इस पद्धति मे पक्षपात की सम्भावना रहती है।

(v) **टिप्पेट प्रणाली** (Tippet Method)–प्रोफेसर टिप्पेट ने दैव निदर्शन प्रणाली के लिए चार अको वाली 19400 सख्याओ की एक सूची बनाई थी। इन सख्याओ को बिना किसी क्रम के कई पृष्ठो पर लिखा गया है। अब यदि किसी अनुसन्धानकर्ता को निदर्शन का चयन करना है तो वह प्रो टिप्पट द्वारा बनाई गई सूची के किसी भी पृष्ठ से लगातार उतनी ही सख्याओ का लगा जितना उसे अपने निदर्शन के लिए चुनना है।

इसका एक नमूना यहाँ प्रस्तुत किया जाता है—

2952	3392	7979	3170
4167	1545	7203	3100
2370	3408	3563	6913
5060	1112	6608	4433
2754	1405	7002	8816
6641	9792	5911	56 4
9524	1396	5356	2993
7483	2762	1089	7691
5246	6107	8126	8796
9143	9025	6111	9446

इसमे निदर्शन निकालन की विधि इस प्रकार है। माना कि हम 8000 व्यक्तियो के एक सम्पूर्ण समूह (Universe) म 25 व्यक्ति निदर्शन मे लेने हैं तो उपरोक्त सूची मे लगातार 25 सख्याएँ लेनी चाहिए और उन सख्याओ वाले व्यक्तियो से जानकारी प्राप्त की जानी चाहिए। इसम सम्पूर्ण समूह की इकाइयो को किसी भी क्रम मे रखा जा सकता है और इसके उपरान्त एक सूची तैयार कर दी जाती है। समग्र की इकाइयो के क्रम होन की अवस्था म भी टिप्पट प्रणाली को ही

प्रयोग मे लाया जा सकता है । इस पद्धति को अधिक विश्वसनीय व वैज्ञानिक माना गया है ।

(vi) ग्रिड प्रणाली (Grid Method)—इसका प्रयोग क्षेत्रीय चयन के लिए किया जाता है। सर्वप्रथम विशाल क्षेत्र का भौगोलिक मानचित्र तैयार किया जाता है या तैयार किया हुआ प्राप्त किया जा सकता है । चयन के लिए सेल्यूलोइड या पारदर्शक पदार्थ की मानचित्र के बराबर आकार की तख्ती ली जाती है जिस पर वर्गाकार खाने बने होते हैं । प्रत्येक खाने पर नम्बर लिखा होता है । अब माना कि हमे विशाल क्षेत्र से 30 ब्लाक चुनने हैं तो सर्वप्रथम यह ज्ञात किया जाता है कि कौन से 30 नम्बर चुनने हैं, ग्रिड को मानचित्र पर रखकर चुने हुए वर्गों के नीचे पडने वाले क्षेत्रफल मे निशान लगा लिया जाता है । ये क्षेत्र ही निदर्शन की इकाइयाँ होती हैं—

दैव निदर्शन प्रणाली के गुण (Merits of Random Sampling Method)—दैव निदर्शन प्रणाली के मुख्य गुण निम्नलिखित है—

1 इस पद्धति मे निष्पक्षता होने के कारण प्रत्येक इकाई के निदर्शन मे चयन की सम्भावना रहती है ।

2 यह प्रणाली अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण है । इकाइयो मे समग्र के लक्षण विद्यमान होते हैं ।

3 यह पद्धति बहुत सरल है जिससे त्रुटि की सम्भावना नही रहती ।

4 अशुद्धताओ का पता लगाया जा सकता है ।

5 धन, समय व श्रम की बचत होती है ।

दैव निदर्शन प्रणाली के दोष (Demerits of Random Sampling Method)—इस प्रणाली के मुख्य दोष इस प्रकार हैं—

(i) इकाइयो के चुनाव म चयनकर्त्ता का कोई नियन्त्रण नही होता । दूर-दूर स्थित इकाइयो से अध्ययनकर्त्ता सम्पर्क स्थापित नहीं कर पाता ।

(ii) विस्तृत या सम्पूर्ण भूमि तैयार करना तब असम्भव हो जाता है जब समग्र (Universe) बहुत विशाल हो ।

(iii) इकाइयो मे सजातीयता न होने की स्थिति मे यह पद्धति अनुपयुक्त है।

(iv) इस पद्धति मे विकल्प (Alternative) के लिए कोई स्थान नहीं है । चुनी हुई इकाइयो मे परिवर्तन नही किया जा सकता, अत ऐसी स्थिति मे परिणाम कुछ भी निकल सकता है ।

2 उद्देश्यपूर्ण निदर्शन
(Purposive Sampling)

(जब अध्ययनकर्त्ता सम्पूर्ण समूह (Universe) में से किसी विशेष उद्देश्य से कुछ इकाइयाँ निदर्शन के रूप मे चुनता है तब उसे उद्देश्यपूर्ण, सप्रयोजन या सविचार निदर्शन प्रणाली की सज्ञा दी जाती है ।) जहोदा तथा कुक के अनुसार "उद्देश्यपूर्ण

निदर्शन के पीछे यह आधारभूत मान्यता होती है कि उचित निर्णय तथा उपयुक्त कुशलता के साथ व्यक्ति (अध्ययनकर्त्ता) निदर्शन में सम्मिलित करने के हेतु इन मामलो को चुन सकता है तथा इस प्रकार ऐसे निदर्शनो का उद्देश्यपूर्ण विकास कर सकता है जो उसकी आवश्यकताओ के अनुसार सन्तोषजनक हैं।"[1]

एडोल्फ जेन्सन के अनुसार, 'उद्देश्यपूर्ण निदर्शन से आशय इकाइयो के समूहो की एक संख्या को इस प्रकार चयन करना है कि चयनित समूह मिलकर उन विशेषताओ के सम्बन्ध मे यथासम्भव वही औसत अथवा अनुपात प्रदान करें जो समग्र म है और जिनकी सांख्यिकीय जानकारी पहले से ही है।"[2]

उद्देश्यपूर्ण निदर्शन प्रणाली की विशेषताएँ/गुण (Characteristics of Purposive Sampling Method)—इसके प्रमुख गुण निम्न हैं—

(i) निदर्शन का आकार छोटा होने के कारण, यह प्रणाली कम खर्चीली होती है तथा इसमे समय की भी बर्बादी नहीं होती।

(ii) इस प्रणाली की उपयोगिता तब और भी बढ जाती है जब सम्पूर्ण की कुछ इकाइयाँ विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण होती हैं।

(iii) इसमे अधिक प्रतिनिधित्व भी सम्भव होता है।

(iv) कम इकाइयों की अवस्था मे निदर्शन अधिक लाभप्रद होते हैं।

दोष (Demerits)—पार्टन के अनुसार समस्त सांख्यिकी-शास्त्रियों को उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के पक्ष मे एक शब्द भी नही कहना है। नेमैन इस प्रणाली को व्यर्थ समझते हैं, क्योंकि—

(i) इसमे इकाइयो का चयन अध्ययनकर्त्ता स्वतन्त्र रूप से करता है, अत निदर्शन पक्षपातपूर्ण होता है।

(ii) निदर्शन की अशुद्धियो का पता नही लगाया जा सकता।

(iii) अनुसन्धानकर्त्ता, सम्पूर्ण समूह को नही समझ पाता।

स्नेडेकोर (Snedecor) के अनुसार, इसमे निम्नलिखित दोष पाए जाते हैं—

(i) सम्पूर्ण समूह का पहले से ही ज्ञान होना सम्भव नही है।

(ii) निदर्शन पक्षपातपूर्ण हो सकता है।

(iii) जिन उपकल्पनाओ पर निदर्शन का अशुद्धता का अनुमान टिका रहता है वे व्यवहार मे बहुत कम आती हैं।

3 स्तरीकृत निदर्शन प्रणाली

(Stratified Sampling Method)

स्तरीकृत निदर्शन प्रणाली मे समग्र (Universe) को सजातीय वर्गों मे

1 *Jahoda & Cook* op cit, p 570

2 "Purposive Sampling denotes the method of selecting a number of groups of units, in such a way that the selected groups together yield as nearly as possible the same averages as the totality with respect to those characteristics which are already a matter of statistical knowledge" —*Adolph Jensen*

बाँटकर प्रत्येक निश्चित वर्ग सख्या मे इकाइयाँ दैव निदर्शन के आधार पर चयनित की जाती हैं। पार्टेन के अनुसार "इसमे प्रत्येक श्रेणी के अन्तर्गत मामलों का अन्तिम चुनाव सयोग द्वारा ही होता है।"[1] सिन-पाओ यांग (Hsin-Pao Yang) के अनुसार, "स्तरीकृत निदर्शन का अर्थ है समग्र मे से उप-निदर्शनो को चुनना, जिनकी समान विशेषताएँ हैं, जैसे कृषि के प्रकार, खेतो का आकार, स्वामित्व, शैक्षणिक स्तर, आय, लिंग, सामाजिक वर्ग आदि। उप-निदर्शनो के अन्तर्गत आने वाले इन तत्त्वो (Elements) को एक साथ लेकर एक प्रारूप या श्रेणी के रूप मे वर्गीकृत किया जाता है।"[2]

इस प्रणाली मे अनुसन्धानकर्त्ता समग्र की सभी विशेषताओ के बारे मे जानकारी कर लेता है। इसी आधार पर वह सम्पूर्ण (Universe) को वर्गों मे बाँट देता है। तत्पश्चात् प्रत्येक वर्ग मे से निदर्शन का चयन करता है। सभी वर्गों मे से अलग-अलग निदर्शन चुनकर उन्हे मिला दिया जाता है जिसके द्वारा पूर्ण निदर्शन प्राप्त हो जाता है। प्रत्येक वर्ग से निदर्शन का चयन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक वर्ग से उतनी ही इकाइयाँ ली जानी चाहिए जिस अनुपात मे वर्ग सम्पूर्ण (Universe) मे है। उदाहरणार्थ एक समग्र मे 100 इन्जीनियर, 80 भूगर्भवेत्ता, 70 डॉक्टर, 50 फोरमैन व 40 अध्यापक हैं और यदि हमे दस प्रतिशत निदर्शन का चयन करना है तो 10 इन्जीनियर, 8 भूगर्भवेत्ता 7 डॉक्टर, 5 फोरमैन, 4 अध्यापक को दैव-निदर्शन प्रणाली द्वारा निदर्शन के रूप मे चयनित कर लेंगे या चुन लेंगे।

स्तरीकृत निदर्शन के प्रकार (Kinds of Stratified Sampling)—इस पद्धति के प्रमुख प्रकार निम्नवत् हैं—

(i) समानुपातिक (Proportionate) वर्गीय निदर्शन—इसके अन्तर्गत प्रत्येक वर्ग से उसी अनुपात मे इकाइयाँ ली जाती हैं जिस अनुपात मे वर्ग की सभी इकाइयाँ समग्र मे सम्मिलित हैं।

(ii) असमानुपातिक (Disproportionate) वर्गीय निदर्शन—इसमे प्रत्येक वर्ग मे समान अनुपात मे इकाइयाँ न लेकर समान सख्या मे चुनी जाती हैं चाहे सम्पूर्ण समूह मे उनकी सख्या कुछ भी हो। इसका अर्थ यह हुआ कि निदर्शन मे इकाइयों की सख्या असमानुपातिक होगी, यदि विभिन्न वर्गों मे इकाइयाँ समान सख्या मे नही हैं।

(iii) भारयुक्त वर्गीय निदर्शन (Weighted Stratified Sampling)—इसमे प्रत्येक वर्ग मे इकाइयो का समान सख्या मे तो चयन किया जाता है, परन्तु बाद मे अधिक सख्या वाले वर्गों की इकाइयो को अधिक भार देकर उनका प्रभाव बढ़ा दिया जाता है।

1 *M Parten* : op, cit , p 226
2 *Hsin Pao Young* ; Fact Finding with Rural People, p. 36-37.

स्तरीकृत निदर्शन के गुण
(Merits of Stratified Sampling)

(i) किसी भी महत्त्वपूर्ण वर्ग के उपेक्षित होने की सम्भावना नहीं रहती क्योंकि प्रत्येक वर्ग की इकाइयो को निदर्शन मे स्थान मिल जाता है।

(ii) विभिन्न वर्गों का विभाजन यदि सतर्कतापूर्वक किया जाता है तो थोड़ी-थोड़ी इकाइयो का चयन करने पर भी सम्पूर्ण समूह का प्रतिनिधित्व हो जाता है। जबकि दैव निदर्शन मे प्रतिनिधित्व का गुण तभी आ सकेगा जब इकाइयो की सख्या पर्याप्त होगी।

(iii) क्षेत्रीय दृष्टि से वर्गीकरण करने पर इकाइयों से सम्पर्क सरलतापूर्वक स्थापित नहीं किया जा सकता है। इससे धन व समय की बचत होती है।

(iv) इकाइयो के प्रतिस्थापन मे सुविधा रहती है। यदि किसी व्यक्ति मे सम्पर्क स्थापित नही किया जा सकता तो उसके स्थान पर उसी वर्ग का दूसरा व्यक्ति लिया जा सकता है जिसके सम्मिलित करने से परिणामों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नही पडता। स्टीफेन के शब्दो मे, इस बात की व्यवस्था कर देने से कि निदर्शन का एक निर्दिष्ट अश प्रत्येक भौगोलिक क्षेत्र या आय वर्ग से लिया जाएगा, वर्गीय निदर्शन स्वत निदर्शन के अप्राप्य व्यक्तियो के उसी वर्ग से दूसरे व्यक्तियो द्वारा प्रतिस्थापन की सुविधा प्रदान करता है तथा इस प्रकार निदर्शन मे सम्भावित पक्षपात जो, प्रतिस्थापन करने से उत्पन्न होता, दूर कर देती है।[1]

स्तरीकृत निदर्शन के दोष
(Demerits of Stratified Sampling)

(i) चुने हुए निदर्शन मे यदि किसी विशेष वर्ग की इकाइयो को बहुत अधिक या बहुत कम स्थान दिया गया तो निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं हो सकता।

(ii) विभिन्न वर्गों के आकार मे अधिक भिन्नता है तो समानुपातिक गुण नही लाया जा सकता।

(iii) असमानुपातिक आधार पर किए गए चयन के बाद मे भार का प्रयोग करना पडता है। भार का प्रयोग करते समय अनुसन्धानकर्ता पक्षपातपूर्ण रवैया अपना सकता है जिससे निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण नही हो सकता।

(iv) वर्ग का स्पष्टीकरण न होने की स्थिति मे यह कठिनाई आती है कि इकाई को किस वर्ग मे रखा जाए।

सावधानियाँ (Precautions)—इस प्रणाली को व्यवहार मे लाते समय निम्नलिखित सावधानियाँ बरती जानी चाहिए—

(i) अनुसन्धानकर्त्ता को समग्र के गुणो का ज्ञान होना चाहिए अन्यथा वर्गीय विभाजन मे वह कई गल्तियाँ कर सकता है।

1 *Frederic Stephen*, Stratification in Representative Sampling.

(ii) प्रत्येक वर्ग से उतनी ही इकाइयाँ उसको चुननी चाहिए जितने अनुपात में वे समग्र में हैं।

(iii) एक वर्ग के अन्तर्गत आने वाली सभी इकाइयों में एकरूपता हो, इसके लिए वर्गों का निर्माण सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए।

(iv) वर्ग सुनिश्चित व स्पष्ट होने चाहिए ताकि सम्पूर्ण समूह (Universe) की सभी इकाइयाँ किसी न किसी वर्ग में आ जाएँ।

4 निदर्शन प्रणाली के अन्य प्रकार
(Other Types of Sampling Methods)

इनके अतिरिक्त निदर्शन की पद्धतियाँ भी प्रचलित हैं जो इस प्रकार हैं—

1 क्षेत्रीय निदर्शन प्रणाली (Area Sampling Method)
2 बहु-स्तरीय निदर्शन प्रणाली (Multi-stage Sampling Method)
3. सुविधाजनक निदर्शन प्रणाली (Convenience Sampling Method)
4 स्वयं-चयनित निदर्शन प्रणाली (Self selected Sampling Method)
5 पुनरावृत्ति निदर्शन प्रणाली (Repetitive Sampling Method)
6 अभ्यंश निदर्शन प्रणाली (Quota Sampling Method)

1 क्षेत्रीय निदर्शन प्रणाली (Area Sampling Method)—यह प्रणाली क्षेत्र निदर्शन वर्गीय निदर्शन (Stratified Sampling) का एक विशेष प्रकार है। जिस प्रकार वर्गीय निदर्शन के अन्तर्गत समग्र में से ऐसे उप-निदर्शनों (Sub Samples) को लिया जाता है जिनमें समान विशेषताएँ हों उसी प्रकार(इस पद्धति के अन्तर्गत(जिस क्षेत्र का अध्ययन करना हो उसे छोटे-छोटे क्षेत्रों में या उप क्षेत्रों में विभाजित कर दिया जाता है और उनमें एक निदर्शन का चयन कर लिया जाता है। क्षेत्र निदर्शन आधारभूत रूप में दैव-निदर्शन प्रणाली का ही स्वरूप है।)

द्वितीय महायुद्ध से अमरिका के जनगणना ब्यूरो और कृषि एवं अर्थशास्त्र विभाग ने इस क्षेत्र-निदर्शन प्रणाली की प्रविधियों का अधिकाधिक प्रयोग किया है। इस प्रकार के निदर्शन में छोटे क्षेत्रों को निदर्शन इकाइयों की संज्ञा दी जाती है। अनुसन्धानकर्त्ता क्षेत्र के सभी निवासियों का पूर्ण अध्ययन करता है।

जो आधारभूत निदर्शन इकाइयाँ चुनी जाती हैं वे सापेक्ष रूप से छोटी या बड़ी भी हो सकती हैं। (इन इकाइयों का बड़ा या छोटा होना कई तत्त्वों पर निर्भर करता है जैसे—

(i) क्षेत्र का प्रकार
(ii) जनसंख्या
(iii) मानचित्रों की उपयोगिता
(iv) सम्बन्धित सूचना की जानकारी
(v) तथ्यों की प्रकृति।)

ए जे किंग और जेस्सन ने खेती के 'मास्टर सेम्पल' (Master Sample) मे जिन तत्वो (Factors) पर, खुले देश क्षेत्रो में विचार किया था वे निम्न थे—

1 पहचानने योग्य सीमाएँ,
2 विशिष्ट आकार—खेतों की सख्या,
3 खण्डो (Segments) की अन्य निदर्शन मे खण्डो की यथा योग्यता (Suitability)।

जहाँ जनसख्या का घनत्व अधिक उच्च हो वहाँ छोटे-छोटे निदर्शन खण्ड प्रयोग मे लाए जाते हैं जिनमे खेत की इकाइयाँ और बगैर खेत की इकाइयो के निदर्शन का ध्यान रखा जाता है। लेकिन नगरो और कस्बों में खण्ड ब्लॉक भी हो सकते हैं या ब्लॉक के भी टुकडे (Parts) हो सकते हैं।

जहाँ तक हो सके विस्तृत निदर्शन इकाइयो को नही चुना जाना चाहिए क्योकि वे अधिक कार्यक्षम (Efficient) सिद्ध नही हुई है। बडे शहरो मे ब्लाक जैसे छोटी इकाइयो को प्रयोग मे लाया जाना चाहिए। पी वी यग के मतानुसार निदर्शन अभिकल्प (Sampling design) की कार्यक्षमता को बढाने के लिए पते (Addresses) या निवास स्थान इकाइयो के उप-निदर्शन (Sub-Sampling) को चयनित ब्लॉक मे चुना जाना है।

उदाहरणार्थ यदि हम एक शहर म निवास स्थानो क निदर्शन मे जीवन-स्तरीय परिस्थितियो का अध्ययन करना चाहते हैं तो हम उन निवास-स्थानों की सूची की आवश्यकता रहेगी। यह सूची निदर्शन के फ्रेम या ढाँचे का कार्य करती है लेकिन सूची मिलना अत्यन्त मुश्किल है। यदि इस सम्बन्ध मे मानचित्र मिल जाए जिस पर निवास स्थानो को दिखाया गया हो तो वह भी सुविधानुसार फ्रेम का कार्य कर सकता है। नगर क्षेत्र को ब्लॉको मे, जहाँ तक हो सके समान जन-सख्या म विभाजित करते हैं। इन खण्डो की गणना कर ली जाती है और उनम से एक दैव निदर्शन (Random Sampling) चुन लिया जाता है।

यदि 100 निवास स्थानो मे एक ही निदर्शन (Sampling) की आवश्यकता है तो एक दैव खण्ड निदर्शन एक सौ खण्डो मे लिया जा सकता है और प्रत्येक चयनित खण्ड मे निवास स्थान (Dwelling) को निदर्शन मे सम्मिलित किया जा सकता है।

व्यावहारिक रूप मे सामान्यत बहु-स्तरीय निदर्शन को ही प्राथमिकता (Preference) दी जाती है। इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र को सजातीय क्षेत्रो मे बाँट दिया जाता है। जहाँ तक सम्भव होता है उसे समान क्षेत्रो मे बाँटा जाता है। इसके अतिरिक्त क्षेत्र निवासियो मे भी अधिकाधिक समानता होनी चाहिए।

इसके पश्चात् प्रत्येक क्षेत्र मे से उस इकाई को दैव निदर्शन प्रणाली से चुन लिया जाता है जिसका कि अध्ययन करना हो।

इस चयनित इकाई जैसे—गाँव या नगर में से कुछ गृह-समूह दैव निदर्शन प्रणाली के आधार पर चुन लिए जाते हैं और अन्त में इन्हीं गृह-समूहों से कुछ अस्थिर दैव निदर्शन प्रणाली द्वारा चुन लिए जाते हैं।

यद्यपि क्षेत्र निदर्शन अमेरिका जैसे धनाढ्य देश में ही लोकप्रिय है तथापि इसकी उपयोगिता को अन्य देश भी समझने लग गए हैं। क्षेत्र निदर्शन में व्यक्तिगत अभिनति को बहुत ही कम स्थान मिल पाता है, इसलिए इस पद्धति को प्रयोग में लाया जा रहा है।

यह पद्धति चूँकि अत्यधिक खर्चीली है, अतः विकासशील देश या कम विकसित देश इसको उपयोग में नहीं ला सकते। यद्यपि इसकी उपयोगिता और महत्त्व के बारे में कोई सन्देह नहीं है। प्रश्न केवल अमेरिका जैसे देश को छोड़, अन्य देशों में इसके प्रयोग का है। ऐसी आशा की जाती है कि आने वाले समय में इसका प्रभाव विश्व के अन्य भागों में भी बढ़ेगा।

2 बहुस्तरीय निदर्शन प्रणाली **(Multi-Stage Sampling Method)**—इस प्रणाली के अन्तर्गत निदर्शन की चुनाव प्रक्रिया कई सोपानों से होकर गुजरती है—

(अ) सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र को सजातीय क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है।

(ब) दैव निदर्शन प्रणाली द्वारा कुछ ग्राम या नगर, जिनका अध्ययन करना होता है, चुन लिए जाते हैं।

(स) प्रत्येक ग्राम या नगर में से कुछ गृह समूह दैव निदर्शन प्रणाली के आधार पर चुन लिए जाते हैं।

(द) अन्तिम अवस्था में गृह-समूहों में से कुछ परिवारों का चयन दैव निदर्शन प्रणाली द्वारा कर लिया जाता है।

3 सुविधाजनक निदर्शन प्रणाली **(Convenience Sampling Method)** सुविधाजनक निदर्शन प्रणाली में निदर्शन का चयन अनुसन्धानकर्ता अपनी सुविधानुसार करता है। यद्यपि यह प्रणाली वैज्ञानिक नहीं है, तथापि इसका प्रयोग अनुसन्धान में किया जा रहा है। इसके प्रमुख आधार धन, समय, कार्यकर्ता की दिलचस्पी व योग्यता इत्यादि हैं। इसे अनियमित या अवसरवादी निदर्शन प्रणाली भी कहा जाता है। इस प्रणाली का उपयोग तभी किया जाता है, जब—

(i) समग्र स्पष्ट रूप से परिभाषित न किया जा सके।

(ii) निदर्शन की इकाइयाँ स्पष्ट न हों।

(iii) जब पूर्ण स्रोत-सूची प्राप्त न हो।

4 स्वयं-चयनित निदर्शन प्रणाली **(Self-selected Sampling Method)**—कई बार निदर्शन चुना नहीं जाता, अतः सम्बन्धित व्यक्ति स्वयं ही उसके अंग बन जाते हैं। उदाहरण के लिए कोई कम्पनी राय जानने के लिए यह

घोषणा करती है कि ग्राहक या धूम्रपान करने वाले अमुक-अमुक सिगरेट को क्यों पसन्द करते हैं, इसके सन्तोषजनक उत्तर के लिए इनाम दिया जाएगा तो ऐसी स्थिति म धूम्रपान करने वाले अपनी राय उस सिगरेट की पसन्दगी के बारे मे भेजेंगे। इससे धूम्रपान करने वालो की राय के बारे मे पता चल जाता है। इस प्रकार जो अपनी राय भेजेंगे वे ही निदर्शन के अग बन जाएँगे।

5 पुनरावृत्ति निदर्शन प्रणाली (Repetitive Sampling Method) — इस पद्धति मे निदर्शन कार्य एक बार नही अपितु अनेक बार होता है। इस पद्धति को इसलिए प्रयोग मे लाया जाता है जिसस सम्भावित त्रुटियो को दूर कर उनमें कमी की जा सकती हो।

6 अभ्यश निदर्शन प्रणाली (Quota Sampling Method)— सवप्रथम इस विधि मे समग्र को कई वर्गों मे बाँट दिया जाता है। तत्पश्चात् प्रत्येक वर्ग से चुनी जाने वाली इकाइयो की सख्या निश्चित कर दी जाती है। इस निश्चित सख्या को ही अभ्यश (Quota) करते हैं। जहोदा एव कुक के अनुसार "अभ्यश निदर्शन का प्राथमिक लक्ष्य ऐसे निदर्शन का चयन करना है जो ऐसी जनसख्या का लघु रूप है जिसका सामान्यीकरण किया जाता है, अत इसे जनसख्या का प्रतिनिधित्व करने वाला कहा गया है।"[1]

एक श्रेष्ठ निदर्शन की विशेषताएँ
(Characteristics of a Good Sampling)

निदर्शन पद्धति की सफलता के लिए यह अत्यावश्यक है कि समग्र मे से निदर्शन का चयन अत्यन्त सावधानीपूर्वक एव निश्चित कार्यविधियो के अनुरूप किया जाना चाहिए। मिल्ड्रेड पार्टिन ने लिखा है कि सर्वेक्षण म वह निदर्शन उत्तम होता है जो कुशलता, प्रतिनिधित्व, विश्वसनीयता एव लोच की आवश्यकताओ की पूर्ति करता है।[2] पी. वी यग के अनुसार भली प्रकार से चुने गए अपेक्षाकृत छोटे निदर्शन त्रुटिपूर्ण बडे निदर्शनो स अधिक विश्वसनीय होत हैं।[3]

गुडे एव हट्ट ने एक अच्छे व उत्तम निदर्शन की दो विशेषताएँ बताई हैं[4]—

1 निदर्शन को प्रतिनिधित्वपूर्ण होना चाहिए, एव
2 निदर्शन पर्याप्त (Adequate) होना चाहिए।

सी ए मोजर के अनुसार निदर्शन प्रणाली दो महत्त्वपूर्ण नियमो पर आधारित होनी चाहिए[5]—

1 इकाइयो की चयन प्रक्रिया म अभिनति (पक्षपात) से बचना, एव
2 निदर्शन मे अधिकतम सूक्ष्मता (Precision) एव परिशुद्धता (Accuracy) प्राप्त करना।

1 *Jahoda and Cook* op cit.
2 *Mildred Parten* op cit, p 293
3 *P V Young* op cit, p 302
4 *Goode and Hatt* op cit., p 212
5 *C A Moser* Survey Methods in Social Investigation

अतः अच्छे, श्रेष्ठ या उत्तम निदर्शन में सामान्यतः निम्न विशेषताएँ होनी चाहिए—

1. पर्याप्त इकाइयों का चयन (Selection of Adequate Units)—निदर्शन का चयन करते समय यह ध्यान रखा जाना अत्यावश्यक है कि अनुसन्धान समस्या के उद्देश्यों व प्रकृति के अनुसार पर्याप्त इकाइयों का चयन किया जाना चाहिए। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि निदर्शन में चयनित इकाइयाँ समग्र की समस्त इकाइयों के आधार पर चयनित की गई हैं।

2 समग्र का प्रतिनिधित्व (Representation of Universe)—अच्छे निदर्शन की यह आधारभूत विशेषता है कि उसमें चुनी गई इकाइयाँ समग्र या सम्पूर्ण का उचित प्रतिनिधित्व करती हों। निदर्शन का चयन यदि बिना किसी पक्षपात एवं उचित कार्यविधियों के माध्यम से किया गया है तथा यह ध्यान रखा गया है कि समग्र की समस्त इकाइयों के आधार पर निदर्शन में इकाइयों का समावेश किया गया है तो निदर्शन सामान्यतः प्रतिनिधित्वपूर्ण ही होगा।

3. निष्पक्ष चयन (Selection must be free from Bias)—इकाइयों का चयन बिना किसी पक्षपात के पूर्णतः निष्पक्ष होकर किया जाना चाहिए। ऐसा करने से ही निदर्शन की उपयोगिता बढ़ेगी और अध्ययन के उपरान्त प्राप्त निष्कर्षों के विश्वसनीय होने की सम्भावना रहेगी। पक्षपात ढंग से चुनी गई इकाइयों का निदर्शन निष्कर्षों की विश्वसनीयता पर प्रश्न चिह्न लगा देता है।

4. साधनों के अनुरूप (According to Means)—निदर्शन का चयन करते समय हमें ध्यान रखना चाहिए कि निदर्शन हमारे उपलब्ध साधनों के अनुरूप है या नहीं। निदर्शन यदि साधनों का ध्यान में रखकर नहीं चुना गया है तो वह श्रेष्ठ नहीं हो सकता। उसमें अभिनति आना अवश्यम्भावी है।

5 कार्य-विधियों के अनुरूप (According to Procedures)—निदर्शन का चयन मन-गढ़न्त अथवा काल्पनिक आधारों पर न किया जाकर पहले से कुछ निश्चित कार्यविधियों एवं मान्यता प्राप्त पद्धतियों के आधार पर किया जाना चाहिए। ऐसे निदर्शन ही मान्यता प्राप्त होते हैं और अध्ययन को विश्वसनीय बनाते हैं।

6 तर्क पर आधारित (Based on Logic)—निदर्शन की उपयोगिता एवं विश्वसनीयता को प्राप्त करने में तार्किक बुद्धि आवश्यक होती है। निदर्शनों का तर्क की कसौटी पर रखा जाना चाहिए। तर्क पर आधारित निदर्शन अत्यन्त उपयोगी व वैज्ञानिक होते हैं।

7 अन्य के अनुभवों का उपयोग (Use of other's Experience)—एक उत्तम निदर्शन के लिए यह भी आवश्यक है कि हम उस क्षेत्र में किए गए अन्य अनुसन्धानकर्त्ताओं के अनुभवों का प्रयोग करें। ऐसा करने से उस क्षेत्र विशेष में आने वाली कठिनाइयों की पूर्ण जानकारी हमें प्राप्त हो जाएगी और हमें अपनी अनुसन्धान प्रक्रिया में किसी कठिनाई का सामना करना नहीं पड़ेगा।

(v) निदर्शन पद्धति (Sampling Method)—यदि दैव निदर्शन प्रणाली का प्रयोग करना है तो निदर्शन का आकार बड़ा होना चाहिए जिससे अधिक सख्या मे विभिन्न गुणो वाली इकाइयो के चुनाव का अवसर प्राप्त हो सके। सविचार या वर्गीय निदर्शन मे कम इकाइयो का चुनाव भी पर्याप्त प्रतिनिधित्व कर सकता है।

(vi) परिशुद्धता की मात्रा (Degree of Accuracy)—यद्यपि छोटे आकार के निदर्शन भी काफी विश्वसनीय तथा प्रतिनिधित्वपूर्ण हो सकते हैं, तथापि सामान्यत बड़े निदर्शनो म परिशुद्धता की मात्रा अधिक होती है।

(vii) चयनित इकाइयों की प्रकृति (Nature of Selected Units)—निदर्शन का आकार इकाइयो की प्रकृति पर बहुत कुछ निर्भर करता है। यदि इकाइयाँ अधिक बिखरी हुई है तो उनसे सम्पर्क स्थापित करने मे कठिनाई के अलावा समय व धन भी अधिक खर्च होते हैं। ऐसी स्थिति मे यदि निदर्शन का आकार छोटा हो तो उत्तम रहेगा इससे विपरीत अवस्था म निदर्शन का आकार बड़ा लेना चाहिए।

(viii) (अध्ययन के उपकरण) (Tools of Study)—यदि प्रत्येक के घर जाकर अनुसूचियाँ तैयार करनी हैं तो छोटा निदर्शन उपयुक्त रहेगा और यदि डाक द्वारा ही प्रश्नावलियाँ भेजनी है तो बड़ा निदर्शन भी उपयुक्त होगा। प्रश्नो की सख्या आकार तथा उनकी प्रकृति पर भी निदर्शन का आकार निर्भर करता है। यदि प्रश्न छोटे, सख्या मे कम व सरल हैं तो बड़ा निदर्शन उपयुक्त रहता है अन्यथा छोटा निदर्शन अपनाना चाहिए।

उपर्युक्त कारको के अध्ययन से पता चलता है कि निदर्शन के आकार के सम्बन्ध मे कोई निश्चित नियम व सिद्धान्त नही हैं बल्कि परिस्थितियाँ ही उसके आकार को निर्धारित करती है। सभी प्रभावशाली कारकों के सम्बन्ध मे सावधानी बरती जानी चाहिए। पार्टेन के मतानुसार, "अनावश्यक खर्चे से बचने के लिए निदर्शन के काफी छोटा और असहनीय अशुद्धि से बचने के लिए उसे पर्याप्त बड़ा होना चाहिए।"

2 अभिनति या पक्षपातपूर्ण निदर्शन की समस्या (Problem of Biased Sample)–निदर्शन के चुनाव पर पक्षपात का प्रभाव पड़ने से निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं हो सकता ऐसे निदर्शन को अभिनति या पक्षपातपूर्ण निदर्शन (Biased Sample) की सज्ञा दी जाती है। निदर्शन मे अभिनति निम्नलिखित कारणो से उत्पन्न हो सकती है—

(i) आकार छोटा होने से (The Size being Small)—निदर्शन का आकार छोटा होने के कारण बहुत सी इकाइयो को चुने जाने का अवसर नहीं मिलता है। ऐसी अनेक महत्वपूर्ण इकाइयाँ हो सकती हैं जिन्हें सम्मिलित नहीं किया गया है, ऐसी स्थिति मे निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण नही हो पाता।

(ii) उद्देश्यपूर्ण निदर्शन (Purposive Sampling)—सविचार या उद्देश्यपूर्ण निदर्शन प्रणाली में अनुसन्धानकर्त्ता को निदर्शनो के चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता

होती है। फलत पक्षपात का प्रवेश सरल हो जाता है।) दूसरी स्थिति यह भी है कि अनुसन्धानकर्त्ता जिन इकाइयो से सम्पर्क स्थापित करने में कठिनाई महसूस करता है, उनको छोड देता है और वह केवल उन्ही को निदर्शन मे स्थान देता है जो कठिन व सुविधाजनक न हो परन्तु ऐसी स्थिति मे भी निदर्शन निष्पक्ष नहीं हो पाता है।

(iii) **दोषपूर्ण वर्गीकरण (Defective Stratification)**—वर्गीय निदर्शन विधि के अन्तर्गत दोषपूर्ण वर्गीकरण निदर्शन को अभिनति या पक्षपातपूर्ण (Biased) बना देता है।)यदि वर्ग अस्पष्ट व असमान होगे तो निदर्शन पक्षपातपूर्ण हो जाएगा। इसी प्रकार यदि वर्ग मे असमान सख्या मे इकाइयाँ हैं और उन्हें निदर्शन मे समान स्थान दिया जाता है तो निदर्शन न केवल असमानुपातिक होगा बल्कि अनुचित रूप मे भारयुक्त भी हो जाएगा। इकाइयो को गलत वर्ग मे रखने से चुनाव भी अनुचित रूप से होता है।

(iv) **अपूर्ण स्रोत सूची (Incomplete Source-List)**—यदि साधन सूची अधूरी, पुरानी या अनुपयुक्त है तो स्वभावत निदर्शन का चुनाव अनुसन्धानकर्त्ता की इच्छानुसार होगा। इससे निदर्शन अभिनतिपूर्ण हो जाता है।

(v) **कार्यकर्त्ताओं द्वारा चयन (Selection by Workers)**—जब इकाइयो के चयन की अनुमति कार्यकर्त्ताओ को दी जाती है तो उनकी लापरवाही के कारण चयन मे पक्षपात प्रवेश कर जाता है।)यदि इकाइयो मे एकरूपता पाई जाती है तो इसकी सम्भावना कम रहती है अन्यथा निदर्शन अभिनतिपूर्ण होगा क्योकि इकाइयों का चुनाव कार्यकर्त्ताओ ने अपनी इच्छानुसार किया है।

(vi) **सुविधानुसार निदर्शन (Convenience Sampling)**—इसके अन्तर्गत अनुसन्धानकर्त्ता को पूर्ण छूट रहती है कि वह सुविधानुसार निदर्शनो का चुनाव कर सकता है, ऐसी स्थिति मे निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण नही हो पाता और उसमे पक्षपात का प्रवेश होना स्वाभाविक हो जाता है।

(vii) **दोषपूर्ण दैव निदर्शन (Defective Random Sampling)**—यद्यपि इस पद्धति के अन्तर्गत प्रत्येक इकाई को चुने जाने के समान अवसर प्राप्त होते हैं, लेकिन त्रुटिपूर्ण ढग के इस पद्धति को प्रयोग मे लाने से 'मिथ्या-झुकाव' का प्रवेश अनजाने में ही हो जाता है। यदि गोलियो को बनाने में असावधानी बरती गई तो गोलियाँ छोटी-बडी हो सकती हैं, क्योकि बडी गोली हाथ मे जल्दी आती है। इसी प्रकार पर्चियों को अच्छी तरह हिलाकर या घुमाकर नहीं मिलाया गया तो ऊपर की पर्ची आ सकती है जो सबका प्रतिनिधित्व नहीं करती है।

(viii) **(अनुसन्धान विषय की प्रकृति) (The Nature of Research Subject)**—यदि तथ्य सजातीय, समान व सरल नही है तो पूर्णत प्रतिनिधि निदर्शन का चुनाव कठिन हो जाता है।

कुछ सुझाव
(Some Suggestions)

(i) अभिनति के कारणो को जानने के पश्चात् अध्ययनकर्त्ता को इनके दुष्परिणामो से बचे रहने का प्रयत्न करना चाहिए।
(ii) अनुसन्धानकर्ता को अध्ययन समस्या का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।
(iii) अध्ययनकर्ता द्वारा चयनित निदर्शन विधि समस्या के अनुकूल होनी चाहिए।
(iv) व्यक्तिनिष्ठता (Subjectivity) पर ध्यान दिया जाना चाहिए।
(v) निदर्शन का आकार पर्याप्त होना चाहिए।
(vi) निदर्शन की इस आधार पर जांच की जानी चाहिए कि उसमे प्रतिनिधित्व है अथवा नही।

निदर्शनो की विश्वसनीयता का माप (Measurement of Reliability of Samples)—निदर्शन की विश्वसनीयता की जाँच करने के लिए निम्नलिखित उपाय प्रयोग मे लाए जा सकते हैं—

1 **समानान्तर निदर्शन (By Parallel Sampling)**—निदर्शन की सत्यता की जाच के लिए किसी अन्य प्रणाली द्वारा समग्र से उसी आकार का एक निदर्शन चुन कर दोनो की विभिन्न सांख्यिकीय मापो से तुलना की जाती है। यदि दोनो मे पर्याप्त समानता है तो निदर्शन को विश्वसनीय माना जा सकता है। यदि समानता नही भी पाई गई हो तो भी उसमे विश्वास प्रकट किया जा सकता है क्योकि पूर्णतः एक समान कोई भी नही हो सकता।

2 **सम्पूर्ण समूह से तुलना (Comparison with Universe)**—निदर्शन के तथ्यो की समस्त समग्र के तथ्यो से तुलना करके दोनो की समानता का पता लगाया जा सकता है। कुछ समग्र की बहुत सीमाएँ ध्यान मे होनी हैं, जैसे लिंग, अनुपात आयु इत्यादि। इन मापो का पता होने पर निदर्शन द्वारा निकाली हुई मापो की तुलना उनमें की जा सकती है और काफी सीमा तक यदि समानता है तो विश्वसनीय माना जा सकता है।

3 **सर्वेक्षण की पुनरावृत्ति (Repetition of Survey)**—यदि मिलती जुलती प्रकृति के सर्वेक्षण की पुनरावृत्ति की जाती है तो उनमे प्रयोग किए गए निदर्शन की सत्यता व विश्वसनीयता का पता चल सकता है। वर्तमान समय मे यह पद्धति काफी लोकप्रिय व विश्वसनीय है। यदि निदर्शनो के चुनाव मे अत्यन्त सावधानी बरती जाए तो वे अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण हो सकते हैं, फलत शुद्ध निष्कर्ष निकालने की पूर्ण गुंजाइश रहती है। आधुनिक सामाजिक अनुसन्धानो मे इस विधि का उपयोग किया जा रहा है। दूरदर्शिता व अनुभव से यह प्रणाली और भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

अनुसन्धान प्ररचना, प्रतिरूप, पैराडाइम, सिद्धान्त-निर्माण
(Research Design, Models, Paradigm, Theory Building)

अनुसन्धान प्ररचना
(Research Design)

सामाजिक अनुसन्धानों मे अध्ययन समस्या के चयन के बाद प्ररचना (Design) के निर्माण का प्रश्न उठता है। इसका आशय यह है कि सामाजिक अनुसन्धान के लिए एक ऐसी अनुसन्धान प्ररचना का निर्माण किया जाए जो समस्या के अध्ययन हेतु सर्वाधिक उपयुक्त एव सुविधाजनक हो। अनुसन्धान प्ररचना (Research Design) तथ्यो के एकत्रीकरण की त्रुटियो को कम करके मानवीय श्रम एव धन की बचत करती है। आज भी विज्ञान के इतिहास मे ऐसे अनेको उदाहरण देखे जा सकते हैं जो पहले महत्त्वपूर्ण थे, लेकिन अब उनका कोई महत्त्व नहीं रहा है। यद्यपि समाजशास्त्रियो को अपने प्रयोग करने के लिए प्रयोगशालाओं का अभाव रहा है, फिर भी समस्या अभिवृत्तियो के रूपों को अलग करने के लिए इतनी महत्वपूर्ण नही है।

कोई भी सामाजिक अनुसन्धान सामान्यत बिना किसी उद्देश्य के नहीं किया जाता। इस उद्देश्य का स्पष्टीकरण एव विकास शोध के दौरान निश्चित नहीं होता, बल्कि उससे पहले ही निर्धारित कर लिया जाता है। अनुसन्धान के लक्ष्य के आधार पर अध्ययन विषय के विभिन्न पक्षो को उद्घाटित करने के लिए पहले से ही बनाई गई योजना की रूपरेखा (Synopsis) को ही सामान्यत अनुसन्धान प्ररचना कहा जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उद्देश्य की प्राप्ति के पूर्व ही उद्देश्य का निर्धारण करके अनुसन्धान की जो रूपरेखा तैयार कर ली जाती है, उसी को अनुसन्धान प्ररचना कहा जाता है। जब यह अनुसन्धान कार्य किसी सामाजिक घटना से सम्बन्धित होता है तो वह सामाजिक अनुसन्धान प्ररचना कही जाती है, अत यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक शोध मे अनेक प्रकार होते हैं और शोधकर्ता अपने

उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए सर्वाधिक उपयुक्त समझकर इनमे से किसी एक को चुन लेता है। यह शोध की प्रकृति एव अनुसन्धानकर्त्ता के लक्ष्यो पर निर्भर करता है कि वह किस प्रकार की अनुसन्धान प्ररचना का प्रयोग कर रहा है।

स्पष्ट है कि प्रत्येक अनुसन्धान को क्रमबद्ध एव प्रभावपूर्ण ढग से न्यूनतम प्रयासो, समय एव लागत के साथ सचालित करने हेतु प्ररचना का निर्माण आवश्यक है। यद्यपि यह सत्य है कि सामाजिक अनुसन्धान मे किसी भी ढग द्वारा अनिश्चितता की स्थिति को पूरी तरह समाप्त नही किया जा सकता है, किन्तु फिर भी व्यवस्थित रूप से वैज्ञानिक ढग का प्रयोग करते हुए अनिश्चितता के उन तत्त्वो को कम किया जा सकता है जो सूचना या जानकारी की कमी के कारण पैदा होते हैं। वास्तव म जब हम अध्ययन की जाने वाली समस्या का प्रतिपादन करते हैं तभी हम सूचना के उन प्रकारो का विशिष्ट विवरण भी प्रस्तुत कर देते हैं, जो हमे यह आश्वासन देते हैं कि प्रस्तावित प्रश्नो के उत्तर प्रदान करने के लिए इच्छित एव आवश्यक प्रमाण उपलब्ध हो जाएँगे, जबकि अनुसन्धान प्ररचना का निर्माण करते हुए हम आवश्यक एव इच्छित प्रमाणो के सग्रह मे त्रुटियो से यथासम्भव बचना तथा प्रयासो समय एव धन को कम करना चाहते हैं।[1] वस्तुत अनुसन्धान की प्रारम्भिक स्थिति मे अनुसन्धान प्ररचना का निर्माण प्रस्तावित अध्ययन की उपयुक्तता को स्पष्ट करता है तथा ढग सम्बन्धी प्रमुख समस्याओ के समाधान मे सहायता पहुँचाता है।[2]

अनुसन्धान प्ररचना का अर्थ एवं परिभाषाएँ
(Meaning and Definitions of Research Design)

अन्वेषण (Inquiry) प्रारम्भ करने से पूर्व हम प्रत्येक अनुसन्धान समस्या के विषय मे उचित रूप से सोच-विचार करने के पश्चात् यह निर्णय ले लें कि हमे किन ढगो एव कार्यविधियो (Procedures) का प्रयोग करते हुए कार्य करना है तो नियन्त्रण को लागू करने की आशा बढ जाती है। अनुसन्धान व प्ररचना निर्णय की वह प्रक्रिया है जो उन परिस्थितियो के पूर्व किए जाते हैं जिनमे ये निर्णय कार्य रूप मे लाए जाते हैं। अनेक सामाजिक वैज्ञानिको ने अनुसन्धान प्ररचना को परिभाषित किया है। यहाँ कुछ परिभाषाओ को हम देख सकते हैं।

सेलिज जहोदा, ड्यूश एव कुक (Selltiz, Jahoda, Dewtch & Cook) ने अपनी पुस्तक 'रिसर्च मेथडस इन सोशल रिलेशन्स' मे अनुसन्धान प्ररचना को परिभाषित करते हुए लिखा है कि 'एक अनुसन्धान प्ररचना आँकडो के एकत्रीकरण एव विश्लेषण के लिए उन दशाओ का प्रबन्ध करती है जो अनुसन्धान के उद्देश्यो की सगतता को कार्यरीतियों म आर्थिक नियन्त्रण के साथ सम्मिलित करने का उद्देश्य रखती है।[3]

1 *Selltiz Jahoda, Dewtch and Cook* Research Methods in Social Relations, 1958, p 48

2 *Alfred J Kahn* The Design of Research, p 48

3 *Selltiz, Jahoda & Others* op cit, p 50

आर. एल ऐकॉफ (R L Ackoff) ने अपनी पुस्तक का नाम ही 'दि डिजाइन ऑफ सोशल रिसर्च' रखा है। आपके अनुसार "प्ररचित करना नियोजित करना है, अर्थात् प्ररचना (Design) उस परिस्थिति के उत्पन्न होने से पूर्व निर्णय लेने की प्रक्रिया है जिसमे निर्णय को लागू किया जाना है। यह एक सम्भावित स्थिति को नियन्त्रण मे लाने की दिशा मे एक पूर्व आशा (Anticipation) की प्रक्रिया है।"[1]

सेनफोर्ड लेबोविज एवं रॉबर्ट हैगडार्न ने भी 'इन्ट्रोडक्शन टू सोशल रिसर्च' मे इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि "एक अनुसन्धान प्ररचना उस तार्किक ढग को प्रस्तुत करती है, जिसमे व्यक्तियों एव अन्य इकाइयो की तुलना एव विश्लेषण किया जाता है। यह आँकडो के लिए विवेचन का आधार है। प्ररचना का उद्देश्य ऐसी तुलना का आश्वासन दिलाना है जो विकल्पीय विवेचनो से प्रभावित न हो।"[2]

आल्फेड जे. काह्न ने भी इसकी विवेचना करते हुए 'दि डिजाइन ऑफ रिसर्च' के नाम से लिखे एक लेख मे लिखा है कि "अनुसन्धान प्ररचना की सर्वोत्तम परिभाषा अध्ययन की तार्किक युक्ति के रूप मे की जाती है। यह एक प्रश्न का उत्तर देने, परिस्थिति का वर्णन करने, अथवा एक परिकल्पना का परीक्षण करने मे सम्बन्धित है। दूसरे शब्दो मे यह उस तर्कयुक्तता से सम्बन्धित है जिसके द्वारा कार्यविधियाँ (Procedures), जिनमे आँकडो का सग्रह एव विश्लेषण दोनों सम्मिलित हैं के एक विशिष्ट समूह से एक अध्ययन की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति की आशा की जाती है।"[3]

एफ एन. कर्लिगर ने भी 'फाउन्डेशन्स ऑफ बिहैवरीयल रिसर्च' मे लिखा है कि "अनुसन्धान प्ररचना अन्वेषण की योजना, सरचना (Structure) एव एक रणनीति (Strategy) है जिसकी रचना इस प्रकार की जाती है कि अनुसन्धान प्रश्नो के उत्तर प्राप्त हो सकें तथा विविधनाओ (Variance) को नियन्त्रित किया जा सके। यह प्ररचना या योजना अनुसन्धान की सम्पूर्ण रूपरेखा अथवा कार्यक्रम है, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक चीज की रूपरेखा सम्मिलित होती है जो अनुसन्धानकर्त्ता उपकल्पनाओ के निर्माण एव उनके परिचालनात्मक अभिप्रायों से लेकर आँकडो के अन्तिम विश्लेषण तक करता है।'

इस प्रकार उपरोक्त पारिभाषिक विश्लेषण के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अनुसन्धान प्ररचना एक एसी योजना (Plan) या रूपरेखा है जो समस्या के प्रतिपादन से लेकर अनुसन्धान प्रतिवेदन (Research Report) के अन्तिम चरण तक के विषय मे भली-भाँति सोच-समझकर तथा समस्त उपलब्ध विकल्पो पर ध्यान देकर इस प्रकार से निर्णय लेतो है कि न्यूनतम प्रयासो (Efforts),

1 *R L Ackoff*. The Design of Social Research, p 5
2 *Sanford Labobitz & Robert Hagdorn* Introduction to Social Research, p. 36
3 *A J Kanh*: op cit., p 58
4 *F N Kerlinger*: Foundations & Behavioural Research, p 275

समय (Time) एवं लागत (Money) के व्यय से अधिकतम अनुसन्धान उद्देश्यो को प्राप्त किया जा सके।

अनुसन्धान प्ररचना की विशेषताएँ
(Characteristics of Research Design)

अनुसन्धान प्ररचना के अर्थ एवं परिभाषाओं को समझ लेने के बाद अनुसन्धान प्ररचना की कुछ अनिवार्य एवं आधारभूत विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है। अनुसन्धान प्ररचना की मूलभूत विशेषताएँ निम्नांकित होती है—

1 अनुसन्धान प्ररचना का सम्बन्ध सामाजिक अनुसन्धान से होता है।
2 अनुसन्धान प्ररचना अनुसन्धानकर्त्ता को अनुसन्धान की एक निश्चित दिशा का बोध कराती है। इस अर्थ में अनुसन्धान प्ररचनाएँ एक प्रकार की दिग्दर्शक हैं।
3 अनुसन्धान प्ररचना की मुख्य विशेषता सामाजिक घटनाओं की जटिल प्रकृति को सरल रूप में प्रस्तुत करना है।
4 अनुसन्धान प्ररचना अनुसन्धान की वह रूपरेखा है जिसकी रचना अनुसन्धान कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व की जाती है।
5 अनुसन्धान प्ररचना की एक और विशेषता अनुसन्धान प्रक्रिया के दौरान आगे आने वाली परिस्थितियों को नियन्त्रित करना एवं अनुसन्धान कार्य को सरल बनाना है।
6. अनुसन्धान प्ररचना न केवल मानवीय श्रम को कम करती है बल्कि वह समय एवं लागत को भी कम करती है।
7 अनुसन्धान प्ररचना अनुसन्धान के दौरान आने वाली कठिनाइयों को भी कम करने में अनुसन्धानकर्त्ता की सहायता करती है।
8 अनुसन्धान प्ररचना की एक और विशेषता यह है कि यह अनुसन्धान के अधिकतम उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता करती है।
9 अनुसन्धान प्ररचना का चयन सामाजिक अनुसन्धान की समस्या एवं उपकल्पना की प्रकृति के आधार पर किया जाता है।
10 अनुसन्धान प्ररचना समस्या की प्रतिस्थापना से लेकर अनुसन्धान प्रतिवेदन के अन्तिम चरण तक के विषय में सभी उपलब्ध विकल्पों के बारे में व्यवस्थित रूप में श्रेष्ठ निर्णय लेने में सहायता करती है।

अनुसन्धान प्ररचना की आवश्यकताएँ एवं चरण
(Necessities & Steps of Research Design)

अनुसन्धान प्ररचना का निर्माण एक सरल कार्य नहीं है, अपितु उसके लिए अनुसन्धानकर्त्ता के पास पर्याप्त ज्ञान एवं अनुभव होना चाहिए। किसी भी अनुसन्धान प्ररचना के निर्माण के लिए कुछ आवश्यकताएँ अनिवार्य होती हैं। मोटे तौर पर इन आवश्यकताओं को हम अग्रलिखित वर्गों में रख सकते हैं—

1 अनुसन्धान समस्या का स्पष्ट एवं विस्तृत ज्ञान अनुसन्धानकर्त्ता को होना चाहिए।
2. अनुसन्धानकर्त्ता को अध्ययन के विशिष्ट उद्देश्यों की भी स्पष्ट जानकारी होनी चाहिए।
3 अनुसन्धानकर्त्ता को उन ढगो एव कार्यविधियो की भी स्पष्ट एव विस्तृत जानकारी होनी चाहिए जिनका प्रयोग करते हुए अनुसन्धान के लिए आवश्यक आंकडो के संग्रह के मार्ग मे आने वाली विभिन्न समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया जाएगा।
4 आंकडो के संग्रह के लिए विस्तृत एव सुनियोजित योजना का उपलब्ध होना भी अत्यावश्यक है।
5 आंकडो के विश्लेषण के लिए भी उपयुक्त योजना का प्राप्त होना आवश्यक है।

इस प्रकार अनुसन्धान प्ररचना की रचना करते समय अनेक चरणो (Steps) से गुजरना होता है। एक प्रकार से ये चरण ही अनुसन्धान के अनिवार्य अग है। इन चरणो की सहायता स ही हम एक अनुसन्धान प्ररचना का निर्माण कर सकते हैं। सक्षेप म अनुसन्धान प्ररचना क महत्त्वपूर्ण चरणो को क्रमश इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

1 अनुसन्धान प्ररचना म सर्वप्रथम अध्ययन समस्या (Study Problem) का प्रतिपादन किया जाना चाहिए।

2 वर्तमान मे जो अनुसन्धान कार्य किया जा रहा है उसको अनुसन्धान समस्या से स्पष्ट रूप से सम्बन्धित करना अनुसन्धान प्ररचना का दूसरा मुख्य चरण है।

3 वर्तमान म हमे जो अनुसन्धान कार्य करना है उसकी सीमाओ (Boundries) को स्पष्ट रूप स निर्धारित करना।

4 अनुसन्धान प्ररचना का चौथा चरण अनुसन्धान क विभिन्न क्षेत्रो का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करने का है।

5 अनुसन्धान प्ररचना क इस चरण मे हम अनुसन्धान परिणामो के प्रयोग के विषय म निर्णय लते हैं।

6 इसके पश्चात् हम अवलोकन, विवरण तथा परिमापन के लिए उपयुक्त चरो का चयन करना चाहिए तथा इन्हें स्पष्ट रूप मे परिभाषित करना चाहिए।

7 तदुपरान्त अध्ययन क्षेत्र (Study Area) एव समग्र (Universe) का उचित चयन एव इनकी परिभाषा प्रस्तुत करनी चाहिए।

8 इसक बाद अध्ययन क प्रकार एव विषय क्षेत्र क विषय मे विस्तृत निर्णय लेन चाहिए।

9 अनुसन्धान प्ररचना के आगामी चरण म हमे अपन अनुसन्धान क लिए उपयुक्त विधियां (Methods) एव प्रविधियां (Techniques) का चयन करना चाहिए।

10 इसके बाद अध्ययन में निहित मान्यताओं (Assumptions) एवं उपकल्पनाओं (Hypothesis) का स्पष्ट उल्लेख करना चाहिए।

11 बाद में उपकल्पनाओं की परिचालनात्मक परिभाषा (Operational Definition) करते हुए उसे इस रूप में प्रस्तुत करना चाहिए कि वह परीक्षण के योग्य हो।

12 अनुसन्धान प्रारचना के आगामी चरण के रूप में हमें अनुसन्धान के दौरान प्रयुक्त किए जाने वाले प्रलेखों (Documents), रिपोर्टों (Reports) एवं अन्य प्रपत्रों का सिंहावलोकन करना चाहिए।

13 तदुपरान्त अध्ययन के प्रभावपूर्ण उपकरणों का चयन एवं इनका निर्माण करना तथा इनका व्यवस्थित पूर्व-परीक्षण (Pre-testing) करना।

14 आँकड़ो के एकत्रीकरण का सम्पादन (Editing) किस प्रकार किया जाएगा इसकी विस्तृत व्यवस्था का उल्लेख करना।

15 आँकड़ो के सम्पादन की व्यवस्था के उल्लेख के बाद उनके वर्गीकरण (Classification) हेतु उचित श्रेणियो (Categories) का चयन किया जाना एवं उनकी परिभाषा करना।

16 आँकड़ो के संकेतीकरण (Codification) के लिए समुचित व्यवस्था का विवरण तैयार करना।

17 आँकड़ो को प्रयोग योग्य बनाने हेतु सम्पूर्ण प्रक्रिया की समुचित व्यवस्था का विकास करना।

18 आँकड़ो के गुणात्मक (Qualitative) एवं सख्यात्मक (Quantitative) विश्लेषण के लिए विस्तृत रूप रेखा तैयार करना।

19 इसके पश्चात् अन्य उपलब्ध परिणामो की पृष्ठभूमि में समुचित विवेचन की कार्यविधियों का उल्लेख करना।

20 अनुसन्धान प्रारचना के इस चरण में हम अनुसन्धान प्रतिवेदन (Research Report) के प्रस्तुतीकरण के बारे में निर्णय लेते हैं।

21 अनुसन्धान प्रारचना का यह चरण सम्पूर्ण अनुसन्धान प्रक्रिया में लगने वाला समय धन एवं मानवीय श्रम को अनुमान लगाने का है। इसी दौरान हम प्रशासकीय व्यवस्था की स्थापना एवं विकास का अनुमान भी लगाते हैं।

22 यदि आवश्यक हो तो पूर्व-परीक्षणों (Pre-tests) एवं पूर्वगामी अध्ययनों (Pilot-Studies) का प्रावधान करना।

23 अनुसन्धान प्रारचना के इस चरण में हम कार्यविधियों (Procedures) से सम्बन्धित सम्पूर्ण प्रक्रिया, नियमो, उपनियमों को विस्तारपूर्वक तैयार करते हैं।

24 अनुसन्धान के इस चरण में हम कर्मचारियों, अध्ययनकर्त्ताओं के प्रशिक्षण के ढंग एवं कार्य विधियों का उल्लेख करते हैं।

25 अनुसन्धान प्रारचना के इस अन्तिम चरण में हम यह प्रावधान करते

हैं कि समस्त कर्मचारी एवं अध्ययन अनुसन्धानकर्त्ता एक सामंजस्य की स्थिति को बनाए रखते हुए कार्य के नियमों, कार्यविधियों की पालना करते हुए किस प्रकार सन्तोषप्रद ढंग से कार्य को पूर्ण करेंगे।

अनुसन्धान प्ररचना के उद्देश्य
(Objects of Research Design)

सामान्यतः किसी भी अनुसन्धान में तीन प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इनमें व्यावहारिक अनुसन्धान समस्या, वैज्ञानिक अथवा बौद्धिक अनुसन्धान समस्या एवं सैद्धान्तिक व्यवस्थाओं को विकसित करने की अनुसन्धान समस्याएँ हो सकती हैं।

व्यावहारिक अनुसन्धान समस्याएँ, समस्याओं के समाधान एवं सामाजिक नीतियों के निर्धारण में सहायता प्रदान करती हैं जबकि वैज्ञानिक एवं बौद्धिक अनुसन्धान का सम्बन्ध मौलिक वस्तुओं से होता है। इसके अलावा कुछ अनुसन्धान ऐसे भी होते हैं जिनका उद्देश्य केवल सैद्धान्तिक व्यवस्थाओं का विकास करना होता है, जिनके आधार पर विचारों का परीक्षण किया जाता है।

लेकिन सामान्यतः अनुसन्धान प्ररचना के दो प्रमुख उद्देश्य होते हैं—

1 अनुसन्धान समस्या के उत्तर प्रदान करना, एवं
2 विविधताओं को नियन्त्रित करना।

पर हमें ध्यान रखना चाहिए कि अनुसन्धान प्ररचना स्वयं इन उद्देश्यों की पूर्ति नहीं करती वरन् ये उद्देश्य अनुसन्धानकर्त्ता द्वारा ही प्राप्त किए जाते हैं। अनुसन्धान प्ररचना अनुसन्धानकर्त्ता की इस बात में अवश्य सहायता करती है कि वह अनुसन्धान प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करले तथा विविध त्रुटियों (Variance Error) का पता लगा सके। यहाँ हम इन्हें थोड़ा विस्तार में समझने का प्रयास करेंगे।

1. अनुसन्धान समस्या के उत्तर प्रदान करना—अनुसन्धान प्ररचना अनुसन्धानकर्त्ता को विभिन्न अनुसन्धान प्रश्नों के उत्तर प्रदान करने में मदद करती है। यह अनुसन्धान प्ररचना यथासम्भव प्रामाणिकता, विषयात्मकता, यथार्थता, निश्चयात्मकता एवं बचत के साथ प्राप्त करने में सहायता पहुँचाती है। ऐसा करने के लिए अनुसन्धान प्ररचना यथासम्भव उन समस्त प्रमाणों को एकत्रित करने का प्रयास करती है जो समस्या से सम्बन्धित हों। अनुसन्धान उपकल्पनाओं के रूप में समस्या को इस तरह प्रस्तुत किया जाता है कि इनका आनुभविक परीक्षण या जाँच सम्भव हो सके। जितनी सम्भावनाएँ परीक्षण की होती हैं, उतनी ही प्रकार की अनुसन्धान प्ररचनाएँ तैयार की जा सकती हैं। इन उपकल्पनाओं के परीक्षण सम्बन्धी परिणाम इस बात पर निर्भर करते हैं कि पर्यवेक्षण करने और परिणाम निकालने के लिए किन ढंगों या प्रविधियों का प्रयोग किया जा रहा है। विश्वसनीय परिणाम प्राप्त करने के लिए चरों के मध्य पाए जाने वाले सम्बन्धों के उपयुक्त परीक्षण हेतु उपयुक्त सन्दर्भ ढाँचे (Framework) की स्थापना की जाती है।

2 विविधताओं को नियन्त्रित करना—अनुसन्धान प्ररचना विविधताओं को नियन्त्रित करने में भी अनुसन्धानकर्त्ता की सहायता करती है। अनुसन्धान के समय विविध त्रुटियों की सम्भावना बनी रहती है। अनुसन्धान प्ररचना में इन विविध त्रुटियों को कम करने के दो प्रमुख ढंग हैं—

(क) अनुसन्धान परिस्थितियों को अधिक से अधिक नियन्त्रित करते हुए परिमापन के कारण उत्पन्न हुई त्रुटियों को यथासम्भव कम कीजिए।

(ख) मापों की विश्वसनीयता को बढ़ाइए।

वस्तुत अनुसन्धान प्ररचना का नियन्त्रण का कार्य तकनीकी है। इस अर्थ में अनुसन्धान प्ररचना एक नियन्त्रणकारी व्यवस्था है। इसके पीछे पाया जाने वाला प्रमुख 'सांख्यिकी सिद्धान्त' (Statistical Principal) यह है कि "क्रमबद्ध विविधताओं को अधिक से अधिक बढ़ाइए, बाह्य क्रमबद्ध विविधिताओं को नियन्त्रित कीजिए तथा विविध त्रुटियों को कम से कम कीजिए।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि मूलत अनुसन्धान प्ररचना के दो प्रमुख मौलिक उद्देश्य हैं और ये दोनों ही उद्देश्य स्वयं प्ररचना के न होकर अनुसन्धानकर्त्ता द्वारा ही प्राप्त किए जाते हैं। अनुसन्धान प्ररचना के प्रथम उद्देश्य में अनुसन्धानकर्त्ता अपने अनुसन्धान के लिए चयनित समस्या से सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करता है और अनुसन्धान प्ररचना उसे ये उत्तर प्रमाणिक, वैषयिक एवं यथार्थ रूप से प्रस्तुत करती है। इसी प्रकार दूसरे उद्देश्य के द्वारा अनुसन्धानकर्त्ता अनुसन्धान के दौरान उपस्थित विविधताओं को नियन्त्रित करता है। यह नियन्त्रण भी उसे अनुसन्धान प्ररचना से प्राप्त होता है।

अनुसन्धान प्ररचना का वर्गीकरण या प्रकार
(Classification or Types of Research Design)

विभिन्न अनुसन्धान प्ररचनाओं को अनेक आधारों पर वर्गीकृत किया गया है। सामान्यत अनुसन्धान का वर्गीकरण दो आधारों पर किया जा सकता है—

1 अध्ययन के उद्देश्य के आधार पर, एवं

2 अध्ययन के उपागम (Approach) के आधार पर।

1 अध्ययन के उद्देश्य के आधार पर (On the basis of the object of the study)—अध्ययन के उद्देश्य के आधार पर अनुसन्धान प्ररचनाओं को पुन. निम्न चार उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

A अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना (Exploratory Research Design)

B विवरणात्मक या निदानात्मक अनुसन्धान प्ररचना (Descriptive or Diagnostic Research Design)

C प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्ररचना (Experimental Research Design)

D मूल्यांकनात्मक अनुसन्धान प्ररचना (Evaluative Research Design)

2 अध्ययन के उपागम के आधार पर (On the basis of the approach of the study)—अध्ययन के उपागम के आधार पर भी अनुसन्धान प्ररचनाओ को पाँच उपवर्गों मे रखा जा सकता है—

A सर्वेक्षणात्मक अनुसन्धान प्ररचना

B क्षेत्र अध्ययन सम्बन्धी अनुसन्धान प्ररचना

C प्रयोग सम्बन्धी अनुसन्धान प्ररचना

D ऐतिहासिक अनुसन्धान प्ररचना

E वैयक्तिक अध्ययन सम्बन्धी अनुसन्धान प्ररचना

लेकिन अनेक समाज वैज्ञानिको ने भी अनुसन्धान प्ररचना को अनेक आधारो पर अनेक प्रकारो मे वर्गीकृत किया है।

क्लेयर सेलिज तथा अन्य ने अपनी कृति 'रिसर्च मेथड्स इन सोशल रिलेशन्स' मे अनुसन्धान प्ररचना का वर्गीकरण प्रमुख रूप से तीन श्रेणियो मे किया है[1]—

1. प्रतिपादनात्मक अथवा अन्वेषणात्मक अध्ययन (*Formulative or* Exploratory Studies)—इसका मूल उद्देश्य अधिक सूक्ष्मता के साथ अध्ययन करने अथवा उपकल्पनाओ का विकास करने अथवा अग्रिम अनुसन्धान के लिए प्राथमिकताओ (Priorities) की स्थापना करना होता है।

2 विवरणात्मक अथवा निदानात्मक अध्ययन (Descriptive or Diagnostic Studies)—इस प्रकार की प्ररचनाओं का उद्देश्य एक दी हुई परिस्थिति की विशेषताओ का वर्णन करना होता है।

3 प्रयोगात्मक अध्ययन (Experimental Studies)—इस प्रकार की प्ररचनाओ का उद्देश्य उपकल्पनाओ का परीक्षण करना होना है।

आल्फ्रेड जे कान्ह ने भी प्ररचना स्तर (Level of Design) के आधार पर चार प्रकार की अनुसन्धान प्ररचनाओ का उल्लेख किया है[2]—

1 दैवीय अवलोकन पूर्व-अनुसन्धान पक्ष (Random Observation Pre-Research Phase)

2 अन्वेषणात्मक अथवा प्रतिपादनात्मक अध्ययन

3 निदानात्मक अथवा विवरणात्मक अध्ययन

4 प्रायोगात्मक प्ररचनाएँ।

सैन्फोर्ड लेबोविज एव रोबर्ट हैगडोर्न के अनुसार अनुसन्धान प्ररचनाओ को तीन वर्गों में रखा जा सकता है[3]—

1 वैयक्तिक अध्ययन (Case Studies)

2 सर्वेक्षण प्ररचनाएँ (Survey Designs)

1 *K Selltiz and Others* op cit p 49–142
2 *Alfred J Kanh* op c t, p 48 73
3 *S Lobobitz & R. Hegdorn* op cit, p 36–43

A. सह-सम्बन्धात्मक अध्ययन (Correlational Study)

B पैनल प्ररचना (Panel Design)

3 प्रयोगात्मक प्ररचना (Experimental Design)

हम यहाँ किसी एक विद्वान् के वर्गीकरण को न प्रस्तुत कर इनके आधार पर प्रमुख प्ररचनाओं की विस्तार से व्याख्या करेंगे। हमारे अनुसार प्रमुखत अनुसन्धान प्ररचनाओं को तीन प्रकारों मे विभाजित किया जा सकता है, वे हैं—

1 प्रतिपादनात्मक अथवा अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना।

2 विवरणात्मक अथवा निदानात्मक अनुसन्धान प्ररचना।

3 प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्ररचना।

इन अनुसन्धान प्ररचनाओं के बारे मे यह कहा जा सकता है कि ये खोज की तीन सीढ़ियाँ हैं। अन्वेषणात्मक अध्ययन किसी विषय मे खोज की प्रारम्भिक अवस्था होती है। इस प्रकार के अध्ययन के द्वारा विषय मे परिचय प्राप्त किया जाता है तथा नवीन अवधारणाओं (Concepts) एवं उपकल्पनाओं (Hypothesis) का निर्माण किया जाता है। इस खोज की अगली सीढ़ी है वर्णनात्मक अध्ययन। इन अध्ययनों के द्वारा किसी घटना, परिस्थिति, सगठन आदि के लक्षणों का विशुद्ध (Pure) अध्ययन किया जाता है। यह भी कहा जा सकता है कि इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए वर्णनात्मक उपकल्पनाओं का परीक्षण किया जाता है। खोज की अन्तिम सीढ़ी प्रयोगात्मक अध्ययनों की है। इसे 'कार्य कारण सम्बन्धी अध्ययन' भी कहा जाता है। इसके द्वारा किसी कार्य (जैसे मनोबल (Moral) की कमी) के कारणों का पता लगाने का प्रयास किया जाता है। इस हेतु इस लक्ष्य से बनाई गई उपकल्पनाओं का परीक्षण किया जाता है।

सामान्यतया कोई एक अध्ययन इनमे से किसी एक प्रकार का होता है अर्थात् उसका लक्ष्य मुख्यतया अन्वेषणात्मक, विवरणात्मक या प्रयोगात्मक सम्बन्ध का पता लगाना होता है। किन्तु किसी अध्ययन म इनका मिश्रण भी हो सकता है। प्रत्यक अध्ययन आगे आने वाले अध्ययनों का मार्ग प्रशस्त करता है। जैसे यदि हम किसी राजनीतिक दल का अध्ययन कर रहे हैं, तो यह पता लगाएँगे कि उसके सदस्यों की सख्या कितनी है, उसकी नीतियाँ (Policies) क्या हैं, उसका आंतरिक सगठन किस प्रकार का है, पिछले चुनाव मे उसकी क्या स्थिति थी, आदि। इस अन्वेषणात्मक अध्ययन के दौरान हम अनेक बातों के बारे मे सामान्य जानकारी प्राप्त हो जाती है। इस सामान्य जानकारी के आधार पर हम उपकल्पनाओं (Hypothesis) का निर्माण करेंगे। जैसे एक उपकल्पना यह हो सकती है कि "इस दल को अनुसूचित जाति (Scheduled Caste) का समर्थन प्राप्त है।"

उपरोक्त उपकल्पना की परीक्षा हम विवरणात्मक अध्ययन मे करेंगे। यहाँ हम 'समर्थन' की सक्रियात्मक या परिचालनात्मक (Operational) परिभाषा करेंगे। समर्थन की परिचालनात्मक परिभाषा यहाँ 'वोट देना' हो सकती है अर्थात् हम

यह मान लेगें कि जिसने "जिस दल को वोट दिया था वह उस दल का समर्थन करता है।" वोट सामान्यत गुप्त होते हैं। अत जब हम यह जानना चाहें कि आपने किसको वोट दिया था तो हमे उनसे पूछना पडेगा। इस प्रकार यह अध्ययन हमारी विवरणात्मक उपकल्पना का परीक्षण कर सकेगा। साथ ही यह कुछ नई, अधिक महत्त्वपूर्ण उपकल्पनाओं को जन्म दे सकता है। सम्भव है हम यह जानना चाहे कि इस दल के इतने चुनाव क्षेत्रों मे जीतने का क्या कारण है ? स्पष्ट है अनेक कारण हो सकते हैं। यह पता लगाने के लिए कि महत्त्वपूर्ण कारण कौन से थे ?

इन महत्त्वपूर्ण कारणो का पता लगाने के लिए हमे एक नई विशेष प्रकार की प्ररचना का निर्माण कर अध्ययन करना होगा। यह प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्ररचना द्वारा होगा। हम अपने सामान्य ज्ञान के आधार पर यह अनुमान लगा सकते हैं कि कौन-कौन से महत्त्वपूर्ण कारक हैं। जैसे—सुदृढ आर्थिक स्थिति महत्त्वपूर्ण कारण था। यह कार्य-कारण सम्बन्धी उपकल्पना हुई। इसके परीक्षण के लिए हम एक ढग प्रयुक्त कर सकते हैं कि दो प्रकार के चुनाव क्षेत्रों में दल का परिणाम देखें—एक ऐसा जहाँ काफी पैसा खर्च किया गया हो एवं दूसरा जहाँ कम पैसा खर्च किया गया हो। शेष दूसरे दृष्टिकोण से ये क्षेत्र एक जैसे होने चाहिए। यदि हम अधिक पैसा खर्च करने वाले क्षेत्र मे दल को अधिक सफलता मिले तो हम कह सकते हैं कि सुदृढ आर्थिक स्थिति सफलता का एक कारण है। इस प्रकार विभिन्न प्रकार के अध्ययन विभिन्न लक्ष्यो की पूर्ति करते हैं। जैसे-जैसे हमारा ज्ञान बढता जाता है हम अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्नो का उत्तर देने वाली किन्तु अधिक जटिल अनुसन्धान प्ररचना बनाने योग्य हो जाते हैं।

यहाँ हम इन विभिन्न अनुसन्धान प्ररचनाओं का विस्तार मे उल्लेख करेंगे—

(1) प्रतिपादनात्मक अथवा अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना
(Formulative or Exploratory Research Design)

प्रतिपादनात्मक अथवा अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना का सम्बन्ध नवीन तथ्यों की खोज से है। इस प्ररचना के द्वारा अज्ञात तथ्यो की खोज अथवा सीमित ज्ञान के बारे मे विस्तृत ज्ञान की खोज की जाती है। इस प्रकार इसका लक्ष्य अज्ञात तथ्यो की खोज एव मानवीय ज्ञान मे वृद्धि करना है। अनेक अन्वेषणात्मक अध्ययनो का उद्देश्य उपकल्पनाओं को विकसित करने और समस्याओं के निर्माण मे सक्षिप्त अनुसन्धानो पर जोर देना है। इनके अतिरिक्त इन अध्ययनो के और भी प्रकार हो सकते हैं। उदाहरण के लिए अनुसन्धानकर्त्ता मे घटना के अध्ययन की जागरूकता पैदा होती है जो अवधारणाओं की व्याख्या करते हैं, और उसके साथ-साथ अनुसन्धानो को प्रधानता प्रदान करते हैं। इनका उद्देश्य किसी सामाजिक घटना के अन्तर्निहित कारणो को ढूँढ निकालना होता है। इन कारणों के ढूँढ

निकालने की सम्बद्ध रूपरेखा को 'अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना' कहा जाता है।

इस अनुसन्धान प्ररचना मे अनुसन्धान कार्य की रूपरेखा इस प्रकार प्रस्तुत की जाती है कि घटना की प्रकृति एव प्रक्रियाओ के वास्तविकताओ की खोज की जा सके। सामाजिक विज्ञान के लिए किसी क्षेत्र मे जहाँ अनुसन्धान कार्य द्वारा *अर्जित ज्ञान सीमित है साथ ही सिद्धान्त का विकास भी परीक्षात्मक अनुसन्धान* के निर्देशन की दृष्टि मे सक्षिप्त है, वहाँ उपकल्पना का निर्माण अन्वेषणात्मक अध्ययन के आधार पर किया जाता है।

सेल्टिज जहोदा एव अन्य ने लिखा है कि 'अन्वेषणात्मक अध्ययन ऐसे अनुभव की प्राप्ति के लिए आवश्यक हैं जो अधिक निश्चित अध्ययन के लिए उपकल्पनाओ के निरूपण मे सहायक होते है।"[1] इस प्रकार इन अन्वेषणात्मक अध्ययनो के माध्यम से अनुसन्धानकर्त्ता के समक्ष कार्य-कारण सम्ब ध भी स्पष्ट हो जाते हैं। उदाहरण के लिए किसी विशेष सामाजिक परिस्थिति मे अपराध एव अपराधियो की पारिवारिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना है तो उसके लिए हम सर्वप्रथम उन कारको का पता लगाना होगा जो कि अपराध को जन्म देते हैं। अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना इन्ही कारणो के अन्वेषण की एक योजना बन सकती है।

अन्वेषणात्मक अनुसधान प्ररचना के उद्देश्य
(Objects of Exploratory Research Designs)

अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना के अनेक उद्देश्य प्रकार्य या प्रयोजन हो सकते हैं। प्रमुख रूप से एक अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना के चार उद्देश्य हो सकते हैं जो निम्नांकित है—

1 अनुसन्धान विषय की जानकारी करना—अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना का एक मुख्य उद्देश्य या प्रकार्य (Function) यह हो सकता है कि यदि हम किसी ऐसे विषय के बारे म अनुसन्धान करना चाहते हैं जिस पर पहले अनुसन्धान नही हुआ है तो उस विषय या समस्या का परिचय या जानकारी प्राप्त करनी होगी। उदाहरण के लिए जैसे हम किसी सस्था का अध्ययन करना चाहे तो पहले हमे यह पता लगाना पडेगा कि यह सस्था कब, किसने व क्यो स्थापित की? इसकी स्थापना के पीछे कौन से कारण थे? इसका आय-व्यय क्या है? आदि। इस प्रकार हमे सबसे पहले अनुसन्धान विषय की जानकारी करनी होती है।

2 अनुसन्धान की सम्भावनाओं एव क्षेत्र का निर्णय—अन्वेषणात्मक **अनुसन्धान प्ररचना** का दूसरा उद्देश्य है अनुसन्धान की सम्भावनाओ का पता **लगाना**। इस प्रकार का अध्ययन वर्णनात्मक अनुसन्धान प्ररचना का मार्ग प्रशस्त

करता है। बडे एव अधिक धन वाले अध्ययनो से पहले हमे इस बात की जानकारी प्राप्त हो जानी चाहिए कि हमारा मार्ग सही है। अन्यथा हो सकता है, हम व्यर्थ ही समय एव धन का व्यर्थ व्यय कर बैठें ? इसी प्रकार सामाजिक अनुसन्धान मे हम अन्वेषणात्मक प्ररचना से यह पता लगाते हैं कि किसी विषय-विशेष मे अनुसन्धान की क्या वास्तविक सम्भावनाएँ हैं। जैसे यदि हम किसी सरकारी सगठन का अध्ययन करना चाहते हैं तो सम्भव है वहाँ यह कठिनाई हो कि उसके तथ्य एव आँकडे सरकार गोपनीय मानती हो। यदि हम अन्वेषणात्मक अध्ययन करें तो यह बात हमे पहले ही ज्ञात हो जाएगी कि हमे सरकार से उसकी अनुमति प्राप्त हो जाएगी यह हम उस विषय को छोड देंगे। इसी प्रकार अन्वेषणात्मक प्ररचना से हम विषय का क्षेत्र निर्धारण भी ठीक प्रकार कर सकेंगे।

3 अवधारणाओं का स्पष्टीकरण एव नवीन अवधारणाओं की खोज—अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचनाओ का एक और उद्देश्य हो सकता है अवधारणाओ का स्पष्टीकरण एव नवीन अवधारणाओ की खोज। वस्तुत किसी भी वैज्ञानिक अध्ययन म यदि हमारी अवधारणाएँ स्पष्ट न हो तो हमारे अनुसन्धान कार्य का मूल्य बहुत कम हो जाने की सम्भावना है। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि हम यह भी नही जानते कि हम किसका अध्ययन कर रहे हैं। जैसे यदि हम किसी सस्था की कार्यकुशलता का अध्ययन कर रहे हैं तो हमारा अध्ययन तब तक पूर्ण नही होगा जब तक कि हम यह भी न जानें कि 'कार्यकुशलता' की अवधारणा क्या है ? एव यह किस प्रकार 'लाभ' व अन्य समानार्थक अवधारणाओ से भिन्न है ?

इसके अलावा अवधारणाएँ सैद्धान्तिक सरचना (Theoritical Structure) की आधार होती हैं इसलिए नई सैद्धान्तिक सरचना के लिए कभी-कभी नवीन अवधारणाओ की रचना की जाती है। मार्क्स का 'वर्ग सघर्ष', वेबर का आदर्श प्रारूप' (Ideal Type) आदि इसी प्रकार की नवीन अवधारणाएँ है। यहाँ अनुसन्धानकर्ता किसी पुरानी अवधारणा की नवीन परिभाषा भी कर सकता है, जैसे कार्ल मार्क्स ने 'वर्ग' (Class) के सन्दर्भ मे की। इस प्रकार दोनो ही आधारो मे अवधारणाओं का उपयोग अन्वेषणात्मक प्ररचना से बढ जाता है।

4 उपकल्पनाओ का निर्माण—अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना का एक और उद्देश्य उपकल्पनाओ का निर्माण है। य उपकल्पनाएँ अनुसन्धान मे अत्यन्त महत्वपूर्ण होती हैं। वर्णनात्मक अध्ययनो म भी इन उपकल्पनाओ का अत्यन्त महत्व होता है। किसी भी वैज्ञानिक अध्ययन का उद्देश्य होता है सिद्धान्तो का परीक्षण। सिद्धान्त उपकल्पनाओ के तन्त्र होते है। इसलिए क्रियात्मक दृष्टिकोण से हमारा उद्देश्य उपकल्पनाओ का परीक्षण हो जाता है। इस प्रकार उपकल्पनाएँ वैज्ञानिक अध्ययन को दिशा देती है। ये बताती हैं कि हमे किन लक्षणो एव सम्बन्धो का अध्ययन करना है। इस प्रकार विषय या समस्या से परिचय प्राप्त

करके, उनका निरूपण करके, तथा अवधारणाओं के स्पष्टीकरण एवं खोज द्वारा अन्वेषणात्मक अध्ययन नवीन उपकल्पनाएँ बनाने में सहायक होता है।

इसी प्रकार इन मुख्य उद्देश्यों या प्रकार्यों के अतिरिक्त अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना के कुछ उद्देश्य और बनाए जा सकते हैं जैसे--

1 अनुसन्धानकर्त्ता को प्रघटना के बारे में जागरूकता एवं समझ प्रदान करना।
2 भविष्य में आने वाले अनुसन्धान के विषय में प्रधानता या प्रमुखता (Priorities) की स्थापना करना।
3 सामाजिक महत्त्व की समस्याओं की ओर अनुसन्धानकर्ता को प्रेरित करना।
4 समस्या के किस क्षेत्र में अध्ययन को केन्द्रित किया जाए इसका निर्धारण करना। एवं
5 विज्ञान को परम्परागत सीमाओं से मुक्त करके उसके अध्ययन क्षेत्र का विकास करना।

अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना के लिए कुछ आवश्यकताओं या अनिवार्यताओं का होना भी आवश्यक होता है। वस्तुतः अन्वेषणात्मक प्ररचना में सबसे बड़ी कठिनाई समस्या का उपयुक्त चुनाव करने की है। सामान्यतः समस्या का चयन करते समय निम्न बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए—

1 समस्या का सामाजिक महत्त्व
2 समस्या का व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य, एवं
3 विश्वसनीय तथ्यों की प्राप्ति की सम्भावनाएँ।

अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना की विधियाँ (Methods of Exploratory Research Designs)

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि अनुसन्धान का अन्वेषणात्मक प्रारूप प्राथमिक दिशाएँ प्रदान करता है। इसका महत्त्व इसलिए भी बढ़ जाता है, क्योंकि प्रारम्भिक दृष्टिकोण निश्चित करने में भी यह सहयोगी सिद्ध होता है। जब तक किसी अनुसन्धानकर्त्ता को समस्या की सुस्पष्ट व्याख्या उसके सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्यों तथा प्रयोगात्मक पक्षों का ज्ञान नहीं होगा तब तक वह अनुसन्धान करने में समर्थ नहीं हो पाएगा। अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना की कुछ विधियाँ/पद्धतियाँ होती हैं जो प्रमुखतः निम्न हैं—

1 सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण एवं सिंहावलोकन।
2 आनुभविक व्यक्तियों से सर्वेक्षण।
3 एकल विषय अध्ययन (Case Studies)।

इन विधियों को हम थोड़ा विस्तार से देखेंगे—

1 सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण एवं सिंहावलोकन

किसी भी अनुसन्धान कार्य को प्रारम्भ करते समय या उसकी समालोचना

करते समय हमे यह ध्यान रखना चाहिए कि हमे शून्य से प्रारम्भ नही करना है। आज शायद ही कोई ऐसा विषय हो जिस पर कुछ भी काम न हुआ हो। अत अनुसन्धानकर्त्ता को सबसे पहले यह पता लगाना चाहिए कि उस विषय पर क्या ज्ञान प्राप्त हो चुका है। अत हमे उस विषय पर उपलब्ध साहित्य का सर्वेक्षण एव सिंहावलोकन करना चाहिए।

इस सर्वेक्षण व सिंहावलोकन के परिणामस्वरूप उसे यह पता चल जाएगा कि उस विषय से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त कौन-कौन से हैं? इन सिद्धान्तो के प्रकाश में उसे बहुत-सी नवीन उपकल्पनाएँ भी सूझ जाएँगी। पिछली उपकल्पनाओ को एकत्र करके अनुसन्धान के सन्दर्भ मे उनकी उपयोगिता को देखकर भी नवीन उपकल्पनाएँ बनाई जा सकती हैं।

इसी प्रकार सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण एव सिंहावलोकन के लिए वर्तमान मे अनेक उपकरण भी प्रचलित हैं, जैसे—

A सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography),

B लेखो के सारांश (Summary),

C अनुक्रमणिका (Index)।

वर्तमान मे लगभग प्रत्येक विषय की विभिन्न शाखाओ-उपशाखाओ मे सम्बन्धित साहित्य की सूचियाँ, अनुक्रमणिका, सन्दर्भ ग्रन्थ-सूचियाँ आदि पुस्तकालयो मे उपलब्ध हो जाती हैं। अत इसकी सहायता से अनुसन्धानकर्त्ता को अपने विषय के लगभग कुल प्रकाशित साहित्य के विषय मे पता लग जाता है। फिर टिप्पणियो (References) की सहायता से वह पढने योग्य पुस्तकें और लेख इनमे से चुन सकता है। दूसरा सहायक उपकरण है सारांश। कुछ संस्थाएँ अनुसन्धान लेखो व अनुसन्धान ग्रन्थो के सारांश पत्रिकाओ के रूप मे प्रकाशित करती हैं। इन्हे पढने मे अनुसन्धानकर्त्ता को सारांश का पता लग जाता है और वह आवश्यकतानुसार अपने मतलब की अध्ययन सामग्री का चयन उनमे से कर सकता है। पुस्तको को पूरी आद्योपान्त पढने की भी आवश्यकता उसे नही है। यही अनुक्रमणिका (Index) उसकी मदद करती है। इस प्रकार अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना मे हम सबसे पहले सम्बन्धित अनुसन्धान साहित्य का सर्वेक्षण एव सिंहावलोकन कर लेते हैं।

2 आनुभविक व्यक्तियो से सर्वेक्षण

समाज विज्ञान की प्रयोगशाला सम्पूर्ण समाज है और अनुभव के द्वारा हमे परिपुष्टता प्राप्त होती है। किसी भी विषय के साथ परिचय प्राप्त करने का सीधा ढग है अनुभवी व्यक्तियो से बातचीत। इसमे कोई सन्देह नही है कि अनुभव द्वारा हमे ऐसी अनेक जानकारियाँ प्राप्त होती हैं जो न तो हम जानते थे, न लिखित रूप मे उपलब्ध थी और न ही जिनके बारे मे हम सोच भी सकते थे। इसलिए समस्याओ का जितना ज्ञान अनुभवी व्यक्तियो को होता है, दूसरो को नही। उनसे बातचीत

करके हम सहज ही मूल्यवान उपकल्पनाएँ प्राप्त कर सकते हैं। फिर चाहे ये उपकल्पनाएँ हमे सुझाएँ या वे हमे स्वय सूझ जाएँ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ विशेष प्रकार के व्यक्ति समस्या के क्षेत्र पर अन्य व्यक्तियो की तुलना मे अधिक सामग्री प्रदान कर सकते है और उपकल्पनाओ के निर्माण के लिए अधिक आवश्यक सूचना प्रदान कर सकते हैं। सेलिज, जहोदा एव अन्य ने इन विशिष्ट व्यक्तियो की श्रेणी म निम्नांकित को सम्मिलित किया है[1]—

1 अजनबी एव नवागन्तुक।
2 सीमान्त व्यक्ति (Marginal Man) जो एक सांस्कृतिक समूह से दूसरे सांस्कृतिक समूह मे आते-जाते रहते हैं तथा दोनो समूहो से अपने सम्पर्क बनाए रखते है।
3 वे व्यक्ति जो विकास की एक स्थिति से दूसरी स्थिति की ओर सक्रमण काल मे हैं।
4 विचलनपूर्ण व्यक्ति, एकाकी व्यक्ति तथा समस्याग्रस्त व्यक्ति।
5 विशुद्ध, आदर्श अथवा जटिलताविहीन व्यक्ति।
6 अत्यधिक सामजस्य अथवा असामजस्य की स्थिति मे पाए जाने वाले व्यक्ति।
7 सामाजिक सरचना के अन्तगत विभिन्न स्थितियो का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्ति।
8 जाँच पडताल करने वाले व्यक्तियो के अपन अनुभव का पुनरावलोकन तथा उसकी निजी प्रतिक्रियाओ की परीक्षा।

3 एकल-विषय अध्ययन

अनुसन्धान प्ररचना के अन्वेषणात्मक प्रारूप की एक और महत्त्वपूर्ण पद्धति एकल-विषय अध्ययन (Case Study) है। इसका साधारण आशय है किसी एक मामले (Case), समूह (Group) व्यक्ति (Individual), सस्था (Institution) या घटना का सर्वांगीण एव गहन अध्ययन। इस प्रकार एकल-विषय अध्ययन मूल म किसी विशिष्ट इकाई का अध्ययन करता है।

इस प्रकार के अध्ययन अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना म महत्त्वपूर्ण होते हैं क्योकि प्रथम तो यह अध्ययन सर्वांगीण होता है। इसमे हम सभी अगो का अध्ययन करते हैं। दूसरा, एकल-विषय अध्ययन म हम इकाई का उसकी समग्रता मे अध्ययन करत हैं। तीसरा, यह गहन (Deep) अध्ययन होता है। इस प्रकार यह मूल मे ही एक प्रकार से अन्वेषणात्मक पद्धति है। इस प्रकार अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना की उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि यह मूलतः उन आधारो

1 *Sellitz Jahoda and Others* Ibid p 59-65

को प्रस्तुत करता है जो कि एक सफल अनुसन्धान कार्य के लिए महत्त्वपूर्ण होता है। सेलिज, जहोदा एवं उनके सहयोगियों ने लिखा है कि "अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना उस अनुभव को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है जो कि अधिक निश्चित अनुसन्धान हेतु सम्बन्धित उपकल्पना के निरूपण में सहायक होगा।"[1]

(2) विवरणात्मक अथवा निदानात्मक अनुसन्धान प्ररचना

(Descriptive or Diagnostic Research Design)

सामाजिक अनुसन्धान में हमें सामान्य नियमों का अन्वेषण करना होता है, एवं उनका विवेचन व विशिष्ट परिस्थितियों का निदान खोजना भी हमारा प्रमुख उद्देश्य होता है। विवरणात्मक एवं निदानात्मक अध्ययनों में एक दी हुई परिस्थिति की विशेषताओं को व्यक्त करने का प्रयास किया जाता है। अनेक समाज वैज्ञानिक इन दोनों प्रकारों में अन्तर भी करते हैं। विवरणात्मक एवं निदानात्मक अध्ययन प्ररचनाओं में एक प्रमुख अन्तर यह है कि निदानात्मक प्ररचना कारणात्मक सम्बन्धों को व्यक्त करने तथा सामाजिक क्रिया के लिए इन विभिन्न कारणों के आशयों का पता लगाने में सम्बन्धित है।

विवरणात्मक अथवा विवेचनात्मक अनुसन्धान प्ररचना का मुख्य उद्देश्य समस्या से सम्बन्धित वास्तविक तथ्यों के आधार पर वर्णनात्मक विवरण प्रस्तुत करना है। इनकी विशेषता पूर्ण और यथार्थ सूचनाएँ प्राप्त करना है। अन्त में अध्ययन किसी समुदाय या समूह के सम्पूर्ण जीवन से सम्बन्धित प्रक्रियाओं के होते हैं। इन सम्पूर्ण सामाजिक प्रक्रियाओं का वर्णन वैज्ञानिक विधि की सहायता से किया जाता है। सामाजिक अनुसन्धान मूलतः दो प्रकार की समस्याओं से सम्बन्धित होते हैं, प्रथम समस्या सामान्य नियमों की खोज होती है, द्वितीय समस्या विशिष्ट परिस्थितियों के निदान से सम्बन्धित होती है।

इस प्रकार वर्णनात्मक या विवरणात्मक अनुसन्धान प्ररचना के लिए आवश्यक होता है कि विषय के सम्बन्ध में यथार्थ एवं पूर्ण सूचनाएँ प्राप्त की जाएँ। ये सूचनाएँ वैज्ञानिक वर्णन के आधार पर प्राप्त की जाती हैं और इनका आधार वास्तविक एवं विश्वसनीय तथ्य ही है।

विवरणात्मक अनुसन्धान प्ररचना के उद्देश्य
(Objects of Descriptive Research Design)

विवरणात्मक अनुसन्धान प्ररचना के भी कुछ महत्त्वपूर्ण उद्देश्य हैं। संक्षेप में इन उद्देश्यों को तीन वर्गों में प्रस्तुत किया जा सकता है—

1. किसी समूह अथवा परिस्थिति के लक्षणों का परिशुद्ध वर्णन करना
2. किसी चर (Variable) की आवृत्ति निश्चित करना, एवं
3. चरों के साहचर्य (Association) के विषय में पता लगाना।

1. Selltiz, Jahoda and Others, Ibid, p. 67

1 समूह अथवा परिस्थिति के लक्षणों का परिशुद्ध वर्णन—विवरणात्मक अनुसन्धान प्ररचना मे हम किसी समूह जैसे कोई राजनीतिक दल (Political Party) अथवा किसी परिस्थिति जैसे हडताल या चुनाव (Election) आदि का परिशुद्ध वर्णन करते हैं एव क्रमवार विस्तृत ज्ञान प्राप्त करते हैं। यह ज्ञान गुणात्मक (Qualitative) एव सख्यात्मक (Quantitative) दोनों ही प्रकार का हो सकता है। जैसे गुणात्मक ज्ञान से हम यह पता लगाते हैं कि किस चुनाव के उम्मीदवार किस-किस राजनीतिक दल के थे अथवा वे किस-किस जाति के थे ? सख्यात्मक ज्ञान सख्या पर आधारित होता है। यह सामान्यत किसी चर की आवृत्ति होती है। जैसे किसी चुनाव मे कितने लोगो ने भाग लिया आदि।

2. किसी चर की आवृत्ति निश्चित करना—विवरणात्मक अनुसन्धान प्ररचना से अध्ययन करते समय हमे विषय या समस्या का कुछ ज्ञान रहता है। यह ज्ञान पहले किए हुए अन्वेषणात्मक या दूसरे लोगों के अध्ययनों द्वारा प्राप्त होता है। इसलिए वर्णनात्मक अध्ययन के उद्देश्य सुस्पष्ट होते हैं। जैसे यह निश्चित रहता है कि हमे किन लक्षणों का वर्णन करना है। समस्त लक्षणों का वर्णन किसी एक अध्ययन मे नही होता है। जैसे किसी सस्था के विभिन्न भागो का आकार एक महत्त्वपूर्ण लक्षण हो सकता है किन्तु यह आवश्यक नही कि प्रत्येक अध्ययन मे इसका समावेश हो। इसी प्रकार किन चरो की आवृत्ति देखनी है यह तय होता है। किसी एक ही समूह का अध्ययन अलग-अलग दृष्टिकोणो से हो सकता है और प्रत्येक के लिए भिन्न चरो की आवृत्ति देखनी होती है।

3 चरो के साहचर्य (Association) के विषय मे पता लगाना—विवरणात्मक अनुसन्धान प्ररचना का एक और उद्देश्य यह है कि इसके द्वारा चरो के साहचर्य के विषय मे पता लगाया जाता है। जैसे पिछड़े देशो मे आय और शिक्षा मे धनात्मक साहचर्य (Positive Association) पाया जाता है अर्थात् अमीर व्यक्ति सामान्यत अधिक शिक्षित होते हैं। विवरणात्मक अनुसन्धान प्ररचना मे हम इसी प्रकार विभिन्न चरो के साहचर्य का पता लगाते है, अर्थात् यह देखते हैं कि साहचर्य है या नही और यदि है तो किस प्रकार का। यहाँ यह ध्यान रखने योग्य बात है कि समस्त चरो का एक-दूसरे के साथ साहचर्य हम नही देखते। हम केवल उन चरों का साहचर्य देखते हैं जहाँ हम इनकी आशा करते हैं। इस प्रकार हम कह सकते है कि विवरणात्मक प्ररचना विवरणात्मक उपकल्पनाओं की परीक्षा करना है।

इसके अतिरिक्त विवरणात्मक अध्ययन कार्य-कारण सम्बन्धी उपकल्पनाओं के निर्माण मे भी सहायक होना है। इस प्रकार की उपकल्पनाओं का परीक्षण एक अधिक विकसित प्ररचना द्वारा होता है। वर्णनात्मक अध्ययन द्वारा केवल इन उपकल्पनाओं का निर्माण होता है। जैसे यदि हम किन्ही चरो मे बहुत अधिक साहचर्य पाएँ तो हम यह उपकल्पना बना सकते हैं कि उनमे से एक कारण है और दूसरा कार्य। यहाँ यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि ऐसा सयोग से भी हो सकता है।

वर्णनात्मक अनुसन्धान प्रचना के चरण
(Steps of Descriptive Research Design)

वर्णनात्मक अनुसन्धान प्रचना को किस तरह आयोजित किया जाए इसके कुछ आवश्यक चरण भी हैं। प्रमुख चरण निम्नांकित हैं—

1 अनुसन्धान उद्देश्यो का निरूपण,
2. तथ्य सकलन एव पद्धतियों का चयन,
3 निदर्शन का चयन,
4 आधार-सामग्री का सकलन एव परीक्षण,
5 परिणामो का विश्लेषण, एव
6 प्रतिवेदन ।

इन समस्त चरणो से सफलतापूर्वक गुजरने के साथ ही वर्णनात्मक अनुसन्धान प्रचना के उद्देश्यो की प्राप्ति सम्भव है।

निदानात्मक अनुसन्धान प्रचना
(Diagnostic Research Design)

अनेक वैज्ञानिक विवरणात्मक एव निदानात्मक अनुसन्धान प्रचनाओ को एक साथ ही प्रस्तुत करते हैं। वस्तुत इनके उद्देश्यों मे सम ता होते हुए भी थोडा भेद है। सामाजिक अनुसन्धान सामाजिक समस्याओ से सम्बन्धित नवीन ज्ञान की प्राप्ति और सामाजिक समस्याओं के समाधान से सम्बन्धित उपायो की खोज करता है। इस प्रचना के अन्तर्गत समस्या के निदान म सम्बन्धित उपाय प्रस्तुत किया जाता है। इसमे समस्या को किस तरह सुलझाया जा सकता है, इसके वर्णन एव विश्लेषण प्रस्तुत किए जाते हैं। सारांश मे हम कह सकते है कि विशिष्ट सामाजिक समस्या के समाधान की खोज करने वाले अनुसन्धान कार्य निदानात्मक होते हैं। इस प्रकार के अनुसन्धान कार्यों से समस्या का हल या समाधान प्रस्तुत किया जाता है।

उपरोक्त विवेचन से हमे यह ध्यान रखना चाहिए कि विवरणात्मक एव निदानात्मक अनुसन्धान प्रचना एक ही नही है वरन् इनम अन्तर है। इन दोनो प्रचनाओं मे मुख्यत निम्न आधारो पर अन्तर किया जा सकता है—

1. विवरणात्मक अनुसन्धान प्रचना समस्या से सम्बन्धित तथ्यो का वर्णन प्रस्तुत करती है, जबकि निदानात्मक अनुसन्धान प्रचना समस्या का वास्तविक स्वरूप बताकर समस्या के निदान का उपाय या हल भी बताती है।

2 विवरणात्मक अनुसन्धान प्रचना के अध्ययन उपकल्पनाओ द्वारा पूर्ण रूप से निर्देशित नही होते, जबकि निदानात्मक अनुसन्धान प्रचना के अध्ययनो को उपकल्पनाएँ पूर्ण रूप से निर्देशित करती हैं।

3 विवरणात्मक अनुसन्धान प्रचना का मुख्य उद्देश्य ज्ञान प्राप्ति ही होता है जबकि निदानात्मक अनुसन्धान प्रचना का प्रमुख उद्देश्य समाज म उपस्थित

सिवर्तमान (Contemporary) समस्याओं के कारणों का पता लगाकर समाधान प्रस्तुत करना होता है।

4. विवरणात्मक अध्ययन उस क्षेत्र मे विकास पाता है, जहाँ समस्याओं के बारे में विशेष जानकारी उपलब्ध नही हो चुकी होती है, जबकि निदानात्मक अध्ययन उसी क्षेत्र मे हो जाते हैं, जहाँ पर कि समस्याओं का स्वरूप स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आ जाता है।

5 विवरणात्मक अध्ययन प्राय· प्रारम्भिक स्तर के अध्ययन होते हैं जबकि निदानात्मक अध्ययन उच्चस्तरीय होते है।

इस प्रकार वर्णनात्मक या विवरणात्मक अनुसन्धान प्ररचना एव निदानात्मक अनुसन्धान प्ररचना मे अन्तर किया जा सकता है। लेकिन इन प्ररचनाओं के क्रियान्वयन के लिए अनुसन्धानकर्त्ता को अनुसन्धान प्रशिक्षण समय, धन व कार्य-क्षमता पर ध्यान देना चाहिए। इस प्रकार जब अन्वेषणात्मक ज्ञान की प्राप्ति हमारे अध्ययन का उद्देश्य होता है तो हम अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना का प्रयोग करते हैं, लेकिन जब किसी समूह, समुदाय या परिस्थितियो का वर्णन एव विश्लेषण करना होता है तो हम विवरणात्मक अनुसन्धान प्ररचना' का प्रयोग करते हैं।

(3) प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्ररचना
(Experimental Research Design)

अनुसन्धान प्ररचना का तीसरा प्रकार प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्ररचना का है। प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्ररचना जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है 'प्रयोग' (Experiment) की अवधारणा पर आश्रित है। प्रयोग मूलत एक प्रकार का नियन्त्रित अन्वेषण (Controlled Inquiry) है। प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्ररचना को विस्तार से समझने के लिए यह आवश्यक होगा कि हम 'प्रयोग' को समझ लें।

आर एल एकॉफ ने लिखा है कि "प्रयोग एक क्रिया है, और एक ऐसी क्रिया है जिसे हम अन्वेषण कहते हैं।"[1]

ई ग्रीनवुड के अनुसार "एक प्रयोग एक ऐसी उपकल्पना का प्रमाण है जो दो कारकों को ऐसी विरोधी परिस्थितियो के अध्ययन के माध्यम से कारणात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है, जिनमे केवल अभिरुचिपूर्ण कारण को छोडकर अन्य सभी कारकों पर नियन्त्रण कर लिया जाता है, बाद वाला अभिरुचिपूर्ण कारक या तो उपकल्पनात्मक कारण या उपकल्पनात्मक प्रभाव होता है।"[2]

सेलिज, जहोदा एव अन्य के अनुसार "अपने सबसे सामान्य अर्थ म एक प्रयोग को प्रमाण के सग्रह के सगठन के ऐसे ढग के रूप म समझा जा सकता है,

1 *R L Ackoff* op cit , p 2.
2 *E Greenwood* Experimental Sociology A Study in Method, p 28

जिससे उपकल्पना की सत्यता के विषय मे परिणाम निकालने की अनुमति हो सके।"[1]

इस प्रकार प्रयोग की मूलभूत रूपरेखा अत्यन्त सरल है। एक उदाहरण से इसे हम और स्पष्ट कर सकते हैं। मान लें हम यह जानना चाहते हैं कि पढाने मे संगणकों (Computers) का उपयोग परम्परागत पढाने के ढग से अधिक लाभदायक है या नही।

इसके लिए हम दो समान समूह लेंगे—एक 'प्रयोगात्मक समूह' कहलाएगा एव दूसरा 'यथास्थ समूह'। प्रयोगात्मक समूह पर हम स्वतन्त्र चर (या प्रयोगात्मक चर) का प्रभाव डालते हैं। यहाँ हमारा प्रयोगात्मक चर संगणक(Computer)है। अब हम किसी स्कूल की कक्षा के दो समूह बनाते हैं और एक समूह (प्रयोगात्मक) को संगणकों के माध्यम से पढाते हैं व दूसरे को परम्परागत ढग से। शिक्षा सत्र के अन्त में दोनो समूहो को एक ही परीक्षा मे बिठाकर उनके परीक्षाफल की तुलना करते हैं। यदि हम पाते हैं कि संगणक द्वारा शिक्षित समूह का परीक्षाफल श्रेष्ठ है तो हम कह सकते है कि संगणको द्वारा पढाना अधिक लाभकारी है।

इस प्रकार प्रयोगात्मक अनुसधान प्रचना प्रयोग पर आधारित है। यह भी भौतिक विज्ञानो मे प्रयोगो की भाँति होती है। इस प्रकार की प्रचनाओं का निर्माण अत्यन्त सोच समझकर किया जाता है। उस प्रचना के आधार पर तार्किक निष्कर्षों को निकाला जाता है। 'जॉन स्टूअर्ट मिल पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने प्रयोगात्मक विधि के आधार पर अनुसन्धान प्रचनाओं के सम्बन्ध में सुधार किए।

प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्रचना मे कारणत्व (Causality) की अवधारणा का विश्लेषण करना भी परमावश्यक हो जाता है। सामान्य शब्दों में इसका आशय यह है कि एक घटना दूसरी घटना का कार्य या कारण होती है। इस प्रकार इसमें अधिकतर दो या दो से अधिक घटनाओं कारको या चरो के मध्य कार्य-कारण सम्बन्ध की अनेक परिस्थितियो का अध्ययन किया जाता है।

प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्रचना में कारणात्मक सम्बन्धो को व्यक्त करने वाली उपकल्पनाओं का परीक्षण करने के लिए प्रचलित किसी भी नियन्त्रित प्रयोग के अन्तर्गत निम्न तत्त्व पाए जाते हैं—

1 इसमे ऐसी दो परिस्थितियो या समूहो (एक प्रयोगात्मक समूह व दूसरा यथास्थ समूह) का परीक्षण किया जाता है, जो अन्य सभी महत्त्वपूर्ण पक्षो मे समान होते हैं।
2 कारणात्मक समझे जाने वाले कारक को प्रयोगात्मक समूह मे ढूँढा जाता है अथवा उसमे इसका समावेश कराया जाता है।
3 भविष्यवाणी की जाने वाली घटना की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति पर्यवेक्षण प्रयोगात्मक एव नियन्त्रित दोनो ही समूहो पर किया जाता है।

1 *Selltiz, Jahoda and Others* op cit, p 58

प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्रचना के प्रकार
(Types of Experimental Research Design)

सामाजिक विज्ञानो मे सदा प्रयोग की समस्त शर्तों को पूरा करना सम्भव नही होता है। इसलिए आवश्यकता एव सुविधा के अनुसार प्रयोग के ढग मे कुछ फेर-बदल कर लिया जाता है। इसलिए प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्ररचना के अनेक प्रकार बन जाते हैं। इन्हे मुख्यत दो वर्गों मे रखा जाना है—

1 केवल पश्चात् परीक्षण (Only After Experiment)
2 पूर्व-पश्चात् परीक्षण (Before-After Experiment)

यहाँ हम इन्हें विस्तार से समझने का प्रयास करेंगे—

1. केवल पश्चात् परीक्षण (Only After Experiment)—इसके अन्तर्गत सभी दृष्टि से समान विशेषताओ और प्रकृति वाले दो समूहो को चुन लिया जाता है जिनमे एक समूह प्रयोगात्मक एव दूसरा नियन्त्रित समूह (यथास्थ) कहलाता है। नियन्त्रित समूह को अपनी यथास्थिति म रखा जाता है, अर्थात् उसमे किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं लाया जाता, जबकि प्रयोगात्मक समूह मे किसी एक 'प्रयोगात्मक चर' का प्रभाव डाला जाता है। इस प्रकार इस 'प्रयोगात्मक चर' के द्वारा यदि प्रयोगात्मक समूह नियन्त्रित समूह से भिन्न हो जाता है तो इस 'चर' को इस परिवर्तन का कारण मान लिया जाता है।

इसको 'केवल पश्चात् परीक्षण' इसलिए कहा जाता है कि इसका प्रयोग अध्ययन मे परिवर्तन लाने के लिए भी किया जाता है।

इसका एक अच्छा उदाहरण जिसमे अमेरिका मे द्वितीय महायुद्ध के समय एक फिल्म 'दि बेटल ऑफ ब्रिटेन' का प्रभाव देखा गया था हो सकता है। इसमे सेना की टुकडियो को मिलाकर दो समूह बनाए गए थे। यह समूह आयु, शिक्षा, जन्म क्षेत्र परीक्षाफल, प्रशिक्षण आदि विशेषताओ मे समान थे फिर सिक्का उछाल कर यह तय किया गया कि किसे प्रयोगात्मक समूह माना जाए। फिर इस प्रयोगात्मक समूह को सामान्य प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत यह फिल्म दिखाई गई जबकि दूसरे समूह को फिल्म नही दिखाई गई। लगभग एक सप्ताह के बाद दोनों समूहो मे एक प्रश्नावली भरवाई गई और समूह के उत्तरो के आधार पर फिल्म का प्रभाव जाना गया।

2. पूर्व पश्चात परीक्षण (Before After Experiment)—यह पूर्व पश्चात् परीक्षण मूलत 'केवल पश्चात् परीक्षण' के दोषो से बचने के लिए बनाया गया है। इसमे दो समान समूहो को न लेकर केवल एक ही समूह का अध्ययन किया जाता है, लेकिन इस समूह का अध्ययन 'प्रयोगात्मक चर' के 'पहले' एव 'बाद' म किया जाता है। इसलिए इसे 'पूर्व-पश्चात् परीक्षण' कहा जाता है। बाद मे पहले व बाद वाले अध्ययनो मे अन्तर किया जाता है।

उदाहरण के लिए एक सयुक्त परिवार पर औद्योगीकरण का प्रभाव देखा जा सकता है। इसके लिए हमे उस सयुक्त परिवार की दशा का अवलोकन

औद्योगीकरण से पूर्व करना होगा एवं बाद में औद्योगीकरण होने के पश्चात् पुन उस संयुक्त परिवार की संरचना का अध्ययन करना होगा। अगर पहले व बाद के अध्ययन में कोई परिवर्तन पाया जाता है तो उस परिवर्तन का कारण औद्योगीकरण को माना जाएगा, लेकिन परिवार की दूसरी विशेषताएँ पहले व बाद में समान होनी चाहिए, लेकिन यही इसकी सबसे बड़ी कमी है, क्योंकि अन्य बाहरी शक्तियों के प्रभावों को परीक्षण के समय तक कैसे रोका जा सकता है।

इस प्रकार इस पूर्व-पश्चात् परीक्षण के अनेक और भी उप-प्रकार हो सकते हैं, जैसे—

1 एक समूह का पूर्व-पश्चात् अध्ययन (उपरोक्त),
2 अन्तर्परिवर्तनीय (Interchangeable) समूह के साथ पूर्व-पश्चात् अध्ययन,
3 एक नियन्त्रित समूह के साथ पूर्व-पश्चात् अध्ययन,
4 दो नियन्त्रित समूहों वाले पूर्व-पश्चात् अध्ययन,
5 तीन नियन्त्रित समूहों वाले पूर्व-पश्चात् अध्ययन,
6 दो या अधिक प्रयोगात्मक चरों के संयुक्त प्रभाव का पूर्व-पश्चात् अध्ययन।

इस प्रकार उपरोक्त अनुसन्धान प्ररचनाओं द्वारा अनुसन्धान समस्याओं को सुलझाया जाता है। वर्तमान में सामाजिक अनुसन्धान प्रविधियों में इन अनुसन्धान प्ररचनाओं का उपयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है। इसका मूल कारण इनकी उपयोगिता है।

मॉडल या प्रतिरूप
(Models)

सामाजिक विज्ञानों में सामान्यत सिद्धान्त (Theory), तथ्य (Fact), अवधारणा (Concept) पद्धति (Method) के साथ प्रतिरूप (Models) आदि शब्दों का बहुतायत से प्रयोग किया जाता है। ये शब्द ऐसे हैं जो अनेक बार एक दूसरे के विकल्प के रूप में भी प्रयुक्त किए जाते हैं और इनका वास्तविक अन्तर थोड़ा कठिन है।

प्रतिरूप (Model) वस्तुत सिद्धान्त-निर्माण (Theory Construction) की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। यह एक प्रकार का सामान्य विचार या तस्वीर है जिसे एक समाज वैज्ञानिक अपने विषय के बारे में अपने मस्तिष्क में रखता है। प्रतिरूप के द्वारा ही किसी भी विषय की व्याख्या अथवा उसका सत्यापन किया जाता है। साधारण शब्दों में किसी वस्तु अथवा प्रघटना की व्याख्या से हमारा आशय यह प्रदर्शित करना होता है कि उक्त प्रघटना का वर्णन करने वाले कथनों (Statements) का अन्य कथनों के सन्दर्भ में तार्किक विधियों द्वारा निरूपण किया जाए। तर्कशास्त्र (Logic) का यह आधारभूत नियम है कि प्रत्येक वैज्ञानिक स्पष्टीकरण का कम से कम एक ऐसा आधार-वाक्य (Premise) हो, जिसकी प्रकृति सार्वभौमिक प्रस्थापना (Proposition) की होनी आवश्यक है। जब कोई सार्वभौमिक प्रस्थापना आनुभविक एवं कारणात्मक होती है, तब इसे वैज्ञानिक

सिद्धान्त (Theory) कहा जाता है। सिद्धान्त व्याख्या अथवा स्पष्टीकरण या सत्यापन की एक विधि है।

लेकिन सामाजिक विज्ञानो मे सिद्धान्तो के अतिरिक्त व्याख्या एव स्पष्टीकरण के लिए अन्य विधियो का प्रयोग भी किया जाता है। ये विधियाँ अनेक स्थानो पर सिद्धान्त के सहायक के रूप मे और अनेक स्थानो पर एक स्वतन्त्र विधि के रूप मे प्रयुक्त होती हैं। प्रतिरूप अथवा मॉडल का भी व्याख्या एव स्पष्टीकरण की एक विधि के रूप मे सामाजिक विज्ञानो में बहुतायत से प्रयोग किया जाता है। आधुनिक समाज-विज्ञानो मे तो प्रतिरूप का महत्त्व और अधिक बढता जा रहा है और प्राय प्रतिरूप को सिद्धान्त-निर्माण के एक अनिवार्य अग के रूप मे देखा जाता है। इवान लोडन की मान्यता है कि प्रायः सभी व्याख्याएँ प्रतिरूपो की भाषा मे विकसित होती हैं। कार्ल डॉयच ने तो प्रतिरूप को मानवीय चिन्तन का आवश्यक अग माना है।

हमे ध्यान रखना चाहिए कि 'प्रतिरूप' सिद्धान्त (Theory) के समरूप होते हुए भी सिद्धान्त के समान नहीं होते, बल्कि जैसा कि हम ऊपर लिख आए हैं, ये वस्तुत सिद्धान्त-निर्माण का एक अनिवार्य चरण ही होते हैं। सिद्धान्त की भाषा अथवा उसका अर्थ समझना कई बार बहुत अधिक जटिल होता है। यह जटिलता तब और भी बढ जाती है जब सिद्धान्तो मे प्रयुक्त अवधारणाएँ अनेकार्थक होती हैं और वे स्पष्टता से बहुत दूर होती हैं। ऐसी स्थिति मे समाज वैज्ञानिक ही नही वरन् भौतिक वैज्ञानिक भी सामान्यत प्रतिरूपो (Models) का प्रयोग करते हैं।

इस प्रकार मॉडल या प्रतिरूप जटिल स्थितियो को बोधगम्य बनाने अथवा उसे सरल रूप मे प्रस्तुत करने मे हमारी सहायता करते हैं। एक मॉडल किसी वस्तु की सरचना के मुख्य भागो तथा उनके अन्तर्सम्बन्धो को कृत्रिम रूप में प्रदर्शित करने की एक सरल एव सुविधाजनक विधि है। उदाहरण के लिए भौतिक विज्ञान मे प्रयुक्त 'अणु' का प्रतिरूप यह प्रदर्शित करता है कि 'अणु' का एक भाग अन्य भागो से किस प्रकार सम्बन्धित है। समाजशास्त्र मे सावयववाद (Organism), प्रकार्यवाद (Functionalism), नाभिकीय परिवार (Nuclear Family), सयुक्त परिवार (Joint Family) आदि ऐसे ही प्रतिरूपो के उदाहरण हैं। एक सिद्धान्त इसके विपरीत किसी प्रतिरूप के तत्त्वो तथा उनके अन्तर्सम्बन्धो की व्याख्या करता है। वस्तुत' एक मॉडल की सबसे प्रमुख विशेषता यह होती है कि उसमे किसी भाग अथवा मूल वस्तु (जिसका कि वह प्रतिरूप है) से थोडी-बहुत समानता अथवा सादृश्यता (Analogy) अवश्य होती है। यही सादृश्यता प्रतिरूप अथवा मॉडल रचना का मूल आधार है और इसलिए इनका निर्माण किया जाता है।

प्रतिरूप का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definitions of Model)

साधारण शब्दो में मॉडल या प्रतिरूप किसी वस्तु का सांकेतिक प्रतिनिधित्व (Symbolic Representation) करते हैं। इनका उद्देश्य वस्तु के गुणो या विशेषताओ को प्रदर्शित करना होता है। कार, स्कूटर, भवन, हवाई जहाज आदि

के अनेक मॉडल हमने देखे हैं। ये भौतिक प्रारूप (Physical Model) कहलाते हैं, इन्हे हम मेज पर या अलमारी मे रख सकते हैं। इस प्रकार प्रतिरूप की भौतिक आकृति एव कुछ मात्रा मे उनका सचालन मूल वस्तु से मिलता-जुलता है।

मॉडल अथवा प्रतिरूप की सज्ञा का प्रयोग अनेक अर्थों मे भी किया जाता है। नीतिशास्त्र (Ethics) मे इसका प्रयोग 'आदर्श' के सन्दर्भ मे किया गया है। इसी प्रकार 'मॉडल' शब्द का प्रयोग चित्रकार के किसी अभिकल्पित व्यक्ति अथवा वस्तु के लिए भी किया जाता है। यही नहीं विज्ञापनो में अपनी वस्तु की बिक्री बढाने के उद्देश्य से निर्माता कुछ सुन्दर युवक-युवतियो को 'मॉडल' बनाकर अपनी वस्तु का प्रयोग करते हुए दिखाते हैं। तकनीकी अर्थ मे इस अवधारणा का प्रयोग किसी सिद्धान्त के पर्यायवाची के रूप मे किया जाता है। कुछ वैज्ञानिकों ने मॉडल का प्रयोग 'प्रारूपो' (Typologies) के सन्दर्भ मे भी किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मॉडल या प्रतिरूप एक बहुअर्थी अवधारणा है जिसका प्रयोग अनेक रूपो मे किया जाता है, यही इसकी जटिलता भी है। स्कॉट ग्रीअर (Scott Greer) ने लिखा है 'मॉडल की अवधारणा अत्यन्त अस्पष्ट है।' यदि ऐसी स्थिति मे मॉडल की एक सुनिश्चित परिभाषा दी जाए तो समाज विज्ञान मे इसका प्रयोग अत्यधिक सीमित होगा। वर्तमान स्थिति मे प्रतिरूप एक 'समुच्चता-बोधक अवधारणा' (Configurative Concept) का सकेत देता है, जिसका प्रयोग विभिन्न परिस्थितियो मे किया जा सकता है। किसी भी जटिल अवधारणा की भाँति यह भी एक औपचारिक अमूर्तिकरण है। मॉडल का अर्थ एव उपयोगिता सन्दर्भ की आनुभविक प्रकृति के साथ बदलती जाती है।

यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि फिर मॉडल या प्रतिरूप का निश्चित अर्थ क्या है? इनकी रचना क्यो की जाती है? इन प्रश्नो के प्रत्युत्तर आसान नहीं हैं। यहाँ तक कि मॉडल निर्माण करने वालो में भी इन प्रश्नो के सम्बन्ध मे काफी मतभेद पाए जाते हैं। फिर भी प्रतिरूप की कुछ परिभाषाएँ प्रस्तुत की गई हैं।

मोटे तौर पर समाजशास्त्र मे मॉडल या प्रतिरूप से हमारा आशय एक ऐसी मोटी रूपरेखा (Synopsis) से होता है, जिसके साथ हम विचाराधीन घटना अथवा वस्तु की तुलना करना चाहते हैं। यह मोटी रूपरेखा इन अर्थों मे एक ऐसी तस्वीर का बोध कराती है जिसके साथ हमारे द्वारा खोया गया यथार्थ मेल खाता दिखाई देता है और स्पष्ट शब्दो मे यह तस्वीर उस वस्तु के समान जान पडती है, जिसका हम अध्ययन करना चाहते हैं।

ऐलेक्स इकेलस (Alex Inkeles) ने अपनी कृति 'व्हॉट इज सोशयोलोजी' मे लिखा है कि 'हम मॉडल शब्द का प्रयोग किसी प्रमुख घटना को प्रदर्शित करने वाली एक सामान्य प्रतिमा की एक मोटी रूपरेखा के लिए करते हैं। इसका प्रयोग घटना से सम्बन्धित इकाइयो की प्रकृति एव उनके सम्बन्धों को प्रदर्शित करने वाले विचारो के लिए किया जाता है।"[1]

1 *Alex Inkeles* · What is Sociology.

जॉर्ज ग्राहम ने भी इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि "एक मॉडल वास्तविकता का एक प्रमूर्तिकरण है, जिसकी रचना अध्ययन की जाने वाली घटना के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध को व्यवस्थित रूप मे प्रदर्शित करने के उद्देश्य मे की जाती है। यह वास्तविकता से कम जटिल होता है।"

स्टीफन काटग्रुव (Stephen Catgrove) ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि "मॉडल सिद्धान्त-निर्माण की प्रारम्भिक कडी है। इनके द्वारा किसी व्यवस्था का मात्र साधारण वर्णन होता है कि वह व्यवस्था कैसी लगती है। ये ग्रानुभविक ग्रनुसन्धान हेतु चरो के मध्य सम्बन्धो को सुझाते हैं।" रॉबर्ट गोलम्बीस्की, वेल्स एव कोरोटी के ग्रनुसार "मॉडल या प्रतिरूप ग्रन्तर्सम्बन्धो के विशेष रूप की रचना करने वाले चरो पर ग्राधारित सरचना है।" इनके ग्रनुसार प्रतिरूप सिद्धान्त मार्ग पर चलने के लिए एक प्रकार के तात्कालिक कदम होते हैं।

इसी प्रकार एक ग्रन्य परिभाषा के ग्रनुसार "मॉडल प्रस्थापनाग्रो का एक ऐसा तार्किक समूह होना है जिससे हम कुछ निष्कर्ष निकालते हैं।"

उपरोक्त परिभाषाग्रो के विश्लेषण से हम देखते हैं कि प्रतिरूप वस्तु यथार्थ की एक तस्वीर होती है। यह तस्वीर उस वस्तु के समान जान पडती है जिसका हम ग्रध्ययन करना चाहते हैं। प्रतिरूप ग्रथवा मॉडल स्वय मे एक रूपरेखा ग्रथवा मानसिक ग्रनुकृति है जो यथार्थ के सदृश्य प्रतीत होती है। यह उस सत्य का एक प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व (Symbolic Representation) है, जिसका हमें ग्रध्ययन करना है। इन्ही प्रतिकात्मक प्रतिनिधित्वो से हम यथार्थ का चित्र खींचने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार हमे ध्यान रखना चाहिए कि प्रतिरूप यथार्थ (Reality) नही है ग्रपितु यह तो यथार्थ की सांकेतिक ग्रनुकृति मात्र है।

प्रतिरूप की विशेषताएँ
(Characteristics of Model)

सामान्यत: प्रतिरूप की ग्रनेक विशेषताएँ प्रस्तुत की जाती हैं, इन विशेषताग्रो का कारण प्रतिरूप की ग्रवधारणा का बहुग्रर्थी होना है। लेकिन फिर भी समाज विज्ञानो मे प्रतिरूप की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताग्रो का उल्लेखन किया जाता है। सामान्यत किसी भी मॉडल मे तीन विशेषताग्रो का होना ग्रावश्यक है।

1 प्रतिरूप भौतिक ग्रथवा वैज्ञानिक ग्राधार पर निर्मित किए गए हो,
2 प्रतिरूप का सत्यापन यथार्थ से किया जा सके, एव
3 प्रतिरूप का पुष्टीकरण यथार्थ जनता की बाध्य घटनाग्रो मे किया जा सके।

लेकिन फिर भी एक प्रतिरूप मे सामान्यत निम्नांकित विशेषताएँ होनी चाहिएँ—

1. सादृश्यता (Analogy)—किसी भी प्रतिरूप की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि उसमे किसी भाग ग्रथवा मूल वस्तु, जिसका कि वह प्रतिरूप है, मे थोडी-बहुत समानता ग्रथवा सादृश्यता ग्रवश्य होनी चाहिए। भौतिक विज्ञानो के क्षेत्र में सादृश्यता का उपयोग प्रतिरूपो के निर्माण के लिए किया गया है। इसी प्रकार

समाज विज्ञानो मे भी प्रतिरूपों का निर्माण सादृश्यता के आधार पर किया जाता है, सामाजिक मानवशास्त्र (Social Anthropology) मे 'सावयववादी प्रारूप' (Organismic Model) मूलत. भौतिकशास्त्र मे डार्विन के 'सावयववाद के सिद्धान्त' के आधार पर 'भौतिक जगत' एव 'सामाजिक जगत' मे सादृश्यता स्थापित कर बनाया गया था।

2. सिद्धान्त-निर्माण का आधार (Base for Theory Construction)—मूल मे प्रतिरूप एक ऐसी वैज्ञानिक विधि होती है जिसका प्रयोग सिद्धान्त-निर्माण के आधारभूत चरण के रूप मे किया जाता है। 'स्टीफन' ने भी लिखा है कि "मॉडल सिद्धान्त-रचना की प्रारम्भिक कडी है।" अत. एक प्रतिरूप की यह विशेषता होती है कि वह सिद्धान्त-निर्माण के एक चरण के रूप में प्रयुक्त होता है।

3. यथार्थ के समीप (Near to Reality)—प्रतिरूप अथवा मॉडल की एक और अन्य विशेषता यह होती है कि वह *यथार्थ वस्तु के समीप* अथवा उसके *निकट होता है। समीपता या निकटता से हमारा आशय यह है कि वह उस वस्तु का* 'सांकेतिक-प्रतिनिधित्व' करता है अर्थात् मॉडल की एक अनिवार्य विशेषता है कि वह उस सत्य की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है, जिसका अध्ययन हम करने जा रहे है।

4 मापन योग्य (Able for Measurement)—प्रतिरूप अथवा मॉडल की एक अन्य विशेषता यह है कि उसमे किसी न किसी मापन क्षमता का होना आवश्यक है। यह विशेषता प्रतिरूप मे पूर्व-कथन (Predictability) एव सत्यापन (Verification) लाने का साधन है, *किन्तु इसे स्वय मे लक्ष्य नहीं बनाया जाना* चाहिए।

5 सार्थकता (Significance)—सामाजिक विज्ञानो मे अनुपयोगी एव निरर्थक ही प्रतिरूपो की रचना नही करनी चाहिए वरन् मॉडल उपयोगी, सार्थक तथा लाभदायक समस्याओ से सम्बन्धित होने चाहिए।

6 सामान्यता (Generality)—सामान्यत: प्रतिरूप इतना सामान्य भी होना चाहिए कि अपने आधारभूत तथ्यो के अतिरिक्त विषय-वस्तु पर भी लागू होता हो, तभी वह विभिन्न चरों को जान पाएगा। अनेक वैज्ञानिक मॉडल मे इस विशेषता को *अनिवार्य नही मानते हैं और प्रतिरूप को उसके तथ्यो तक ही सीमित* रखना चाहते हैं जबकि अन्य अनेक वैज्ञानिक 'सामान्यता' को मॉडल की वैज्ञानिकता का आधार मानते हैं।

सामाजिक शोध में प्रतिरूप की उपयोगिता
(Importance/Utility of Model in Social Research)

सामाजिक अनुसधान मे प्रतिरूपो का प्रयोग उसके बहुअर्थी होने के कारण अनेक रूपो मे किया जाता है। निवर्तमान समय मे प्रतिरूप सामाजिक शोध का

एक अनिवार्य पक्ष बनता जा रहा है। 'कार्ल डायच' ने प्रतिरूप की चार उपयोगिताओ का उल्लेख किया है, वे हैं—

1 सगठनात्मक उपयोगिता,
2 आत्म-शोधात्मक उपयोगिता,
3 पूर्व-कथनीय उपयोगिता, एव
4 मापन की उपयोगिता।

वस्तुतः ये चारो उपयोगिताएँ परस्पर निर्भर हैं किन्तु इन सबका एक साथ होना अनिवार्य नही है। सम्भव है कि एक प्रतिरूप केवल एक उपयोगिता का जनक होकर ही रह जाए। वैसे किसी मॉडल या प्रतिरूप की उपयोगिता उसके स्वरूप पर निर्भर करती है। जैसे व्याख्यात्मक प्रतिरूप (Explanatory Model) विश्लेषण एव सिद्धान्त निर्माण मे उपयोगी होता है, जबकि एक वर्णनात्मक प्रतिरूप (Descriptive Model) वस्तुत स्वय को वर्णन तक सीमित रखता है। फिर भी यह विशिष्ट समस्याओ के अवधारणा मे अधिक उपयोगी होता है। इसी प्रकार पूर्व-कथनीय प्रतिरूप प्रयोग (Experiment) मे सहायक होता है। जब पूर्व-कथन यथार्थ (Reality) के सन्दर्भ मे होता है, तो इसका अनुसन्धान एव रचनात्मक कार्य मे बहुत उपयोगी स्थान होता है। इसी प्रकार कुछ प्रतिरूपो के आधार पर अच्छी भविष्वाणी की जा सकती है, अत इस प्रकार के मॉडल की उपयोगिता भविष्यवाणी के क्षेत्र मे होती है।

इस प्रकार मॉडल अज्ञात के विषय मे जानकारी प्रदान करने मे भी सहायक होते हैं। ऐसा माना जाता है कि मानवीय मस्तिष्क अज्ञात के बारे मे सबसे अधिक आसानी से तभी जान सकता है, जब जानने की प्रक्रिया ज्ञात से अज्ञात की ओर चले। प्रतिरूप के निर्माण का मुख्य उद्देश्य वास्तव मे अज्ञात की जानकारी बढाने मे सहायता करना है। प्रतिरूपो के सहारे जटिल घटनाओ तथा व्यवस्थाओ को आसानी से समझा जा सकता है। अनुसन्धान कार्य सम्पन्न करते समय प्रत्येक वैज्ञानिक के मस्तिष्क मे अपनी अनुसन्धान समस्या अथवा विषय के बारे मे एक धारणा बनी होती है। यह सामान्य धारणा उस वस्तु के मानसिक चित्र की रचना करती है कि उस वस्तु का यथार्थ मे क्या आकार है, उसका क्या प्रकार है अथवा वह कैसे-कैसे काम करती है, आदि-आदि।

यदि यह वस्तु अथवा प्रघटना मानवीय समाज है तो ये प्रश्न समाज की सरचना तथा उसके सचालन की क्रिया-विधि से सम्बन्धित होते हैं। इस सम्बन्ध में अनुसन्धानकर्त्ता जो धारणा अपने मस्तिष्क मे विकसित करता है, वह वास्तविकता को प्रकट करने वाली मानसिक अनुकृति होती है, और इसे ही हम प्रतिरूप या मॉडल कहते हैं। इस प्रकार ये प्रतिरूप हमे यथार्थ मे पाई जाने वाली घटना या वस्तु (जिसका कि हम अध्ययन कर रहे हैं) को समझने के दृष्टिकोण से अत्यन्त उपयोगी होते हैं। अत प्रतिरूप की यह महत्त्वपूर्ण उपयोगिता है कि वह यथार्थ प्रघटना को समझने मे हमारी सहायता करता है। सामाजिक विज्ञानो मे 'मॉडल'

शब्द का प्रयोग एक ऐसी कार्यकारी बौद्धिक सरचना के लिए किया जाता है जिसकी सहायता से सामाजिक परिस्थितियो को सरलता से समझा जा सके। इस प्रकार की स्थितियाँ वास्तविक एव काल्पनिक दोनो हो सकती है। अत सामाजिक विज्ञानो मे प्रतिरूप की उपयोगिता सामाजिक परिस्थितियो को समझने के दृष्टिकोण से भी है। सामाजिक विज्ञानो मे विशेषकर समाजशास्त्र मे मूल्य-तटस्थता-(Value-Neutrality) के भाव को बनाए रखते हुए प्रतिरूपो को ऐसी बौद्धिक-सरचना माना जाता है, जिसके द्वारा चिन्तन तथा शोध कार्य को व्यवस्थित रूप प्रदान किया जा सके। समाजशास्त्र एव सामाजिक विज्ञानो मे प्रतिरूपो की रचना करते समय घटना से सम्बन्धित उन सभी वर्गो, अधिमान्यताओ, उपागमो एव अवधारणाओ को सम्मिलित करने का प्रयास किया जाता है, जो अनुसन्धानकर्त्ता के सार्थक तथ्य एकत्रित एव व्यवस्थित करने मे उपयोगी हो सकें। इन प्रतिरूपो को साधारणतः शब्दो, रेखाचित्रो, ग्राफ्स, चार्टों आदि के माध्यम मे अभिव्यक्त किया जाता है। प्रतिरूपो की एक अन्य उपयोगिता सिद्धान्तो के क्षेत्र मे भी है। प्रतिरूप नवीन, सैद्धान्तिक सूझ-बूझ प्राप्त करने का एक ऐसा सरल तरीका है, जिसके द्वारा कुछ साधारण से स्वयसिद्ध कथनो तथा थोडे से चरो (Variables) के आधार पर निगमनात्मक विधि (Deductive Method) के प्रयोग द्वारा सिद्धान्तो को नवीन आयाम प्रदान किया जाता है। साथ ही इन प्रतिरूपो के द्वारा प्रत्येक स्तर पर बाह्य वास्तविकता के साथ निष्कर्षों का तालमेल बिठाने की कष्टसाध्य प्रक्रिया से छुटकारा प्राप्त हो जाता है।

सक्षेप मे, सामाजिक अनुसन्धान मे प्रतिरूपो की उपयोगिता को निम्न बिन्दुओ मे रखा जा सकता है—

1 प्रतिरूप अध्ययन की जाने वाली समस्या के विश्लेषण और उसे समझने मे अनुसन्धानकर्त्ता की सहायता करते हैं।

2 प्रतिरूप सिद्धान्त-निर्माण मे पर्याप्त रूप से उपयोगी होते हैं।

3 प्रतिरूप चरो के सम्बन्धो की दिशा को समझने मे अधिक सूक्ष्म रूप से सहायता करते हैं।

4 सामाजिक विज्ञानो मे सामाजिक परिस्थितियों को समझने मे प्रतिरूप उपयोगी होते हैं।

5 प्रतिरूप जटिल घटनाओ और व्यवस्थाओ को समझने मे भी अनुसन्धानकर्त्ता के लिए उपयोगी होते हैं।

6 प्रतिरूप पूर्वकथन (Prediction) एव सत्यापन (Verification) मे भी अत्यन्त उपयोगी होते हैं।

प्रकट है कि सामाजिक अनुसन्धान मे प्रतिरूपो का महत्त्व एव उपयोगिता बहुत अधिक है। एक प्रतिरूप की महत्ता का निर्धारण इस बात पर निर्भर करता है कि वह किस सीमा तक किसी शोध-अध्ययन का मार्ग प्रशस्त करती है।

हमे ध्यान रखना चाहिए कि प्रतिरूपो की यह उपयोगिता सीमित एवं अस्थाई होती है, लेकिन फिर भी ये प्रतिरूप सिद्धान्त-निर्माण, समस्या या विषय के विश्लेषण, आनुभविक अनुसन्धान, पूर्व-कथनीयता, मापन एव भविष्यवाणी करने के क्षेत्र म अत्यन्त उपयोगी होते हैं और यही कारण है कि सामाजिक अनुसन्धान म इन प्रतिरूपो का प्रयोग उत्तरोत्तर बढता ही जा रहा है।

प्रतिरूप की सीमाएँ
(Limitations of Model)

प्रतिरूप की उपरोक्त उपयोगिताओ से हमे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि प्रतिरूपो मे कोई कमी या दोष नही होते हैं। वस्तुत प्रतिरूपो की भी अपनी सीमाएँ होती हैं। इसकी प्रमुख सीमाएँ निम्न हैं—

1 प्रतिरूप का सबसे बडा दोष यह है कि प्रतिरूप मे हम किसी भी वस्तु अथवा घटना को उसके सम्पूर्ण म नही देख सकते। बल्कि सामान्यत: प्रतिरूप वस्तु अथवा घटना के कुछ चुने हुए पक्षो को ही प्रतिबिम्बित करने की एक विधि है। किसी भी एक माडल मे यथार्थ की सत्यता को उसकी सम्पूर्णता मे प्रकट करने की क्षमता नही होती है। अत प्रतिरूप यथार्थ का चित्रण एक विशिष्ट दृष्टिकोण से ही करता है।

2 प्रतिरूपो का प्रयोग करते समय एक और कठिनाई यह उपस्थित होती है कि सामान्यत अनुसन्धानकर्त्ता प्रतिरूप को ही वास्तविकता मान लेता है। ऐसी स्थिति मे अनुसन्धानकर्त्ता मे एक विशिष्ट प्रकार की अभिनति का प्रवेश हो जाता है, जो किसी भी वैज्ञानिक अध्ययन के लिए अनुपयुक्त है। प्रतिरूप का प्रयोग करने वाला अनुसन्धानकर्त्ता प्राय प्रतिरूप का यथार्थ के साथ ऐसा सम्बन्ध स्थापित कर लेता है जैसा कि वस्तुत होता नही है। हमे ध्यान रखना चाहिए कि प्रतिरूप यथार्थ नहीं है अपितु यथार्थता के साथ निकट सम्बन्ध रखने वाली एक विधि है।" 'रोबिन फोक्स' ने नातेदारी (Kinship) एव विवाह (Marriage) के प्रतिरूपो की विवेचना करते समय लिखा है कि बहुत कम वास्तविकताएँ उसके प्रतिरूप के समान होती हैं।

3 प्रतिरूप की एक और कठिनाई यह है कि जब प्रतिरूप को यथार्थता के प्रस्तावित कथन की अपेक्षा एक वास्तविकता मान लिया जाता है, तब यह सम्भव है कि वह स्थिति अनुसन्धानकर्त्ता के लिए अनुसन्धान का रास्ता ही बन्द कर दें। यह भी सम्भव है कि वह अपने प्रतिरूप मे ऐसे चरो को सम्मिलित कर ले जो अध्ययन की जाने वाली घटना के लिए निरर्थक साबित हो, और ऐसे चरो को सम्मिलित करना भूल जाए जो अध्ययन की जाने वाली घटना के लिए आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण हो।

सामाजिक अनुसन्धान के प्रतिरूप
(Models in Social Research)

सामाजिक अनुसन्धान के प्रतिरूप तैयार करने के आधार के रूप मे चरो

(Variables) का प्रयोग किया जाता है। एक चर एक ऐसी सूची (List) है जो हमे समग्र (Universe) के प्रत्येक सदस्य द्वारा ग्रहण किए गए मूल्य को बनाती है। व्यक्ति द्वारा एक चर के सदर्भ मे ग्रहण किया गया मूल्य सार्वजनिक एव निजी हो सकता है।

जॉन गालटुंग (John Galtung) ने अपनी कृति 'थ्योरी एण्ड मेथड्स ऑफ सोशल रिसर्च' मे तीन प्रकार के चरो की विवेचना की है। वे हैं।[1]

1 **पृष्ठभूमि सम्बन्धी चर**—यह एक ऐसा चर है जो एक विशिष्ट प्रकार की अन्त क्रिया की व्यवस्था के अन्तर्गत सार्वजनिक तथा स्थाई होता है।

2 **व्यक्तित्व सम्बन्धी चर**—व्यक्तित्व सम्बन्धी चर वह चर है जो स्वय व्यक्ति के लिए अज्ञात हो सकता है, और जिसको जानने के लिए मनोवैज्ञानिक दक्षताओ की आवश्यकता होती है।

3 **व्यवहार सम्बन्धी चर**—व्यवहार या मनोवृत्ति सम्बन्धी चरो की श्रेणी मे उन चरो को सम्मिलित किया जाता है, जो व्यक्ति की व्यवहार एव मनोवृत्ति सम्बन्धी विशेषताओ को व्यक्त करने के लिए प्रयोग म लाए जाते हैं।

इन्ही तीन चरो के आधार पर जॉन गालटुंग ने इनके मध्य सम्बन्धो का अध्ययन करने के लिए प्रयोग मे लाए जाने योग्य सामाजिक अनुसन्धान के प्रतिरूपो का उल्लेख किया है जिसे निम्न चार्ट द्वारा समझा जा सकता है[2]—

प्रतिरूप	पृष्ठभूमि सम्बन्धी चर	व्यक्तित्व सम्बन्धी चर	व्यवहार सम्बन्धी चर
मनोवैज्ञानिक प्रतिरूप		———————————	→
समाजशास्त्रीय प्रतिरूप	———→		——————→
समाज मनोवैज्ञानिक प्रतिरूप	[	————————————	→]
	———→ ..	....————————	→]
मध्यवर्ती चरो का प्रतिरूप	———————→	————————	→
सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रतिरूप	———————→		

उपरोक्त तालिका म हम सामाजिक अनुसन्धान क पाँच प्रमुख प्रतिरूपो को देखते हैं। इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

1 मनोवैज्ञानिक प्रतिरूप (Psychological Model)—मनोवैज्ञानिक प्रतिरूप के अन्तर्गत व्यक्तित्व सम्बन्धी चरों द्वारा व्यवहार सम्बन्धी चरो पर डाले गए प्रभाव का सीधे एव प्रत्यक्ष रूप से अध्ययन किया जाता है।

2 **समाजशास्त्रीय प्रतिरूप (Sociological Model)**—समाजशास्त्रीय प्रतिरूप का प्रयोग करते समय पृष्ठभूमि सम्बन्धी चरो द्वारा व्यवहार सम्बन्धी चरो पर डाले गए प्रभाव का सीधे एव प्रत्यक्ष रूप से पता लगाया जाता है।

1-2 *John Galtung* Theory and Methods of Social Research, p 30-35

3 समाज-मनोवैज्ञानिक प्रतिरूप (Socio-Psychological Model)—समाज मनोवैज्ञानिक प्रतिरूप वस्तुत प्रथम एव द्वितीय प्रतिरूपो अर्थात् मनोवैज्ञानिक प्रतिरूप एव समाजशास्त्रीय प्रतिरूप का सम्मिलित रूप है। इस प्रकार इसमे दोनो प्रकार के प्रतिरूपो का प्रयोग किया जा सकता है।

4. मध्यवर्ती चरो का प्रतिरूप (Intervening Variable Model)—मध्यवर्ती चरो के प्रतिरूप के अन्तर्गत सर्वप्रथम पृष्ठभूमि सम्बन्धी चरो द्वारा व्यक्तित्व सम्बन्धी चरों पर डाले गए प्रभाव तथा तत्पश्चात् व्यक्तित्व सम्बन्धी चरो द्वारा व्यवहार सम्बन्धी चरो पर डाले गए प्रभाव की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

5 सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रतिरूप (The Social Psychological Model)—सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रतिरूप का प्रयोग सामाजिक अनुसन्धान मे उस समय किया जाता है जबकि हम पृष्ठभूमि सम्बन्धी चरो द्वारा व्यक्तित्व सम्बन्धी चरो पर डाले गए प्रभाव की जानकारी प्राप्त करने मे अभिरुचि रखते हैं।

इस प्रकार हम इन सामाजिक अनुसन्धान के प्रमुख प्रकारो द्वारा हम एक प्रकार के चर (Variable) द्वारा दूसरे प्रकार के चरो पर डाले जाने वाले प्रभाव का अध्ययन करते हैं।

प्रमुख समाजशास्त्रीय प्रतिरूप
(Main Sociological Model)

प्रत्येक समाजशास्त्री अपने मस्तिष्क मे समाज के एक या अधिक प्रतिरूपो को लेकर चलता है और व्यक्ति जो कुछ वह देखता है, जैसा दिखाई देता है और जैसा करता है आदि का उस पर प्रभाव पड़ता है एव वह अवलोकनो एव अन्य ऐसे ही तथ्यो को वृहत् व्याख्या की योजना मे सम्मिलित करता है। इस प्रकार समाजशास्त्री भी किसी भी वैज्ञानिक से कम नही है। प्रत्येक वैज्ञानिक वास्तविकता की *अवधारणा के बारे मे एक सामान्य जानकारी रखता है एव एक प्रकार की* मानसिक रूपरेखा या तस्वीर की जानकारी रखता है कि "यह कैसे साथ रखी गई है एव कैसे कार्य करती है।" इस प्रकार के प्रतिरूप विज्ञान मे अपरिहार्य होते हैं।

ऐलेक्स इकेलस (Alex Inkeles) ने अपनी कृति 'व्हाट इज सोशियोलोजी' मे समाजशास्त्रीय विश्लेषण में समाज के प्रमुख प्ररिरूपो का उल्लेख किया है।[1] आपके अनुसार समाज के प्रमुख प्रतिरूप निम्नांकित हैं—

1. उद्‌विकासीय प्रतिरूप (The Evolutionary Model)
2. सावयववादी प्रतिरूप सरचनात्मक-प्रकार्यवाद (The Organismic Model : Structural-Functionalism)

1 *Alex Inkeles* : Ibid, p 28–46

3 सन्तुलन बनाम संघर्ष प्रतिरूप (Equilibrium Vs Conflict Model)
4 भौतिक विज्ञान का प्रतिरूप (The Physical Science Model)
5 सांख्यिकीय एव गणितीय प्रतिरूप (Statistical and Mathematical Model)

लेकिन वस्तुत समाजशास्त्र मे प्रथम तीन प्रतिरूपो को ही अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है अत हम यहाँ इनको थोडा विस्तार से समझने का प्रयास करेंगे।

1. उद्‌विकासीय प्रतिरूप (The Evolutionary Model)

प्रारम्भिक समाजशास्त्रियो की विचारधारा सामान्यत इस धारणा से प्रभावित थी कि व्यक्ति एव समाज की अवधारणा का विकास उद्‌विकास के क्रमिक चरणो के रूप मे सरल से जटिल दिशा की ओर हुआ है। समाज का सामान्य उद्‌विकासीय प्रतिरूप अनेक विशिष्ट सिद्धान्तो का प्रतिनिधित्व करता है। समाजशास्त्र के जनक 'ऑगस्त कॉम्ट' (August Comte) ने ज्ञान के विकास का विश्लेषण करते हुए कहा कि उसके विकास के तीन स्तर होते हैं जो निम्न हैं—

A धार्मिक अवस्था (Theological Stage)
B. तात्विक अवस्था (Metaphysical Stage)
C वैज्ञानिक अवस्था (Scientific Stage)

आरम्भ मे ज्ञान का आधार 'धार्मिक' था, बाद म धर्म' का स्थान 'तर्क' ने ले लिया एव ज्ञान के विकास की अन्तिम अवस्था वैज्ञानिक थी। उदाहरण के लिए किसी समय यह माना जाता है कि वर्षा का होना इन्द्र देवता की इच्छा पर निर्भर करता है, यह उक्ति उस समय जबकि कोई आनुभविक प्रमाण नही था, मान्य रही। लेकिन आज हम सभी वर्षा होने के वैज्ञानिक कारण को जानते हैं।

कॉम्ट के बाद 'हरबर्ट स्पेन्सर' ने उद्‌विकासीय प्रतिरूप को आगे बढाया। स्पेन्सर का तो कथन ही था कि "समाजशास्त्र उद्‌विकास के जटिल स्वरूप का अध्ययन करता है।"[1] उद्‌विकास की प्रक्रिया के अनेक स्वरूप हो सकते हैं। विकास एक दिशा मे हो सकता है अथवा अनेक दिशाओ मे।

पितृम सोरोकिन ने भी सांस्कृतिक परिवर्तन की व्याख्या करते हुए यह समझाने का प्रयास किया है कि समाज मे संस्कृति का उद्‌विकास विचारात्मक (Ideational), आदर्शात्मक (Idealistic) एव इन्द्रियपरक (Sensate) प्रकार की सांस्कृतिक स्थितियो से प्रसारित होता है।

विलियम ग्राहम समनर जो कि 'सामाजिक डार्विनवादी' (Social

1 *Herbert Spencer* : The Study of Sociology, p 350.

Darwinist) के नाम से जाने जाते थे, ने भी उद्विकास के विचार का समर्थन किया।

दुर्खीम (Durkheim) ने भी अपने शोध ग्रन्थ 'दि डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी' मे बताया कि समाज के दो मुख्य प्रकार, जिनके आधार पर समाज मे श्रम विभाजन की अवधारणा का विकास हुआ, भी दो मुख्य प्रकार की सश्लिष्टताओ (मैकेनिकल सोलीडेरिटी एव ओरगेनिक सोलीडेरिटी) से गुजरा है।[1] दुर्खीम से पहले जर्मन समाजशास्त्री टॉनीज ने भी दो प्रकार के समुदायो जेमीनशाफ्ट एव जेसलशाफ्ट के विकास का उल्लेख इसी प्रक्रिया से समझाया है।

उद्विकासीय प्रतिरूप के द्वारा अध्ययन करने के लिए समाजशास्त्र को ऐतिहासिक पक्ष पर बल देकर सामाजिक सस्था, सामाजिक प्रक्रिया, सामाजिक नियन्त्रण एव उनसे उत्पन्न एव प्रभावित सामाजिक सम्बन्धो का अध्ययन करना चाहिए।

2 सावयववादी प्रतिरूप, सरचनात्मक-प्रकार्यवाद

(The Organismic Model : Structural Functionalism)

जीवित सावयव एव समाज के मध्य सादृश्यता (Analogy) उतनी ही पुरानी है जितने कि सामाजिक विचार। कॉम्ट के पूर्ववर्ती विचारको मे सादृश्यता (Organic Analogy) की अवधारणा विस्तृत रूप से पाई जाती है। प्लेटो (Plato) का नाम इस सम्बन्ध मे श्रेष्ठ उदाहरण है। इस सम्बन्ध मे सबसे महत्त्वपूर्ण प्रतिमान यह है कि इसे सामान्यत 'सरचना' (Structure) एव 'प्रकार्य' (Function) के साथ सम्बन्धित करके समझा जाता है। इनका प्रयोग हरबर्ट स्पेन्सर दुर्खीम एव ब्रिटिश सामाजिक मानवशास्त्रियो मेलिनोस्की (Malinowski) व रेडक्लिफ ब्राउन (Redcliffe Brown) द्वारा किया गया है।

लेकिन समाजशास्त्र के इस प्रतिरूप, जिसे 'सरचनात्मक-प्रकार्यात्मक प्रतिरूप' (Structural-Functional Model) के नाम जाना से जाता है, का प्रयोग मुख्यत अमेरिकी समाजवेत्ताओ ने किया, जनमे टालकट पारसन्स (Talcott Parsons), किंग्सले डेविस (Kingsley Davis), रोबर्ट के मर्टन (Robert K Merton) आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि एक समाज अपने सदस्यो के पूर्ण परिवर्तित हो जाने के बाद भी किस प्रकार निरन्तर बना रहता है। समाज मे यह परिवर्तन मनुष्यो की नाशवान (मृत्यु के कारण) प्रकृति के कारण है। अत समाज मे व्यक्ति आते और चले जाते हैं लेकिन फिर भी परिवार, सस्था, सरकार आदि निरन्तर बने रहते हैं और चलते जाते हैं। इस प्रकार सरचनात्मक-प्रकार्यवादी प्रतिरूप के द्वारा यह समझने का प्रयास किया जाता है कि किसी एक भाग मे परिवर्तन का अन्य भागो पर प्रभाव पडता है। दूसरा, सरचनात्मक-प्रकार्यवादी

1 *Emile Durkheim* : The Division of Labour in Society, 1933

प्रतिरूप के अन्तर्गत इस बात को भी समझने का प्रयास किया जाता है कि किसी भी सरचना की विभिन्न इकाइयाँ किस प्रकार सम्बन्धित हैं और किस प्रकार वे एक ऐसी समन्वयकारी या सन्तुलित व्यवस्था का निर्माण करती है, जिससे कि समाज अपने जटिल रूप मे बना रहता है। तीसरा, इस सरचनात्मक-प्रकार्यवादी प्रतिरूप मे किसी भी प्रघटना के समाज पर होने वाले प्रभावो का विश्लेषण किया जाता है। ऐलेक्स इकेलस ने लिखा है कि उद्विकासीय एव प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण एक-दूसरे के विरोधी नही हैं, लेकिन उनकी रुचियाँ एव दबाव पृथक् पृथक हैं। उद्विकासीय प्रतिरूप कॉम्ट के 'सामाजिक गतिशीलता' (Social Dynamics) के विचार के समान है जबकि सरचनात्मक-प्रकार्यवादी प्रतिरूप उसके 'सामाजिक स्थैतिक' (Social Statics) के विचार के समीप है। उद्विकासवादियो का मुख्य कार्य स्थापित उद्विकासीय पैमाने के अनुसार समाजो का वर्गीकरण करना होता है। अत समय (Time), विकास का स्तर (Stage of Development) एव परिवर्तन (Change) उनकी रुचि के केन्द्रीय विषय हैं। जबकि सरचनात्मक-प्रकार्यात्मक प्रतिरूप के समर्थक 'समय' को कम महत्त्व देते हैं। ये एक समय विशिष्ट मे यह समझने का प्रयास करते हैं कि व्यवस्था कैसे काम करती है।[1]

इस प्रकार सरचनात्मक-प्रकार्यवादी प्रतिरूप के कुछ प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं—

1 सामाजिक जीवन की आवश्यकताओ एव दशाओ की पूर्ति के लिए प्रयास करना और यह पता लगाना कि एक दिया हुआ समाज किस प्रकार इन आवश्यकताओ की पूर्ति करता है जैसे 'परिवार' सदस्यो की यौन सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

2. यह प्रतिरूप यह भी विश्लेषित करने का प्रयास करता है कि समाज की विभिन्न सरचनाएँ किस प्रकार समाज की एकता एव उस एक सम्पूर्ण व्यवस्था (सावयव) बनाए रखने के लिए समन्वय एव एकीकरण करती हैं।

3 यह प्रतिरूप समाजशास्त्रीय विचारो एव अनुसन्धान के विकास मे नि सन्देह महत्त्वपूर्ण योगदान देता है।

4 यह प्रतिरूप हमे सामाजिक जीवन की निरन्तरता के अनेक महत्त्वपूर्ण प्रकार्यों के प्रति भी सवेदन अथवा चेतन करता है जिनको हम सम्भवतया या तो छोड देते हैं या कम महत्त्व देते हैं।

5 एक सामाजिक व्यवस्था के अगो की अन्तर्सम्बन्धता हमे सामाजिक परिवर्तन को समझने मे भी मदद करती है। इसके द्वारा हम यह जान पाते हैं कि समाज के किसी एक भाग मे होने वाला परिवर्तन उसके दूसरे भागो के लिए भी कितना महत्त्वपूर्ण है।

6 यह प्रतिरूप तुलनात्मक अध्ययनो के लिए भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। विशेषकर आदिम सस्कृतियो एव हमारे लिए अपरिचित सस्कृतियो की तुलना करने के लिए इस प्रतिरूप का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

1 *Alex Inkeles*, op cit, p 35

3 सन्तुलन-बनाम संघर्ष प्रतिरूप
(Equilibrium Vs Conflict Model)

समाज का सन्तुलन या समन्वयात्मक प्रतिरूप वस्तुत प्रकार्यवादी प्रतिरूप का ही एक विशिष्ट रूप है। समाज के इस समन्वयात्मक प्रतिरूप का समर्थन टालक्ट पारसन्स (Talcott Parsons) एवं उनके अनुयायियो ने किया। पारसन्स का मानना है कि समाज आन्तरिक व बाह्य शक्तियो के बावजूद भी सन्तुलन की व्यवस्था को स्वत बनाए रखता है। व्यवस्था के रूप मे समाज तभी तक चल सकता है जब तक इसमे संगठन एवं सन्तुलन बना रहे उसकी मूलभूत आवश्यकताओ की पूर्ति होती रहे। इस प्रकार पारसन्स के अनुसार समाज व्यवस्था निरन्तर सन्तुलन बनाए रखकर चलने वाली एवं जीवित रहने वाली घटना है। अत समाज व्यवस्था मे सन्तुलन (Equilibrium) अन्तर्निहित है। इस सन्तुलन को बनाए रखने वाली क्रियाएं सामान्य (Normal) होती हैं और सन्तुलन को बिगाड़ने वाली क्रियाएँ व्याधिकीय (Pathological) या असामान्य होती हैं।

इसी प्रकार संरचनात्मक प्रकार्यवादी प्रतिरूप के आलोचक इस बात की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं कि सामाजिक तनाव व संघर्षों के प्रति विमुख होने के कारण यह प्रतिरूप राजनीतिक दृष्टिकोण से रूढिवादी प्रभावो को समाजशास्त्रीय विवेचन से सम्बन्धित करता है। इस उपागम की आलोचना मूलत संघर्ष प्रतिरूप' (Conflict Model) के द्वारा की गई है। संघर्ष प्रतिरूप यह मानता है कि वर्तमान समाज को एक सन्तुलित समाज स्वीकार कर लेना त्रुटिपूर्ण धारणा है। उसके अनुसार वतमान समाज संघर्ष से आक्रान्त है। वे मानते हैं कि सामाजिक जीवन का प्रमुख आधार सामान्य सहमति नहीं है अपितु असहमति के वे विभिन्न आयाम हैं जो कि विभिन्न समूहो के मध्य सत्ता पाने की प्रतिस्पर्द्धा के फलस्वरूप प्रकट होते हैं। अत समाज की प्रमुख प्रक्रिया सन्तुलन अथवा एकात्मकता की नही है, अपितु उस संघर्ष से प्रकट होती है जिसके अन्तर्गत वे व्यक्ति जो अभावग्रस्त हैं, जीवन से सुविधाएँ प्राप्त करना चाहते हैं, और दूसरे जिनके पास सुविधाएँ हैं, इन लोगो को अधिक सुविधाएँ प्राप्त करने मे बाधक बनते हैं।

समाज का संघर्ष प्रतिरूप हाल ही म अधिक व्यापक रूप मे उभर कर सामने आया है, और इसके प्रबल समर्थको मे लेविस कोजर (Lewis Coser), राल्फ डेहरेन्डोर्फ (Ralf Dahrendorf), जॉन गालटुंग (John Galtung) हैं। लेकिन इस प्रतिरूप को अधिक महत्त्वपूर्ण समर्थन आधुनिक समाजशास्त्र क आलोचको द्वारा प्राप्त हुआ है जिनमे सी राइट मिल्स (C Wright Mills) का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

वर्तमान समय मे रेडिकल समाजशास्त्र की विचारधारा ने भी इस प्रतिरूप को अपने अध्ययन का केन्द्र बनाकर अमेरिका मे विशेषकर विद्यार्थियों व बुद्धिजीवियो को काफी प्रभावित किया है। इस प्रकार संघर्ष प्रतिरूप के द्वारा समाज की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन संघर्ष की प्रक्रिया को केन्द्र बनाकर किया जा सकता है।

इकलेस ने 'प्राकृतिक विज्ञानों के प्रतिरूप' (The Physical Science Model) एवं 'सांख्यिकीय व गणितीय प्रतिरूप' (Statistical and Mathematical Model) को भी सामाजिक समस्याओं के अध्ययन मे सम्मिलित किया है। समाजशास्त्र मे इन प्रतिरूपों का कितना उपयोग हो सकता है, इसके बारे मे व्यापक मतभेद हैं। इसमे सन्देह नहीं कि वैज्ञानिक आधारों पर एवं गणकों (Computers) के अधिकाधिक प्रयोग से विभिन्न प्रकार के आँकड़ों को अधिक परिमार्जित रूप से विश्लेषित करना सम्भव हो सका है। लेकिन आँकड़ों के विश्लेषण की समाजशास्त्र मे अपनी कई सीमाएँ हैं। इसी प्रकार प्राकृतिक विज्ञान के प्रतिरूप भी सामाजिक समस्याओं के अध्ययन मे अपनी सीमाएँ रखते हैं।

पैराडाइम
(Paradigm)

सामाजिक अनुसन्धान मे प्रयुक्त की जाने वाली पद्धतियों मे एक और पद्धति पैराडाइम (Paradigm) है। 'पैराडाइम' पद्धति का प्रयोग वर्तमान समय मे प्राकृतिक एवं सामाजिक दोनों ही विज्ञानों मे बहुतायत से किया जाने लगा है।

समाजशास्त्र मे 'पैराडाइम' का प्रयोग सम्भवत सबसे पहले रॉबर्ट के मर्टन (Robert K Merton) ने किया। रॉबर्ट मर्टन ने अपनी कृति 'सोश्यल थ्योरी एण्ड सोशयल स्ट्रक्चर' मे समाजशास्त्र मे प्रकार्यात्मक विश्लेषण का पैराडाइम प्रस्तुत किया था। इस पैराडाइम के माध्यम से मर्टन ने प्रकार्यात्मक विश्लेषण से सम्बन्धित मूल अवधारणाएँ, पद्धति एवं निष्कर्ष प्रस्तुत किए थे।

रॉबर्ट मर्टन के बाद थॉमस कुहन (Thomas Kuhn) ने 1962 मे प्रकाशित अपनी कृति 'दि स्ट्रक्चर ऑफ साइन्टीफिक रिवोल्युशन्स' मे पैराडाइम को एक सर्वथा नवीन रूप मे प्रस्तुत किया। थॉमस कुहन के प्रयासों ने ही पैराडाइम को आधुनिक सामाजिक अनुसन्धान की एक बहुचर्चित पद्धति बना दिया। कुहन के विचारों से प्रभावित होकर ही अनेक सामाजिक वैज्ञानिकों ने घटनाओं की व्याख्या एवं विश्लेषण के लिए पैराडाइम का प्रयोग किया। इस सम्बन्ध मे फ्रेडरिक (Fredrick) ने 1970 मे 'ए सोश्योलोजी ऑफ सोश्योलोजी' (A Sociology of Sociology) तथा रिट्जर (Ritzer) ने 1975 मे 'सोश्योलोजी ए मल्टीपल पैराडाइम साइन्सेज' (Sociology A Multiple Paradigm Sciences) मे पैराडाइम पद्धति का विस्तृत उल्लेख किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समाजशास्त्र मे पैराडाइम का प्रयोग सामाजिक अनुसन्धान की एक पद्धति के रूप मे किया जाता है। रॉबर्ट मर्टन के अनुसार "एक पैराडाइम किसी विशिष्ट क्षेत्र मे किए जाने वाले अन्वेषण का मार्गदर्शन करने के लिए की गई अवधारणाओं एवं प्रस्थापनाओं का एक समूह है।" दूसरे शब्दों मे समाजशास्त्रीय विश्लेषण मे जिन उपकल्पनाओं, अवधारणाओं तथा मूलभूत प्रस्थापनाओं का प्रयोग किया जाता है उस समस्त सामग्री को एक नियोजित ढंग से एक 'रूप' मे प्रदर्शित करने को मर्टन ने पैराडाइम कहा है।

थॉमस कुहन ने मर्टन से थोडा हट कर एव एक नए रूप मे पैराडाइम का प्रयोग किया है। आपने पैराडाइम का प्रयोग मूलत प्राकृतिक विज्ञानो एव सामाजिक विज्ञानो मे भिन्नता दर्शाने के सन्दर्भ मे किया है। प्राकृतिक विज्ञानो मे पैराडाइम का अर्थ ऐसी सार्वभौमिक एव सर्वसम्मत वैज्ञानिक उपलब्धियो से लिया जाता है जो एक समय विशेष मे अनुसन्धानकर्त्ताओ के समुदाय के समक्ष आदर्श समस्याएँ एव उनके समाधान प्रस्तुत करती है। पैराडाइम की परिधि मे किए गए अनुसन्धान को 'सामान्य विज्ञान' की सज्ञा दी जाती है। सामाजिक विज्ञान अभी तक अपनी मूलभूत समस्याओ से ही नही उभर पाए हैं अत कुहन के अनुसार सामाजिक विज्ञान अभी 'पूर्व पैराडाइम' (Pre-Paradigm) की स्थिति मे ही है।

पैराडाइम का अर्थ एव परिभाषा
(Meaning and Definition of Paradigm)

सामाजिक अनुसन्धान मे समाज वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए किसी प्रमुख क्षेत्र या सैद्धान्तिक उपागम से सम्बन्धित प्रमुख उपकल्पनाओ, मान्यताओ, क्रिया-विधियो, प्रस्थापनाओ एव समस्याओ के पुञ्ज को 'पैराडाइम' (Paradigm) कहा जाता है। पैराडाइम वस्तुत एक ऐसा सैद्धान्तिक ढाँचा प्रस्तुत करता है, जिसमे तथ्यो को रख कर उपर्युक्त निष्कर्षों पर पहुँचा जा सके। और भी स्पष्ट रूप मे पैराडाइम एक ऐसी रूपरेखा या रूपावली का नाम है जो विचारो को व्यवस्थित एव क्रमबद्ध रूप मे प्रस्तुत करता है। पैराडाइम के द्वारा अन्वेषण सामग्री के विश्लेषण हेतु प्रयोग किए जाने वाले पूर्वानुमानो, अवधारणाओ, उपकल्पनाओ तथा आधारभूत प्रस्थापनाओ (Propositions) को एक रूपाकार प्रदान किया जाता है।

पैराडाइम के अर्थ को अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए यह उपर्युक्त होगा कि हम पैराडाइम की कुछ परिभाषाओ को समझ लें।

वेब्स्टर (Webster) ने अपनी 'न्यू वर्ल्ड डिक्शनरी' मे पैराडाइम को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "पैराडाइम शब्द का प्रयोग एक प्रतिमान (Pattern), उदाहरण (Example) अथवा एक प्रतिरूप (Model) के अर्थ मे किया जाता है।"[1]

कालिन्जर ने भी इससे मिलती-जुलती परिभाषा प्रस्तुत की है। आपके अनुसार 'पैराडाइम' शब्द 'मॉडल' का समानार्थक शब्द ही है, लेकिन पैराडाइम म मॉडल (प्रतिरूप) म निहित 'मूल्य भावना' नही होती।

थियोडोर्सन एव थियोडोर्सन (Theodorson and Theodorson) ने भी 'ए मॉडर्न डिक्शनरी ऑफ सोशियोलॉजी' मे लिखा है कि "पैराडाइम विश्लेषण के किसी एक उपागम अथवा किसी एक प्रमुख क्षेत्र मे से सम्बन्धित मुख्य-मुख्य अवधारणाओ, अनुमानो, प्रस्थापनाओ, समस्याओ तथा शोध-विधियो की एक

1 *Webster* : New World Dictionary, 1968, p 1060

नक्षिप्त रूपरेखा को कहा जाता है। सामान्यत: इस शब्द का प्रयोग किसी प्रतिरूप (Model) अथवा योजना के लिए किया जाता है।"[1]

रॉबर्ट के मर्टन ने पैराडाइम को समाजशास्त्र विश्लेषण के किसी विशिष्ट क्षेत्र की सूत्रबद्ध योजना (Codification) प्रस्तुत करने की एक विधि माना है। मर्टन के अनुसार किसी विशिष्ट क्षेत्र के सम्बन्ध मे कुछ मूलभूत विचारों के आधार पर बनाई गई एक सामान्य रूपरेखा को पैराडाइम कहा जाता है। पैराडाइम की परिभाषा मे मर्टन ने सामाजिक सरचना के विश्लेषण मे प्रयोग किए जाने वाले पैराडाइम की व्याख्या करते हुए लिखा है कि "पैराडाइम शब्द सामाजिक सरचना मे पाए जाने वाले एक निश्चित प्रतिमान अथवा एक निश्चित व्यवस्था का परिचायक है"........वह किसी सामाजिक घटना के एक समूह का प्रतिनिधित्व करने वाले एक विशिष्ट उदाहरण का सकेत देता है।"[2]

थॉमस कुहन ने 'दि स्ट्रक्चर ऑफ साइन्टीफिक रिवोल्युशन्स' मे लिखा है कि "एक पैराडाइम किसी समुदाय के सदस्यो द्वारा अपनाए गए विश्वासो, मूल्यो एव प्रविधियो आदि का पुञ्ज है। दूसरे शब्दो मे किसी विशिष्ट विज्ञान अथवा क्षेत्र विशेष के अनुसन्धानकर्ताओं द्वारा अपनाई गई अवधारणाओ, अनुमानो, आधारभूत नियमो, प्रयोगसिद्ध विधियो तथा प्रनिबद्ध को प्रकट करने वाली अन्य वस्तुओ के एक अनुशासनात्मक ढाँचे को पैराडाइम कहते हैं।"[3]

थॉमस कुहन ने इसकी एक अन्य परिभाषा प्रस्तुत की है। आपके अनुसार किसी भी सिद्धान्त, पद्धति अथवा अनुसन्धान सामग्री मे अन्तर्निहित प्रकट अथवा अप्रकट अनुमानो अथवा अवधारणीकरणो को पैराडाइम कहा जाता है।

वस्तुत कुहन की परिभाषाएँ अस्पष्ट हैं। इनकी आलोचनाएँ भी हुई हैं। एक आलोचक ने लिखा है कि कुहन ने लगभग बाईस भिन्न अर्थों मे पैराडाइम की अवधारणा का प्रयोग किया है, जिससे काफी असमजसना पैदा हो गई है। इसीलिए कुहन ने पैराडाइम की अपनी अवधारणा पर पुन विचार किया और आलोचकों के कई प्रश्नों के उत्तर अपने एक लेख 'सेकन्ड थाट्स ऑन पैराडाइम' मे देने का प्रयास किया।[4]

होल्ट एव रिचर्डसन (Holt and Richerdson) ने एक लेख 'कम्पीटीटिव पैराडाइम इन कन्टेम्परेरी रिसर्च' मे पैराडाइम की व्याख्या करते हुए लिखा है कि "एक पैराडाइम एक अवधारणात्मक प्रतिमान (Conceptual Pattern) अथवा एक सन्दर्भ-परिधि (Framework) है जिसकी सहायता से हम अपने अनुसन्धान कार्य का नियोजन, सगठन एव निर्देशन करते हैं।"

1 *Theodorson and Theodorson* A Modern Dictionary of Sociology, 1969, p 290

2 *Robert K Merton* Social Theory and Social Structure

3 *Thomas Kohan* The Structure of Scientific Revolution,

4 *Thomas Kohan* : Second Thought on Paradigm in Frederick's Book

किनलॉक (Kinlack) ने 'सोश्योलोजीकल थ्योरी : इट्स डवलपमेन्ट्स एण्ड मेजर पैराडाइमस्' मे लिखा है कि "किसी भी सिद्धान्त की आधारशिला उसका अन्तर्निहित पैराडाइम होना है, जिसकी रचना व्याख्यात्मक अवधारणाओ तथा अवधारणीकरणो द्वारा होती है। ये अवधारणाएँ तथा अवधारणीकरण इस बात का स्पष्टीकरण करते हैं कि घटनाएँ किस प्रकार और क्यो घटित होती हैं।"

उपरोक्त परिभाषाओ के आधार पर हम देखते हैं कि मूल मे अनुसन्धान कार्य को करने के लिए अवधारणाओ, उपकल्पनाओ, पद्धतियो, प्रस्थापनाओ आदि की बनाई गई एक योजना, रूपरेखा या सन्दर्भ-परिधि ही पैराडाइम कहलाती है जो हमे निष्कर्ष निकालने मे भी सहायता प्रदान करती है।

पैराडाइम का महत्त्व एवं उपयोगिता
(Importance and Utility of Paradigm)

सामाजिक अनुसन्धान मे पैराडाइम का महत्त्व वर्तमान समय मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वस्तुत पैराडाइम अनुसन्धानकर्ता के लिए एक ऐसी मानसिक खिड़की का काम करती है जिसके द्वारा वह सामाजिक ससार को देखता है, सामान्यत वह जिस सामाजिक ससार को देखता है वह वस्तुपरक (Objective) दृष्टि से उस वस्तु अथवा घटना का बाह्य रूप होता है। इसे वह अवधारणाओ आदि को पैराडाइम के माध्यम से विश्लेषित करता है। विश्लेषण के भिन्न पैराडाइमो के प्रयोग के कारण ही अनुसन्धानकर्ताओ के द्वारा किए गए एक ही घटना के वर्णन मे हमे भिन्नता देखने को मिलती है।

सामाजिक विज्ञानो मे पैराडाइम का प्रयोग विश्व को देखने के एक विशिष्ट परिप्रेक्ष्य (Perspective) अथवा सन्दर्भ परिधि (Frame of Reference) के लिए किया जाता है।

रॉबर्ट के मर्टन ने अपनी पुस्तक म 'पैराडाइम द कोडीफिकेशन ऑफ सोश्योलोजीकल थ्योरी' के नाम से लिखी एक टिप्पणी मे पैराडाइम की उपयोगिताओ का उल्लेख किया है। आपके अनुसार पैराडाइम की पाँच प्रमुख उपयोगिताएँ हैं, जो निम्नांकित हैं[1]

1. पैराडाइम का एक प्रतीकात्मक प्रकार्य होता है (Paradigm has a Notational Function)—मर्टन के अनुसार एक पैराडाइम मुख्य-मुख्य अवधारणाओ तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धो को सुसम्बद्ध एव सक्षिप्त रूप म प्रस्तुत करता है। पैराडाइम का यह प्रयोग अवधारणाओ को वर्णन एव विश्लेषण के योग्य बनाता है।

2 पैराडाइम तार्किक रूप से उपयोगी है (Paradigm is Logically Useful)—पैराडाइम तथ्य (Fact), निष्कर्ष (Inference) तथा सैद्धान्तिक निष्कर्षों म भिन्नता प्रदर्शित करने मे अनुसन्धानकर्त्ता की सहायता करते है। इसके

1 *Robert K Merton*, op cit, p 69 72

अनिश्चित पैराडाइम तार्किक रूप से वैज्ञानिक उपकल्पनाओं से अनुसन्धानकर्त्ता की रक्षा में भी उपयोगी होता है।

3. पैराडाइम सैद्धान्तिक व्याख्याओं के सचयन में मदद देता है (Paradigm advance the commutation of theoretical Interpretation)—मर्टन के अनुसार "पैराडाइम वह नींव है जिस पर व्याख्याओं के भवन खड़े किए जाते हैं। इस प्रकार पैराडाइम सामाजिक घटनाओं की विवेचना का आधार प्रस्तुत करते हैं। इनके द्वारा अवधारणाओं को संक्षिप्त रूप दिया जाता है, ताकि व्याख्याओं की संरचना का निर्माण किया जा सके।

4 पैराडाइम व्यवस्थित प्रति स्पष्टीकरण में सहायक होते हैं (Paradigm Facilitate Systematics Cross-Tabulation)—पैराडाइम अपनी सुसम्बन्धता (Arrangement) तथा आन्तरिक व्यवस्था के कारण संग्रहित तथ्यों को व्यवस्थित रूप में वर्गीकृत एवं सारणीकृत करने में सहायक होते हैं। पैराडाइम द्वारा घटना के वर्णन की अपेक्षा विश्लेषण को प्रोत्साहित किया जाता है। उदाहरण के लिए जैसे सामाजिक संरचना के अध्ययन में पैराडाइम सामाजिक व्यवहार के तत्त्वों तथा इन तत्त्वों के मध्य उत्पन्न होने वाले सम्भावित तनावों एवं दबावों की ओर अनुसन्धानकर्त्ता का ध्यान आकर्षित करते हैं।

5 पैराडाइम *गुणात्मक तथ्यों के विश्लेषण में सहायक होते हैं (Paradigm helps in Analysis of Qualitative Facts)*—*पैराडाइम द्वारा गुणात्मक* विश्लेषण की विधियों को तार्किक विधियों के समकक्ष प्रदर्शित करने का प्रयास किया जाता है। इनके द्वारा आनुभविक एवं परिमाणात्मक विश्लेषण की यथार्थता तो प्रकट करना कठिन होता है, किन्तु फिर भी पैराडाइम द्वारा किया गया विधियों का सूत्रीकरण (Codification) वस्तुपरक एवं गणितीय जाँच के योग्य सिद्ध हो सकता है।

इस प्रकार रॉबर्ट मर्टन के अनुसार पैराडाइम समाजशास्त्री को स्वयं को एवं दूसरों को धोखा देने की प्रवृत्ति को कम करता है क्योंकि पैराडाइम अव्यक्त अवधारणाओं तथा अनुमानों के मनमाने एवं असावधानीपूर्वक प्रयोग किए जाने पर रोक लगाती है। मर्टन का यह मानना है कि पैराडाइम का प्रयोग गुणात्मक विश्लेषण को कुछ मात्रा में परिमाणात्मक विश्लेषण की यथार्थता देने में सहायक सिद्ध होगा।

पैराडाइम की उपयोगिता के बारे में थॉमस कुहन ने भी अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। थॉमस कुहन ने अपने एक लेख में लिखा है कि "वैज्ञानिक पैराडाइम संज्ञानात्मक (Cognitiev) एवं आदर्शात्मक (Normative) दोनों कार्य करता है। यह केवल किसी भी योजना को बनाने के लिए दिशा प्रदान नहीं करता है बल्कि उसका स्पष्टीकरण भी करता है। इस प्रकार पैराडाइम और भी स्पष्ट शब्दों में 'क्या है' (What is) और 'क्या होना चाहिए' (What should be) दोनों प्रकार

के विचारो को प्रस्तुत करता है।" थॉमस कुहन के अनुसार एक वैज्ञानिक पैराडाइम की निम्नांकित उपयोगिताएँ है—

1 पैराडाइम वस्तुत एक ऐसी छलनी का कार्य करता है, जिसके द्वारा अनुभव के उन पक्षो को छानकर अलग किया जा सकता है जो पैराडाइम के साथ मल खाते हैं।

2 पैराडाइम अनुसन्धान की सीमाओं का निर्धारण करता है अर्थात् किसी अनुसन्धान के लिए कौन-से प्रश्न सार्थक होगे एव कौन-से निरर्थक, इसका निर्णय पैराडाइम के आधार पर किया जा सकता है।

3 वैज्ञानिक पैराडाइम समाधान के लिए नवीन समस्याओं को प्रस्तुत करता है।

4 एक वैज्ञानिक पैराडाइम ऐसी घटनाओं की व्याख्या करता है जिनकी व्याख्या पहले के किन्ही पैराडाइम द्वारा न हो सकी हो।

5 पैराडाइम अपनी सत्यता की पुष्टि करने हेतु आनुभविक तथ्यो के एकत्रीकरण की नवीनतम विधियो तथा अनुसन्धान योजनाओं को सुझाता है।

6 वैज्ञानिक पैराडाइम किसी घटना का पूर्णत नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वस्तुत पैराडाइम व्याख्या की एक विधि है। एक क्षेत्र के पैराडाइम का प्रयोग अन्य क्षेत्रो मे भी किया जा सकता है। उदाहरणार्थ न्यूटन का पैराडाइम अठारवी व उन्नीसवी शताब्दी मे न केवल भौतिक विज्ञानो का एक प्रमुख पैराडाइम बना रहा, अपितु उसने तत्कालीन राजनीतिक विचारो को भी प्रस्तावित किया। ऐसा माना जाता है कि अमेरिकी सविधान के पीछे कार्यशील मूल सिद्धान्त 'सत्ता का विभाजन, नियन्त्रण एव सन्तुलन' की अवधारणा का आधार न्यूटन का क्रिया-प्रतिक्रिया का सिद्धान्त ही है।

इस प्रकार एक ही घटना को दो भिन्न परिप्रेक्ष्यों से देखना भी पैराडाइम के द्वारा सम्भव हो जाता है। सामाजिक विज्ञानो मे कार्ल मार्क्स एव माल्थस ने 'जनाधिक्य की समस्या' (Problem of Over Population) का दो भिन्न परिप्रेक्ष्यो मे अध्ययन किया। इस भिन्नता का कारण दोनों व्यक्तियो के देखने समझने के दो भिन्न दृष्टिकोण अथवा पैराडाइम रहे हैं। इस प्रकार पैराडाइम को हम एक परिप्रेक्ष्य के रूप मे भी देख सकते हैं जिसके द्वारा यह निर्धारित किया जाता है कि अनुसन्धान की क्या समस्याएँ हैं ? और उन्हे किस दृष्टिकोण से समझा व विश्लेषित किया जा सकता है। इस प्रकार हम देखते है कि सामाजिक विज्ञानो म और विशेषकर समाजशास्त्र मे पैराडाइम की अत्यन्त उपयोगिता है। घटनाओं को देखने व विश्लेषित करने के एक विशिष्ट परिप्रेक्ष्य, किसी घटना के प्रति नवीन दृष्टिकोण, शोध सीमाओं के निर्धारण, सैद्धान्तिक विवेचनाओं के सचयन, गुणात्मक तथ्यो के विश्लेषण आदि को समझने म पैराडाइम की अत्यन्त उपयोगिता है। जैसे-जैसे नवीन ज्ञान प्राप्त होता है, वैसे-वैसे पुराने पैराडाइम को सशोधित भी किया

जा सकता है, अत समाजशास्त्र मे पैराडाइम अपनी उपयोगिता वर्तमान समय मे भी बढ़ती ही जा रही है।

समाजशास्त्र मे प्रकार्यात्मक विश्लेषण के लिए एक पैराडाइम
(A Paradigm for Functional Analysis in Sociology)

रॉबर्ट के मर्टन ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'सोशयल थ्योरी एण्ड सोशयल स्ट्रक्चर' (Social Theory and Social Structure) मे समाजशास्त्र में प्रकार्यात्मक विश्लेषण के लिए एक पैराडाइम प्रस्तुत किया है। इस प्रकार मर्टन के द्वारा प्रस्तुत प्रकार्यात्मक विश्लेषण का यह पैराडाइम सम्भवत समाजशास्त्रीय साहित्य मे पैराडाइम का प्रथम उदाहरण है। रॉबर्ट मर्टन ने इस प्रकार्यात्मक विश्लेषण के पैराडाइम को प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि समाजशास्त्र मे प्रकार्यात्मक विश्लेषण के सूत्रीकरण (Codification) की दिशा मे सबसे प्रथम चरण यह है कि हम इस उपागम (प्रकार्यात्मक) की केन्द्रीय अवधारणाओं (Concepts) व समस्याओं के लिए एक पैराडाइम का निर्माण करें। मर्टन ने लिखा है कि यह पैराडाइम प्रकार्यात्मक विश्लेषण के लिए उससे सम्बन्धित अवधारणाएँ, पद्धति (Procedure) एव निष्कर्षों (Inference) को प्रस्तुत करता है।

रॉबर्ट मर्टन ने अपने इस पैराडाइम को ग्यारह प्रमुख इकाइयो (Units) म विभाजित कर प्रस्तुत किया है, जो निम्न हैं[1]—

1 इकाई(यां) जिनसे प्रकार्यों का किया जाना माना जाता है (The Unit(s) to which Functions are Imputed)—समाजशास्त्र मे सम्बन्धित अधिकांश आंकडों (Data) का विश्लेषण या तो किया जा चुका है या उनका विश्लेषण प्रकार्यात्मक विश्लेषण के आधार पर किया जा सकता है। इसके लिए प्रमुख आवश्यकता यह है कि विश्लेषण का लक्ष्य एक मानवीकृत इकाई (Standardized Unit) को प्रदर्शित करता हो। जैसे सामाजिक भूमिकाएँ (Social Roles), सस्थागत प्रतिमान (Institutional Patterns), सामाजिक प्रक्रियाएँ (Social Processes), सांस्कृतिक प्रतिमान (Cultural Pattern), सांस्कृतिक प्रतिमान भावनाएँ (Culturally Patterned Emotions), सामाजिक मानक (Social Norms), समूह सगठन (Group Organisation), सामाजिक सरचना (Social Structure), सामाजिक नियन्त्रण के साधन (Devices for Social Control) एव अन्य।

2 व्यक्तिगत स्वभावों की अवधारणाएँ (प्रेरणा, उद्देश्य) (Concepts of Subjective Disposition Motives, Purposes)—अनेक स्थानो पर प्रकार्यात्मक विश्लेषण अनिवार्य रूप से सामाजिक व्यवस्था म सम्मिलित व्यक्तियो की प्रेरणा (Motivation) की अवधारणा का विश्लेषण करता है। व्यक्तिगत स्वभावों की ये अवधारणाएँ अनेक बार वस्तुनिष्ठ परिणामों (मनोवृत्ति, विश्वास और व्यवहार)

1 *Robert K. Merton* · Ibid, p 104–108

जैसी विभिन्न अवधारणाओं से मिल जाती है, अतः इसका ध्यान प्रकार्यात्मक विश्लेषण में रखा जाना चाहिए।

3. वस्तुनिष्ठ परिणाम की अवधारणाएँ (प्रकार्य दुष्प्रकार्य)—मर्टन कहते है कि हमने अब तक प्रचलित दो प्रकार के भ्रम (Confusion) का अवलोकन किया है, जो प्रकार्य की प्रचलित अवधारणा को अस्पष्ट बना देते हैं—

(A) सामाजिक अथवा सांस्कृतिक व्यवस्था के समाजशास्त्रीय अवलोकनो को समाजशास्त्रीय पक्ष के प्रत्यक्ष योगदान तक सीमित करने के लक्षण।

(B) व्यक्तिगत प्रेरणा के वर्ग को वस्तुनिष्ठ वर्ग प्रकार्य के रूप मे गलत समझने के लक्षण।

मर्टन के अनुसार इस प्रकार की अवधारणा सम्बन्धी अस्पष्टता को दूर करने के लिए अवधारणाओं मे ठीक-ठीक और वास्तविक अन्तर करना आवश्यक है। सर्वप्रथम यह अत्यावश्यक है कि परिणाम समूह की अवधारणा एव शुद्ध शेष सम्पूर्ण परिणामो को पृथक्-पृथक् समझा जाए। मर्टन ने यही प्रकार्य व अन्य अवधारणाओं मे अन्तर किया है।

आपके अनुसार प्रकार्य (Function) वे अवलोकित परिणाम (Observed Consequences) है जो किसी सामाजिक व्यवस्था मे अनुकूलन (Adaptation) या समायोजन (Adjustment) मे सहायक होते है जबकि दुष्प्रकार्य (Dysfunction) वे अवलोकित परिणाम है, जिनके द्वारा किसी व्यवस्था मे अनुकूलन या समायोजन को कम किया जाता है। इसी प्रकार अप्रकार्यात्मक परिणामो (Non-functional Consequences) की सम्भावना से भी इन्कार नही किया जा सकता है जो मर्टन के मनमे व्यवस्था के लिए अर्थहीन (Irrelevant) होते हैं। इसी प्रकार मर्टन के अनुसार दूसरी समस्या प्रेरणाओं और प्रकार्यों के सरल भ्रम से पैदा होती है और जिसके लिए हमे अवधारणात्मक अन्तर को स्पष्ट करना चाहिए। मर्टन ने यह अन्तर इस तरह किया है—

प्रकट प्रकार्य (Manifest Function) वे वैषयिक परिणाम हैं जोव्यवस्था के समायोजन तथा अनुकूलन मे योगदान देते हैं तथा व्यवस्था म भाग लेने वालो द्वारा अभिष्ट (Intended) तथा स्वीकृत (Recognized) होते हैं।

अप्रकट प्रकार्य (Latent Function) सहसम्बद्ध रूप से वे होते हैं जो न तो अभिष्ट होते हैं और न ही स्वीकृत या मान्यता प्राप्त।

4 इकाइयों की अवधारणाएँ जिनके लिए प्रकार्य किया जाता है। (Concepts of the units subserved by the function)—मर्टन के अनुसार हमने उन कठिनाइयों को देखा है जो समाज के प्रकार्यात्मक विश्लेषण मे आती है, क्योंकि कुछ व्यक्तियों व उप-समूहों के लिए इकाइयाँ प्रकार्यात्मक हो सकती हैं तो कुछ व्यक्तियो व समूहों के लिए वे दुष्प्रकार्यात्मक, अत यह आवश्यक है कि इकाइयों की एक श्रेणी पर विचार करते समय जिसके लिए इकाई को परिणामो पर लागू किया जाता है, हमे विभिन्न प्रस्थितियों (Statuses) वाले व्यक्तियों, उप-समूहों (Sub groups), वृहत् सामाजिक व्यवस्था (Larger Social

System) एवं सांस्कृतिक व्यवस्थाओं (Cultural Systems) का ध्यान रखा जाना चाहिए। (शाब्दिक रूप से यह मनोवैज्ञानिक प्रकार्य, समूह प्रकार्य, सामाजिक प्रकार्य, सांस्कृतिक प्रकार्य कही जा सकती है।)

5. प्रकार्यात्मक आवश्यकताओं की अवधारणाएँ (आवश्यकताएँ, पूर्व-आवश्यकताएँ) (Concepts of Functional Requirements Needs Pre-requisites)—जिस व्यवस्था का अवलोकन कर रहे है उसकी प्रकार्यात्मक आवश्यकताओं की अवधारणाओं को भी हमे प्रकार्यात्मक विश्लेषण में समझना होगा। प्रकार्यात्मक सिद्धान्त में यह अत्यन्त जटिल और आनुभविक रूप से विवादात्मक अवधारणाएँ होती हैं।

इस प्रकार प्रकार्यात्मक आवश्यकताओं (सार्वभौमिक बनाम विशिष्ट) के प्रकारों को स्थापित करने की कठिनाई इसमें आती है।

6 उन यान्त्रिकियों की अवधारणाएँ जिनके द्वारा प्रकार्य सम्पादित होते हैं (Concepts of the Mechanisms through which Functions are fulfilled)—समाजशास्त्र में भी प्रकार्यात्मक विश्लेषण जैसा कि मानव विज्ञान एवं फिजियोलोजी (Physiology) में 'अमूर्त एवं विस्तृत' (Concrete and Detailed) होता है, क्योंकि इनमें निर्धारित प्रकार्य को पूरा करने के लिए अनेक यान्त्रिकियों का प्रयोग किया जाता है। यहाँ मनोवैज्ञानिक की अपेक्षा सामाजिक यान्त्रिकियों जैसे भूमिका विभाजन (Role Segmentation), संस्थागत मांगों का पृथक्करण (Insulation of Institutional Demands), मूल्यों की पदसोपानिक व्यवस्था (Hierarchic Ordering of Values), सामाजिक श्रम-विभाजन (Social Division of Labour), कर्मकाण्डीय एवं उत्सव सम्बन्धी नियम अथवा विधि (Ritual and Ceremonial Enactments etc) का प्रयोग किया जाता है।

7. प्रकार्यात्मक विकल्प की अवधारणाएँ (प्रकार्यात्मक समकक्ष या विकल्प) (Concepts of Functional Alternatives–Functional Equivalents or Substitutes)—मर्टन के अनुसार जैसा कि हमने देखा एक बार जैसे ही हम विशिष्ट सामाजिक संरचना की प्रकार्यात्मक अपरिहार्यता की मान्यता को छोड़ देते है, वैसे ही हमे कुछ प्रकार्यात्मक विकल्प की अवधारणाओं की आवश्यकता होती है, जिसके द्वारा हमे सम्भावित विभिन्नताओं की श्रेणी प्राप्त होती है जो प्रकार्यात्मक आवश्यकता की पूर्ति में योग देती है।

8 संरचनात्मक सन्दर्भ की अवधारणाएँ अथवा संरचनात्मक दबाव (Concepts of Structural Context or Structural Constraint)—इकाइयों में विभिन्नता की श्रेणी जो कि सामाजिक संरचना में पदानुगत प्रकार्यों को पूरा करते हैं, वस्तुतः असीमित होते हैं, जैसा कि हमने ऊपर बताया है। एक सामाजिक संरचना में तत्वों की यह अन्तर्निर्भरता परिवर्तन की सम्भावना या प्रकार्यात्मक विकल्पना की सम्भावना को सीमित करती है।

'सरचनात्मक दबाव' (Structural Constraint) की अवधारणा सामाजिक सरचना के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण होती है। यह विचार मार्क्सवादी समाज वैज्ञानिकों एव गैर मार्क्सवादियों (जैसे मेलिनोस्कि) ने परीक्षित किया है।

9 गतिशीलता एव परिवर्तन की अवधारणाएँ (Concepts of Dynamics and Change)—मर्टन के अनुसार अब तक हमने सामाजिक सरचना के 'स्थैनिक पक्ष' (Statics) पर ही प्रकार्यात्मक विश्लेषण को विवेचित किया है एव सरचनात्मक परिवर्तन के अध्ययन की उपेक्षा की है।

मर्टन के अनुसार 'दुष्प्रकार्य' (Dysfunction) की अवधारणा, जिसमे तनाव (Strains, Stress and tension) सरचनात्मक स्तर पर आते हैं, हमें गतिशीलता एव परिवर्तन के अध्ययन का एक विश्लेषणात्मक उपागम प्रदान करते हैं।

10 प्रकार्यात्मक विश्लेषण के सत्यापन की समस्याएँ (Problems of Validation of Functional Analysis)—सम्पूर्ण पैराडाइम मे, हमने अनेक बार मान्यताओ, अवलोकनों, आदि के सत्यापन पर ध्यान रखा है। अत यह आवश्यक होता है कि हम विश्लेषण के महत्त्वपूर्ण कथनो का समाजशास्त्रीय प्रविधियों मे तार्किक प्रयोग द्वारा सत्यापन करें। इसके लिए हमे तुलनात्मक विश्लेषण की सम्भावनाओ एव समस्याओ का व्यवस्थित अध्ययन करना चाहिए।

11 प्रकार्यात्मक विश्लेषण के वैचारिक प्रभावो की समस्याएँ (Problems of the Ideological Implications of Functional Analysis)—मर्टन के अनुसार पैराडाइम की अन्तिम इकाई प्रकार्यात्मक विश्लेषण के वैचारिक प्रभावो को जानने की है। इसमे यह देखा जाता है कि विशिष्ट प्रकार्यात्मक विश्लेषण एव विशिष्ट उपकल्पनाएँ जिन्हे विभिन्न प्रकार्यवादियो न बनाया है, आवश्यक नहीं है कि वे पहचानने योग्य वैचारिक भूमिका अदा कर सकें। तब यह वस्तुत: ज्ञान के समाज शास्त्र (Sociology of knowledge) की एक समस्या बन जाती है।

इस प्रकार समाजशास्त्रीय जगत् मे रॉबर्ट मर्टन न प्रकार्यात्मक विश्लेषण के लिए एक पैराडाइम की रचना कर प्रकार्यात्मक विश्लेषण के कार्य को सुगम कर दिया। रॉबर्ट मर्टन ने अपनी इसी कृति म यह भी स्पष्ट किया है कि उनके पैराडाइम के क्या उद्देश्य है? अर्थात् उन्होने किन उद्देश्यो के अभिप्रेरित पैराडाइम का निर्माण किया है। मर्टन ने पैराडाइम के तीन उद्देश्यो का उल्लेख किया है, वे हैं—

1 मर्टन के अनुसार पैराडाइम का प्रथम एव प्रमुख उद्देश्य पर्याप्त एव उपयोगी प्रकार्यात्मक विश्लेषण के लिए एक कामचलाऊ सहिता उपलब्ध करना है।

2 मर्टन के अनुसार पैराडाइम का दूसरा उद्देश्य उन अवधारणाओ, मान्यताओ तक पहुँचना है जो प्रकार्यात्मक विश्लेषण मे महत्त्वपूर्ण स्थान बना चुकी हैं। जैसा कि हमने पैराडाइम की विवेचना मे देखा कि इस सम्बन्ध मे अनेक अवधारणाएँ अब केन्द्रीय महत्त्व की हैं।

3 मर्टन के अनुसार पैराडाइम का तीसरा उद्देश्य समाजशास्त्री को इन पद्धति से सम्बन्धित वैज्ञानिक सीमा के अतिरिक्त इसके वैचारिक एवं राजनीतिक परिणामों के प्रति संवेदनशील करना है।

पैराडाइम एवं प्रतिरूप
(Paradigm and Model)

पैराडाइम एवं प्रतिरूप (Model) दोनों ही अनुसन्धान की वैज्ञानिक पद्धतियाँ हैं और इन दोनों ही अवधारणाओं का प्रयोग सामाजिक विज्ञानों में अभी अधिक पुराना नहीं है। अनेक विद्वानों एवं समाजवेत्ताओं ने उन दोनों पद्धतियों का प्रयोग एक ही सन्दर्भ में किया है, अर्थात् उन्होंने इन दोनों को एक पर्यायवाची के रूप में ही देखा है।

रॉबर्ट के. मर्टन ने स्वयं भी अपनी पुस्तक में अनेक स्थानों पर पैराडाइम, प्रतिमान (Pattern) एवं प्रतिरूप (Model) में कोई भेद नहीं किया है और इन तीनों का प्रयोग एक ही सन्दर्भ में किया है। पैराडाइम की अनेक परिभाषाएँ भी इस सम्बन्ध में भ्रम उत्पन्न करती हैं।

वेब्सटर ने 'न्यू वर्ल्ड डिक्शनरी' में भी लिखा है कि पैराडाइम शब्द का प्रयोग एक प्रतिमान (Pattern), उदाहरण अथवा एक प्रतिरूप (Model) के अर्थ में किया जाता है।

इस प्रकार के विवरणों से यह सन्देह होता है कि क्या पैराडाइम और प्रतिरूप एक ही है? अथवा इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है? क्या यह दोनों एक-दूसरे के पर्यायवाची हैं?

वस्तुतः यह किसी सीमा तक ठीक भी है। इस प्रकार की व्याख्याओं का एक बहुत बड़ा कारण यह है कि इन दोनों अवधारणाओं में बहुत सीमान्त अन्तर (Marginal Difference) है। अतः इनमें विभाजन रेखा खींचना असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है।

इस प्रकार पैराडाइम एवं प्रतिरूप में सम्बन्ध एवं विभिन्नता को स्पष्ट करने के लिए हम प्रो. एफ. कर्लिन्जर (F Kerlinger) द्वारा 'फाउन्डेशन्स ऑफ बिहेवरियल रिसर्च' के इस कथन का हवाला देना चाहेंगे, जिसमें वे कहते हैं कि "एक पैराडाइम एक मॉडल अथवा एक नमूना है। 'मॉडल' शब्द पैराडाइम का समानार्थक अवश्य है किन्तु मॉडल की तरह पैराडाइम में 'मूल्य' का कोई स्थान नहीं होता है।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मॉडल व पैराडाइम दोनों ही वैज्ञानिक अवधारणाएँ हैं और अनुसन्धान की प्रमुख प्रविधियों के रूप में प्रयुक्त होती हैं लेकिन जहाँ पैराडाइम एक मूल्य-तटस्थ (Value Neutral) अवधारणा है वहीं मॉडल मूल्य युक्त (Value loded) अवधारणा मानी जाती है। अतः दोनों इस एक आधार पर अलग किए जा सकते हैं।

1 *F Kerlinger* · Foundations of Behavioural Research, 1973, p. 300.

सिद्धान्त-निर्माण
(Theory-Building)

प्रत्येक विज्ञान अपनी विषय-वस्तु के अध्ययन, विवेचन, वर्णन एवं विश्लेषण के लिए वैज्ञानिक प्रक्रिया के अनुशीलन हेतु कतिपय सिद्धान्तों (Theories) की रचना करता है। ये सिद्धान्त सम्बन्धित विषय की विकास-यात्रा के उल्लेखनीय सीमा चिह्न बन जाते हैं। इनकी सहायता से एक अध्ययनकर्त्ता विभिन्न समस्याओं को उनके समग्र परिप्रेक्ष्य में समझ पाता है।

समाजशास्त्र में मानवीय समाज, संस्कृति (Culture), सामाजिक मूल्य तथा सामाजिक व्यवहार को समझने एवं विश्लेषित करने के उद्देश्य से अनेक सिद्धान्तों का विकास हुआ है। इन प्रचलित सिद्धान्तों को अधिकाधिक विश्वसनीय बनाने एवं नवीन ज्ञान को प्राप्त करने के लिए सिद्धान्तों के निर्माण एवं संशोधन की प्रक्रिया अनवरत रूप से चलती रहती है।

इस प्रकार आनुभविक अनुसंधान (Empirical Research) के आधार पर तथ्यों के सामान्यीकरण की उस व्यवस्था को हम सिद्धान्त कह सकते हैं जो व्यावहारिक रूप से परीक्षण के योग्य हो। पीटर एच मान (Peter H Mann) के अनुसार "तथ्यों को एक अर्थपूर्ण विधि से सुव्यवस्थित करने और उनमें तार्किक सम्बन्ध स्थापित करने से ही एक सिद्धान्त बनता है।"

रॉबर्ट के. मर्टन (Robert K. Merton) ने भी लिखा है कि 'एक वैज्ञानिक द्वारा अपने निरीक्षणों के आधार पर तर्क-वाक्यों या प्रस्थापनाओं (Propositions) के रूप में सुझाई गई तार्किक रूप से परस्पर सम्बन्धित अवधारणाएँ ही एक सिद्धान्त का निर्माण करती हैं।"

सिद्धान्त प्रत्येक शास्त्र के केन्द्रीय आधार स्तम्भ हैं। नींव के पत्थर रूपी ये सिद्धान्त जितने अधिक विश्वसनीय, सुदृढ़ एवं प्रमाणिक होंगे उतनी अधिक उस भवन रूपी शास्त्र की प्रतिष्ठा होगी। प्राकृतिक विज्ञान इसके श्रेष्ठतम उदाहरण कहे जा सकते हैं। समाजशास्त्रीय सिद्धान्त यद्यपि प्राकृतिक विज्ञानों की प्रतिष्ठा *तक न पहुँच पाए हैं किन्तु फिर भी सामाजिक विज्ञान वेत्ता इस दिशा में आज भी* निरन्तर प्रयत्नशील हैं।

तुलनात्मक दृष्टि से यदि हम देखें तो हम पाते हैं कि समाजशास्त्र अपेक्षाकृत एक नया विज्ञान है और इसकी आधारभूत विषय-वस्तु सामाजिकता है। फलस्वरूप *सिद्धान्त निर्माण के क्षेत्र में समाजशास्त्र अन्य विषयों से पिछड़ गया है, लेकिन फिर* भी आज समाजशास्त्र के पास कुछ ऐसे सिद्धान्त हैं जो काफी प्रतिष्ठित हैं और सामाजिक घटनाओं को समझने के क्षेत्र में काफी महत्त्वपूर्ण हैं।

समाजशास्त्र में जो सिद्धान्त प्रचलित हैं, उन्हें हम बौद्धिक दृष्टि से कई कोटियों में बाँट सकते हैं। कुछ सिद्धान्त ऐसे हैं जो मानवीय व्यवहार को 'व्यवस्था सिद्धान्त' से समझते हैं। सिद्धान्तों की दूसरी कोटि में मार्क्सवादी या आमूल

परिवर्तनकारी सिद्धान्त आते हैं। कुछ और सिद्धान्तो को तीसरी कोटि मे रखा जा सकता है।

समाजशास्त्र मे सिद्धान्त निर्माण की प्रक्रिया का इतिहास कोई बहुत पुराना नही है। जब प्राकृतिक विज्ञानो मे वस्तुनिष्ठावाद (Positivism) आया, तब वैज्ञानिको का लक्ष्य था कि प्रकृति के सुचारु रूप मे चलने मे जो नियमितता (Order lines) पाई जाती है वैसी ही नियमितता सामाजिक सम्बन्धो मे भी देखी जा सकती है। अत समाजशास्त्र मे और मोटे रूप मे सामाजिक विज्ञानो म वस्तु निष्ठावाद का जो स्वरूप पाया जाता है उसके अनुसार यह प्रयास होने लगा कि समाज की नियमित खोज की जाए। किन्ही कारणो से वस्तुनिष्ठावाद अधिक नही चल पाया। इसका विरोध स्वरूपवाद (Formalism) ने किया। स्वरूपवादी सिद्धान्त-वेत्ता अतरवस्तु (Content) को कोई महत्व नही देते थे। सामाजिक सिद्धान्त-निर्माण मे स्वरूपवादी भी असफल हो गए। वे स्वरूप (Form) और अतरवस्तु (Content) को पृथक् करने मे उलझ गए।

पूर्व सिद्धान्तो की आलोचनाओ के रूप मे सामाजिक व्यवहारवाद की विचारधारा का जन्म हुआ जिसने स्वरूपवाद का विरोध किया।

पिछले एक दशक से समाजशास्त्र मे सिद्धान्त निर्माण पर कुछ गम्भीरता स काम हो रहा है। गम्भीरता से इसलिए क्योकि यह काम प्रचलित समाजशास्त्रीय परम्परा से हट कर किया जा रहा है। इसी के परिणामस्वरूप समाजशास्त्रीय सैद्धान्तिक जगत म कुछ नवीन विधाओ का सूत्रपात हुआ है। विनिमय सिद्धान्त (Exchange theory), घटनाक्रम सिद्धान्त (Phenomenology) आमूल परिवर्तनकारी सिद्धान्त (Radical theory) तथा एथनोमेथडोलोजी (Ethno-methodology) सिद्धान्त के क्षेत्र मे नवीनतम विधाएँ हैं।

सिद्धान्त का अर्थ एव परिभाषा
(Meaning and Definition of Theory)

सामान्य भाषा मे सिद्धान्त' (Theory) शब्द का प्रयोग एक ऐसे नियम के रूप प किया जाता है, जिसमे वैज्ञानिक सत्यता व सर्वव्यापकता रहती है। सिद्धान्त सामाजिक यथार्थ को समझने मे अत्यधिक सहायक होते हैं। यद्यपि समाजशास्त्रीय सिद्धान्त प्राकृतिक सिद्धान्तो की तरह समृद्ध नहीं हैं, लेकिन फिर भी इनकी उपयोगिता को नकारा नही जा सकता। इस तथ्य से भी इन्कार नही किया जा सकता कि सामाजिक अनुभवो का सामान्यीकरण करने की प्रवृत्ति प्रत्येक समाज मे रही है एव व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप मे सैद्धान्तीकरण (Theorization) निरन्तर चलता रहा है। सिद्धान्त का आधार 'तथ्य' (Fact) होता है। सिद्धान्त की सबसे छोटी इकाई तथ्य (Fact) है। एक जैसे तथ्यो से मिल कर अवधारणा (Concept) बनती है। तार्किकता की दृष्टि से सिद्धान्त वह है जिसमे अन्तर्सम्बन्धित अवधारणा हो।

सामान्य शब्दो मे सिद्धान्त एक ऐसा नियम होता है जिसमे वैज्ञानिकता, सत्यता और सर्वव्यापकता होती है। ये सिद्धान्त तथ्यो एव घटनाओं को समझाने मे बहुत अधिक सहायता करते हैं। समाजशास्त्रीय सिद्धान्त को परिभाषित करते हुए फेयरचाइल्ड (Fairchild) ने लिखा है—

"सामाजिक घटना के बारे मे एक ऐसा सामान्यीकरण जो पर्याप्त रूप मे वैज्ञानिकतापूर्वक स्थापित हो चुका है, तथा समाजशास्त्रीय व्याख्या के लिए विश्वसनीय आधार बन सकता है।"[1]

फेयरचाइल्ड की इस परिभाषा से यह स्पष्ट जाना जा सकता है कि "किसी एक सामाजिक घटना को व्यवस्थित अध्ययन कर एक ऐसा वैज्ञानिक सामान्यीकरण प्राप्त किया जाता है जो भविष्य मे उसी तरह की सामाजिक घटना को समझने के लिए एक विश्वसनीय आधार बन सके।"

रॉबर्ट के मर्टन का मत है कि व्यवस्थित समाजशास्त्रीय सिद्धान्त प्रारम्भिक सिद्धान्तो के विभिन्न भागो का सग्रह हैं, जो आनुभविक शोधकार्य द्वारा जाँच के बाद भी अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं। मर्टन ने समाजशास्त्रीय सिद्धान्त को परिभाषित करते हुए लिखा है कि—

"समाजशास्त्रीय सिद्धान्त तर्क पर आधारित अवधारणाएँ हैं, जो क्षेत्र की दृष्टि से सीमित व आडम्बरहीन हैं, न कि विशाल एव समग्र को शामिल करने वाली।"[2]

यदि हम इतिहास को देखें तो स्पष्ट होता है कि समाजशास्त्र का प्रारम्भिक सम्बन्ध इतिहास, दर्शन, राजनीति आदि विषयो से अधिक था। फलस्वरूप इन समाजशास्त्रीय सिद्धान्तो मे वे गुण न आ पाए जो लगभग सभी प्राकृतिक विज्ञानो मे पाए जाते हैं। यद्यपि समाजशास्त्रीय सिद्धान्तो की यह सीमा कुछ हद तक अपनी विषय वस्तु की प्रकृति के कारण और जटिल होती गई। जिस तरह समाज का विकास सरल अवस्था से जटिल अवस्था, साधारण सामाजिक व्यवस्था से जटिल सामाजिक व्यवस्था की ओर हुआ है ठीक उसी प्रकार समाजशास्त्रीय सिद्धान्तो का भी विकास साधारण अवस्था से जटिल अवस्था की ओर हुआ है।

यद्यपि इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि सामाजिक अनुभवो का सामान्यीकरण (Generalization) करने की प्रवृत्ति समाज मे सदैव से ही पाई जाती रही है तथा स्पष्ट, अस्पष्ट रूप मे व्यक्तिगत एव सामूहिक रूप मे सिद्धान्तीकरण निरन्तर चलता रहा है। वास्तव मे समाजशास्त्रीय सिद्धान्तो का विकास लोक कथन से प्रारम्भ हुआ और वैज्ञानिक सिद्धान्तो की ओर बढता गया। हमने अब तक यह देखा कि विषय या शास्त्र कोई भी हो लेकिन सभी ज्ञान प्रवृत्तियो का एक ही लक्ष्य है कि प्रत्येक ज्ञान का सूक्ष्म, वैज्ञानिक सैद्धान्तीकरण किया जाए।

1 *Fairchild* · Dictionary of Sociology, p 294
2 *Robert K Merton* . Social Theory and Social Structure, p 5

सिद्धान्त का आधार तथ्य है और तथ्य की प्रकृति परिवर्तनशील है। यह परिवर्तनशीलता उस तथ्य पर आधारित सिद्धान्त मे भी परिवर्तन ला देती है। यद्यपि समाजशास्त्रीय सिद्धान्तो मे परिवर्तन की गति बहुत धीमी है। हम पाते है कि अर्वाचीन समाजशास्त्रियो द्वारा दिए गए सिद्धान्तो की वर्तमान समाजशास्त्रियो ने आलोचना की है और समाजशास्त्रीय जगत मे कुछ नए सिद्धान्तो का प्रतिपादन भी किया है। वास्तव में यह देखा जाता है कि समाजशास्त्रीय सिद्धान्त का सम्बन्ध सामाजिक तथ्यो से रहता है और इन्ही सिद्धान्तो के आधार पर हम समाज एव सामाजिक घटनाओ को समझने का प्रयास करते हैं।

सिद्धान्त की विशेषताएँ
(Characteristics of Theory)

समाजशास्त्रीय सिद्धान्तो की विशेषताओ को अनेक विद्वानो ने अपने-अपने मतानुसार प्रस्तुत किया है।

पर्सी एस कोहेन (Percy S Cohen)[1] का कहना है कि इस बात के कई कारण हैं कि कुछ समाजशास्त्रीय सिद्धान्त विज्ञान के आदर्श प्रमाण से क्यो नही मिलते। उन्होने स्पष्ट किया कि—

1 कुछ सिद्धान्त अधिकांशतया विश्लेषणात्मक सिद्धान्तो के समान होते हैं। इन सिद्धान्तो मे पुनरावृत्ति (Tautologies) अधिक होती है। फलत इन्हे आनुभविक (Empirically) रूप से परीक्षित नही किया जा सकता।

2. कई समाजशास्त्रीय सिद्धान्तो को इसीलिए परीक्षित नही किया जा सकता क्योंकि न तो वे सर्वव्यापी हैं और न ही उनके द्वारा तथ्यो को कथन के रूप मे रखना सम्भव हो पाता है।

3 समाजशास्त्रीय सिद्धान्तो को परीक्षित करने मे एक और कठिनाई आती है कि इनके द्वारा जो कुछ भविष्यवाणी की जाती है उसमे भ्रम की मात्रा बहुत अधिक रहती है। आगे पीछे क्या परिणाम होने वाला है इसका ठीक-ठीक अनुमान नही लगाया जा सकता।

फिर भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जितने भी समाजशास्त्रीय सिद्धान्त हैं उन्हे हम एक समान नही मान सकते। कुछ सिद्धान्त ऐसे हैं जिन्हे हम परीक्षण की कसौटी पर रख सकते हैं।

टालकॉट पारसन्स[2] ने एक स्थान पर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त की दो महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ बतायी —

1 वर्णन को साधन एव सुविधापूर्ण बनाते हैं।
2 विषय से सम्बन्धित कारको का विश्लेषण करते हैं।

1 *Percy S Cohen* : Modern Social Theory, p 6–9.
2 *Talcott Parsons* : Essays in Sociological Theory, p. 212–237.

स्पष्ट है कि समाजशास्त्रीय सिद्धान्त सामाजिक तथ्यों का वर्णन और विश्लेषण करने मे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

रॉबर्ट मर्टन[1] ने समाजशास्त्रीय सिद्धान्त की विशेषताओं को प्रयोगात्मक शोध (Empirical Research) में निम्नलिखित बिन्दुओं पर महत्त्वपूर्ण बताया है—

1 सर्वप्रथम समाजशास्त्रीय सिद्धान्त अध्ययन पद्धति को प्रभावित करना है और इस प्रभाव का अर्थ है अध्ययन पद्धति से सम्बन्धित समस्या का समाधान करना।

2 अगर कोई शोधकर्त्ता समाजशास्त्रीय समस्या पर अन्वेषण कर रहा है तो सबसे पहले आवश्यकता है कि उसकी मनोवृत्ति भी अनुकूल हो, इस प्रकार का दृष्टिकोण पैदा करने का कार्य समाजशास्त्रीय सिद्धान्त करता है।

3 विभिन्न अवधारणाओं से शास्त्र का स्वरूप तैयार होता है और जो भी सैद्धान्तीकरण होता है उसमे उन अवधारणाओं का प्रयोग यथास्थान किया जाता है। अत जब भी कोई अवधारणा सम्बन्धी भ्रम पैदा होता है तो उसका स्पष्टीकरण समाजशास्त्रीय सिद्धान्त करता है।

4 शोध कार्य के माध्यम से जो तथ्य सग्रहित होते हैं उनका विश्लेषण करते समय समाजशास्त्रीय सिद्धान्त सबसे अधिक सहायक होता है।

5 समाजशास्त्रीय सिद्धान्त आनुभविक सामान्यीकरण (Empirical Generalization) म भी सहायक होता है।

6 यदि सिद्धान्तो मे आपसी सम्बन्ध तर्क पर आधारित होता है तो एक सिद्धान्त अपने सजातीय सिद्धान्तो को और अधिक सक्षम बनाता है।

लेकिन समाजशास्त्रीय सिद्धान्त की कुछ विशेषताएँ हैं जिन्हें लगभग समस्त समाजशास्त्री स्वीकार करते हैं—

1 समाजशास्त्रीय सिद्धान्त प्राकृतिक विज्ञानो के सिद्धान्तो का वाद नही होते अर्थात् ये विशुद्ध वैज्ञानिक नही होते।

2 समाजशास्त्रीय सिद्धान्तो मे कुछ सिद्धान्त विश्लेषणात्मक होते है एव कुछ सामान्य।

3 समाजशास्त्रीय सिद्धान्त आनुभविकता (Empirical) एव कार्य कारण (Causal) मे सम्बन्धित होने चाहिए। अर्थात् ये सिद्धान्त ऐसे हो जिनकी आनुभविक जाँच की जा सके।

4 समाजशास्त्रीय सिद्धान्तो का सम्बन्ध सामाजिक यथार्थ (Social Reality) से होना चाहिए।

5 समाजशास्त्रीय सिद्धान्तो का आधार 'तथ्य' (Fact) होना चाहिए। केवल कल्पना नहीं।

1 *Robert Merton* Social Theory & Social Structure, p 85-101

समाजशास्त्र पिछले कुछ वर्षों से सकट के युग से गुजर रहा है। उन देशो मे जहाँ कि समाजशास्त्र ने विकास का इतिहास बनाया है, पूर्व स्थापित समाजशास्त्रीय सिद्धान्त आज चुनौतियो के बीच खडे हैं। इसके कारण हैं। पहला कारण तो यह कि वे सिद्धान्त जो बहुत पहले निर्मित हुए थे आज उनमे वैज्ञानिकता का अभाव स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है।

दूसरा कारण यह है कि नई पीढी और पुरानी पीढी के समाजशास्त्रियो म वैचारिक टकराव है। समाजशास्त्र मे सिद्धान्त क नाम पर आज भी पुराने सिद्धान्त ही अधिक तर्कसगत प्रतीत होते हैं। लेकिन आमतौर पर नई पीढी के युवा समाजशास्त्री पुरान सिद्धान्तो को अर्थहीन, अवैज्ञानिक और कालदोष से पीडित मानते हैं। गुल्डनर ने अपनी पुस्तक मे बहुत ही गम्भीरता और स्पष्टता के साथ अनेक समस्याओ पर विचार किया है जिनका सामना आज समाजशास्त्रीय सिद्धान्तो को करना पड रहा है। गुल्डनर ने व्यवस्था और प्रकार्यात्मक सिद्धान्त की आलोचना की है। उन्होने प्रकार्यवादी लेखको पारसन्स, मर्टन, स्मेलसर आदि समाजशास्त्रियो को आडे हाथो लिया। वे व्यवस्था सिद्धान्त की मूलभूत कमियो को भी बताते हैं। यही नही गुल्डनर ने तो सघर्ष सिद्धान्त की कटु आलोचना की है। इसके स्थान पर उन्होने प्रतिवर्तात्मक (Reflexive Theory) को प्रस्तुत किया है। सिद्धान्त पुराने हैं, भावनाएँ नई हैं, जिसका सामना आज समाजशास्त्र कर रहा है।

आवश्यकता इस बात की है कि समाजशास्त्रीय सिद्धान्तो को वैज्ञानिक विधियो के अनुरूप सत्य सिद्ध बनाया जाए एव साथ ही साथ वर्तमान मध्यवर्गीय सस्कृति की वास्तविकता, औद्योगिक समाज का तनावपूर्ण जीवन, राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक कारण आदि सबको समाजशास्त्रीय सिद्धान्त-निर्माण म स्थान दिया जाना चाहिए।

समाजशास्त्रीय सिद्धान्त की सरचना
(Structure of Sociological Theory)

समाजशास्त्रीय सिद्धान्त की अवधारणा, अर्थ, परिभाषा एव विशेषताओ को समझ लेने के बाद अब हमे समाजशास्त्रीय सिद्धान्त की सरचना (*Structure*) या उसके सरचनात्मक पक्षो (Structural Aspects) को समझना होगा। सिद्धान्त-निर्माण (*Theory Building*) की दृष्टि से सिद्धान्त के सरचनात्मक पक्षो की व्याख्या महत्त्वपूर्ण ही नही वरन् एक तरह से आवश्यक भी है। यह ठीक वैसा ही है जैसा कि यदि हम किसी 'भवन' का निर्माण करना चाहे तो उससे पूर्व हम भवन की सरचना को समझने का प्रयास करें। बिना भवन सरचना को समझे भवन निर्माण का कार्य असमव होगा। इसी प्रकार सिद्धान्त-निर्माण से पूर्व सिद्धान्त के सरचनात्मक पक्षो को समझना आवश्यक है।

सरचनात्मक दृष्टि से सिद्धान्त के तीन पक्ष होते हैं, यथा—

1 अभिकर्ता (Agent),

2. आयाम या पक्ष (Dimension), एवं

3 कथन (Statement) ।

यहाँ हम इन संरचनात्मक पक्षों को विस्तार से समझेंगे ।

1. अभिकर्त्ता (Agent)

अभिकर्त्ता सिद्धान्त के उस 'भाग' को कहा जाता है जिसके व्यवहार, कार्य एवं गतिविधि या प्रकृति के सम्बन्धों में सामान्यीकरण किए जाते हैं । उदाहरण के लिए गुरुत्वाकर्षण के नियम में भौमिक वस्तुएँ अभिकर्त्ता हैं । समस्त प्रकार के सामाजिक या प्राकृतिक नियमों एवं सिद्धान्तों में कुछ अभिकर्त्ता होते हैं ।

अभिकर्त्ता को भी दो श्रेणियों में विभक्त किया जाता है । स्पष्ट (Explicit) एवं अस्पष्ट (Implicit) । अभिकर्त्ता को स्पष्ट तब माना जाता है जब इसका प्रयोग एक सिद्धान्त के तर्क-वाक्य के साथ स्पष्ट रूप से किया जाए । जैसे मैक्स वेबर द्वारा रचित इस सिद्धान्त "कैथोलिकों में मृत्यु-दर प्रोटेस्टेन्टों की अपेक्षा कम होती है ।" में कैथोलिक एवं प्रोटेस्टेन्ट अभिकर्त्ता (Agent) हैं ।

इसी भाँति अस्पष्ट अभिकर्त्ता तीन प्रकार के होते हैं, अप्रकट (Latent), सादृश्य (Analogical) एवं मान्य (Assumed) । जब एक सैद्धान्तिक तर्कवाक्य में अभिकर्त्ता स्पष्ट नहीं होता तो वह छिपा हुआ या अप्रकट माना जाता है । उदाहरण के लिए "काला धन सही धन को संचार से बाहर कर देता है ।" इस वाक्य में 'काला धन' एवं 'सही धन' अभिकर्त्ता प्रतीत होते हैं । किन्तु धन एक निर्जीव वस्तु है । वह न तो स्वयं बाहर जाता है और न बाहर करता है । यह तो व्यक्ति है जिसके आचरण से यह कार्य फलित होता है । इस प्रकार उक्त सैद्धान्तिक तर्क-वाक्य में वास्तविक अभिकर्त्ता धन नहीं है वरन् वह व्यक्ति है जो तर्क-वाक्य में अप्रकट (Latent) है । सादृश्यता (Analogy) के आधार पर समाजशास्त्री अपनी सैद्धान्तिक मान्यताएँ प्रकट करते हैं । गाउल्डनर (Gouldner) का विचार है कि पचास वर्ष से अधिक आयु के समाजशास्त्री प्रकार्यात्मक उपागम (Functional Approach) में विश्वास करते हैं । पारसन्स का व्यवस्था सिद्धान्त एवं रोबर्ट मर्टन का 'सामाजिक संरचना' का सिद्धान्त स्पेन्सर के सावयवी सिद्धान्त से भिन्न नहीं है । मान्य (Assumed) अभिकर्त्ता अस्पष्ट अभिकर्त्ताओं की तृतीय श्रेणी है । इसके अनेक उदाहरण हो सकते हैं, जैसे वर्ग, जाति, परिवार, राष्ट्रीयता, गुट, भीड़, समुदाय, संस्था आदि । इनको मान्य अभिकर्त्ता इसलिए माना जाता है क्योंकि इनमें समूह की अपेक्षा व्यक्ति कार्य करते हैं ।

2. आयाम या पक्ष (Dimension)

भौतिक संसार के विभिन्न पदार्थ, पशु एवं मानव असंख्य आयामों या पक्षों में गति करते हैं, व्यवहार करते हैं और क्रिया करते हैं । एक समाजशास्त्री का कार्य उस 'आयाम' को देखना एवं पहचानना है जिसके अनुसार अभिकर्त्ता, कार्य

करते हैं। अभिकर्त्ता के कार्य, व्यवहार अथवा गति के आयाम अनेक दृष्टियों से कुछ श्रेणियों मे वर्गीकृत किए जा सकते हैं। इस वर्गीकरण का प्रथम दृष्टिकोण कार्य के आयाम की गहराई अथवा स्तर है। इस दृष्टिकोण से कार्य का आयाम स्तरीय अथवा अघ स्तरीय हो सकता है। व्यवहार के स्तरीय आयाम नग्न आँखों से देखे भी जा सकते हैं।

ऐसे आयामो का स्थानीयकरण मानवीय ज्ञान के वर्तमान भण्डार म किसी प्रकार की मदद नहीं करता। कार्य, व्यवहार या गति के आयामो की अन्य श्रेणी अघ स्तरीय है। इस आयाम का स्थानीयकरण एक कठिन कार्य है तथा गहन अन्तर्दृष्टि एव निरीक्षण की अपेक्षा रखता है। समाजशास्त्र मे श्रीनिवास के 'संस्कृतिकरण का सिद्धान्त' (Theory of Sanskritization), विलियम ऑगबर्न का 'सांस्कृतिक पिछड का सिद्धान्त' (Theory of Cultural Lag), मेलिनोस्कि का 'जॉई के जन्म का सिद्धान्त' आदि कथन कार्य के अघ स्तरीय आयाम पर आधारित हैं।

आयाम के वर्गीकरण का एक अन्य आधार उसकी दीर्घता है। इस दृष्टि से कार्यों के आयामो को स्थाई एव अस्थाई रूप मे वर्गीकृत किया जा सकता है। स्थाई आयाम सार्वभौम, आन्तरिक तथा आवर्ती होते हैं। कार्य के अस्थायी आयाम विशेष एव अल्पकालीन होते हैं। ये एक प्रकार से नदी के भँवर के समान होते हैं। भँवर नदी मे तब पैदा होते हैं जब उसका पानी एक विशेष बिन्दु पर चारो ओर घूमता है। नदी के भँवर निरन्तर अपनी स्थिति बदलते रहते हैं। ये सारी विशेषताएँ अस्थाई आयाम मे उपलब्ध होती हैं। कार्य के अस्थाई आयाम को चक्रवात के समान भी माना जा सकता है क्योंकि ये अपनी गति के बिन्दु को तेजी से परिवर्तित कर देते हैं।

भौतिक विज्ञानो मे सिद्धान्तो का विकास स्थायी आयामो मे होता है। अर्थशास्त्र (Economics) एव मनोविज्ञान (Psychology) जैसे कुछ समाज विज्ञानो मे भी सिद्धान्त अधिकांशत निरन्तरतापूर्ण आयामो पर आधारित होते हैं, जैसे ह्रासमान उपयोगिता एव प्रतिफल का नियम।

जहाँ तक समाजशास्त्र का सम्बन्ध है, इसमे सैद्धान्तीकरण निरन्तरतापूर्ण एव अनिरन्तरतापूर्ण दोनो आयामो मे होता है। अस्थाई आयामो वाले सिद्धान्त समय की सीमा से बन्धे रहते हैं, तथा उस समय के बाद वे महत्वहीन हो जाते हैं।

हमे ध्यान रखना चाहिए कि अस्थाई एव स्थाई आयामो के मध्य वही सम्बन्ध है, जो सागर तथा उसकी लहरो के मध्य होता है। लहरें सागर की सतह पर विभिन्न आकारो मे बनती हैं। इस प्रकार अस्थाई आयाम एक विशेष समय मे विशेष प्रकार के कार्य को उत्पन्न करते हैं और उस समय के बाद कार्य का रूप बदल जाता है। यद्यपि लहरें सरचना मे सागर से भिन्न होती हैं, किन्तु अन्तिम विश्लेषण की दृष्टि से वे समुद्र ही हैं, उससे पृथक् नहीं हैं।

सामाजिक विज्ञानो मे सैद्धान्तीकरण अस्थाई आयामो मे होता है तथा स्थाई आयामो वाले सिद्धान्तो का प्राय सामाजिक विज्ञानो मे अभाव ही होता है। स्थाई आयामो के सिद्धान्तो का श्रेष्ठ उदाहरण रॉबर्ट मर्टन का सन्दर्भ समूह व्यवहार' (Reference Group Behaviour) का नाम लिया जा सकता है।

आयाम की श्रेणियो का एक अन्य वर्गीकरण 'मुख्य आयाम' (Key Dimension) एव 'सहायक आयाम' (Corollary Dimension) के रूप मे किया जाता है। कार्य के मुख्य आयाम अभिकर्त्ताओ की विभिन्न सामूहिक परिस्थितियो मे केन्द्रीय प्रवृत्ति से सम्बन्ध रखते हैं तथा कार्यों के सहायक आयाम इस प्रवृत्ति के व्यावहारिक पहलू हैं। मुख्य आयामों मे किए गए सामान्यीकरण मुख्य सिद्धान्त बन जाते हैं, जबकि सहायक आयामो पर आधारित सिद्धान्त सहायक सिद्धान्त कहे जाते हैं।

3 कथन (Statement)

सिद्धान्त का तीसरा भाग कथन है। कोई भी कथन एक ओर तो अभिकर्त्ताओ के सेट तथा दूसरी ओर कार्य के विशेष आयाम-व्यवहार और गति के मध्य अन्त-सम्बन्ध का वर्णन है। सैद्धान्तिक कथनो को भी दो उप श्रेणियो मे विभाजित किया जा सकता है 'सरल कथन' एव 'तुलनात्मक कथन'। सरल सैद्धान्तिक कथन द्वारा एक विशेष दिशा मे अभिकर्त्ताओ के कार्यों का वर्णन किया जाता है। तुलनात्मक सैद्धान्तिक कथन में अभिकर्त्ताओ के दो कार्य रूपो के सेटो की तुलना की जाती है। जैसे माल्थस का सिद्धान्त कि खाद्यान्न के उत्पादन की अपेक्षा जनसख्या वृद्धि अधिक तीव्र गति से होती है।

एक अन्य दृष्टि से भी सैद्धान्तिक कथनो को दो रूपो मे वर्गीकृत किया जा सकता है। ये हैं निर्पेक्ष कथन एव सशर्त कथन। निर्पेक्ष कथनो मे 'अभिकर्त्ता' और 'कार्य' के मध्य निर्पेक्ष सम्बन्ध दिखाया जाता है, जबकि सशर्त सैद्धान्तिक कथनो मे यह सम्बन्ध कुछ शर्तो से बन्धा रहता है। अर्थशास्त्र मे सामान्यत सिद्धान्तो को सशर्त रूप से प्रस्तुत करते हैं, जबकि समाजशास्त्र मे निर्पेक्ष सैद्धान्तिक कथनो की परम्परा है।

यह माना जाता है कि यदि समाजशास्त्र मे भी सशर्त कथन हो तो अधिक श्रेष्ठ है, क्योकि सामाजिक मूल्य एव व्यवहार बदलते रहते हैं। नवीन सामाजिक परिस्थितियो और भावनाओ म पुराने सिद्धान्त अप्रासगिक एव अर्थहीन बन जाते हैं, इसलिए सशर्त कथन अधिक उपयुक्त है। सशर्त कथन के पक्ष मे एक बात यह है कि मानव-व्यवहार पर अनेक तत्वो का प्रभाव पडता है। इनमे से अधिकांश तत्व व्यक्ति के नियन्त्रण के बाहर हो सकते हैं।

सैद्धान्तिक कथनो का एक अन्य वर्गीकरण काल क्रमानुसार भी किया जाता है। इसी आधार पर ये अतीनकालीन, वर्तमानकालीन एव भविष्यकालीन कथन होते हैं। अतीतकालीन कथन मे सिद्धान्तवेत्ता यह बताता है कि अभिकर्त्ता

अतीतकाल मे कैसा व्यवहार करते थे। जाति, धर्म, जादू एव मानव-व्यवहार के अन्य रूपो से सम्बन्धित सिद्धान्त इसी श्रेणी मे आते हैं। वर्तमान और भविष्य के सैद्धान्तिक कथनो के उदाहरण कार्ल मार्क्स के 'द्वन्द्वात्मक परिवर्तन के सिद्धान्त' को लिया जा सकता है। इस सिद्धान्त मे कार्ल मार्क्स ने जीवन की साम्यवादी परिस्थितियो मे मानव के भावी व्यवहार के रूप का वर्णन किया है। भविष्य मे 'राज्यविहीन समाज' की स्थापना होगी।

एक अन्य विचारक एच० जी० वेल्स हैं जिन्होने मानवीय क्रिया के भावी स्वरूप को जानने की चेष्टा की है। सौभाग्य से समाजशास्त्र म विचारको की रुचि एक नवीन क्षेत्र मे बढती जा रही है जिसे भविष्य-शास्त्र (Futurology) कहा जाता है।

सिद्धान्त निर्माण के तत्त्व या रचना-स्तम्भ

(The Elements or Building Blocks of Theory Building)

समाजशास्त्रीय सिद्धान्तो की सरचना एव सरचनात्मक पक्ष के विश्लेषण म हम यह समझते हैं कि सिद्धान्त तर्क-वाक्यो, प्रस्थापनाओ या सैद्धान्तिक कथनो का एक समूह होता है। इस प्रकार सिद्धान्त विचारो के विकास की प्रक्रिया है। सिद्धान्त निर्माण के लिए कुछ तत्त्वो की आवश्यकता होती है, यही वे रचना-स्तम्भ (Building Blocks) हैं, जिनसे 'सिद्धान्त की रचना या उसका निर्माण किया जाता है। प्रमुख रूप से इन तत्त्वो को निम्न श्रेणियो मे रखा जा सकता है—

1 अवधारणाएँ या इकाई (Concepts or Units)
2 चर (Variable)
3 निश्चयात्मक कथन (Assertions or Statements)
4 परिभाषाएँ एव कड़ियाँ (Definitions & Linkages)
5. आकार (Formats)

यहाँ इन पाँचो तत्त्वो की विस्तृत विवेचना करेंगे।

1 अवधारणाएँ या इकाई
(Concepts or Units)

सिद्धान्त-रचना एक प्रक्रिया है। इसके विभिन्न चरण (Steps) हैं। प्रत्येक चरण म सिद्धान्त निर्माण म विशेष तत्त्वो द्वारा योगदान दिया जाता है। अवधारणाएँ या इकाई सिद्धान्त निर्माण का सबसे प्रमुख तत्त्व हैं। अवधारणाएँ घटनाओ को प्रदर्शित करती हैं। अवधारणा वह प्रतीक या शब्द (या शब्द समूह) है जिसके द्वारा किसी यथार्थ का बोध होता है। जैसे समूह (Group) की अवधारणा म दो या दो से अधिक व्यक्तियो का बोध होता है। इसी प्रकार नेतृत्व (Leadership), शक्ति (Power) आदि अवधारणाएँ समाजशास्त्र मे पाई जाती हैं। समाजीकरण (Socialization) की अवधारणा से हम समझते हैं कि व्यक्ति भूमिका कैसे प्राप्त करता है। अपराध (Crime) की अवधारणा से हम यह समझते हैं कि व्यक्ति के व्यवहार से कैसे सामाजिक, सांस्कृतिक एव कानूनी हानि

पहुँचती है । सामाजिक भूमिका (Social Role) से हम यह समझते हैं कि व्यक्ति क्या करता है ? यथार्थ को सीमित करके, प्रतीक या शब्दो से यथार्थ को समझना, अवधारणा का उद्देश्य है ।

सिद्धान्त-निर्माण मे अवधारणा का प्रयोग उसी प्रकार किया जाता है जैसे किसी भवन-निर्माण मे ईंटो (Bricks) का प्रयोग किया जाता है । अवधारणाओ से यथार्थ परिमापित और वर्गीकृत होता है ।

सामान्यत अवधारणाओ को दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है—

(A) वास्तविक अवधारणाएँ (Referent Concepts)

(B) अवास्तविक अवधारणाएँ (Non-Referent Concepts)

वास्तविक अवधारणो से ठोस, वास्तविक एव तथ्यगत घटनाओ का बोध होता है, जैसे—अपराध, संघर्ष, विघटन आदि ।

अवास्तविक अवधारणाओ से ऐसे गुण या वस्तु का बोध होता है जो वास्तविक जगत् मे दिखाई नहीं पडतीं, परन्तु सिद्धान्त-निर्माण या यथार्थ की व्याख्या करने मे उनका प्रयोग किया जाता है, जैसे ईश्वर, स्वर्ग-नरक आदि । इनका ठोस अस्तित्व तो नहीं होता, किन्तु इनसे सामाजिक घटनाओ की समझ अवश्य होती है ।

अवधारणाओ की अमूर्त प्रकृति के कारण सामाजिक अनुसन्धानो मे एक समस्या खडी हो जाती है । हर क्षण बदलने वाले जगत् के विषय मे अवधारणाएँ किस प्रकार आवश्यक ज्ञान प्रदान कर सकती हैं, इस कठिनाई को दूर करने के लिए कार्यकारी परिभाषा (Operational Definition) या अवधारणाओ का निर्माण किया जाता है । अपनी आवश्यकतानुसार वैज्ञानिक घटनाओ की कार्यकारी परिभाषा बना लेता है । उसके अध्ययन मे किसी अवधारणा से केवल वही और उतना ही समझा जाएगा, जितना कि कार्यकारी परिभाषा मे वह रखना चाहता है । जैसे किसी अध्ययन मे 'अपराधी' (Criminal) की कार्यकारी परिभाषा देते हुए कहा गया हो "वह व्यक्ति जो अदालत से सजा पाता है, अपराधी है ।" "मरीज वह है जो किसी अस्पताल मे रोगी की हैसियत से पजीकृत किया गया है ।" "ग्रामीण नेता वह है जो निर्वाचन द्वारा किसी स्थानीय निकाय का पदाधिकारी चुना गया है ।" इस प्रकार अवधारणाएँ एव उनकी कार्यकारी परिभाषाएँ सिद्धान्त-निर्माण का प्रथम महत्त्वपूर्ण तत्त्व मानी जाती हैं ।

2 चर
(Variables)

सिद्धान्त-निर्माण का दूसरा प्रमुख तत्त्व 'चर' (Variable) है । चर भी एक प्रकार की अवधारणा ही है । अवधारणाएँ दो तथ्य प्रकट करती हैं । प्रथम, यह घटनाओ का केवल नामकरण करती हैं । द्वितीय, घटनाओ मे अशो का अन्तर प्रकट करती हैं, जैसे 'अधिक सयुक्तता वाले परिवार', 'कम सयुक्तता वाले परिवार ।' इस प्रकार की अवधारणाओ को 'चर' कहा जाता है । दो या दो से अधिक चरो मे जब सह-सम्बन्ध पाया जाता है तो उसकी अभिव्यक्ति दो प्रकार से होती है ।

(A) समभागी सम्बन्ध (Symetrical Relationsbip)—जिस प्रकार 'अ' का सम्बन्ध 'ब' से है, उसी प्रकार 'ब' का सम्बन्ध भी 'अ' से है। जैसे समूह के सदस्यों में समानता बढ़ेगी तो उनमें एकता भी बढ़ेगी अथवा समूह में एकता अधिक होगी तो सदस्यों में समानता भी अधिक होगी।

(B) असमभागी सम्बन्ध (Non-symetrical Relationship)—'अ' का जिस प्रकार का सम्बन्ध 'ब' से है, 'ब' का उसी प्रकार का सम्बन्ध 'अ' से नहीं है। जैसे कीटाणु से ज्वर उत्पन्न होता है, लेकिन ज्वर से कीटाणु उत्पन्न नहीं होते।

इस प्रकार चरों के मध्य सम्बन्ध स्थापित करके जो तर्क-वाक्य या प्रस्थापनाएँ बनाई जाती हैं, उन्हें नियम या विधि कहा जाता है। इसी प्रकार की प्रस्थापनाओं या तर्क-वाक्यों से सिद्धान्त निर्मित होता है।

3. निश्चयात्मक कथन

(Assertions or Statements)

सिद्धान्त का उद्देश्य घटनाओं का वर्णन ही नहीं बल्कि उनकी व्याख्या व विश्लेषण करना होता है। सैद्धान्तिक कथनों के विकास का अर्थ है कि हम वर्णन से विश्लेषण की ओर आ गए हैं। ज्यों ही दो चरों के मध्य (या दो अवधारणाओं के मध्य) सह-सम्बन्ध दिखाया जाता है, त्यों ही हम कुछ भविष्यवाणियाँ या स्पष्टीकरण प्रारम्भ कर सकते हैं।

समाज विज्ञानों के सन्दर्भ में हम कुछ उदाहरणों से इसे स्पष्ट कर सकते हैं। सामाजिक संघर्ष (Social Conflict) एक चर है। 'सामाजिक संगठन' (Social Organization) एक अन्य (दूसरा) चर है। तथ्यों के आधार पर हम यह पाते हैं कि सामाजिक संघर्ष एवं सामाजिक संगठन एक-दूसरे से सम्बन्धित है, अतः निश्चयात्मक कथन निम्न प्रकार के हो सकते हैं—

(क) दूसरे समूहों से संघर्ष जितना बढ़ता जाएगा, अपने समूह से एकता उतनी ही बढ़ती जाएगी।

(ख) शहरों या नगरीय केन्द्रों से सम्बन्ध जितने निकट होते जाएँगे, अपराध की मात्रा उतनी ही बढ़ती जाएगी।

(ग) व्यक्ति सामूहिक दबाव से जितना मुक्त होता जाएगा, उसका जीवन उतना ही अधिक विचलनकारी होता जाएगा।

ये समस्त उदाहरण निश्चयात्मक कथन के हैं। इसी प्रकार के कथनों के आधार पर सिद्धान्तों का निर्माण किया जाता है। इन्हें सैद्धान्तिक कथन भी कहा जाता है।

4 परिभाषाएँ एवं कड़ियाँ

(Definitions & Linkages)

सिद्धान्त-निर्माण का चौथा तत्त्व परिभाषाएँ एवं कड़ियाँ हैं। परिभाषाओं द्वारा सामाजिक आभास को अर्थ एवं माप देकर हमारे वर्णन व विश्लेषण में सहायता पहुँचाई जाती है। अवधारणा के नाम पर एक परिभाषा अस्पष्ट हो सकती है, किन्तु इसे अधिक स्पष्ट करने के लिए किया गया अतिरिक्त कार्य सम्भवतः परम

वांछनीय है। यह इस बात का सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है कि कुछ नवीन बातें जोडी गई हैं। जब हम अपनी अवधारणाओं को व्यवस्थित कर लेते हैं तो हमे दूसरा लक्ष्य प्राप्त हो जाता है कि हम पुनरुक्ति से बच जाते हैं (Elimination of Tautology)। परिभाषाएँ सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक दोनो प्रकार की हो सकती हैं।

कड़ियो (Linkages) द्वारा सामाजिक आभास के हमारे विश्लेषण मे विस्तार एव जांच योग्यता प्रस्तुत करके सहायता दी जाती है। यह कार्य सरल नहीं है, किन्तु इतना उपयोगी एव लाभप्रद है कि इसके लिए किया गया प्रयास बेकार नही जाता। अन्त मे कथनो एव कड़ियो को भूमिकाओं या समीकरणो मे व्यवस्थित करने से हमे यह जानने मे सहायता मिलती है कि क्या हम अपने चिन्तन मे प्रसगत रहे थे।

5 आकार
(Formats)

सिद्धान्त-निर्माण का अन्तिम तत्त्व उसे व्यवस्थित रूप से सगठित कर एक आकार (Format) देना होता है। तथ्यो पर आधारित सामान्य निष्कर्षों को तार्किक ढग से क्रम देते हैं। यह कार्य अत्यन्त कठिन होता है। सामाजिक विज्ञानो मे दो प्रकार के सैद्धान्तिक आकार दिए जा सकते हैं--

(A) सुक्तिमय आकार (Axiomatic Form)---सुक्तिमय आकार अत्यन्त सूक्ष्म एव अवधारणाओ पर आधारित होना है। अवधारणाओ की एक शृखला बनाई जाती है। अत्यन्त व्यापक अवधारणाएँ ऊपर रखी जाती हैं और उनके आधार पर दूसरे कथन प्रमाणित किए जाते हैं। प्रत्येक तर्क वाक्य एक विधि के समान होता है। जैसे समाज एक व्यवस्था है। व्यवस्था होने के कारण इसके सभी अग अन्तर्सम्बन्धित हैं। व्यवस्था का प्रत्येक अग किसी न किसी आवश्यकता की पूर्ति करता है। जब समस्त अग आवश्यकताओ की पूर्ति करेंगे तभी समाज सगठित एव व्यवस्थित होगा।

इस प्रकार सुक्तिमय आकार एक तार्किक व्यवस्था होती है। अधिक सामान्य निष्कर्षों से कम सामान्य निष्कर्ष निकाले जाते हैं और उन सभी निष्कर्षों को तर्कसगत विधि मे सूत्रबद्ध किया जाता है।

(B) कारणता का आकार (Causal Form)---सामाजिक विज्ञानो म कारणता या कार्य-कारण पर सिद्धान्त बनाना बहुत कठिन होता है। इसमे एक चर का सिद्धान्त दूसरे चर से दिखाते हुए एक को 'कारण' एव दूसरे को कार्य बताया जाता है। कारण-कार्य पर आधारित सिद्धान्त इसलिए कठिन होता है कि सामाजिक घटनाओ के विषय मे कारण कार्य बहुत स्पष्टत नही होते हैं, लेकिन समाज वैज्ञानिक अपनी आवश्यकता के अनुसार कारण-कार्य को परिभाषित कर लेना है।

किसी दिए हुए सन्दर्भ मे वह यह स्थापित कर सकता है कि अमुक घटना कारण और अमुक घटना उसका परिणाम है। जैसे बेरोजगारी कारण है और उसका परिणाम है नगरीयकरण। इस प्रकार हम देखते हैं कि इन तत्त्वो के आधार पर एक सिद्धान्त का निर्माण किया जा सकता है।

जेरोल्ड हेज (Jarold Hage) ने अपनी पुस्तक 'टेकनिक्स एण्ड प्रोब्लम्स ऑफ थ्योरी कन्सट्रक्शन इन सोशयोलोजी' में सिद्धान्त के प्रत्येक तत्त्व के बारे म एक तालिका बनाई है। स्पष्टता की दृष्टि से उसे हम अपने मूल रूप मे यहाँ साभार प्रस्तुत कर रहे हैं[1]—

Theory Part	Contribution
1 Concept Names	Description & Classification
2 Verbal Statements	Analysis
3 Theoritical Definitions	Meaning
Operational Definitions	Measurement
4 Theoritical Linkages	Plausibility
Operational Linkages	Tertability
5 Ordering into Primitive and Derived Terms	Elimination of Tantology
6 Ordering of Premises and Equations	Elimination of in consistency

सिद्धान्त निर्माण के तत्वो को हम इस तालिका म रख सकते हैं—
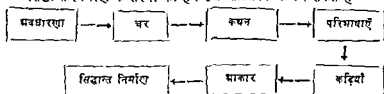
समाजशास्त्रीय सिद्धान्त-निर्माण की प्रक्रिया
(Process of Building of Sociological Theories)

समाजशास्त्र की आधुनिक मान्यता यह है कि सिद्धान्त का अनुभवात्मक (Empirical) अनुसन्धान से घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए। वेकर ने भी इस कथन पर जोर दिया है कि विशुद्ध समाजशास्त्रीय निरूपण हेतु समाजशास्त्री को अनुभवात्मक रूप से गुण सम्पन्न होना आवश्यक है। सिद्धान्त-निर्माण (Theory Building) की प्रक्रिया मे अनुसन्धान सम्मिलित होते हैं। अनुसन्धान का गठन हम लेजासफील्ड (Lazarsfield) के अनुसार निम्न बिन्दुओ म उद्धृत करत हैं[2]—

1 समस्या का निरूपण (Location of Problem)
2 अर्थ एव अवधारणाओ का वर्गीकरण (Classification of Meaning & Concepts)
3 तर्क सरचना (Structure of Arguments)
4 प्रमाणो की प्रकृति (Nature of Evidences)

इसी प्रकार समाजशास्त्रीय सिद्धान्त निर्माण की प्रक्रिया का उल्लेख रॉबर्ट मर्टन ने किया है। रॉबर्ट मर्टन ने समाजशास्त्र मे सिद्धान्त निर्माण की प्रक्रिया के छ चरणो का उल्लेख किया है जो इस प्रकार हैं[3]—

1 *Jarold Hage* Techniques and Problems of Theory Construction in Sociology, 1972, p. 173
2 *Lazarsfield* Language of Social Research
3 *Robert Merton* op cit

1. पद्धतिशास्त्र (Methodology)—पद्धतिशास्त्र में तथ्य संग्रह की विधियों पर विचार किया जाता है। अनुसन्धान के लिए तथ्य संकलन की ऐसी विधियों का चयन किया जाता है, जो अनुसन्धान की विषय-वस्तु के अनुरूप हों।

2. सामान्य समाजशास्त्रीय अभिमुखन (General Sociological Orientation)—इस चरण में खोज की सामान्य स्वयंसिद्धियों का उपयोग किया जाता है। जैसे दुर्खीम के उपकल्पना की एक स्वयंसिद्धि यह मानी जाती है कि वर्तमान सामाजिक घटना का कारण पूर्वघटित घटना में होता है, या समाज एक सश्लिष्ट व्यवस्था है। मारोकिन ने भौतिकवादी और आदर्शवादी संस्कृतियों को स्वयंसिद्धि के समान ही प्रयोग किया है। इस तरह स्वयंसिद्धियों से सामाजिक तथ्यों के विश्लेषण और उपकल्पना-निर्माण में सहायता मिलती है। इस तरह की महत्त्वपूर्ण स्वयंसिद्धियों की ओर अभिमुखित होने से समाजशास्त्रीय सिद्धान्त-निर्माण में सहायता मिलती है।

3. अवधारणाओं का विश्लेषण (Analysis of Concepts)—किसी भी अध्ययन के पूर्व कतिपय नई एवं पुरानी सामाजिक अवधारणाओं का विश्लेषण कर लेना आवश्यक होता है, जिससे आगे चलकर किसी प्रकार का भ्रम न उत्पन्न हो सके। समस्त अवधारणाओं के स्पष्टीकरण की तालिका बना लेना उपयोगी होता है। अवधारणाएँ शब्दों से बनती हैं और इनका विशिष्ट अर्थ-बोध होता है। अन्वेषण की विषय वस्तु के अनुसार अवधारणाओं का चयन किया जाता है। कुछ प्रचलित समाजशास्त्रीय अवधारणाएँ हैं, भूमिका, जेमिनशैफ्ट, जैसलिशैफ्ट, सामाजिक अन्त क्रिया, आदि। कुछ सिद्धान्तवेत्ता केवल अवधारणाओं के स्पष्टीकरण को सिद्धान्त मान लेते हैं। मर्टन ने इसे अस्वीकार किया है। अवधारणात्मक भाषा उन विचारों और व्यवहारों तथा प्रत्यक्षीकरण को निश्चित करती है, जिनका प्रयोग गवेषक अपनी गवेषणा में करता है।

4. आँकड़ों का निर्वचन (Interpretation of Data)—अनुसन्धान द्वारा अनुसन्धानकर्त्ता जिन आँकड़ों को सग्रहीत करता है, उन सारे तथ्यगत आँकड़ों की व्याख्या एवं निर्वचन अनिवार्य होता है। इसी निर्वचन के आधार पर सामान्यीकरण किया जाता है।

5. सामान्यीकरण (Generalization)—स्वीकृत तथ्यों के आधार पर सामान्य नियमों का निरूपण किया जाता है। इसे सामान्यीकरण की प्रक्रिया कहा जाता है। प्राय सामान्यीकरण सार्वलौकिक या अतिसीमित हो सकते हैं।

6. सिद्धान्त-निर्माण (Theorization)—जब कोई सामान्यीकरण सार्वदेशिक हो जाता है, तो वही सिद्धान्त बन जाता है। जब अवधारणाओं को योजनाबद्ध रूप में अन्तर्सम्बन्धित कर दिया जाता है, तो सिद्धान्त बनते हैं। इनका आधार तार्किकता होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपरोक्त चरणों से समाजशास्त्र में सिद्धान्त-निर्माण किया जाता है। आज समाजशास्त्र में अनेक सिद्धान्त प्रचलित हैं। मर्टन का 'माध्यमिक श्रेणी सिद्धान्त', पारसन्स का 'व्यवस्था सिद्धान्त' गाउल्डनर का 'प्रतिवर्तात्मक सिद्धान्त' आदि समाजशास्त्रीय सिद्धान्त के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

5 अन्तर्वस्तु-विश्लेषण, प्रक्षेपण प्रविधियाँ, वैयक्तिक (एकल) अध्ययन

(Content Analysis, Projective Techniques, Case Study)

अन्तर्वस्तु-विश्लेषण
(Content Analysis)

सामाजिक घटनाओ की प्रकृति भौतिक घटनाओ की प्रकृति से अलग होती है। सामान्यत भौतिक घटनाएँ गणनात्मक (Quantitative) होती हैं, जबकि सामाजिक घटनाएँ स्वभाव से ही अमूर्त (Concrete) एव गुणात्मक (Qualitative) होती हैं। इसी कारण सामाजिक विज्ञानो मे निष्कर्ष एव सामान्यीकरण सुगमता से प्राप्त नही किए जा सकते। अत तथ्यो के विश्लेषण के लिए 'अन्तर्वस्तु-विश्लेषण' (Content Analysis) सामाजिक अनुसन्धान की एक महत्त्वपूर्ण पद्धति मानी जाती है। अन्तर्वस्तु-विश्लेषण की पद्धति से गुणात्मक आंकडो को वस्तुनिष्ठ (Objective) तथ्यो मे प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'अन्तर्वस्तु-विश्लेषण' एक बहुद्देशीय अनुसन्धान पद्धति है जो कि विशेषकर समस्याओ की गहन रूप से खोज करने के लिए विकसित किया गया है, जिसमे सचार की सामग्री को अनुमानो के मुख्य आधार के रूप मे प्रयुक्त किया जाता है। सामाजिक अनुसन्धान मे समूह सचार का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। इनके द्वारा प्रदान की गई सामग्री अनुसन्धान की विभिन्न समस्याओ के समाधान मे सहायक होती हैं। आधुनिक युग में विज्ञान के कारण सचार साधनो मे अभूतपूर्व वृद्धि हुई है और इस वृद्धि के कारण हम जीवन के विविध पक्षो के बारे मे सूचनाएँ एकत्र करने मे सफल हुए हैं। परन्तु इन समस्त सूचनाओ का प्रयोग किस ढग से किया जाए ? क्या वे सूचनाएँ सभी विषयो से सम्बन्धित हैं ? इस प्रकार की बातें सामाजिक अनुसन्धान मे अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। अत. एक विशेष प्रकार की जिसे 'अन्तर्वस्तु-विश्लेषण पद्धति' कहा गया है, का विकास किया गया है, जो सचार सामग्री को वर्णित कर सके।

जैसा कि हमने प्रारम्भ म कहा सामाजिक घटनाएँ अमूर्त एव गुणात्मक होती हैं, अत उनका विश्लेपण एक जटिल कार्य होता है। अत अन्तर्वस्तु-विश्लेषण के लिए उसे विभिन्न श्रेणियो मे वर्गीकृत किया जाता है। इसका प्रयोजन सामाजिक घटनाओ की सामग्री को वैज्ञानिक तथ्यो मे परिवर्तित करना है ताकि वह समस्याओ के समाधान मे सहायक हो सके एव भविष्य मे किए जाने वाले सामाजिक अनुसन्धान का मार्ग दर्शन भी कर सके।

अन्तर्वस्तु-विश्लेषण प्रविधि के पूर्व भी समाजशास्त्र एव राजनीति विज्ञान के विद्यार्थी सचार के रिकार्डों का प्रयोग विभिन्न कार्यों के लिए करते थे। साहित्यिक आलोचक लेखको की कृतियो का विभिन्न प्रयोजनो हेतु अध्ययन किया करते थे। उनकी शैली, विचारो की गहनता एव भाषा इत्यादि के सम्बन्ध मे आलोचको को विपुल सामग्री प्राप्त हो जाया करती थी। इसी प्रकार एक समाजशास्त्री आदिकाल के लोगो का रहन-सहन, भाषा, वेशभूषा, रीति-रिवाज, परम्पराएँ, प्रथाएँ, धार्मिक सस्कार आदि का पता लगाने के लिए प्राचीन अभिलेखो का प्रयोग किया करता था। कभी कभी उसके सामने यह समस्या भी उत्पन्न हो जाती थी कि जो तथ्य उसके समक्ष आए हैं, उसने एकत्र किए हैं, वे प्रमाणित एव सत्य हैं या नही। प्रमाणिकता एव यथार्थता का पता लगाने के लिए वह जिस विधि का प्रयोग करता था उसी को आज हम अन्तर्वस्तु-विश्लेषण प्रविधि के नाम से जानते हैं।

इस प्रकार अन्तर्वस्तु-विश्लेषण प्रविधि लगभग आठ दशाब्दियो से सामाजिक घटनाओ के अध्ययन हेतु प्रयोग की जा रही है। यदि हम इसका इतिहास देखें तो हम पाएँगे कि इसका सर्वप्रथम प्रयोग मलकॉम बिल्ली ने 1926 मे 'अमेरिका के समाचार पत्रो का विश्लेषण' नामक शीर्षक से लिखे एक लेख मे किया था। इसके तत्काल बाद 1930 मे वुडलैन्ड, हैराल्ड एव डीलासेक्ल ने सयुक्त रूप से इसी प्रकार का दूसरा अध्ययन 'फारेन न्यूज इन अमेरिकन मार्निंग न्यूज पेपर' शीर्षक के अन्तर्गत किया था। इस पत्र मे समाचार पत्रो की भाषा का विश्लेषण किया गया था और उसके आधार पर कुछ निष्कर्ष निकाले गए थे।

इन प्रयोगो को इस पद्धति का प्रारम्भिक प्रयास कहा जा सकता है। इनके शोधकर्ता समाचार पत्रो से ही सम्बन्धित कार्यकर्ता थे। इनको देखकर कुछ साहित्यकारो ने साहित्यिक शैली के अध्ययन मे इस पद्धति का प्रयोग किया है। इनमे रिकर्ट एव स्पजिनमाइल्स का नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। शनै -शनै इस पद्धति की लोकप्रियता के कारण जनमत (Public Opinion) के अध्ययनो मे भी इसका प्रयोग किया जाने लगा। 1939–1940 मे हेराल्ड लेस्वेल व अन्य विद्वानो ने प्रचार व जनमत से सम्बन्धित अध्ययनो मे इसका प्रयोग किया। इसके पश्चात् धीरे-धीरे समाजशास्त्र मे इसका प्रयोग किया जाने लगा। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व इसकी लोकप्रियता और बढने लगी, परन्तु महायुद्ध के बाद इसके प्रयोग में थोडी कमी आई। लेकिन समकालीन अध्ययनो मे पुनः इस पद्धति का प्रयोग संगीत, शिक्षा, राजनीति आदि क्षेत्रो मे विस्तार से किया जाने लगा है।

अन्तर्वस्तु-विश्लेषण प्रविधि का अर्थ एवं परिभाषाएँ
(Meaning and Definitions of Content Analysis Technique)

अनेक विद्वानों ने अन्तर्वस्तु-विश्लेषण प्रविधि को परिभाषित किया है अन्तर्वस्तु-विश्लेषण को विस्तार से समझने के लिए इसकी कुछ परिभाषाओं की विवेचना कर लेना उपयुक्त होगा।

बी. बेरेल्सन (B. Berelson) ने 1952 में लिखी अपनी कृति 'कन्टेन्ट एनालिसिस इन कम्यूनिकेशन रिसर्च' में अन्तर्वस्तु को परिभाषित करते हुए जो परिभाषा दी है उसे सामाजिक अनुसन्धान में सबसे अधिक प्रामाणिक माना जाता है। बेरेल्सन के अनुसार "अन्तर्वस्तु-विश्लेषण सचार की व्यक्त अन्तर्वस्तु (सामग्री) के वस्तुनिष्ठ, व्यवस्थित एव परिमाणात्मक वर्णन की एक अनुसन्धान प्रविधि है।"[1]

बेरेल्सन ने वैपिल्स के साथ लिखे एक लेख में अन्तर्वस्तु-विश्लेषण की एक अन्य परिभाषा प्रस्तुत की है। आपके अनुसार "व्यवस्थित अन्तर्वस्तु-विश्लेषण पद्धति सामग्री के विवरणों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट व्याख्या करने का प्रयास करती है, जिससे कि पाठकों को प्रदान की जाने वाली प्रेरणाओं की प्रकृति व सापेक्षिक सत्य को वस्तुनिष्ठ रूप में प्रकट किया जा सके।"[2]

दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि यह सचार की अभिव्यक्ति अन्तर्वस्तु के वस्तुनिष्ठ, व्यवस्थित और गुणात्मक वर्णन के लिए अनुसन्धान की एक प्रविधि है। इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि अन्तर्वस्तु-विश्लेषण सामाजिक अनुसन्धान की महत्त्वपूर्ण प्रविधि है एव इसके द्वारा गुणात्मक तथ्यों को व्यवस्थित एव वस्तुनिष्ठ ढग से प्रस्तुत किया जाता है।

ए कैपलान एव जे. गोलसन (A Kaplan and J Golason) ने भी सयुक्त रूप से लिखे एक लेख में लिखा है कि "अन्तर्वस्तु-विश्लेषण पद्धति का उद्देश्य एक दी गई सामग्री का एकमात्र वर्गीकरण उस सामग्री से सम्बन्धित उपकल्पनाओं से सम्बन्धित तथ्य प्राप्त करना है।"[3]

ए कैपलान (A Kaplan) ने एक अन्य लेख में लिखा है कि "अन्तर्वस्तु-विश्लेषण पद्धति एक दी गई वार्ता के अर्थों की एक व्यवस्थित एव परिमाणात्मक रूप से व्याख्या करती है।"[4]

आई. एल जेनीस (I L Janis) ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि "अन्तर्वस्तु विश्लेषण चिह्नित तथ्यों को केवल निर्णयों के आधार पर वर्गीकृत करने की प्रविधि है.........विश्लेषण के परिणाम, चिह्नों या चिह्नों के वर्गों के घटने की आवृत्ति को प्रकट करते हैं।"[5]

1 *B Berelson* : Content Analysis in Communication Research, 1952, p 18
2 *B Berelson and Waples* What the Voters over told, an Essay in Content Analysis.
3 *A Kaplan and J. Golason* : Reliability and Certain Category for Classifying Certain News Papers Headlines
4 *A. Kaplan* : Content Analysis and the Theory and Science
5 *I. L. Janis* : Meaning and Study of Symbolic Behaviour, Psychiatry, p 129

एफ एन कलिन्जर (F N Kerlinger) ने 'फाउन्डेशन्स ऑफ बिहेवरियल रिसर्च' मे लिखा है कि "अन्तर्वस्तु-विश्लेषण चरो को मापने के लिए सचारो के व्यवस्थित, वस्तुनिष्ठ एव परिमाणात्मक ढग से अध्ययन एव विश्लेषण करने की एक प्रविधि है।"[1]

गुडे एव हट्ट ने 'मेथड्स इन सोश्यल रिसर्च' मे लिखा है कि "समाचार पत्रो के विश्लेषण एव तर्कपूर्ण सरचना (सामग्री की) के लिए अच्छे निष्कर्षों के लिए वैज्ञानिक पद्धति का होना आवश्यक है और वह सामग्री विश्लेषण की है।"[2]

उपरोक्त परिभाषाओ से यह स्पष्ट होता है कि अन्तर्वस्तु-विश्लेषण प्रविधि के द्वारा सामाजिक घटनाओ का व्यवस्थित एव परिमाणात्मक अध्ययन किया जाता है। इस पद्धति का प्रयोग सचार घटनाओ की सापेक्षिक आवृत्ति के लिए किया गया है। जैसा कि कलिन्जर ने लिखा है "अन्तर्वस्तु विश्लेषण एक अवलोकन एव मापन की विधि है। अन्तर्वस्तु-विश्लेषण नि सन्देह विश्लेषण की पद्धति से कुछ अधिक है। इसके अन्तर्गत अनुसन्धानकर्ता लोगो के व्यवहार का प्रत्यक्ष निरीक्षण न करके या साक्षात्कार करके, बल्कि उनके सचारो को प्राप्त करता है और उन्ही सचारो के प्रश्नो को पूछता है। यद्यपि एक तरह से हम अवलोकन, साक्षात्कार कर रहे हैं परन्तु यह कार्य हम इस ढग से करते हैं कि लोगो का व्यवहार स्वय तक ही सीमित है। इस पद्धति द्वारा हम चरो का निरीक्षण एव मापन करते हैं। आधुनिक युग मे सगणको (Computers) की सेवाएँ उपलब्ध होने से हम इस पद्धति का प्रयोग और भी सुगमतापूर्वक कर सकते हैं। इस प्रकार सामाजिक अनुसन्धानो मे अन्तर्वस्तु-विश्लेषण प्रविधि का प्रयोग सामग्री के वस्तुनिष्ठ (Objec ive) व्यवस्थित (Systematic) एव परिमाणात्मक विश्लेषण के लिए लिया जाता है।"

अन्तर्वस्तु विश्लेषण की विशेषताएँ
(Characteristics of Content Analysis)

अन्तर्वस्तु-विश्लेषण के पारिभाषिक विश्लेषण के आधार पर अन्तर्वस्तु-विश्लेषण की कुछ विशेषताओ (Characteristics) को प्रस्तुत किया जा सकता है

बी बेरेलसन ने भी अन्तर्वस्तु-विश्लेषण की चार विशेषताओ का उल्लेख किया है, वे हैं—

1. केवल व्यक्त अन्तर्वस्तु का अध्ययन,
2 अध्ययन का वस्तुनिष्ठ होना,
3 अध्ययन का व्यवस्थित होना, एव
4 अध्ययन का परिमाणात्मक होना।

केवल व्यक्त अन्तर्वस्तु के अध्ययन का आशय यह है कि अध्ययन की प्रणाली पूर्णतया अनुभवाश्रित रहती है। हम सभी की यह प्रवृत्ति होती है कि दूसरे के

1 *F N Kerlinger*: op cit, p 514
2 *Goode and Hatt*, Methods of Social Research

शब्दो मे ऐसे अर्थ भी खोज लें जो कि कहे नही गए। ये अर्थ सही भी हो सकते हैं एव गलत भी। केवल व्यक्त अन्तर्वस्तु को आधार सामग्री मानने से हम त्रुटि से बच जाते हैं। इस प्रकार हम अध्ययन को व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) होने से भी बचाते हैं। अध्ययन के वस्तुनिष्ठ होने से बेरेलमन महोदय का आशय यह है कि हमे केवल उसी को देखना है जो है। अपनी भावनाओ विचारो आदि को उस पर आरोपित नही करना है। अध्ययन के व्यवस्थित होने मे यहाँ अभिप्राय यह है कि सामग्री या अन्तर्वस्तु का अध्ययन उसे कुछ वर्गों मे बाँटकर किया जाए एव अध्ययन को एक क्रमबद्धता प्रदान की जाए। इसी प्रकार अध्ययन के परिमाणात्मक होने से बेरेलसन का आशय है माप का उपयोग।

ये समस्त लक्षण या विशेषताएँ आपस मे अन्तर्सम्बन्धित हैं और सभी मिलकर अध्ययन को वैज्ञानिक बनाते हैं। लेकिन फिर भी बेरेलसन द्वारा प्रस्तुत विशेषताओ को आजकल सकुचित माना जाता है। उसके बनाए हुए दो लक्षणो पर विशेषत अब कम बल दिया जाता है वे हैं एक तो अन्तर्वस्तु के व्यक्त होने पर एव दूसरा अध्ययन के परिमाणात्मक होने पर। आजकल यह कहा जाता है कि अन्तर्वस्तु-विश्लेषण सचार के विभिन्न कारको से सम्बन्धित है, केवल व्यक्त अन्तर्वस्तु से नही। इसी प्रकार परिमाणन का लाभ आज सर्वमान्य है किन्तु कठिनाई यह है कि प्रत्येक वस्तु गिनी या मापी नही जा सकती। इसीलिए वर्तमान मे यह कहा जाता है कि अन्तर्वस्तु-विश्लेषण मे गुणात्मक सामग्री अधिक उपयोगी है। सामान्यत अन्तर्वस्तु-विश्लेषण की निम्नांकित विशेषताएँ बताई जाती हैं—

1 अन्तर्वस्तु-विश्लेषण का प्रयोग सामाजिक सामान्यीकरण के लिए किया जाता है।
2 इस प्रविधि का सम्बन्ध सचार वाहनो के प्रभावो के निर्धारण के लिए किया जाता है।
3 इस प्रविधि मे वैधयिकता एव वस्तुनिष्ठता (Objectivity) पाई जाती है। अर्थात् इन अध्ययनो के सत्यता एव पुनर्सत्यता की जाँच की जा सकती है।
4 इसका प्रयोग भाषाओ के समन्वयात्मक और अर्थ-विषयक आयामो मे किया जाता है।
5 अन्तर्वस्तु-विश्लेषण एक व्यवस्थित (Systematic) प्रविधि है।
6 अन्तर्वस्तु-विश्लेषण परिमाणात्मक या गणनात्मक होती है।

इसी प्रकार अन्तर्वस्तु-विश्लेषण प्रविधि की दो अनिवार्यताएँ भी होती हैं, जो निम्न हैं—

1 दी हुई समस्या को सभी सम्बद्ध सामग्रियो को उपयुक्त श्रेणियो म विभाजित किया जाए, एव
2 विश्लेषण पूर्ण वैज्ञानिक ढग से किया जाए, जिससे उसका उपयोग विस्तृत एव व्यापक रूप से किया जा सके एव वैज्ञानिक निष्कर्ष मे यह उपयोगी हो सके।

अन्तर्वस्तु विश्लेषण के प्रयोग
(Use of Content Analysis)

अन्तर्वस्तु विश्लेषण के अनेक विभिन्न प्रयोग है। डी पी कार्ट राइट (D P Cart Wright) ने 'एनालिसिस ऑफ क्वालीटेटिव मैटीरियल' के नाम से लिखे एक लेख म अन्तर्वस्तु-विश्लेषण के अनेक प्रयोगों का उल्लेख किया है।[1] उनके अनुसार प्रमुख प्रयोग निम्न हैं—

1 सचार सामग्री के अन्तर्गत पाई जाने वाली प्रवृत्तियो का वर्णन करना।
2 विद्वता (Scholarship) के विकास का पता लगाना।
3 सचार सामग्री के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय भिन्नताओ को स्पष्ट करना
4 सचार के माध्यमो अथवा स्तरो की तुलना करना।
5. सचार मानदण्डों का निर्माण करना एव इन्हे प्रयोग मे लाना।
6 प्राविधिक अनुसंधान क्रियाओ मे सहायता प्रदान करना।
7 प्रचार की प्रविधियो को स्पष्ट करना।
8 सचार सामग्री की पठनीयता का परिमापन करना।
9 सचार सामग्री की शैली सम्बन्धी विशेषताओ का अन्वेषण करना।
10 सचारकर्त्ताओ के इरादो एव अन्य विशेषताओ का पता लगाना।
11 व्यक्तियो एव समूहो की मनोवैज्ञानिक स्थिति का निर्धारण करना।
12 प्रकार के अस्तित्व (Existence) का प्रमुख रूप से वैधानिक उद्देश्यो के लिए पता लगाना।
13 राजनीतिक एव सैनिक गुप्तचर शक्ति की जानकारी प्रदान करना।
14 विभिन्न समूहो की अभिरुचियो, मनोवृत्तियो मूल्यो अर्थात सांस्कृतिक प्रतिमानो को परावर्तित करना।
15 ध्यान के केन्द्रबिन्दु को स्पष्ट करना।
16 सचार के प्रति मनोवृत्तीय एव व्यवहारात्मक प्रत्युत्तरो का वर्णन करना।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्तर्वस्तु विश्लेषण के विभिन्न प्रयोग हैं।

अन्तर्वस्तु विश्लेषण की इकाइयाँ
(Units of Content Analysis)

अन्तर्वस्तु विश्लेषण की पद्धति की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या दिए गए सामग्री के अंश के विश्लेषण हेतु इकाइयो के चयन (Selection of Units) की होती है। इन इकाइयो के अनेक प्रकार हो सकते हैं, जैसे-शब्द वाक्य अनुच्छेद, प्रसग, पात्र और स्थान व समय की माप आदि। इनमे स प्रथम तीन व्याकरण सम्बन्धी

1 *D. P Cart Wright* Analysis of Qualitative Material, In *L Festinger* & *D Katz* Research Methods in the Behavioural Sciences, p 424-434

इकाइयाँ हैं और अन्य गैर व्याकरण की। इस प्रकार अन्तर्वस्तु-विश्लेषण सम्बन्धी इकाइयों के दो भेद किए जा सकते हैं—

1 वर्गीकरण की इकाइयाँ—जिनके आधार पर तथ्यों व सामग्रियों का वर्गीकरण किया जा सकता है।

2. परिगणन की इकाइयाँ—जिनके आधार पर तथ्यों का सारणीयन एवं प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जा सकता है।

इस प्रकार अन्तर्वस्तु विश्लेषण की इकाइयों में शब्द एवं वाक्य का बहुत अधिक महत्त्व है। शब्द दिए गए भाषण लेख, लिखित सामग्री आदि में कुछ विशेष शब्दों, प्रमुख सांकेतिक पदों की आवृत्ति कितनी बार हुई है और उनके आधार पर (उनके) पृथक् पृथक् गिनकर निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। वाक्यों और मुहावरों के आधार पर भी किसी विषय-वस्तु का विश्लेषण करना उचित हो सकता है। शब्दों के एक समूह का जो कि किसी सचार से परस्पर आबद्ध है वाक्य कहा जा सकता है। उसके आधार पर ऐसी विषय-वस्तु जैसे भाषण लेख वार्तालाप आदि का विश्लेषण किया जा सकता है। छोटी कहानियाँ नाटक सिनेमा, रेडियो आदि में पात्रों को सामग्री विश्लेषण की इकाइयाँ माना जा सकता है।

अन्तर्वस्तु विश्लेषण में सबसे अधिक प्रयोग में लाई जाने वाली इकाई प्रकरण है। विभिन्न सामग्रियों में प्रकरण भी अलग अलग हो सकते हैं। प्रकरण एक पुस्तक। एक पत्रिका, एक लेख, एक भाषण एक कहानी आदि का सुझाया गया विचार हो सकता है। इसका प्रयोग अधिकांश अध्ययनों में किया जा सकता है। कभी-कभी स्तम्भ, पूर्वपेज, रेडियो या टी वी कार्यक्रम पंक्ति आदि को अन्तर्वस्तु-विश्लेषण की इकाइयाँ मानकर उनसे सम्बन्धित इकाइयों का अध्ययन किया जा सकता है।

अन्तर्वस्तु-विश्लेषण की प्रमुख श्रेणियाँ
(Main Categories of Content Analysis)

अन्तर्वस्तु विश्लेषण की श्रेणियों का उल्लेख बेरेल्स ने अपनी कृति 'कन्टेन्ट एनालिसिस इन कम्यूनिकेशन रिसर्च' में किया है। आपने इन श्रेणियों को दो भागों में बाँटकर समझाया है—

(A) क्या कहा गया है? (What is said?) अर्थात् जो कुछ कहा गया है उसमें अन्तर्वस्तु विश्लेषण किया जाता है।

(B) इसे किस प्रकार कहा गया है? (*How is it said*?) अर्थात् वह किस प्रकार कहा गया है। इसमें मुख्यतः कथन के प्रकार आते हैं, यहाँ हम इन्हें विस्तार से समझेंगे।

(A) क्या कहा गया है?
(What is said?)

इसमें अग्रांकित श्रेणियाँ आती हैं—

1 विषय-वस्तु (Subject Matter)--अन्तर्वस्तु-विश्लेषण के अध्ययनो के काम मे ली जाने वाली सबसे प्रमुख सामान्य श्रेणी 'विषय-वस्तु' है। यह विशेष प्रारम्भिक प्रश्नो का उत्तर देती है। विषय-प्रकरण ही विषय-वस्तु की श्रेणियो का प्रयोग विशेष रूप से करता है।

2 दिशा (Direction)--इसमे इस प्रश्न का उत्तर मिलता है कि क्या सचार विशेष विषय के लिए अथवा विषय के विरुद्ध या टतस्थ है। इस प्रकार विषय के प्रति किया गया बर्ताव (Treatment) इसमे रखा जाता है।

3 मानदण्ड (Standard)--वह श्रेणी आधार भी कहलाती है जिसका तात्पर्य जिसके आधार पर 'दिशा' से वर्गीकरण किया गया हो। इस श्रेणी का प्रयोग एच डी लैसवेल ने यह जानने के लिए कि किस सम्बन्ध मे मूल्याकन हुआ है, किया है।

4 मूल्य (Values)—जो कि मानदण्डो से निकट सम्बन्धित है। इन्हे बेरेल्सन के अनुसार लक्ष्य एव आवश्यकताएँ कहा जाता है। यद्यपि यह श्रेणी उपन्यास सम्बन्धी सामग्री के विश्लेषण मे नही पाई जाती है। व्यक्ति आखिर किसके पीछे दौडता है ? व्यक्ति की यह दौड अनेक वस्तुओ के लिए होती है, जैसे प्रेम, धन, सामाजिक प्रस्थिति, प्रतिष्ठा, भविष्य स्वास्थ्य आदि। ये सभी उसके मूल्य है।

5 ढग (Methods)---मूल्य क्रियाओ के लक्ष्यो का वर्णन करते हैं। ढग (Methods) साधनो का वर्णन करते हैं जो कि उद्देश्यो की पूर्ति मे काम आते हैं। किस प्रकार उद्देश्यो की पूर्ति की जाए ? इस श्रेणी का प्रयोग राजनीतिक विषयों पर विश्लेषण, प्रचार, समझौते, सगठन आदि के रूप मे किया गया

6. लक्षण (Traits)—इस श्रेणी को क्षमता भी कहा जाता है जिसमे कि साधारण रूप से व्यक्तिगत विशेषता होती है। यह विशेषता अन्तर्मुखी एव बहिर्मुखी दोनो ही होती है। इस श्रेणी का सस्थाओ एव नीतियो को चरितार्थ करने म भी प्रयोग किया जाता है।

7 कर्त्ता (Actor)--इस श्रेणी का तात्पर्य उस व्यक्ति अथवा समूह अथवा अन्य विषय से है जो कि केन्द्रीय स्थिति मे क्रिया के सचालक के रूप म उभरता है, कौन विशेष क्रियाओ के लिए प्रतिनिधित्व करता है।

8 अधिकार (Authority)--यह श्रेणी स्रोत भी कहलाती है जिसका तात्पर्य उस व्यक्ति अथवा समूह से है जिसके नाम से वर्णन किया जाता है।

9 उत्पत्ति (Origin)--इस श्रेणी का प्रयोग कुछ अध्ययनो मे सचार के उत्पत्ति स्रोत को बताने के लिए किया गया है। यह कहाँ से आई ? यह कभी-कभी इसलिए भी महत्त्वपूर्ण होती है कि इसमे यह मालूम हो जाता है कि किस प्रकार श्रोता का ध्यान निर्देशित करती है।

10 लक्ष्य (Target)--इस श्रेणी को सम्बोधनकर्त्ता भी कहा जाता है, जिसका तात्पर्य वह समूह है जिसके लिए सचार विशेष रूप से निर्देशित किया जाता है।

इस प्रकार उपरोक्त समस्त श्रेणियाँ (Categories) 'क्या कहा गया है?' से सम्बन्धित हैं। लेकिन श्रेणियों का एक दूसरा प्रकार भी है।

(B) इसे किस प्रकार कहा गया है?

(How is it said?)

इसमें निम्नांकित श्रेणियाँ आती हैं—

1 संचार का स्वरूप अथवा प्रकार—अर्थात् संचार का स्वरूप या प्रकार क्या है? जैसे कथा, टेलीविज़न, समाचार आदि। यहाँ कुछ अध्ययनों को भाषा की श्रेणी के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। जैसे कि रेडियो कार्यक्रमों के अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं जैसे अंग्रेजी, जर्मन, इदिस, इटालियन आदि अन्य भाषाओं के आधार पर श्रोताओं को वर्गीकृत कर विश्लेषण करना।

2 कथन का स्वरूप—इस श्रेणी का आशय व्याकरण सम्बन्धी अथवा वाक्य रचना के नियमों से है, जिसमें संचार का निर्माण होता है। एच. डी. लैसवेल के प्रस्तुतीकरण के अनुसार इस श्रेणी का वर्गीकरण तीन भागों में हुआ है, वे हैं—

(क) तथ्य-कथन (जैसे कम्यूनिस्ट संसार पर शासन करना चाहते हैं),

(ख) चुनित-कथन (जैसे कम्यूनिस्टों को संसार पर शासन करना चाहिए था), एवं

(ग) समीकरण-कथन (जैसे मैं कम्यूनिस्ट हूँ)।

3 गहनता—यह श्रेणी कभी-कभी संवेगात्मक कहलाती है, जिसका आशय उत्तेजित मूल्यों से है, जिससे संचार होता है।

4 युक्ति—इस श्रेणी से तात्पर्य है किसी वस्तु का उसके अलंकारित अथवा प्रचारात्मक चरित्र के आधार पर सामग्री का वर्गीकरण। इस श्रेणी में कुछ विशेष प्रकार की चालाकियों का विश्लेषण आता है।

इस प्रकार से इस अन्तर्वस्तु-विश्लेषण पद्धति द्वारा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्रों के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन सुगमतापूर्वक किया जा सकता है। सेल्टिज, जहोदा डयूस एवं कुक के अनुसार विश्लेषण को निश्चित नियन्त्रणों के अन्तर्गत संचालित किया जाता है, ताकि यह व्यवस्थित एवं वैषयिक हो—

1 विश्लेषण की श्रेणियों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाता है ताकि दूसरे अनुसंधानकर्त्ता या व्यक्ति उनको निष्कर्षों के प्रमाणीकरण के लिए प्रयुक्त कर सकें।

2 विश्लेषणकर्त्ता सामग्री के चयन और रिपोर्ट करने में ऐसे स्वतन्त्र नहीं हैं कि जो उनको रुचिपूर्ण लगे उसको ही चुनें, परन्तु अपने निर्देशन में समस्त संगत-पूर्ण सामग्री को व्यवस्थित रूप से वर्गीकृत करना चाहिए।

3 इसमें परिमाणात्मक प्रणाली को प्रयुक्त किया जाता है। इस प्रकार की जो प्रणाली हम अपना रहे हैं वह मात्रीकरण का एक सरल रूप है जो पर्याप्त रूप से व्यावहारिक एवं विश्वसनीय है।

अन्तर्वस्तु विश्लेषण के प्रमुख चरण
(Main Steps of Content Analysis)

अन्तर्वस्तु-विश्लेषण प्रविधि के प्रमुख चरणों को निम्नांकित भागों मे बाँटा जाता है—

1 अन्तर्वस्तु के समग्र (Universe) की स्पष्ट परिभाषा।
2 उपकल्पनाओं का निर्माण।
3 निदर्शन।
4 प्रमुख श्रेणियों का विभाजन।
5 माप।
6 सांख्यिकी विश्लेषण।

यहाँ हम इन्हे विस्तार से समझने का प्रयास करेंगे—

1 अन्तर्वस्तु के समग्र की स्पष्ट परिभाषा—अन्तर्वस्तु-विश्लेषण के लिए सबसे प्रथम चरण है कि समग्र (Universe) को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाए। समग्र की स्पष्ट परिभाषा के आधार पर ही हम समग्र मे पाई जाने वाली विभिन्नताओं का ज्ञान कर सकते है और उन्हे भली भाँति समझ सकते हैं। बिना समग्र को परिभाषित किए उसमे पाई जाने वाली विभिन्न श्रेणियों एवं अन्य विभिन्नताओं का ज्ञान नही किया जा सकता।

2 उपकल्पनाओं का निर्माण—अनुसन्धान के अन्य प्रकारो की भाँति अन्तर्वस्तु विश्लेषण के लिए भी इसका दूसरा प्रमुख चरण है 'उपकल्पनाओं का निर्माण'।

उदाहरण के लिए हम जॉन एडम्स (John Adams) का अध्ययन ले सकते है। एडम्स ने अपने अध्ययन मे ये उपकल्पनाएँ बनाई थी—

(1) जिन अखबारो के संवाददाता विदेशो मे होंगे, उनमे दूसरे अखबारों से अधिक औसत लम्बाई की विदेशी खबरें होंगी।

(2) जिन समाचार पत्रो के संवाददाता विदेशो मे होंगे उनमे दूसरे अखबारों से अधिक विदेशी खबरें मुख्य पृष्ठ पर होंगी, आदि।

इसी प्रकार अनुसंधान के उद्देश्यो के आधार पर उपकल्पनाओं का निर्माण किया जा सकता है। यदि अनुसंधानकर्त्ता को कोई उपकल्पना न सूझे तो वह **अन्वेषणात्मक** अध्ययन द्वारा इन्हे प्राप्त कर सकता है।

3 निदर्शन—जन समूह संचार की सामग्री बहुत अधिक हो सकती है। दूसरे शब्दो मे समग्र बहुत बड़ा हो सकता है। जैसे हम यदि भारत के विगत वर्ष के अखबारो से खेलो (Games) की खबरो का अध्ययन करना चाहे तो कुल मिलाकर इनकी बहुत बड़ी संख्या हम उपलब्ध होगी। इस प्रकार हमारा समग्र बहुत बड़ा होगा। अतः यदि हम उचित भाग का चयन कर ले तो भी हम काफी यथार्थ जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

निदर्शन की इकाइयाँ अनेक हो सकती है-कालम, इन्च प्रकरण, पैराग्राफ विषय या प्रतीकात्मक शब्द। अपने अध्ययन के लिए इनमे से किसी एक का चुनाव इस पर निर्भर है कि अध्ययन का उद्देश्य क्या है, और अन्तर्वस्तु का प्रकार क्या है? अनुसन्धान के कुछ प्रश्नो का उत्तर केवल स्थान मापने या मदो को गिनने से मिल

जाता है। जैसे निदर्शन मे आए अखबारो मे खेलो से सम्बन्धित खबरो के स्थान (कॉलमो की लम्बाई) को मापा जा सकता है, या खेलो की खबरो की मदो को गिना जा सकता है। यदि इससे छोटा निदर्शन लेना हो, जैसे पैराग्राफ या विषय ना बहुस्तरीय (Multiple) निदर्शन लेना चाहिए।

4 **प्रमुख श्रेणियो का विभाजन**—सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से श्रेणियो का विभाजन अन्तर्वस्तु-विश्लेषण का सबसे प्रमुख चरण है। विश्लेषण के लिए *अन्तर्वस्तु को प्रमुख श्रेणियो मे विभाजित किया जाता है।* इन श्रेणियों का उल्लेख हम पहले कर आए हैं, जैसे विषय सम्बन्धी श्रेणी (जैसे राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि), दिशा सम्बन्धी श्रेणी (जैसे अनुकूल-प्रतिकूल, धनात्मक-ऋणात्मक, वामपथी-दक्षिणपथी आदि)। (देखिये अन्तर्वस्तु-विश्लेषण की श्रेणियाँ)। इस प्रकार श्रेणियो की स्पष्ट परिभाषाएँ दी जाती हैं, जिससे अन्य व्यक्ति भी इसी सामग्री पर उन्हे लागू करके निष्कर्षों का परीक्षण कर सकें, श्रेणियाँ अनुसन्धान की *अवधारणाओ एव उपकल्पनाओ के आधार पर बनती हैं। इसलिए श्रेणियो की स्पष्ट परिभाषाएँ तभी मिलेगी जब अवधारणाएँ स्पष्ट होगी।*

5 **माप**—अन्तर्वस्तु-विश्लेषण मे माप के लिए दो प्रकार की इकाइयाँ प्रयुक्त होती हैं—

(A) सकेत इकाइयाँ, एव
(B) सन्दर्भ इकाइयाँ।

सकेत इकाइयो से हमारा आशय अन्तर्वस्तु का सबसे छोटा गिने या मापे जाने वाले अश से है। साधारणतया सकेत इकाइयाँ ये होती हैं—शब्द, विषय या कथन पैराग्राफ, प्रकरण, समूह, वस्तु या सस्था और स्थान या काल।

विशिष्ट शब्दो को गिनना (जैसे 'राष्ट्र', 'समाजवाद' आदि) अन्तर्वस्तु-*विश्लेषण का एक आसान ढग है किन्तु इसमे उतनी जानकारी नही मिल पाती* जितनी दूसरे निम्नलिखित तरीको मे। फिर भी शब्दो पर आधारित विश्लेषण वस्तुनिष्ठ होता है, क्योकि किसी शब्द के सारे रूपो की सूची बनाई जा सकती है। इसी प्रकार विषय या कथन की आवृत्ति हमे अधिक जानकारी दे सकती है।

सन्दर्भ इकाइयाँ सकेत इकाइयो से बडी होती हैं तथा उसके ठीक प्रकार *समझे जाने के लिए आधार प्रदान करती हैं। जैसे यदि शब्द सकेत इकाइयाँ हो तो* उस शब्द वाला वाक्य या पैराग्राफ या 'लेख सन्दर्भ इकाइयाँ' कहलाएगा। आवश्यकतानुसार सन्दर्भ इकाइयो की भी गणना की जा सकती है।

6 **सांख्यिकीय विश्लेषण**—उपकल्पनाओ के परीक्षण के लिए सांख्यिकीय प्रणालियाँ अपनाई जा सकती हैं। जैसे चरो मे साहचर्य है या नही, यह कोई वर्ग या सह सम्बन्ध निकाल कर जान सकते हैं। इसी प्रकार दो भिन्न सामग्रियो मे भेद है या नही यह जानने के लिए 'टी-परीक्षण' का उपयोग कर सकते हैं।

सामग्री के विश्लेषण के लिए सांख्यिकी की दूसरी प्रणालियों का भी उपयोग हो सकता है।[1]

अन्तर्वस्तु-विश्लेषण का महत्त्व
(Importance of Content Analysis)

सामाजिक अनुसन्धान की प्रविधियों मे इस अन्तर्वस्तु-विश्लेषण प्रविधि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका प्रयोग गुणात्मक घटनाओं के अध्ययन के साथ-साथ सचार सम्बन्धी अध्ययनों तथा मनोवैज्ञानिक अध्ययनो मे विशेष उपयोगी होता है। अन्तर्वस्तु-विश्लेषण के महत्त्व को भी निम्नांकित कोटियो मे प्रस्तुत किया जा सकता है--

1 **गुणात्मक अध्ययनों को वैषयिकता प्रदान करना**—अन्तर्वस्तु-विश्लेषण प्रविधि के द्वारा गुणात्मक अध्ययनो को गणनात्मक और वैज्ञानिक बनाया जाता है, क्योंकि इसके अन्तर्गत गुणात्मक तथ्यो को वर्गीकृत करके, तालिकाओं को प्रतिस्थापित करने योग्य बनाया जाता है।

2. **सचार सम्बन्धी अध्ययनों में महत्त्व**—सचार की अन्तर्वस्तु की मुख्य प्रवृत्तियों की विवेचना इस प्रविधि द्वारा की जा सकती है। आजकल सचार के साधन पर्याप्त रूप से विकसित हो गए हैं। इसके द्वारा सचार के साधनो के प्रभावो का अध्ययन किया जा सकता है। सामान्य जनता के विचारो, धारणाओं आदि पर सचार के साधनों का विशेष प्रभाव पडता है। इनके अध्ययन के लिए इस विधि का अधिक प्रयोग होता है।

3 **प्रचार साधनों का विस्तार**—अन्तर्वस्तु विश्लेषण की सहायता से प्रचार के अच्छे साधनो का विकास किया जा सकता है। अन्तर्वस्तु विश्लेषण के द्वारा यह कार्य प्रचार के साधनो की लोकप्रियता के आधार पर किया जा सकता है।

4 **समूह की मनोवैज्ञानिक स्थिति का निर्धारण**—गणनात्मक तथ्यो को परिवर्तित करके उनको व्यवस्थित व वैषयिक रूप मे प्रस्तुत करने मे सहायता प्रदान करता है।

5. **व्यक्तित्व का अध्ययन**—व्यक्तित्व के अध्ययन मे श्रेणियो एव वर्गों का निर्माण इसी के द्वारा किया जाता है।

6 **जनमत को जानने का प्रयास**—प्रजातन्त्र मे जनमत का अत्यन्त महत्त्व होता है और इस विधि के प्रयोग से जनमत को जानने का प्रयास किया जाता है।

7 **अन्तर्राष्ट्रीय तथ्यों की जानकारी**—अन्तर्वस्तु-विश्लेषण की सहायता से अनेक महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय तथ्यों का उद्घाटन किया जा सकता है।

अन्तर्वस्तु विश्लेषण की प्रमुख समस्याएँ
(Main Problems of Content Analysis)

अन्तर्वस्तु-विश्लेषण कोई आसान या सुगम कार्य नहीं है, बल्कि अन्तर्वस्तु

1 *Richard Budd, Robert Thorp & Lewis Donohew*, Content Analysis of Communications, 1967

के विश्लेषण में अनेक समस्याएँ उपस्थित होती हैं। सामान्यत अन्तर्वस्तु-विश्लेषण की प्रमुख समस्याएँ निम्नांकित हैं—

1 वस्तुनिष्ठता की समस्या।
2 परिमाणन की समस्या।
3 विश्लेषण की श्रेणियो की समस्या।
4 सार्थकता की समस्या।
5 सामान्यीकरण की समस्या।
6 विश्वसनीयता की समस्या।

यहाँ हम इन समस्याओ का सक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे—

1 वस्तुनिष्ठता की समस्या (Problem of Objectivity)—इस समस्या के तीन पहलू स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होते हैं—

(क) विश्लेषण की रूपरेखा के अन्तर्गत प्रयोग किए जाने वाले चर वस्तुनिष्ठता के लिए आवश्यक हैं। यह आवश्यक है कि स्पष्ट रूप से उन चरो का विशिष्ट विवरण प्रस्तुत किया जाए, जिनके सन्दर्भ मे उपलब्ध सामग्री का वर्णन किया जाना है।

(ख) पुनरुत्पादन योग्य अन्तर्वस्तु विश्लेषण के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक चर के लिए प्रयोग की जाने वाली श्रेणियो का विशिष्ट विवरण प्रस्तुत किया जाए।

(ग) विभिन्न विद्वानो द्वारा किए गए विश्लेषण से सहमति प्राप्त करने के लिए उन नियमो का सपष्ट उल्लेख किया जाना चाहिए जो यह निर्देश प्रदान करता है कि सामग्री के किन लक्षणो के पाए जाने पर किसी एक विशिष्ट श्रेणी से स्थान प्रदान किया जाए।

2 परिमाणन की समस्या (Problem of Quantification)—परिमाणन करते समय सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या इकाइयो के निर्धारण की है। सांकेतिक सामग्री के परिमाण के लिए यह आवश्यक होता है कि उन इकाइयो का स्पष्ट विवरण प्रस्तुत किया जाए, जिनका प्रयोग करते हुए परिमाणन किया जाना है। इन इकाइयो को हम आगणन की इकाइयाँ (Units of Enumeration) कहते हैं। ये अभिलेखन की इकाइयो से भिन्न हैं, क्योकि अभिलेखन इकाई सामग्री का वह अश होती है, जिसे अध्ययनकर्त्ता सकेतबद्ध करते समय एक नाम प्रदान करता है। कुछ परिस्थितियो म अभिलेखन की इकाई तथा आगणन की इकाई एक ही हो जाती है। ऐसा विशेषकर उस समय होता है जबकि विश्लेषक केवल एक अभिलेखन की इकाइयो की सख्या की गणना करता है। आगणन एव अभिलेखन की इकाइयाँ प्रायः अलग-अलग होती हैं।

3 विश्लेषण की श्रेणियों की समस्या (Problem of Categories of Analysis)—परिमाणन की समस्या के अलावा एक और समस्या अन्तर्वस्तु-विश्लेषण मे जो उपस्थित होती है वह है 'विश्लेषण की श्रेणियो की समस्या'।

विश्लेषण की श्रेणियो का निर्धारण करते समय सामान्यत दो प्रकार के अभिगमो का प्रयोग किया जाता है, वे हैं—

(क) प्रागनुभविक (A Priori), एव
(ख) अनुभवजन्य (A Posterior) ।

प्रागनुभविक—जिनमे पहले से ही तर्कसगत श्रेणियो का निर्माण कर लिया जाता है ।

अनुभवजन्य—जिनमे श्रेणियो का निर्माण सामग्री की विस्तृत जाँच करने के पश्चात् किया जाता है ।

अत अन्तर्वस्तु विश्लेषण मे ये श्रेणियाँ स्पष्ट रूप मे परिभाषित होनी चाहिए ताकि अन्य व्यक्ति भी इनका प्रयोग करते हुए प्राप्त किये गये परिणामो की जाँच कर सकें । साथ ही ये श्रेणियाँ अनुसन्धानकर्ता की रुचि पर आधारित न होकर निदर्शन (Sampling) म सम्मिलित सामग्री की प्रकृति पर निर्भर होनी चाहिए तथा कुछ परिमाणात्मक कार्य रीतियो का प्रयोग आवश्यक रूप से किया जाना चाहिये ।

4 सार्थकता की समस्या (Problem of Usefulness)—सार्थकता का परीक्षण सिद्धान्त अथवा प्रयोग अथवा दोनो ही दृष्टियो से किया जा सकता है । सार्थकतापूर्ण अन्तर्वस्तु विश्लेषण तभी सम्भव है जबकि किसी ऐसी समस्या पर क्रमबद्ध रूप से कार्य किया जाए जिसका समाधान विश्लेषण से प्राप्त आँकडो की विशिष्ट प्रकृति द्वारा प्रस्तुत किया जायेगा । इस समस्या की उत्पत्ति या तो एक सिद्धान्त अथवा अवधारणात्मक मॉडल की घटनाओ के किसी नवीन क्षेत्र तक प्रसारित करने की इच्छा अथवा किसी प्रायोगिक उद्देश्य के लिये घटनाओ की भविष्यवाणी करने अथवा नियन्त्रित कार्य की आवश्यकता के कारण हो सकती है ।

5 सामान्यीकरण की समस्या (Problem of Generalization)—सर्वेक्षण के द्वारा एक सीमित सख्या म तथ्य एकत्र किए जाते है और उन्ही के आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते हैं । यहाँ समस्या यह उठती है कि क्या उन एकत्रित तथ्यो से नियमित परिणाम वास्तव मे उस विषय के सामान्य निष्कर्ष हैं ।

अन्तर्वस्तु विश्लेषण म निकाले गए निष्कर्षो का सामान्यीकरण दो मान्यताओ पर आधारित है । पहली मान्यता यह है कि विश्लेषित की गई सामग्री सम्पूर्ण समग्र का प्रतिनिधित्व करती है, तथा दूसरी मान्यता यह है कि कुछ विशिष्ट परिस्थितियो एव विशिष्ट परिणामो के मध्य अन्वेषित किए गए सम्बन्ध सार्वभौमिक रूप से नही होते हैं ।

6 विश्वसनीयता की समस्या (Problem of Reliability)—अन्तर्वस्तु विश्लेषण मूलत एक वैज्ञानिक प्रविधि है और वैज्ञानिक अध्ययन की मुख्य विशेषता विश्वसनीयता होती है । इसे विश्लेषण करते समय प्राप्त तथ्यो की विश्वसनीयता की जाँच बडा कठिन होता है । जिन तथ्यो का उल्लेख विज्ञप्ति मे किया जाता है वे कहाँ तक विश्वसनीय हैं, उनका परीक्षण कर लेना चाहिये । इस समस्या से

बचने के लिए अनुसन्धानकर्त्ता को विशेष सावधानी बरतनी चाहिए और व्याख्या करते समय उन आधारों का स्पष्ट वर्णन कर देना चाहिये, जिन पर निर्भर होकर तथ्य एकत्र किए गए हैं।

अन्तर्वस्तु विश्लेषण की सीमाओं (Limitations) एवं दोषों की व्याख्या करते हुए विद्वानों ने लिखा है कि इसके दो महत्त्वपूर्ण दोष हैं, जो निम्न हैं—

1 क्षेत्रीय-अध्ययन कार्य के लिए इस प्रविधि का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

2 इस प्रविधि से सामाजिक घटनाओं की केवल संख्यात्मक व्याख्या ही की जा सकती है। गुणात्मक व्याख्या के लिए यह बहुत उपयुक्त नहीं है।

वर्तमान में सामाजिक विज्ञानों एवं विशेषकर समाजशास्त्र के जो अनुसन्धान कार्य हो रहे हैं उनमें अन्तर्वस्तु-विश्लेषण पद्धति का प्रयोग बहुतायत से किया जा रहा है। यद्यपि हमारे राष्ट्र में जो समाजशास्त्रीय अनुसंधान हो रहे हैं, उनमें अन्तर्वस्तु-विश्लेषण पद्धति का प्रयोग बहुत कम मात्रा में हुआ है। फिर भी शोधवेत्ताओं का रुझान अवश्य इस प्रविधि की ओर बढ़ रहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अन्तर्वस्तु-विश्लेषण प्रविधि से व्यवस्थित, वस्तुनिष्ठ एवं गुणात्मक आँकड़ों के विश्लेषण की सुविधा प्राप्त होती है। अतः वैज्ञानिक अध्ययनों में अन्तर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।

प्रक्षेपण प्रविधियाँ
(*Projective Techniques*)

सामाजिक अनुसन्धानों में हमें व्यक्तियों का अध्ययन करना होता है। व्यक्ति की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता उसकी जटिलता है। व्यक्ति सामान्यतः जैसे दिखाई देते हैं, वैसे ही वे होते हों, यह आवश्यक नहीं है। 'पीटर बर्जर' ने तो इससे एक कदम आगे यह भी लिखा है कि "व्यक्ति ही नहीं वस्तुएँ भी वैसी नहीं होती जैसी वे दिखाई देती हैं।" (Things are not what they look like) ।[1] व्यक्तियों के बारे में यह उक्ति भी प्रचलित है कि 'वह कहता कुछ है, करता कुछ और है और सोचता कुछ और ही है।'

अतः व्यक्तियों के व्यवहारों का अध्ययन करते समय अध्ययनकर्त्ता को अत्यन्त सावधानी बरतनी होती है। व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन करते समय अनुसन्धानकर्त्ता के लिए न केवल व्यवहार का वह भाग जो आसानी से देखा जा सकता है, अथवा उसके व्यक्तित्व के बाह्य अंगों से पहचाना जा सकता है का अध्ययन करना होता है, बल्कि साथ में व्यक्ति क्या सोच रहा है, क्या महसूस कर रहा है, अथवा उसकी अन्दरूनी भावनाएँ क्या हैं इसकी भी खोज करनी होती है। व्यक्ति के आन्तरिक व्यवहारों, इच्छाओं एवं भावनाओं को जानना इतना आसान नहीं होता जितना कि उसके बाह्य अंगों की हलचल द्वारा यह जानना कि व्यक्ति

1 *Peter Berger* : Invitation to Sociology, p 31

बहुत खुश है, क्योंकि हमेशा स्वस्थ एव हँसमुख दिखाई देता है, अथवा व्यक्ति बहुत दुःखी है, क्योंकि वह उदास, चिड़चिड़ा एव शरीर से कमजोर होता जा रहा है। खुशी एव दुःख के कारण एव उनके पीछे भावनाएँ क्या हैं, ये बाह्य अगो की सहायता से नही जानी जा सकतीं। इच्छाएँ, आवश्यकताएँ, मनोकामनाएँ प्रत्यक्षत नही देखी जा सकती हैं बल्कि बाह्य रूप से उनके बारे मे केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। खुला व्यवहार भी तभी समझा जा सकता है जबकि व्यक्ति के गुप्त व्यवहार का भी हमें कुछ आभास हो।

अनुसन्धान के प्रत्यक्ष तरीके जो कि अनुसूची, निरीक्षण एव साक्षात्कार के रूप मे अपनाए जाते हैं वे व्यवहार का अध्ययन केवल कुछ अशो तक ही कर पाते हैं। इसलिए मनोवैज्ञानिको द्वारा अनुसन्धान कार्य में जो सहायक विधियाँ प्रदान की गई हैं, उनकी भूमिका भी प्रत्यक्ष साधनो के साथ-साथ महत्त्वपूर्ण होती जा रही है। जैसा कि बर्नार्ड फिलिप्स (Bernard S Philips) ने 'सोश्यल रिसर्च, स्ट्रेटेजी, एव टैक्टिस' मे लिखा है कि "अप्रत्यक्ष विधियाँ व्यक्तियो के आन्तरिक व्यवहार को, जिसके बारे मे उत्तरदाता बतलाने के लिए सहज ही तैयार नहीं होता है, जानने का प्रयास करती हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि अप्रत्यक्ष विधि उत्तरदाता की महत्त्वपूर्ण जानकारियों को सामने ला सकती है।"[1] पी वी यग भी लिखते हैं कि "प्रत्यक्ष प्रश्नो के अतिरिक्त जो सहायक विधियाँ अनुसन्धान कार्य मे प्रयुक्त होती हैं, वे उत्तरदाताओ (Respondents) की भावनाओ को स्वतन्त्रता से प्रकट करने मे सहायक होती हैं।"[2]

इस प्रकार अनुसन्धान की वे समस्त विधियाँ जो सूचनादाता के व्यवहार, भावनाओ एव विश्वासो के अध्ययन हेतु उसके स्वय के प्रत्युत्तर पर निर्भर करती हैं, वे इस मान्यता पर आधारित होती हैं कि सूचनादाता स्वय के बारे मे सूचना देना चाहता है तथा साथ ही वह सूचना देने योग्य भी है। किन्तु सामान्यत व्यक्ति कुछ ऐसे विषयो पर बात करना पसन्द नही करते जो मुख्यत महत्त्वपूर्ण मूल्यांकनात्मक प्रकृति के हुआ करते हैं। कभी-कभी वे स्वय अपनी वास्तविक भावनाओ के प्रति अनभिज्ञ होते हैं या असगत युक्तिकरण से युक्त होते हैं। अनेक सूचनाएँ तो ऐसी होती हैं जिन्हें उत्तरदाता सुगमता से दे देता है, लेकिन अनेक जानकारियाँ ऐसी भी होती हैं जिन्हे उत्तरदाता कठिनाई से ही दे पाता है और भी उन सूचनाओ की सत्यता एव विश्वसनीयता सन्देह से परे नही होती।

इस प्रकार की कठिनाइयो का समाधान ढूंढने के प्रयास मे अनेक प्रकार की विधियों तथा तकनीको (Techniques) का प्रयोग किया जाने लगा है। ये विधियाँ प्रयोज्य की आत्मदृष्टि तथा स्वय के विचारो को सस्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करने की इच्छा से स्वतन्त्र होती हैं। मोटे रूप मे इस प्रकार की समस्त विधियो को दो भागो मे वर्गीकृत किया जा सकता है—

1 *Bernard S Philips* Social Research, Strategy and Tactics, p 122
2 *P. V. Young*: Scientific Social Survey and Research, p. 245.

1 प्रक्षेपण या प्रक्षेपीय प्रविधियाँ (Projective Techniques),

2 असरचित प्रच्छन्न प्रविधियाँ (Unstructured Disguised Techniques)

प्रक्षेपण या प्रक्षेपीय प्रविधियो का प्रयोग ऐसी ही सूचनाओ को प्राप्त करने हेतु किया जाता है जो व्यक्ति के आन्तरिक ससार से सम्बन्धित होती हैं। मनोविज्ञान में ऐसे आन्तरिक ससार को 'वैशिष्ट्य ससार' (Idiosyncratic World) कहा जाता है।

सामाजिक अनुसन्धान की प्रश्नो पर आधारित प्रत्यक्ष विधियो की सबसे बडी कमी यह है कि ऐसी विधियाँ केवल मात्र व्यक्त शाब्दिक विषय-वस्तु से ही सम्बन्धित होती हैं और बहुधा भावनाओ के अचेतन पक्ष की गहराई मे जाने मे असमर्थ होती हैं। यह आलोचना विशेषकर उन अभिवृत्तियो की माप के सम्बन्ध मे ठीक प्रतीत होती है, जो—

1 असामाजिक होती हैं, अत जिन्हे व्यक्ति खुले आम नहीं बताना चाहता है।

2 इन अभिवृत्तियो मे कुछ ऐसे तत्त्व विद्यमान होते हैं, जिन्हें दबा दिया गया है। ये तत्त्व एक व्यक्ति के मूल्य तथा मानको के अनुरूप नहीं होते, अतः वे कभी-कभी व्यक्ति की चेतना के घेरे मे आसानी से नहीं आ पाते हैं।

पद्धति सम्बन्धी इन्ही समस्याओ के आंशिक समाधान के लिए 'प्रक्षेपण विधि' (Projective Technique) का विकास किया गया है। अत व्यक्तित्व के कुछ ऐसे पक्षो का मापन जब प्रत्यक्ष व अन्य विधियो द्वारा असम्भव हो जाता है, तब उस स्थिति मे प्रक्षेपीय प्रविधियो का प्रयोग किया जाता है। प्रक्षेपण की इस प्रविधि की सहायता से व्यक्तित्व की आन्तरिक सतह तक की दमित इच्छाओ एव व्यक्तित्व सरचना का ज्ञान हो जाता है।

प्रक्षेपण क्या है ?
(What is Projection ?)

'प्रक्षेपण' (Projection) का शाब्दिक अर्थ तो यह है कि "व्यक्ति अपने को उभार कर अपने ही सामने लाए।" अपने मौलिक मनोविश्लेषणात्मक प्रयोग ने प्रक्षेपण का अर्थ अपने अचेतन तथा अस्वीकृतिपूर्ण आवेशो (Impulses) को अपने आप से बाहर निकालना और उन्हें अन्य व्यक्तियो से सम्बन्धित होने के रूप मे प्रत्यक्षीकृत करना है।

एक उदाहरण से इसे हम स्पष्टत समझ सकते हैं। अचेतन विरोधी आवेशो से युक्त कोई भी व्यक्ति किसी अन्य को विरोधी के रूप मे देखता है, और इस प्रकार अपने विरोधी आवेशो को बाहर निकालता है अथवा इन्हे प्रक्षेपित करता है। प्रक्षेपण की अवधारणा के अन्तर्गत न केवल अस्वीकृत आवेशो को बल्कि उसके मूल्यो, मनोवृत्तियो, आवश्यकताओ, इच्छाओ तथा आवेशो एव सम्प्रेरणाओ को भी सम्मिलित किया जाता है। एक भूखे व्यक्ति को 'खाने के योग्य न होने वाली

वस्तुओं में भी कुछ भोजन की विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। इस विश्व का प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रक्षेपीय चश्मे के माध्यम से विभिन्न वस्तुओं को देखता है।

इस प्रकार प्रक्षेपण से हमारा आशय व्यक्ति द्वारा अपनी आन्तरिक स्थितियो को बाह्य स्थितियों पर प्रक्षेपित किए जाने से है। प्रक्षेपण उस प्रक्रिया का बोध कराता है जिसके अन्तर्गत आन्तरिक विचार, भावनाएँ एव सवेग, बाह्य व्यक्तियों, वस्तुओ एव घटनाओ पर परावर्तित किए जाते हैं तथा उस ढग को प्रभावित करते हैं जिसका प्रयोग करते हुए इनका बोध (Perception) किया जाता है।

फ्रायड द्वारा विकसित मनोविश्लेषण ने 'प्रक्षेपण' का सम्बन्ध 'विभ्रमों' (Hallucinations) से माना गया है। 'प्रक्षेपण' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग प्रसिद्ध मनोविश्लेषणवादी विचारक 'फ्रायड' ने 1849 मे किया था। आपके अनुसार "प्रक्षेपण वह प्रक्रिया है जिसमे कि प्रत्येक व्यक्ति अपने अभावो, विचारो, भावनाओ, इच्छाओ, सवेगो, स्थायी भावो एव आन्तरिक सघर्षों को अन्य व्यक्तियो या बाह्य जगत के माध्यम से सुरक्षात्मक रूप से प्रस्तुत करता है।" अर्थात् दूसरे शब्दो मे प्रक्षेपण का अर्थ है अपने विचारो, बातो एव कमियो को अन्य व्यक्तियो या पदार्थों के माध्यम से व्यक्त करना। मनुष्य दूसरो से जो चाहता है, वह न पा सकने के कारण अपने मानस प्रतिबिम्ब को उन पर थोपता है। यही 'प्रक्षेपण' (Projection) है। जैसी मानव की मन स्थिति होती है, उसको ही वह दूसरो पर थोपता है। सोते समय नींद मे जब हम स्वप्न देखते है, तो वह भी एक प्रकार का प्रक्षेपण है। स्वप्न के रूप मे मस्तिष्क मे सन्तप्त भावनाएँ अपने आपको व्यक्त कर देती है।

वारेन (Warren) ने लिखा है "यह वह प्रवृत्ति है, जिसमे व्यक्ति बाह्य जगत मे अपनी दमित मानसिक प्रक्रियाओ का प्रक्षेपण करता है।"

काज एव शैंक (Katz and Schanck) ने लिखा है कि "प्रक्षेपण को एक व्यक्ति की अपनी प्रतिक्रियाओ के प्रति किए गए प्रत्युत्तर के रूप मे इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि जैसे वे उसके स्वय से सम्बन्धित न होकर बाह्य ससार के अग हो।"

ब्राउन (Brown) ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि "प्रक्षेपण अन्त क्षेपण का विलाम है। इसम 'स्व' (Self) सम्बन्धी बातें बाह्य जगत की वस्तुओ अथवा व्यक्तियो पर आरोपित की जाती हैं। विशेषत वे बातें जो व्यक्ति के अह को स्वीकार नहीं होती हैं। यह अपनी अर्द्ध त चेतना अवस्था मे अपनी त्रुटियो को दूसरो मे देखने की प्रवृत्ति है।"

आलपोर्ट (Allport) ने लिखा है कि 'जब व्यक्ति की भावनात्मक अवस्था की अभिव्यक्ति अनजाने मे उसके द्वारा परिवेश की व्याख्या मे हो जाती है, तो हम इसे प्रक्षेपण कहते हैं। किसी भी सम्बन्ध मे अपने विचार व्यक्त करते समय जब व्यक्ति अज्ञात ने अपनी आन्तरिक सवेगात्मक अवस्था को व्यक्त कर देता है, तो उसके कथन मे अप्रत्यक्षत उसके आन्तरिक जगत का प्रक्षेपण हो जाता है।"

स्पष्ट है कि प्रक्षेपण द्वारा व्यक्ति अपनी कमियों को अचेतन रूप से किसी दूसरे व्यक्ति पर आरोपित करने का प्रयास करता है। ऐसा करके व्यक्ति अपने को सुरक्षित अनुभव करता है।

जेम्स डी. पेज ने प्रक्षेपण के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "प्रक्षेपण एक प्रकार की ऐसी मानसिक युक्ति है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने व्यक्तिगत द्वेषों, कमजोरियों को किसी अन्य में आरोपित करता है।" इस प्रकार पेज का मानना है कि प्रक्षेपण के माध्यम से व्यक्ति अचेतन रूप से अपनी त्रुटियों के लिए दूसरों को दोषी ठहराता है।

जेम्स सी कोलमैन ने भी प्रक्षेपण को अहम् सम्बन्धी रक्षा-युक्ति मानकर, इस बात पर बल दिया है कि व्यक्ति प्रक्षेपण द्वारा प्रमुख रूप से दो कार्य करता है–

1 वह अपने दोषों, कमियों, कमजोरियों या त्रुटियों को दूसरों पर आरोपित करता है।

2 जिन बातों को वह स्वयं ठीक नहीं समझता या जिनके स्वीकार करने में उसे हिचक है, उन्हीं बातों को वह दूसरों पर आरोपित करता है।

प्रक्षेपण प्रविधि का अर्थ एवं परिभाषाएँ
(Meaning and Definitions of Projective Technique)

'प्रक्षेपण प्रविधि' (Projective Technique) शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 'एल के फ्रेंक' (L K Frank) ने 1939 में किया था। फ्रेंक ने लिखा है कि प्रक्षेपण प्रविधि व्यक्ति के आन्तरिक संसार को जानने की एक विधि तथा उसके व्यक्तिगत अनुभवों, उसके व्यक्तिगत संसार, और अनुभव एवं विचार को जानने का एक तरीका है, जो अप्रत्यक्ष रूप में ज्ञात किया जाता है।

प्रक्षेपण प्रविधियों का सैद्धान्तिक आधार 'फ्रायड' द्वारा वर्णित अचेतन मन और उससे सम्बन्धित वे युक्तियाँ (Mechanisms) हैं, जिनका व्यवहार व्यक्ति अपने अहं के बचाव के लिए करता है। इसीलिए प्रक्षेपण प्रविधियों को व्यक्तिगत मापन की सर्वोत्तम विधियाँ समझा जाता है। ये प्रविधियाँ प्रक्षेपण रक्षा-युक्ति (Projection Mechanism) पर आधारित होती हैं।

प्रक्षेपण प्रविधियों का प्रारम्भिक प्रयोग मनोवैज्ञानिकों एवं मानसिक चिकित्सकों द्वारा उन रोगियों के इलाज के लिए किया जाता था जो मानसिक रोग अथवा भावनात्मक व्याधि (Emotional Disorder) में पीड़ित थे। इस विधि द्वारा व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं उसकी भावनात्मक आवश्यकताओं, भावनात्मक उथल-पुथल का एक स्पष्ट चित्र खींचा जा सकता था।

पी वी यंग (P. V Young) ने लिखा है कि "प्रक्षेपण प्रविधियों के प्रयोग का तात्पर्य 'प्रत्यक्ष पूछताछ' (Direct Interrogation) के अतिरिक्त उत्तरदाता को इस तरह उकसाना है, जिससे वह स्वतन्त्र और प्रत्यक्ष रूप से स्वयं की और अपने सामाजिक संसार की जानकारी दे दे।"

ह्वाइट (White) ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि "प्रक्षेपण परीक्षणों के पीछे सामान्य विचार यह रहता है कि प्रयोज्य के समक्ष एक असंरचित तथा अस्पष्ट स्थिति उत्पन्न की जाती है और बाद में उसे इस स्थिति के प्रति किसी भी रूप में (शब्दों में, चित्रात्मक रूप में, अथवा मनोअभिनय के रूप में) अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए कहा जाता है"......प्रक्षेपण प्रविधियों की यह एक विशेषता होती है कि प्रयोज्य को यह पता नहीं होता कि प्रयोगकर्त्ता इन प्रयोगों के द्वारा किस प्रकार के निष्कर्ष निकालना चाहता है।"

एल के फ्रेंक ने एक अन्य स्थान पर स्वयं लिखा है कि "एक प्रक्षेपण प्रविधि में एक परिकल्पित अथवा चुनी हुई एक प्रेरक स्थिति को प्रस्तुत किया जाता है। यह प्रेरक स्थिति प्रयोज्य (Subject) के लिए वही अर्थ नहीं रखती जो अर्थ प्रयोगकर्त्ता ने मनमाने रूप से उस स्थिति का लगाया है।"

इस प्रकार प्रक्षेपण प्रविधियाँ परिमापन की उन परिस्थितियों का बोध कराती हैं, जिनमें उत्तरदाताओं को अप्रतिबन्धित अथवा अस्पष्ट उत्तेजकों के प्रति उत्तर देने को कहा जाता है। उत्तरदाता का उत्तरदायित्व ऐसी उत्तेजक परिस्थिति को संगठित करना अर्थात् विवेचन के लिए अर्थ प्रदान करना होता है, जिसका कोई आन्तरिक बाह्य करने वाला संगठन नहीं होता। लचीले उत्तेजक विषय को उत्तरदाता द्वारा निर्धारित किए गए अर्थ एवं मूल्य उसकी पूर्व-अभिवृत्तियों को उसके सचेत हुए बिना समझने में सहायता प्रदान करते हैं।

प्रक्षेपण प्रविधियाँ इस अनुमान पर आधारित हैं कि उत्तेजक जितना ही अधिक अस्पष्ट एवं अप्रतिबन्धित होगा उतना ही अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से उत्तरदाता अपने संवेगों, आवश्यकताओं, प्रेरणाओं, मनोवृत्तियों एवं मूल्यों को प्रक्षेपित करने में समर्थ होगा तथा वास्तव में प्रक्षेपित करेगा। प्रक्षेपण प्रविधि में उत्तरदाता से अध्ययन-विषय से सम्बन्धित सीधे प्रश्न नहीं पूछे जाते, अपितु अप्रत्यक्ष रूप में किसी और विषय को लेकर प्रश्न किए जाते हैं। इस प्रकार के प्रश्नों द्वारा प्राप्त उत्तरों के आधार पर यह अर्थ लगाया जाता है कि उत्तरदाता के ये विचार वास्तविक विषय से सम्बन्धित विचार हैं।

प्रक्षेपण प्रविधियों की विशेषताएँ
(Characteristics of Projective Techniques)

प्रक्षेपण प्रविधियों में कुछ सामान्य विशेषताएँ पाई जाती हैं। ये व्यक्तियों की भावनाओं, उद्देश्यों उम्मीदों, झुकावों एवं मनोवैज्ञानिक अनुभवों का अप्रत्यक्ष रूप से बाह्य कारकों की सहायता से अध्ययन करती है। ये व्यक्तित्व के दबाए हुए हिस्सों में जो कि आन्तरिक संसार में होते हैं, को प्रकट करने में हमारी सहायता करती है।

इनके द्वारा व्यक्ति के चेतन एवं अचेतन दोनों भागों का अध्ययन होता है। बनावटी एवं असंरचनात्मक प्रकृति के कारण प्रयोगकर्त्ता का झुकाव उत्तरदाता के

उत्तर पर कम असर डालता है। इसमे मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो के कारण साधारण विश्वसनीयता एव औचित्यता रहती है।

इस प्रकार प्रक्षेपण प्रविधियो के अर्थ एव पारिभाषिक विश्लेषण के आधार पर हम प्रक्षेपण प्रविधियो की अनेक विशेषताओ का उल्लेख कर सकते हैं। ये विशेषताएँ थोडी अधिक मात्रा मे लगभग समस्त प्रकार की प्रक्षेपण प्रविधियो मे पाई जाती हैं। प्रमुख रूप से प्रक्षेपण की इन विशेषताओ को निम्न वर्गों मे रखा जा सकता है—

1 प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति—प्रक्षेपण प्रविधियो के द्वारा मनुष्य की विभिन्न प्रतिक्रियाओं को उत्तेजित एव जाग्रत करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार प्रक्षेपण प्रविधियाँ विभिन्न प्रकार की उत्तेजक (Stimuli) प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करने मे समर्थ होती है। उदाहरण के लिए चित्र प्रदर्शन द्वारा कहानियो की विविधता का पता लगाया जा सकता है। ऐसी स्थितियो का उत्तर देने के लिए मनुष्य अपनी प्रतिक्रियाओ की अभिव्यक्ति करता है। यह अभिव्यक्ति उनके अनुभव और विवेक के आधार पर होती है।

2. मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का ज्ञान—प्रक्षेपण प्रविधियों की दूसरी विशेषता मनोवैज्ञानिक प्रकृति के ज्ञान से सम्बन्धित है। व्यक्ति जो विचार प्रकट करता है, उसके केन्द्र मे उस व्यक्ति विशेष की मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं।

3 व्यक्ति विश्लेषण—अनुकूल परिस्थिति मे व्यक्ति अपने व्यवहारो द्वारा किस प्रकार का निर्णय लेता है इससे किस आशय की जानकारी प्राप्त होती है व्यक्तित्व विश्लेषण के आधार पर ही सामाजिक जीवन एव घटनाओ को समझने म सहायता मिलती है।

4 वास्तविकता का ज्ञान—इसके द्वारा व्यक्ति की आवश्यकताओ का ज्ञान होता है। इसके साथ ही मानव के मूल्य, आदर्श मापदण्ड और विचारो मे होने वाले सघर्ष की जानकारी प्राप्त होती है।

5 जनमत का ज्ञान—इसके द्वारा सामान्य एव असामान्य चित्रो को दिखाकर उत्तरदाताओ के मन को जानने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार प्रक्षेपण प्रविधियो से हमे जनमत का ज्ञान होता है।

6 कार्य-कारण का ज्ञान—प्रक्षेपण विधियो के प्रयोग से घटनाओ के कार्य-कारण सम्बन्धो की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इसमे चित्रो के आधार पर घटनाओं को कार्य-कारण की दृष्टि से क्रमबद्ध रूप से प्रदर्शित करने के लिए कहा जाता है।

7 अप्रत्यक्ष अध्ययन—इसमे व्यक्ति के सामने प्रश्नो को अप्रत्यक्ष ढग से इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि व्यक्ति को यह पता ही नही लगता कि किस उद्देश्य से यह परीक्षण किया जा रहा है। अत हम अप्रत्यक्ष रूप से यथार्थ ज्ञान प्राप्ति म यह प्रविधि सहायता करती है।

प्रक्षेपण प्रविधियों का प्रयोग
(Use of Projective Techniques)

प्रारम्भ में प्रक्षेपण प्रविधियों का प्रयोग मुख्यतः मनोवैज्ञानिकों एवं मनोचिकित्सकों ने अपने अध्ययनों के लिए किया था। इन विद्वानों में फायड मरे, ब्लेक, मर्फी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। सामाजिक विज्ञानों में विशेषकर समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान, मानवशास्त्र आदि के क्षेत्रों में मनोविज्ञान की अपेक्षा तुलनात्मक दृष्टि से प्रक्षेपण प्रविधियों का प्रयोग बहुत कम हुआ है।

लेकिन फिर भी वर्तमान में इन प्रविधियों का प्रयोग सामाजिक विज्ञानों में बढ़ रहा है। लिंडजे (Lindzey) ने सामाजिक विज्ञानों तथा मनोविज्ञान में इस विधि के प्रयोगों को लेकर एक पूरी पुस्तक 'प्रोजेक्टिव टेक्निक्स एण्ड क्रॉस कल्चरल रिसर्च' के नाम से लिखी है। प्रक्षेपण प्रविधियों का प्रयोग मुख्यतः निम्न अध्ययनों में किया जाता है—

1 वे सामाजिक मनोभाव जिन्हें अन्य विधियों से नहीं समझा जा सकता है,
2 प्रेरणायें,
3 अपेक्षायें एवं आवश्यकतायें,
4 आकांक्षाएँ,
5 व्यक्तित्व के किसी पहलू का अध्ययन।

समाजवेत्ताओं ने अपनी-अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप विभिन्न क्षेत्रों में अनेकानेक विषयों में अध्ययन में प्रक्षेपण प्रविधियों का प्रयोग किया है। वास्तव में प्रक्षेपण प्रविधियाँ ऐसे विषयों अथवा स्थितियों के अध्ययन में अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुई हैं जिनके अध्ययन में प्रत्यक्ष विधियाँ असफल हो जाती हैं जब अनुसन्धानकर्त्ता यह अनुभव करता है कि उसका अध्ययन विषय ऐसा है जिसके सम्बन्ध में उत्तरदाता कुछ भी बताने से हिचकिचाता है, या वह उन विषयों पर कोई प्रत्यक्ष चर्चा करना पसन्द नहीं करता। कभी-कभी स्वयं उत्तरदाता को किन्हीं विषयों के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया का ज्ञान नहीं होता या वह उन्हें शब्दाभिव्यक्ति देने में असमर्थ होता है, तब ऐसी समस्त स्थितियों में प्रक्षेपण प्रविधियों का प्रयोग अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है।

डॉ० सुरेन्द्र सिंह (Dr Surendra Singh) ने भी लिखा है कि प्रक्षेपण प्रविधियों का प्रयोग व्यक्तित्व के रागात्मक पहलुओं के विस्तृत एवं रचित अध्ययन में सहायता प्रदान करता है। व्यक्तित्व के रागात्मक पहलुओं के विषय में तब तक पर्याप्त निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते जब तक कि अनुसन्धानकर्त्ता व्यक्ति के चेतन एवं मौखिक प्रत्युत्तरों पर निर्भर करता है ऐसा वस्तुतः इसलिए है क्योंकि--

1 उत्तरदाता का व्यवहार प्रायः अचेतन भावनाओं एवं संवेगों से सम्बन्धित होता है, जिनसे वह अवगत नहीं होता है।

2 उत्तरदाता के अपनी भावनाओं से अवगत होने के बावजूद भी वह उन्हें स्पष्ट उचित एवं प्रत्यक्ष रूप में व्यक्त करने में अपने आपको असमर्थ पाता है।

3 उत्तरदाता कभी कभी अनुसन्धानकर्ता से तथा कभी कभी स्वयं अपने आप से अनेक तथ्यों को छुपाना चाहता है।[1]

स्पष्ट है कि प्रक्षेपण प्रविधियों का सामाजिक अनुसन्धान में अत्यन्त महत्त्व है विशेषकर व्यक्ति के व्यक्तित्व आदतों व्यवहार भावनाओं, आवश्यकताओं संवेगों एवं अन्य व्यक्तियों के साथ उसकी अन्तःक्रिया एवं और भी स्पष्ट रूप में व्यक्ति के आन्तरिक संसार को समझने में प्रक्षेपण प्रविधियाँ अत्यधिक उपयोगी हैं।

प्रक्षेपण प्रविधियों का वर्गीकरण

(Classification of Projective Techniques)

(प्रक्षेपण प्रविधियों को अनेक विद्वानों ने अनेक आधारों पर वर्गीकृत किया है। इस प्रकार अनेक प्रकार की प्रक्षेपण प्रविधियाँ पाई जाती हैं)यहाँ हम प्रक्षेपण प्रविधियों के कुछ वर्गीकरण प्रस्तुत करेंगे।

(जी० लिंडज़े (G Lindzey) ने) एक लेख ऑन दि क्लासीफिकेशन ऑफ प्रोजेक्टिव टकनिक्स में प्रत्युत्तरों (Responses) के आधार पर प्रक्षेपण प्रविधियों को वर्गीकृत किया है एवं इसके (पाँच प्रमुख प्रकारों का उल्लेख किया है[2] जो हैं)

1 सम्बन्ध प्रविधि (Association Technique)
2 रचना प्रविधि (Construction Technique)
3 पूर्णता प्रविधि (Completion Technique)
4 चुनाव अथवा क्रमांकन प्रविधि (Selection or Ordering Technique)
5 प्रकटन प्रविधि (Expressive Technique)

इन्हें यहाँ संक्षेप में समझाना उपयुक्त होगा—

1 सम्बन्ध प्रविधि (Association Technique)—इस प्रक्षेपण प्रविधि के अन्तर्गत इस बात की आवश्यकता होती है कि उत्तरदाता एक उत्तेजक के प्रस्तुत किए जाने पर तुरन्त उसके मस्तिष्क में आने वाले सर्वप्रथम विचार को व्यक्त करे। इस प्रविधि का उत्पत्ति फ्रायड (Freud) की स्वतन्त्र साहचर्य प्रविधि (Free Association Technique) एवं जुंग (Jung) के शब्द साहचर्यों (Word Association) सम्बन्धी अध्ययनों तथा रोशा (Rorchach) के स्याही के धब्बा (Ink Blot Test) के साथ कार्य करने के परिणामस्वरूप हुई।

2 रचना प्रविधि (*Construction Technique*)—प्रक्षेपण प्रविधि के इस प्रकार में उत्तरदाता को निर्देश प्रदान करते हुए किसी चीज को बनाने के लिए (रचना या निर्माण करने के लिए) कहा जाता है। प्रायः उत्तरदाता से चित्र बनाने अथवा कहानियाँ (Stories) की रचना करने के लिए कहा जाता है।

1 डा० रामबिहारी सिंह सामाजिक मनोविज्ञान भाग I पृष्ठ 422

2 *C Lindzey On the Classification of Projective Techniques Psychological Bulletin 1959 p 158 168*

रचनात्मक प्रविधियो ने वेरॉफ (Varoff) का 'शक्ति सम्प्रेरणा परीक्षण' (Power Motivation Test) प्रमुख है।

3 पूर्णता प्रविधि (Completion Technique)--गेजेल्स एव जेक्सन (Getzels and Jackson) ने दो प्रकार के परीक्षण बताए थे--

1 सामजस्य का छद्मवेषीय परीक्षण (Disguised Test of Adjustment)

2 मनगढन्त कहानी परीक्षण (Febles Test)।

सामजस्य के छद्मवेषीय परीक्षण म इस प्रकार के वाक्य प्रयुक्त होते हैं, -यथा-"अन्य व्यक्तियो क साथ कार्य करने मे मुझे सदैव · अनुभव होता है।" उत्तरदाता इस वाक्य को अनेक प्रकार से पूरा कर सकता है जैसे--पागलपन, बीमारी थकान (नकारात्मक प्रभाव वाले) अथवा सन्तोष आनन्द, प्रसन्नता (सकारात्मक प्रभाव वाले) आदि।

मनगढन्त कहानी परीक्षण के अन्तर्गत उत्तरदाता के समक्ष गेजेल्स व जेक्सन ने चार ऐसी मनगढन्त कहानियाँ प्रस्तुत की जिनकी अन्तिम पक्तियाँ गायब थीं। उत्तरदाताओ से यह पूछा गया कि वे यह बताएँ कि नैतिकता हँसी एव दुख प्रत्येक की दृष्टि से अन्तिम पक्ति क्या हो सकती है।

4 चुनाव अथवा क्रमाकन प्रविधि (Selection & Ordering Technique)--इस प्रविधि के अन्तर्गत उत्तरदाता के समक्ष विभिन्न प्रकार के चित्र प्रस्तुत किए जाते हैं। उत्तरदाता से कहा जाता है कि वह इन विभिन्न चित्रो से चुन चुन कर इन्हे इस प्रकार क्रमबद्ध करे कि एक निश्चित विचारधारा सामने आ सके।

5 प्रकटन प्रविधि (Expressive Technique)—इस प्रविधि के अन्तगत उत्तरदाता से यह कहा जाता है कि वह प्रदान की गई सामग्री के आधार पर किसी वस्तु का निर्माण करे, किन्तु यहाँ पर उस ढग पर बल दिया जाता है जिसे अपनाते हुए वह इस वस्तु का निर्माण करता है। उत्तरदाता दी गई सामग्री के साथ वस्तु का निर्माण करते समय अपनी वास्तविक भावनाओ को व्यक्त करता है। व्यक्त करने वाली प्रविधियो मे खेल, रगाई चित्रकारी, भूमिका प्रतिपादन (Role Playing) को मुख्यत सम्मिलित किया जाता है। हाथ से लिखना, मिट्टी के कार्य आदि भी इसमे आते हैं।

एक अन्य वर्गीकरण प्रक्षेपण प्रविधियो का उत्तेजना (Stimuli) के आधार पर किया जा सकता है। इस आधार पर प्रक्षेपण प्रविधियो के तीन प्रकारो को बताया जा सकता है, यथा—

1 वार्तालाप पर आधारित प्रविधि,

2 सचित्र प्रविधि,

3. ड्राइंग, चित्रकारिता, क्रीडा, ड्रामेटिक मेटीरियल प्रविधि।

यद्यपि टी. ए. टी को पूर्णत मानकीकृत (Standard) नहीं माना जा सकता फिर भी यह अर्द्ध-मानकीकृत एव व्यक्तित्व परीक्षण के लिए उपयोगी तो है ही।

प्रक्षेपण प्रविधियों का मूल्यांकन
(Evaluation of Projective Techniques)

प्रक्षेपण या प्रक्षेपीय प्रविधियो का मूल्यांकन करने लिए यह आवश्यक है कि हम इन प्रविधियो के लाभ या महत्व एव दोषो या सीमाओ की विवेचना करे। बिना किसी प्रविधि के गुणो एव दोषो को जाने किसी भी प्रविधि का मूल्यांकन करना असम्भव है। इसलिए प्रक्षेपण प्रविधियो के मूल्यांकन के लिए हमे इन दोनो पक्षो की विस्तार से चर्चा करनी चाहिए।

समाजशास्त्रीय अनुसन्धान मे प्रक्षेपण प्रविधियों की महत्ता/लाभ (Significance of Projective Techniques in Sociological Research)—समाजशास्त्रीय अनुसन्धान मे प्रक्षेपण विधियो की महत्ता अत्यधिक है। इसके प्रमुख लाभो या गुणो को हम निम्न बिन्दुओ मे प्रस्तुत कर सकते हैं—

1 प्रक्षेपण प्रविधियो का पहला गुण यह है कि व्यक्ति के विचारो, अभिवृत्तियो, सवेगो, गुणो, अभावो, स्थायी भावो आदि का अन्य बाह्य पदार्थों के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से अध्ययन करती है, जिसमे व्यक्ति के सम्बन्ध मे यथार्थ जानकारी प्राप्त होती है एव उसे किसी बात को छिपाने का अवसर प्राप्त नही होता।

2 प्रक्षेपण प्रविधियाँ व्यक्तित्व के स्नेहात्मक पहलुओ को समझने मे सहायक होती हैं।

3 प्रक्षेपण प्रविधियो से व्यक्ति की आन्तरिक सतह पर दबे हुए विचारो को प्रकट करने मे सहायता मिलती है।

4 प्रक्षेपण प्रविधियाँ उन मानवीय भावनाओ एव मनोवृत्तियो पर प्रकाश डालने मे समर्थ होती हैं जिनके विषय मे उत्तरदाता स्वय चेतन रूप से अवगत नहीं होते। इस प्रकार ये प्रविधियाँ व्यक्ति के चेतन एव अचेतन दोनो पहलुओ को समझने मे सहायक होती हैं।

5 प्रक्षेपण प्रविधियाँ प्राय: 'अस्पष्टता' या 'सदिग्धता' से शुरू होती हैं। अतएव व्यक्ति को अनुमान लगाने का अवसर ही नही मिल पाता है।

6 आँकडे संग्रह की अन्य प्रविधियो की तुलना मे प्रक्षेपण प्रविधियो से अधिक गहन, विस्तृत जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

7 चूँकि प्रक्षेपण प्रविधियो की विषय-सामग्री सदैव अनेकार्थक होती है। इसलिए व्यक्ति गलत तथा सही प्रत्युत्तरों मे अन्तर नही कर सकता।

8 सामान्यतया सम्पूर्ण परीक्षण सामग्री प्रकाशित रूप मे होती है अन इनका आयोजन प्राय स्थिर होता है।

9. प्रक्षेपीय प्रविधियो के निर्देश प्राय मानकीकृत (Standard) होते हैं, **इसलिए इनके आदेश प्रदान करने में कोई भेद नहीं मिलता है।**

10 प्रक्षेपीय प्रविधियो मे आंकडे इकट्ठे करने से लेकर उन्हे विवेचित करने तक के दृष्टिकोण वस्तुनिष्ठ (Objective) होते हैं।

11 प्रक्षेपण प्रविधियों का प्रयोग सामान्य एव असामान्य (Abnormal) दोनो प्रकार के व्यक्तियो के व्यक्तित्व का मूल्यांकन करने के लिए किया जाता है।

12. प्रक्षेपण प्रविधियो की विश्वसनीयता एव वैद्यता सामान्य होनी है।

13 प्रक्षेपण प्रविधियो की सहायता से एकत्रित किए गए आंकडो के उचित रूप से विश्लेषित एव विवेचित किए जाने पर विशिष्ट परिस्थितियो के अन्तर्गत प्रदर्शित किए जाने वाले व्यवहार के विषय मे भविष्यवाणी की जा सकती है।

14 प्रक्षेपण प्रविधियाँ निदानात्मक उद्देश्यो (Diagnostic Objects) की पूर्ति मे सहायक सिद्ध होनी है, और इसीलिए इनका विस्तृत प्रयोग मनोचिकित्सा एव चिकित्सीय मनोविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है।

प्रक्षेपण प्रविधियों की सीमाएँ
(Limitations of Projective Techniques)

प्रक्षेपण प्रविधियो के उपरोक्त गुणो के साथ ही साथ प्रक्षेपण प्रविधियो की अपनी कुछ सीमाएँ भी हैं, जिनके कारण हमे इनका प्रयोग करने मे कुछ कठिनाई मालूम होती है। इस प्रविधि की प्रमुख सीमाएँ निम्नांकित हैं—

1 प्रक्षेपण प्रविधियो की रचना एव मानकीकरण प्राय एक अत्यन्त दुर्लभ एव कठिन कार्य है।

2 प्रक्षेपण प्रविधियों का प्रशासन, गणना एव विवेचन एक साधारण व्यक्ति या नवीन शोध-वैज्ञानिको द्वारा सम्भव नही होता है, बल्कि इसके लिए विशिष्ट योग्य एव अनुभवी तथा प्रशिक्षित व्यक्ति की नितान्त आवश्यकता होती है।

3 प्रक्षेपण प्रविधियो के परीक्षणो मे अधिक समय लगता है जिससे व्यक्ति थकान एव अरोचकता का अनुभव करने लगता है। इससे उसके व्यक्तित्व के मूल्यांकन पर प्रभाव पड सकता है।

4 इन प्रविधियो का सम्बन्ध मुख्य रूप से व्यक्ति के अचेतन पक्ष से ही रहता है, जबकि व्यक्तित्व चेतन एव अचेतन दोनो पक्षो के समन्वय की एक व्यवस्था है।

5 प्रक्षेपण प्रविधियाँ सामान्यत सामान्य व्यक्तियो की अपेक्षा असामान्य (Abnormal) व्यक्तियो के व्यक्तित्व का मूल्यांकन करने मे अधिक उपयोगी है।

6 प्रक्षेपण प्रविधियो की आलोचना मे अनेक विद्वानो का तर्क यह है कि इनकी विश्वसनीयता एव वैधता निर्धारित करना कठिन होता है।

7 प्रक्षेपण प्रविधियाँ वस्तुत चिकित्सीय क्षेत्रों मे अधिक उपयोगी हो सकती हैं। अनुसन्धान कार्यों मे इनका महत्त्व अधिक नही है।

इस प्रकार प्रक्षेपण प्रविधियाँ लाभ व दोषो दोनो से युक्त हैं। कैम्पबेल

(Campbell) ने लिखा है कि "ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता जिससे यह साबित हो सके कि प्रोजेक्टिव टेक्निक्स द्वारा जो अप्रत्यक्ष रूप से सवाल पूछकर प्रत्युत्तर प्राप्त किए जाते हैं वे प्रत्यक्ष रूप से पूछे जाने वाले सवालो से ज्यादा सही सूचना प्रदान कर सके हो।"[2] इसी कारण मनोविज्ञान के अलावा अन्य सामाजिक विज्ञानो मे ये प्रविधियाँ ज्यादा विकसित नहीं हो पाईं।

पी वी यग ने प्रक्षेपण प्रविधियो को लाभदायक बताया है।[3] डॉ हेनरी ने इस प्रविधि के बारे मे लिखा है कि प्रक्षेपण प्रविधियाँ वे माध्यम है जिनके द्वारा प्रदर्शित एव स्पष्ट एक स्वरूप (Single Image) की कल्पनाओ को उत्तेजित किया जाता है तथा उसकी अन्त क्रिया के विभिन्न आश्चर्यजनक आन्तरिक भावो को प्रकाश मे लाया जाता है। व्यक्ति के उत्तेजित भाव वृहद् रूप मे उसके व्यवहार के विभिन्न स्वरूप हैं, उसकी स्वय की रुचि के अनरूप हैं, एव मूलत व्यक्ति की औपचारिक विशेषताओ के भाग हैं। इन विशेषताओ को प्रस्तुत करने के एक प्रयास को प्रक्षेपण कहा जाता है। यह उसके व्यक्तित्व को भी प्रस्तुत करता है। व्यक्तित्व का शेष भाग बाह्य आवरण है जो कि निरर्थक है। प्रस्तुत किया जाने वाला भाग ही वास्तविक एव उद्देश्यपूर्ण है। प्रक्षेपण के अर्थ मे यही निहित है कि व्यक्तित्व की आन्तरिक परन्तु उद्देश्यपूर्ण विशेषताओ को किस प्रकार से प्रकाश म लाया जाए। अत मूल प्रश्न केवल यह है कि किन सकेतो के माध्यम से सार्थक तथा उद्देश्यपूर्ण (आन्तरिक) विशेषताओ को निरर्थक (बाह्य) विशेषताओ से पृथक किया जाए।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अनेक सीमाओ के बावजूद भी प्रक्षेपण प्रविधियाँ सामाजिक अनुसन्धान की अत्यन्त उपयोगी प्रविधि है। इस प्रविधि का प्रयोग करते समय अनुसन्धानकर्त्ता को कुछ सावधानियाँ अवश्य रखनी चाहिए, जिससे वह प्रविधि को और उपयोगी बनाकर यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति कर सके। एफ एन कर्लिन्जर ने भी लिखा है कि "पर्यवेक्षण के प्रक्षेपीय ढग मनोवैज्ञानिक एव शैक्षिक अनुसन्धान के लिए लाभदायक उपकरण सिद्ध हो सकते हैं बशर्ते कि इन्हे उपकरण समझा जाए और अन्य उपकरणो की भांति वैज्ञानिक परिमापन के उन्ही सिद्धान्तो एव कसौटियो से प्रमाणित कराया जाए तथा इन्हे सूझबूझ और प्रवाह के साथ प्रयोग मे लाया जाए।"[3]

वैयक्तिक अध्ययन[4]
(Case Study)

वैयक्तिक अध्ययन या एकल अध्ययन सामाजिक अनुसन्धान मे आंकडो के एकत्रीकरण की एक ऐसी प्रविधि है जो अनुसन्धानकर्त्ता को तीव्र एव सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि प्रदान करती है, और वह इकाइयों का अधिक गहराई में पैठकर अध्ययन करने,

1 *Bernard Philips* op cit p 123
2 *P V Young* op cit
3 *F N Kerlinger* op cit, p 538.
4 इसे एकल अध्ययन या एकल विषय अध्ययन भी कहा जाता है।

समस्याओं का मनो-सामाजिक अध्ययन करने, निदान करने मे सहायक होता है। इतना ही नही, अध्ययन की इस पद्धति द्वारा निष्कर्षों को अधिक से अधिक यथार्थ एव पूर्ण बनाने तथा नवीन उपकल्पनाओं की रचना करने के लिए उपयुक्त आधार प्रदान करने मे वैयक्तिक अध्ययन (Case Studies) महत्त्वपूर्ण होते हैं। सामाजिक अनुसन्धान मे वैयक्तिक अध्ययन पद्धति का विशिष्ट एव महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि यह एक सामाजिक इकाई (Social Unit) के बारे मे गहन एव पूर्ण सूचना प्रदान करने मे सहायता करता है, जिसके अभाव मे किसी भी सामाजिक अनुसधान सम्बन्धी अध्ययन को पूर्ण कहना असम्भव होता है। 'कूले' ने लिखा है कि "वैयक्तिक अध्ययन हमारे बोध (Perception) को गहन बनाता है तथा जीवन मे हमे अधिक स्पष्ट अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है।"[1]

इस प्रकार वैयक्तिक अनुसन्धानकर्त्ता की अन्तर्दृष्टि को विकसित करने के अतिरिक्त व्यवहार के प्रत्यक्ष अध्ययन को सम्भव बनाता है। बर्गेस (Burgess) ने इसे सामाजिक अनुसन्धान का 'सूक्ष्मदर्शी' (Microscope) कहा है, वही थॉमस एव जैनेनिकी ने वैयक्तिक अध्ययन की सहायता से एकत्रित किए गए आंकडो को 'समाजशास्त्रीय सामग्री का सम्पूर्ण प्रकार' (Perfect Type of Sociological Meterial) कह कर सम्बोधित किया है।[2]

इस प्रकार वैयक्तिक अध्ययन का अर्थ किसी मामले (Case), समूह, व्यक्ति घटना का समग्र ब्यौरेवार अध्ययन करना है। एक न्यायाधीश अपने सम्मुख आने वाले मामले का एवं एक सफल चिकित्सक अपने सम्मुख आने वाले रोगी का वैयक्तिक अध्ययन करते हैं।

सामाजिक अनुसन्धानों मे भी वैयक्तिक अध्ययन का आशय है किसी विशिष्ट इकाई (Unit) का अध्ययन। यह इकाई कोई समूह, परिवार, व्यक्ति, घटना, सस्था या समुदाय हो सकती है। यहाँ यह प्रश्न उठना स्वभाविक है कि किसी विशिष्ट इकाई के अध्ययन में अनुसन्धान को क्या लाभ हो सकता है? विज्ञान एव उसके सिद्धान्त तो सार्वभौमिक होते हैं, अत कुछ इकाइयो के अध्ययन मे सार्वभौमिक नियम तो प्राप्त नहीं हो सकते, फिर इन इकाइयो के अध्ययन से क्या लाभ है?

यह सत्य है कि वैयक्तिक अध्ययन के आधार पर सामान्यत: सामान्यीकरण (Generalization) नही किया जा सकता, किन्तु फिर भी इस प्रकार के अध्ययन हमे नवीन अवधारणाएँ (Concepts), उपकल्पनाएँ (Hypothesis) एव सिद्धान्त (Theory) सुझा सकते हैं। विशिष्ट लक्षणो के अध्ययन के दौरान कभी कभी हम पाते हैं कि हमारी अवधारणाएँ उनके वर्गीकरण के लिए काफी नहीं हैं, तब हम नवीन अवधारणाओं के निर्माण की ओर बढते हैं। कभी हमे लगता है कि किसी कार्य विशेष के प्रमुक ज्ञात कारण के अलावा अन्य कारण भी हैं। तब

1 *P. V. Young*: Scientific Social Survey and Research, p 265.
2 डॉ सुरेन्द्रसिंह: सामाजिक अनुसन्धान से उद्धृत, पृष्ठ 402.

हम इन सम्भव कार्य-कारण सम्बन्धो को नवीन उपकल्पनाओ के रूप मे प्रस्तुत करते हैं, और यदि हमे लगे कि हमारी विभिन्न उपकल्पनाएँ मिलकर एक नए सैद्धान्तिक ढ ग की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है तो हम इस ढाँचे को भी प्रस्तुत कर सकते हैं। वैयक्तिक अध्ययन का प्रयोग अधिकांशत मनोचिकित्सा, समाजकार्य तथा सामाजिक अनुसन्धान मे किया जाता है। इस पद्धति का प्रयोग मनोचिकित्सा के अन्तर्गत मानसिक बीमारियो का उपचार करने हेतु, मनोसामाजिक अध्ययन करने हेतु एव उनका निदान प्रस्तुत करने के लिए तथा सामाजिक अनुसन्धानो मे अनुसन्धान समस्या का समाधान प्रस्तुत करने के लिए आवश्यक सूचना का संग्रह करने की दृष्टि से किया जाता है।

वैयक्तिक अध्ययन का अर्थ एवं परिभाषाएँ
(Meaning and Definitions of Case Study)

सामाजिक अनुसन्धान के क्षेत्र मे वैयक्तिक अध्ययन प्रणाली का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। यह प्रणाली काफी प्राचीन है और इसका उपयोग सुप्रसिद्ध व्यक्तियो के जीवन इतिहास को तैयार करने मे किया जाता था। इस पद्धति द्वारा सभी सम्भव स्रोतो और प्रणालियो से तथ्यो का सकलन किया जाता था। प्रारम्भ मे इस पद्धति का प्रयोग हरबर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) ने किया, बाद मे लिप्ले (Leplay) ने इसका प्रयोग बड़े ही सुव्यवस्थित और समुचित ढ ग से किया। बर्नार्ड के मतानुसार, "सर्वप्रथम इसका उपयोग अनुमान द्वारा किसी नई उपकल्पना पर पहुँचने की अपेक्षा, प्रस्तावनाओ तथा विचारधाराओ को समझाने एव समर्थन करने के लिए किया गया था।"

पी वी. यग ने वैयक्तिक अध्ययन की परिभाषा देते हुए लिखा है—"वैयक्तिक अध्ययन, किसी एक सामाजिक इकाई, चाहे वह एक व्यक्ति हो, या एक परिवार, सस्था सांस्कृतिक समूह अथवा सम्पूर्ण समुदाय ही क्यो न हो, के जीवन की खोज तथा विश्लेषण की एक पद्धति है।"[1]

एफ एच गिडिंग्स (F H Giddings) के मतानुसार, "अध्ययन किया जाने वाला वैयक्तिक विषय केवल एक व्यक्ति अथवा उसके जीवन की एक घटना, अथवा विचारपूर्ण दृष्टि से एक राष्ट्र या इतिहास का एक युग भी हो सकता है।"[2]

बिसेंज एव बिसेंज के अनुसार, "वैयक्तिक अध्ययन पद्धति सम्पूर्ण गुणात्मक विश्लेषण का एक स्वरूप है जिसमे एक व्यक्ति, परिस्थिति या सस्था का बहुत सावधानीपूर्वक तथा पूर्ण अवलोकन किया जाता है।"[3]

क्लिफोर्ड शार शॉ के अनुसार, "वैयक्तिक अध्ययन पद्धति सम्पूर्ण परिस्थिति अथवा कारको के सम्मिलित रूप, प्रक्रिया के विवरण और घटनाओ के अनुक्रम जिसमे व्यवहार घटित होते हैं, मानव व्यवहार का सम्पूर्ण सरचना मे अध्ययन तथा

1 *Pauline V Young*, op cit, p 229
2 *F H Giddings*: Scientific Study of Human Society, p. 95.
3 *Biesanz and Biesanz*: Modern Society, p 11

उपकल्पनाओ (Hypotheses) के निर्माण मे सहायक वैयक्तिक स्थितियो के विश्लेषण और तुलना पर जोर देती है ।"[1]

ओडम के अनुसार, "वैयक्तिक अध्ययन पद्धति एक ऐसी प्रणाली है जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्तिगत कारण, चाहे वह एक सस्था हो, किसी व्यक्ति के जीवन की एक घटना मात्र हो, अथवा एक समूह हो, का अन्य समूहो से सम्बन्धित करते हुए विश्लेषण किया जाता है ।'[2]

गुडे एव हट्ट के शब्दो मे, "यह सामाजिक तथ्यो को सगठित करने की एक ऐसी विधि है जिससे अध्ययन किए जाने वाले सामाजिक विषय की एकात्मक प्रकृति की पूर्णत रक्षा हो सके । दूसरे शब्दो मे, यह ऐसा दृष्टिकोण है जिससे किसी सामाजिक इकाई का उसके सम्पूर्ण स्वरूप मे दिग्दर्शन हो जाता है ।"[3]

यांग-सिन पो लिखते हैं, "वैयक्तिक अध्ययन की परिभाषा व्यक्तिगत इकाई गहन तथा सम्पूर्ण अध्ययन के रूप मे दी जा सकती है जिसमे अनुसन्धानकर्त्ता अपनी समस्त निपुणता तथा विधियों का उपयोग करता है, अथवा वह किसी व्यक्ति के सम्बन्ध मे पर्याप्त सूचना का व्यवस्थित सकलन है जिससे हम इस बात का पता लगा सकें कि वह समाज की इकाई के रूप मे किस प्रकार कार्य करता है ।"[4]

वैयक्तिक अध्ययन की विशेषताएँ
(Characteristics of Case Study)

उपर्युक्त परिभाषाओ के आधार पर वैयक्तिक अध्ययन की निम्न विशेषताएँ हैं—

1 विशेष सामाजिक इकाई का अध्ययन (Study of a Specific Social Unit)—गिडिंग्स के शब्दो मे, "यह इकाई कोई व्यक्ति, परिवार, सस्था अथवा समस्त जाति हो सकती है अथवा कोई अमूर्त वस्तु जैसे कोई सम्बन्ध या स्वभाव ।" सामाजिक इकाई के अन्तर्गत मनुष्य जीवन की किसी एक घटना से लेकर पूर्ण साम्राज्य की सारी घटनाएँ तक हो सकती हैं ।

2 गुणात्मक अध्ययन (Qualitative Study)—वैयक्तिक अध्ययन का स्वरूप गुणात्मक है, अत इसका आँकडो, सख्याओ से सम्बन्ध नही होता है । इसके अन्तर्गत सूचना को सख्यात्मक रूप मे प्रस्तुत नही किया जाता है । उदाहरणार्थ कोई विधायक, दल को बार-बार छोडता है तो इस बात की सूचना इकट्ठी नहीं की जाएगी कि उसने दल को कितनी बार छोडा है, बल्कि उन परिस्थितियो और कारणो का अध्ययन किया जाएगा जिनसे बाध्य होकर उसने दल को छोडा है । अत इसमे प्रेरक तत्वों, आकाँक्षाओ और इच्छाओ पर विशेष बल दिया जाता है ।

1 *Shaw Cliffogd R* Case-Study Method, p 149
2 *H Odum* An Introduction to Social Research p 229.
3 *Goode and Hatt* • Methods of Social Research
4 *Yang Hsn Pao* : Fact Finding with Rural People

3 चयनित वर्ग का गहन अध्ययन (Intensive Study of a Selected Class)—इसमे चयनित वर्ग या इकाई का बडी सावधानी और सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाता है। इसमे इस बात की परवाह नहीं की जाती कि अध्ययन मे कितना समय लगेगा, क्या-क्या अन्य प्रेरक तत्व होंगे और वे भी अतिरिक्त समय कितना लेंगे। अत अधिक समय के कारण, अध्ययन मे कोई त्रुटियाँ या दोष की सम्भावना नही रहती तथा वैयक्तिक अध्ययन इकाई का स्वरूप स्पष्ट रूप से पेश करता है।

4. सम्पूर्ण अध्ययन (Complete Study)—जहाँ सांख्यिकीय विधि मे किसी एक पहलू अथवा अंग का अध्ययन किया जाता है, वहाँ वैयक्तिक अध्ययन-प्रणाली के अन्तर्गत सम्पूर्ण जीवन के समस्त पहलुओ का अध्ययन किया जाता है।

गुडे एव हट्ट के अनुसार, "यह ऐसी विधि है जो किसी सामाजिक इकाई के समस्त रूप का अवलोकन करती है।"[1] ऐसा इसीलिए किया जाता है कि एक व्यक्ति अथवा सगठन के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक पक्ष हो सकते हैं, अत बिना सम्पूर्ण तथा विभिन्न पक्षो के अध्ययन के परिणाम लाभदायक नही हो सकते।

5 कारको के परस्पर अन्तर्सम्बन्ध को जानने का प्रयास (Effort to know the mutual inter-relationship of casual factors)—इकाइयो के विशेष व्यवहार को प्रेरणा देने वाले कई कारक हो सकते हैं। किसी घटना विशेष के पीछे कई कारण हो सकते हैं। उदाहरणार्थ कई डाकुओ का हृदय परिवर्तन हो गया और उन्होने डकैती या लूटमार करना छोड दिया। जिस डाकू ने जीवन का एक बडा भाग डकैती मे व्यतीत किया है और वह एकदम साधु या सन्त बन जाता है तो हमे उसके पीछे कई कारण ढूँढने पडते हैं, जैसे भावुकता, सामाजिक प्रतिष्ठा का आभास, जाति या बिरादरी का ख्याल, जीवन मे अस्थायित्व, परिवार के प्रति जिम्मेदारी का ज्ञान इत्यादि ऐसे कारण हैं जिनम परस्पर अन्तर्सम्बन्ध होता है। अत इसके अन्तर्गत कारको के अन्तर्सम्बन्ध का पता लगाकर, एक निश्चित नियम पर पहुँचा जा सकता है।

वैयक्तिक अध्ययनो की आधारभूत मान्यताएँ
(Basic Assumptions in Case Studies)

1. मानवीय व्यवहार की एक मौलिक एकता (Fundamental unity of human behaviour)—वैयक्तिक अध्ययन की यह आधारभूत मान्यता है कि मानव व्यवहार की मौलिक प्रवृत्तियाँ समान होती हैं। यद्यपि प्रत्येक मनुष्य दूसरे मनुष्य से स्वभाव व आदतो मे भिन्न है, परन्तु मानव जाति की मूल प्रवृत्तियाँ नही बदल सकती। जिस प्रकार एक हब्शी अपने काले रग को नही बदल सकता उसी प्रकार मानव जाति अपनी-अपनी मूल प्रेरक शक्तियो तथा आदतो को नहीं बदल सकती। परिस्थितिवश यदि परिवर्तन भी हमे नजर आता है, तो वह एक अस्थाई

1 *Goode and Hatt*: op cit.

Phase है, अत वैयक्तिक अध्ययन मे अनुसन्धानकर्ता इस बात को मानकर ही चलता है कि निश्चित परिस्थितियो मे प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार समान-सा ही होता है।

2 अध्ययन इकाई का बहुमुखी स्वरूप (Protean or multi-phased character of the study unit)—इसकी दूसरी आधारभूत मान्यता यह है कि किसी विशेष अध्ययन इकाई का स्वरूप भी एकल न होकर बहुमुखी होना है। उसमे विभिन्न प्रकार के पक्ष होते हैं अत यदि हम एक पक्ष का भी अध्ययन करना चाहते हैं तो भी हमे उसके विभिन्न स्वरूपो का अध्ययन करना चाहिए। यदि हमारा ध्यान केवल मात्र एक ही पक्ष पर जाता है और उससे सम्बन्धित अन्य पक्षो का अध्ययन नही करते हैं तो अनुसन्धान के परिणामो मे दोष आना स्वाभाविक है। अत जब कभी भी इकाई के एक पक्ष का अध्ययन किया जाए तो उसके विभिन्न पक्षो का अध्ययन भी अनिवार्य हो जाता है।

3 परिस्थितियों की पुनरावृत्ति व प्रभाव (Repetition of conditions and their effect)—*मानव-व्यवहार को हम बिना परिस्थितियो के अध्ययन के* नहीं समझ सकते। जीवन मे अनेक प्रकार की परिस्थितियाँ आती हैं और वे निरन्तर उसके व्यवहार पर प्रभाव डालती हैं। चूँकि परिस्थितियाँ बार-बार आती हैं अत उसकी पुनरावृत्ति से हम अन्दाजा लगा सकते हैं कि मानव-व्यवहार उस परिस्थिति मे किस प्रकार का होगा, या उन परिस्थितियो मे वह किस प्रकार का आचरण करेगा। यदि परिस्थितियो की पुनरावृत्ति ही न हो तो हम विशेष परिस्थिति के आधार पर कोई सामान्य निष्कर्ष नही निकाल सकते परन्तु परिस्थितियाँ मनुष्य के जीवन मे बार-बार आती हैं जिससे हम पहले से उसके प्रभाव का पता लगा सकते है।

4 समय तत्त्व का प्रभाव (Effect of time factor)—इकाई का वर्तमान रूप भूत व पूर्व-दशाओ तथा परिस्थितियो का परिणाम है। जिस रूप मे हम इकाई का अध्ययन करते हैं उस पर न मालूम कितने कारको का प्रभाव होगा। *जो घटना आज घटित हो रही है, न जाने उसके बीज कब बोए गए थे। उदाहरणार्थ* आज हमारे देश मे कभी-कभी हिन्दू-मुस्लिम दगे बडा भयानक रूप धारण करते हैं, इसके मूल कारण को ढूँढा जाए तो हमे पता चलेगा कि इसके बीज 1909 के अधिनियम के अन्तर्गत ही बो दिए गए थे, जिसके अनुसार मुस्लिम प्रतिनिधित्व की पृथक् व्यवस्था की गई थी, उसके बाद सिक्खो के पृथक् प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गई थी। हिन्दू मुस्लिम मे पृथकतावाद की भावना इस अधिनियम के अन्तर्गत ही पैदा कर दी गई थी, परन्तु इस विष का प्रभाव अब हमे प्रत्यक्ष रूप से देखने को मिल रहा है। अहमदाबाद, यू पी व बिहार मे हिन्दू मुस्लिम दगो ने कानून व व्यवस्था के लिए बहुत बडी समस्या पैदा कर दी थी।

5 घटनाओं की जटिलता (Complexity of events)—हमारे जीवन मे घटित होने वाली घटनाएँ बडी ही जटिल होती हैं, अत. उनका समझना काफी

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनेक प्रक्षेपण प्रविधियो का प्रचलन वर्तमान मे हो गया है। (प्रमुख रूप से प्रयोग की जाने वाली प्रक्षेपण प्रविधियों को इस प्रकार समझा जा सकता है—)

प्रक्षेपण प्रविधियाँ —
(Projective Techniques)

1. शब्द-साहचर्य प्रविधि (W A T. Word Association Technique)
   (i) मुक्त साहचर्य प्रविधि (Free Association Technique)
   (ii) सीमित साहचर्य प्रविधि (Constrained Association Technique)
   (iii) नियन्त्रित साहचर्य प्रविधि (Controlled Association Technique)
2. चित्र साहचर्य प्रविधि (P A T Picture Association Technique)
   (i) रोजेंजवाइग पी. एफ प्रविधि (Rosenzweig P. F Technique)
3. वाक्य पूर्ति प्रविधि (S C T Sentence Completion Technique)
4. मनो-नाटकीय प्रविधि (Psychodramme Technique)
5. खेल प्रविधि (Play Technique)
6. शाब्दिक प्रक्षेपण प्रविधि (Verbal Projection Technique)
7. स्याही के धब्बो की प्रविधि (Ink Blot Technique)
   (i) रोर्शा स्याही धब्बो की प्रविधि (Rorchach Ink Blot Technique)
   (ii) होल्ज़मेन स्याही धब्बों की प्रविधि (Holseman Ink Blot Technique)
8. बोध प्रविधि (Apperception Technique)
   (i) प्रसंगात्मक बोध प्रविधि (T A T Thematic Apperception Technique)
   (ii) बालक-बोध प्रविधि (Children Apperception Technique)

लेकिन यहाँ हम प्रक्षेपण प्रविधियों के इन समस्त प्रकारों का उल्लेख न करते हुए प्रक्षेपण की सबसे अधिक प्रचलित दो प्रविधियो की विस्तार से विवेचना करेंगे, वे दो विधियाँ हैं—

1 रोर्शा प्रविधि (Rorchach Technique), एव
2 प्रसंगात्मक-बोध प्रविधि (Thematic Apperception Technique T. A T)।

(1) रोर्शा प्रविधि
(Rorchach Technique)

रोर्शा प्रविधि को 1921 मे स्विस मनोचिकित्सक (Psychiatrist) *श्री हर्मन रोर्शा (Herman Rorchach) ने विकसित किया था। स्याही के धब्बो के परीक्षण (Ink Blot Test) के नाम से जानी जाने वाली यह प्रविधि प्रक्षेपण प्रविधि की एक सुविख्यात विधि है। रोर्शा एक कम उम्र का स्विट्जरलैण्ड मे रहने वाला प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक था। वह एक ऐसी विधि की खोज म था जो विभिन्न मानसिक रोगियो मे भेदक-निदान का परीक्षण करे। रोर्शा न इसलिए इस स्याही के धब्बो का उपयोग निदान (Diagnostic) कार्य के लिए किया।*

व्यक्तियो के व्यक्तित्व को समझने मे इस प्रविधि का प्रयोग किया जाता है। रोर्शा ने स्याही के धब्बो (Ink Blots) के आधार पर एक ऐसी सामग्री तैयार की,

जो देखने में अस्पष्ट थी, जिसमें आंशिक समभिति (Symmetry) भी पाई जाती थी। यह स्याही के धब्बे अर्थहीन होते थे और जिन व्यक्तियों के सन्मुख इन्हें प्रस्तुत किया जाता था वे अपनी आन्तरिक भावनाओं के आधार पर विभिन्न वस्तुओं का वर्णन करते थे, अतः इस प्रक्षेपण प्रविधि की मुख्य विशेषता 'अस्पष्टता' थी। सवेगो का सम्बन्ध रंगों से होता है अर्थात् भावना एवं रंग का आपस में सम्बन्ध होता है। परिपक्वता के साथ रंग का चुनाव भी बदलता जाता है। इन दृष्टिकोणों के आधार पर रोर्शा ने धब्बों का प्रयोग किया।

रंगों का सम्बन्ध सवेगों से है, अतः रोर्शा ने अनेक रंगों के कार्डों को बनाया। उन कार्डों में कुछ भाग रंगीन हैं कुछ काले एवं सफेद हैं। इस प्रकार रोर्शा महोदय ने स्याही के दस कार्डों का चयन किया। हमें ध्यान रखना चाहिए कि रोर्शा के ये कार्ड सारे विश्व में मानवीकृत कार्ड (Standard Cards) हैं।

इस प्रकार इन दस कार्डों में प्रत्येक कार्ड पर 1 से 10 तक के नम्बर क्रम से लिखे गए हैं। कार्डों के रंगों को निम्न तालिका से समझा जा सकता है—

कार्ड नं 1	—	काला व सफेद
कार्ड नं 2 व 3	—	थोड़े से रंगों का प्रयोग है
कार्ड नं 4 व 5	—	काला व सफेद
कार्ड नं 6 व 7	—	काला व सफेद
कार्ड नं. 8	—	रंगीन एवं जटिल है (अनेक रंग हैं)
कार्ड नं 9	—	अधिक रंगीन व जटिल
कार्ड नं 10	—	सबसे अधिक रंगीन व सबसे अधिक जटिल है।

रोर्शा प्रविधि द्वारा अध्ययन करने के लिए उत्तरदाता को एक बार में एक कार्ड दिया जाता है और उससे पूछा जाता है कि वह कार्ड किस चीज का प्रतिनिधित्व करता है। उसके प्रत्युत्तर का प्रत्येक शब्द लिख लिया जाता है। साथ ही वह जितना समय इस दौरान लेता है, उसे भी नोट कर लिया जाता है। उत्तरदाता किस प्रकार उस कार्ड को पकड़ता है, इन सभी बातों को भी देखा जाता है। इसके पश्चात् उत्तरदाता को पुनः उस कार्ड के बारे में उसकी पहली वाली प्रतिक्रिया के बारे में पूछा जाता है।

व्याख्या अथवा विश्लेषण (Interpretation or Analysis)—इस रोर्शा प्रविधि से जानकारी प्राप्त करने के बाद उसकी व्याख्या एवं विश्लेषण किया जाता है। व्याख्या करते समय दो मुख्य चरण पाए जाते हैं—

1. साहचर्य चरण,
2. खोज चरण।

यह दूसरा 'खोज चरण' ही महत्त्वपूर्ण होता है। इस विधि के विश्लेषण में निम्नांकित बातों का ध्यान रखा जाता है—

1. स्थिति या स्थान (Location),
2. निर्धारक तत्व (Determinant),
3. अन्तर्वस्तु एवं लोकप्रियता (Content and Popularity)।

स्थिति (Location) में यह नोट किया जाता है कि उत्तरदाता ने पूरे धब्बे (Blot) पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है या आधे पर, या कुछ पर, या केवल सफेद भाग पर।

निर्धारक (Determinant) में रंग छाया (Shade) एवं परिप्रेक्ष्य (Perspective) तथा गति (Movement) आदि का विश्लेषण किया जाता है। जैसे धब्बे या दाग (Blot) में कोई 'गति' नहीं होती, लेकिन उत्तरदाता को व्यक्तियों, पशुओं इत्यादि के समान उसमें एक गतिमान प्रक्रिया का आभास हो सकता है।

अन्तर्वस्तु (Content) में विभिन्न व्यवस्थाएँ होती हैं। कभी-कभी जानवरों के बारे में विस्तृत वर्णन, व्यक्ति एवं व्यक्तियों के बारे में विस्तृत विवरण इत्यादि। इस वर्ग में अकों की विभिन्नता व्यक्तिगत विभिन्नताओं को बताती है, लेकिन अन्तर्वस्तु को विश्लेषण में अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता है।

लोकप्रियता (Popularity) श्रेणी कुछ असाधारण उत्तरों, जो कि मौलिकता बोधक हों, को पहचानने के लिए प्रयोग में लाई जाती है, लेकिन मौलिकता के कोई स्वीकृत आधार-बिन्दु अथवा प्रमाणित अंक न होने के कारण मौलिकता को मापने के वास्तविक आधार परीक्षक के पूर्वाग्रहों में स्वतन्त्र हो सकते हैं।

इस प्रकार इसकी व्याख्या निम्नांकित तालिका का प्रयोग कर की जाती है एवं फलांकन (Scoring) का काम किया जाता है—

कार्ड संख्या (Card No)	स्थिति (Location)	समय (Time)	निर्धारक (Determinant)	अन्तर्वस्तु (Content)
1				
2				
3				
4				
5				
6				
7				
8				
9				
10				

इस तालिका को अंग्रेजी के प्रथम वर्ण या संकेतों के द्वारा भरा जाता है। जैसे 'W' stand for whole, 'D' stand for detail, 'Dd' stand for minute detail, 'S' stand for white space Human Conduct को 'H', Animals को 'A', Movement को 'M', Form को 'F' Colour को 'C' एवं Shading Response को 'Sr' (अर्थात् न काला न सफेद, बीच के रंग को कहा जाता है) के द्वारा जानकारी निरूपित की जाती है।

रोर्शा प्रविधि में व्याख्या करते समय यह भी ध्यान में रखा जाता है कि यदि व्यक्ति ने रोर्शा कार्डों में विभिन्न रंगों को देखकर अनेक बातें बताई हैं तो उस

व्यक्ति के व्यक्तित्व मे भावात्मक प्रवृत्ति प्रधान होती है। उसका स्वभाव दूसरो से भावात्मक सम्बन्ध स्थापित करने का होता है।

इसी प्रकार यह भी देखा जाता है कि एक व्यक्ति ने अपनी अनुक्रिया मे कार्डों मे दिखाए गए धब्बो का वर्णन करते समय समग्र पक्षो पर बल दिया है अथवा उनके विस्तार पर। यदि समग्रता की चर्चा अधिक है तो उसमे उच्च कोटि की मानसिक योग्यता पाई जाती है।

अनेक बार कुछ व्यक्ति रोर्शा कार्डों मे मानवीय आकृतियाँ देखते हैं। ऐसे व्यक्ति 'कल्पना प्रधान' होते हैं। यदि कोई व्यक्ति इन रोर्शा कार्डों मे पशुओ (Animals) को देखता है तो यह व्याख्या की जाती है कि उस व्यक्ति मे, 'बौद्धिक योग्यता' निम्न स्तर की है और उसका चिन्तन भी निम्न कोटि का होता है।

रोर्शा प्रविधि का मूल्यांकन
(Evaluation of Rorchach Technique)

रोर्शा प्रविधि प्रक्षेपण प्रविधि की सबसे अधिक लोकप्रिय विधि है। रोर्शा प्रविधि मे प्राय: वे सभी विशेषताएँ पाई जाती हैं जो एक अच्छी प्रक्षेपण प्रविधि से अपेक्षित हैं। प्रक्षेपण प्रविधि की सर्वप्रथम विशेषता 'अस्पष्टता' को प्रस्तुत करना है। अस्पष्टता के प्रस्तुत होने से व्यक्ति अपने आन्तरिक जगत की बातो को सुगमता से प्रकट कर देता है। ऐसा करते समय उसे यह ज्ञान नही होता कि वह परोक्ष रूप से उन बातो की चर्चा कर रहा है, जिन्हे वह अचेतन रूप से छुपाना चाहता है। मानसिक एव भावात्मक द्वन्द्वो के कारण व्यक्ति का व्यक्तित्व अनेक समस्याओ से ग्रस्त हो जाता है। रोर्शा प्रविधि इन समस्याओ के विश्लेषण मे अत्यन्त सहायक होती है। आरम्भ में रोर्शा प्रविधि का प्रयोग वयस्क लोगों के अध्ययन मे ही किया गया, लेकिन बाद मे बच्चो के अध्ययन मे पाया गया कि वयस्क एव बच्चो के उत्तरो मे अन्तर दिखाई देता है। तब इस विधि का प्रयोग बहुत अधिक होने लगा और 1953 के समय तक ही लगभग 1200 प्रयोग इस विधि द्वारा किए गए।[1] इतना ही नही अमेरिका मे तो एक 'रोर्शा सस्थान' एव जर्नल की स्थापना भी हो गई।[2]

लेकिन हमे ध्यान रखना चाहिए कि अनुसन्धानकर्त्ताओ मे इस विधि की विश्वसनीयता (Reliability) के बारे मे कोई एक राय अथवा साधारण रजामन्दी नही हो पाई है। यह विधि एक सहायक विधि के रूप मे ही अपना स्थान बना पाई है न कि ऐसी विधि जो स्वय प्रमाणित परिणामो को पैदा कर सके। इस प्रकार रोर्शा प्रविधि म विश्वसनीयता, वस्तुनिष्ठता तथा वैधता पर्याप्त मात्रा मे नहीं है। इस विधि पर एक अन्य आक्षेप यह है कि इसका आधार वैज्ञानिक (Scientific) नहीं है। तीसरा, रोर्शा प्रविधि द्वारा एकत्रित सामग्री की व्याख्या के बारे मे भी विद्वान एकमत नही हैं। भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न प्रकार की बातें कहते हैं।

1 The Form Measurement Year Book
2 *Anne Anastasai* . Psychological Testing, p. 605

एक अन्य आक्षेप यह लगाया जाता है कि रोर्शा प्रविधि द्वारा एकत्रित सामग्री की व्याख्या करते समय उसमें सहज बोध (Common Sense) से काम लेना पड़ता है और इस प्रकार व्याख्या व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) हो जाती है।

इस प्रकार रोर्शा प्रक्षेपण प्रविधि के गुण एव दोष दोनो ही हैं। इसके दोषो एव आलोचना पर अपना मत व्यक्त करते हुए शेफर एवं शोबेन ने लिखा है कि यद्यपि इसकी वैधता संदिग्ध है और सभी लोग इससे सन्तुष्ट नहीं होते, फिर भी अब तक जो कार्य रोर्शा प्रविधि के सम्बन्ध मे किया गया है, वह सन्तोषप्रद है। रोर्शा प्रविधि की उपयोगिता के बारे मे जो तथ्य एकत्रित किए गए हैं, उनसे यह सिद्ध होता है कि व्यक्ति के 'आन्तरिक ससार' (Ideosyncratic World) एव मानसिक रोगो के विश्लेषण मे रोर्शा प्रविधि अत्यधिक सहायक हो सकती है और मूलत: यही प्रक्षेपण प्रविधि का एक उद्देश्य भी है।

(2) प्रसगात्मक बोध प्रविधि

(Thematic Apperception Technique T A T)

प्रक्षेपण प्रविधियों मे दूसरी महत्त्वपूर्ण प्रविधि प्रसगात्मक बोध प्रविधि है। प्रसगात्मक बोध प्रविधि को मुरे (Murray) एव मोरगन (Morgan) ने विकसित किया है। मुरे एव मोरगन ने अपनी कृति 'एक्सप्लोरेशस इन पर्सनालिटी' मे इस सिद्धान्त (इसे टी ए टी के नाम से भी जाना जाता है) व्याख्या की है। प्रक्षेपण प्रविधि का यह प्रकार एक साथ ही पूर्ण व्यक्ति का परीक्षण करता है। यह भावो, धारणाओ एव व्यक्तियो को बाह्य जानकारी इत्यादि सभी की एक व्यापक तस्वीर प्रदान करता है।

मुरे का कहना है कि व्यक्ति मे अनेक प्रकार की आवश्यकताएँ होती हैं। इन आवश्यकताओ के कारण व्यक्ति के भीतर तनाव उत्पन्न होते हैं। इन तनावों को दूर करने के लिए व्यक्ति प्रयास करता है। व्यक्ति के इस प्रयास मे पर्यावरण को वे स्थितियाँ बाधक होती हैं जो उस पर विभिन्न प्रकार के दबाव डालती हैं। इस दबाव को मुरे ने 'प्रेस' (Press) कहा है। इस प्रकार एक ओर तो व्यक्ति की आवश्यकताएँ होती हैं और दूसरी ओर पर्यावरण का दबाव। दोनो के बीच मे जो सम्बन्ध स्थापित होता है वह 'थीमा' (Thema) है। आवश्यकता और दबाव मे जब सन्तुलन स्थापित हो जाता है, तब एक प्रसग बनता है।

मुरे के अनुसार 'प्रसग' अथवा 'थीमा' किसी घटना की गत्यात्मक सरचना है, जिसके अन्तर्गत व्यक्ति के पर्यावरण के दबाव और व्यक्ति की आवश्यकताओ पर आधारित अनुक्रिया प्रधान होती है।

प्रसगात्मक-बोध प्रविधि मे परीक्षण के लिए 30 मानकीकृत (Standard) तस्वीरों वाले कार्ड निहित हैं। ये समस्त तस्वीरें कम या अधिक रूप मे अर्द्ध-निर्देशित होती हैं, जिससे व्यक्ति के प्रक्षेपण की अधिक सम्भावना रहती है। तस्वीरो की इस शृखला मे कुछ कार्ड विशेष रूप से लड़को (Boys) के लिए (Marked B) तथा कुछ कार्ड विशेष रूप से लड़कियों के लिए (G) एवं कुछ

कार्ड 14 वर्ष से अधिक आयु के पुरुषों हेतु (M) एव कुछ कार्ड 14 वर्ष से अधिक उम्र की स्त्रियो हेतु (F) होते हैं। साथ ही कुछ कार्ड समस्त समूहों के लिए होते हैं। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि इस परीक्षण मे 10 कार्ड लडको के लिए, 10 कार्ड लडकियो के लिए एव शेष 10 कार्ड ऐसे होते हैं जो पुरुषो व स्त्रियो दोनो के लिए हो सकते हैं। इस प्रकार से एक परीक्षण मे प्रायः अधिकांशत 20 कार्डों का प्रयोग किया जाता है। इनमे से उन्नीस मे काली-श्वेत तस्वीरें होती हैं एव एक कार्ड खाली (Blank) होता है।

सामान्यतया टी ए टी (TAT) परीक्षण व्यक्तिगत रूप से आयोजित किया जाता है, किन्तु विभिन्न अनुसन्धान कार्यों मे इसका प्रयोग प्रोजेक्टर के माध्यम से सामूहिक रूप से भी किया जाता है, जिसे दिखाने मे लगभग एक घण्टे का समय व्यतीत होना है।

इस परीक्षण को आयोजित करते समय उत्तरदाता परीक्षणकर्ता के सामने बैठता है तथा परीक्षण करने वाले कमरे का पर्यावरण पूर्ण रूप से शान्त तथा अन्य वाह्य विघ्नो से मुक्त होना है। जब परीक्षणकर्ता व उत्तरदाता के मध्य सामजस्य स्थापित हो जाता है तो परीक्षणकर्ता उत्तरदाता को कहता है कि "मैं तुम्हें एक-एक करके कुछ तस्वीरें दूंगा। तुम्हें इनमे से प्रत्येक पर एक अलग-अलग कहानी लिखनी है। मैं देखना चाहता हूँ कि तुम अपनी कल्पना से कितनी सुन्दर कहानी *बना सकते हो। कहानी बनाने में तुम्हे इन चार बातो का ध्यान रखना है*—

1 पहले क्या-क्या बातें हुई जिससे यह घटना चित्र मे दिखाई गई है ?

2 इस समय क्या हो रहा है।

3 चित्र मे कौन-कौन लोग हैं, वे क्या सोच रहे हैं ? तथा उनके मन में क्या-क्या भाव उठ रहे हैं ?

4 इसका अन्त क्या होगा ?"

अतः खुलकर अपने विचारो को स्वतन्त्रतापूर्वक अभिव्यक्त करते हुए कहानियाँ बनाओ। प्रत्येक कहानी बनाने मे लगभग पाँच मिनट का समय है। खाली कार्ड (Blank Card) के बारे मे यह निर्देश दिया जाता है कि "यह अन्तिम परन्तु खाली कार्ड है। इसमे कोई भी चित्र नही बना है। तुम जो भी चित्र चाहो सोच सकते हो। इस खाली कार्ड मे तुम पहले कोई चित्र सोचो और उस पर पहले की तरह चार बातो का ध्यान रखते हुए एक कहानी बनाओ।"

परीक्षण मे कहानी प्रयोज्य से भी लिखाई जा सकती है या परीक्षणकर्त्ता स्वय भी सुनकर लिख सकता है। इसमे प्रत्येक तस्वीर के ऊपर नम्बर लिखे हुए होते हैं। जैसे-जैसे तस्वीरो के नम्बर बढते जाते है, 'सदिग्धता' का अश बढता जाता है। मुरे के अनुसार—समस्त परीक्षण के आयोजन मे अधिक से अधिक एक घण्टा समय लगना चाहिए तथा परीक्षण दो सत्रों मे पूरा किया जाता है। असाधारण, बेतुकी, ड्रामेटिक तस्वीरो को दूसरे सत्र मे दिया जाता है और उत्तरदाता की कल्पना-शक्ति को ज्यादा प्रभावित होने के लिए बढावा दिया जाता है। परीक्षण-

प्रयोजन के पश्चात् एक संक्षिप्त व्यक्तिगत साक्षात्कार या पूछताछ होनी चाहिए, जिससे सदेहयुक्त विषयो पर विचार किया जा सके। इन तस्वीरो को दिखाते समय प्रयोगकर्त्ता को जहाँ आवश्यक होता है प्रयोज्य से उपरोक्त चार बातो के अन्तर्गत पूछताछ कर अपने प्रयोग का परिणाम देना होता है।

टी ए. टी. प्रक्षेपी प्रविधि मे ऐसे चित्रो का प्रयोग किया जाता है, जो कि अस्पष्ट हैं और जिनमे विभिन्न व्यक्तियो को भिन्न-भिन्न परिस्थितियो मे दिखाया गया है। जब कोई व्यक्ति किसी टी ए टी चित्र को देखता है तब वह स्वय का किसी चित्र से तादात्म्य स्थापित करता है और फिर उसी के माध्यम से अपनी आन्तरिक विशेषताओ, आवश्यकताओ तथा पर्यावरण के दबावो का उल्लेख करता है।

इस प्रकार जो वह कहानी कहता है, वास्तव मे वह उसी की कहानी है। कहानी कहने वाले को लगता है कि वह चित्र की कहानी बना रहा है। लेकिन टी ए टी चित्र कहानी के अनुसार—यह कहानी उसकी अपनी है, और फिर विभिन्न चित्रो से सम्बन्धित जितनी कहानियाँ व्यक्ति बनाता है, उन सबका बडी कुशलता से विश्लेषण करके व्यक्ति के व्यक्तित्व के बारे मे समुचित जानकारी प्राप्त की जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि टी. ए टी कार्ड की तस्वीरें उत्तरदाता की चरित्र-विशेषता से मेल खा सकती हैं जिससे कि कहानी मे प्रक्षेपण आता है और व्यक्ति कहानी के माध्यम से स्वय के आन्तरिक समार की परतें खोलता जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जहाँ रोर्सा प्रविधि व्यक्तित्व के गठन एव सरचना पर बल देती है वहाँ टी ए टी व्यक्तित्व के सार को बनाती है। लिन्डजे (Lindzey) ने अपनी कृति 'प्रोजेक्टिव टेकनिक्स एण्ड क्रॉस कल्चरल रिसर्च' मे कहानी गठन की पाँच विभिन्न विशेषताओ का उल्लेख किया है वे हैं—

1 उत्तरदाता कहानी के किसी एक पात्र से अपना तादात्म्य स्थापित करता है, और उसके द्वारा अपनी भावनाओ, प्रयत्नों आदि को बताता है।

2 कभी-कभी किसी की मान्यताओ, प्रयत्नो एव विवादो की अभिव्यक्ति अप्रत्यक्ष रूप मे कुछ सूचक चिन्हो से होती है।

3. केवल कुछ कहानियाँ ही सत्य एव प्रमाणित बातें कहती हैं।

4 अप्रत्यक्ष विषय-सामग्री अधिक महत्त्वपूर्ण नही होती है।

5 आवर्त्तक (Recurring) विषय-सामग्री विशिष्ट रूप से लेखक की भावनाओ एव विवादास्पद पहलुओ का उल्लेख करती है।

व्याख्या या विश्लेषण
(Interpretation or Analysis)

मुरे एव मोरगन ने टी ए टी कार्ड्स के लिए गठित कहानियो के विश्लेषण के लिए एक विधि का नियोजन किया है, जिसको 'आवश्यकता दबाव पद्धति' Need-) Press Method) कहा गया है। उनके अनुसार कहानी के हर भाग का नायक

(Hero) का आवश्यकता के अनुसार विश्लेषण हो और पर्यावरण (Environment) का दबाव (Press) भी साथ ही देखा जाए। इसके लिए उन्होंने छः श्रेणियों का उल्लेख किया है, जो निम्न हैं—

1 नायक (Hero) जिससे उत्तरदाता अपना तादात्म्य स्थापित करता है,
2 नायक की भावनाओं, विचारों, उद्देश्यों को मापने के लिये एक पचबिन्दु पैमाना (Scale) हो,
3 नायक के पर्यावरण का दबाव,
4 कहानी का परिणाम,
5 सफलता एवं विफलता के दृश्य का नतीजा, एवं
6 भावनाएँ एवं हित अथवा रुचि या दिलचस्पी।

मुरे के अतिरिक्त अनेक मापन की विधियाँ विकसित हुई हैं लेकिन अधिकतर विषय के विवेचन की भूमिका के रूप में कार्य करती हैं।

टी. ए टी प्रविधि का एक अध्ययन (A Study of T A T.)

अनासताशी (Anastasi) नामक वैज्ञानिक ने टी ए टी का एक अध्ययन सम्पादित किया है। आपने तस्वीरों की कहानियों का नीग्रो व्यक्तियों के परीक्षण के लिए गठन किया जिनसे नायक की विशेषताओं में नीग्रोज की विशेषताओं की झलक मिले। इसी प्रकार जानवरों (Animals) की तस्वीरों में बच्चों की अन्तर्दृष्टि का परीक्षण किया गया जिसके लिए अनुमान यह था कि बच्चा की अभिवृत्ति उसमे देखी जा सके।

रोजनविग (Rosenwing) ने इसी आधार पर 'पिक्चर फ्रस्ट्रेशन' (Picture Frustration) अध्ययनों का विकास किया। इसकी हर किस्म मे 24 कार्टून डाइग जो दो मुख्य चरित्रों से बनी थी, लोगों को दिए गए। इन अध्ययनों मे पहले उत्तरदाता को ऐसे विचार से अवगत करवा कर, जो उसे प्रभावित करता है, पूछा जाता है कि एक हतोत्साहित अथवा कुण्ठित व्यक्ति कैसे जवाब देगा। यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उत्तरदाता हतोत्साहित चरित्र से अपनी समरूपता या सादृश्यता देख सकता है और कार्टून वाले चरित्र की मान्यता एवं पथ को जाहिर कर सकता है। विभिन्न प्रकार की पिक्चर फ्रस्ट्रेशन' अध्ययन बच्चों, स्त्री व पुरुषों के सन्दर्भ में विकसित किए गए।

टी ए टी के ये अध्ययन काफी विश्वसनीय साबित हुए।

आलोचना (Criticism)

टी ए टी प्रविधि की भी मूलत वही आलोचना की जाती है जो रोर्सा प्रविधि की है। दूसरे शब्दो मे यह कहा जाता है कि यह 'वैध' नहीं है। यह अविश्वसनीय है एवं इसमे वस्तुनिष्ठता (Objectivity) का अभाव है। टी ए टी प्रविधि का प्रयोग करने वाले समाज मनोवैज्ञानिको ने बडे परिश्रम से इसमे विश्वसनीयता, वस्तुनिष्ठता व वैधता लाने का प्रयास किया है और इसमे वे कुछ सफल भी हुए हैं।

मुश्किल कार्य है। इन घटनाओं के पीछे अनेक तत्व (Factors) व तथ्य (Facts) होते हैं। यदि इनको हम एकत्र कर क्रमबद्ध कर देते हैं, तब वैयक्तिक अध्ययन सरल हो जाता है व इसके निष्कर्ष काफी निष्पक्ष हो सकते हैं।

वैयक्तिक अध्ययन के स्रोत

(Sources of Case-studies)

इस प्रकार के अध्ययन में अध्ययनकर्त्ता का मुख्य उद्देश्य यह होना है कि वह अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करे। इसके दो प्रकार के प्रमुख स्रोत हैं—

(1) मौखिक रूप से सूचना-सकलन (Data collection in the oral form),

(2) लिखित व सुरक्षित सामग्री सकलन (Written and preserved data-collection)।

(1) मौखिक रूप से सूचना-सकलन (Data collection in the oral form)—इसमें सामग्री-सकलन के मुख्य साधन साक्षात्कार (Interviews), मौखिक वार्ताएँ (Oral talks), प्रायोगिक अध्ययन (Experimental studies), अवलोकन (Observation) और परीक्षण (Tests) हो सकते हैं। वैयक्तिक अध्ययन में साक्षात्कार द्वारा व्यक्तियों के वर्तमान व्यवहारों की जानकारी की जा सकती है। उससे छोटे-बड़े प्रश्न पूछकर, समस्या की गहराई तक पहुँचा जा सकता है। जिस प्रश्न का उत्तर एक व्यक्ति लिखित रूप में देना चाहता हो तो वह मौखिक उत्तर द्वारा जटिल समस्याओं के समाधान में अधिक योगदान दे सकता है। यदि आवश्यकता पड़ जाए तो अवलोकन व परीक्षण द्वारा भी अनुसन्धानकर्त्ता जानकारी को प्राप्त कर सकता है और उसको नोट करके अपने निष्कर्ष के लिए सामग्री तैयार कर सकता है।

आजकल साक्षात्कारों, मौखिक वार्ताओं के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक प्रोजेक्टिव प्रणालियों, कलात्मक परीक्षा, बुद्धि परीक्षा (Intelligence test) पर अधिक बल दिया जा रहा है। उसका कारण यह है कि मनुष्य भावनाओं, कल्पनाओं द्वारा अधिक प्रभावित होता है जिसके सहारे हम समाज में बढ़ रही कुप्रवृत्तियाँ जैसे वेश्यागमन, चोरी, नशेबाजी आदि अपराधवृत्तियों का पता लगा सकते हैं।

(2) लिखित व सुरक्षित सामग्री-सकलन (Written and preserved data-collection)—वैयक्तिक अध्ययन प्रणाली का एक अन्य स्रोत है सुरक्षित तथा लिखित रिकार्ड। लिखित सामग्री आत्मकथा, डायरी तथा पत्रों के रूप में हो सकती है। कई लोग अपनी दैनिक डायरी रखते हैं जिसमें वे दैनिक जीवन में घटित होने वाली घटनाओं का वर्णन करते हैं जिनका सम्बन्ध उनके मानसिक कारणों से हो सकता है। वह भावना से प्रेरित होकर अपने विचार व्यक्त करता है, जिससे उसकी मानसिक दशा का भी पता लग सकता है। आत्मकथाओं और पत्रों द्वारा हम व्यक्ति के विभिन्न पक्षों की जानकारी सही-सही प्राप्त करते हैं क्योंकि वह स्वयं के जीवन के मूल्यों, सिद्धान्तों की रिकार्डिंग निष्पक्ष होकर करता है। आलपार्ट के अनुसार, 'ये

स्वयं प्रकाशित रिकार्ड होते हैं जो जानबूझ कर अथवा अनायास ही लेखक के मानसिक जीवन की रचना अथवा गतिशीलता का वर्णन करते हैं।" हालांकि ये व्यक्तिगत रिकार्ड व्यक्ति-प्रधान होते हैं, लेकिन अनुसन्धानकर्त्ता के लिए इनकी जानकारी बडी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वह इनके आधार पर व्याप्त परिस्थितियों मे मानसिक स्थिति का पता लगा सकता है।

श्रीमती यग ने प्रमुख साधनो मे व्यक्तिगत प्रलेख (Personal documents), व्यक्ति द्वारा लिखे गए अथवा उनके द्वारा लिखाए गए प्रथम पुरुष लेख (Accounts), आत्मकथाएँ, सस्मरण, डायरियाँ, जीवन-इतिहास आदि का शामिल किया है। इन स्रोतों के अतिरिक्त आधुनिक समय मे फोटोग्राफ-एलबम, टेप-रिकार्डिंग, जीवन-घटनाओ की सूची, प्रमाण व प्रशसा-पत्र, सरकारी कार्यालयो द्वारा दी गई जानकारी, पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित रचनाएँ, उनमे की गई प्रशसा व आलोचना आदि इस प्रकार की सामग्री मे सम्मिलित किए जाते हैं। इनमे विद्वान लेखको, प्रोफेसरो, साहित्यकारो की डायरियाँ व पत्र हैं। कई अप्रकाशित तथ्य डायरियो व पत्रों द्वारा प्राप्त हो सकते हैं। जब वे प्राप्त होते हैं तो इन लोगो के रिकार्डों को सग्रहालय मे रखा जाता है। अत इस स्रोत को वैयक्तिक अध्ययन मे बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

वैयक्तिक अध्ययन की प्रणाली
(Procedure of Case-Studies)

वैयक्तिक अध्ययन मे व्यक्ति या इकाई के बारे मे पूर्ण जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है, अत इसमे विभिन्न पद्धतियो को प्रयोग मे लाया जाता है। इसके अन्तर्गत अध्ययन की प्रकृति काफी जटिल होती है, अत सुनियोजित ढग से ऐसी प्रणाली अपनाई जानी चाहिए ताकि सामग्री सकलन अधिक उपयोगी हो सके। वैयक्तिक अध्ययन की प्रक्रिया को निम्नलिखित क्रमो के अनुसार विभाजित किया जा सकता है—

1 समस्या की सक्षिप्त विवेचना (A brief statement of problem)—अध्ययन-समस्या की प्रकृति एव स्वरूप की सक्षिप्त विवेचना अत्यन्त आवश्यक है। समस्या के वर्णन व व्याख्या के बिना हम अगले चरण की ओर नही बढ सकते। इसमे निम्नलिखित बातें सम्मिलित की जाती हैं—

(अ) मामलो का चुनाव (Selection of cases)—ये मामले दो प्रकार के हो सकते हैं—(i) सामान्य, एव (ii) विशिष्ट।

(ब) इकाइयो के प्रकार (Types of units)—इसके अन्तर्गत अध्ययन-इकाई व्यक्ति समूह, सस्था समूह या वर्ग हो सकता है, अत जिस इकाई का अध्ययन करना हो, उसे चयनित कर लिया जाता है।

(स) विषयो की सख्या (Number of cases)—इनके आधार पर निष्कर्ष पर पहुँचने मे आसानी रहती है, लेकिन बडी सावधानी बरतनी पडती है क्योंकि कुछ विषयो की सख्या के आधार पर ही यदि सामान्यीकरण

की ओर बढ़ा जाता है तो निष्कर्ष नि सन्देह एकपक्षीय या गलत सिद्ध होंगे।

(द) विश्लेषण का क्षेत्र (Scope of analysis)—विश्लेषण का क्षेत्र पहले से ही निर्धारित कर लेना चाहिए—क्या व्यक्ति-अध्ययन के एक पक्ष का ही अध्ययन करना है अथवा उसके अनेक पक्षों को उसमे शामिल करना है।

2 घटनाओं के अनुक्रम का वर्णन तथा उनके निर्धारक तत्त्व (Description of the course of events and their determinant factors)—समय या काल को ध्यान मे रखते हुए यह देखा जाता है कि किस युग मे कौन-सी घटना घटित हुई या किस क्रम से घटित हुई, उसमे क्या-क्या परिवर्तन हुए और यदि परिवर्तन हुए तो उनका क्या स्वरूप रहा, आदि बातें महत्त्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त उन तत्त्वों का पता लगाना जिनके कारण घटना घटित हुई है। उदाहरणार्थ, यदि स्त्री-समाज मे चरित्र-भ्रष्टता की घटनाएँ अधिक हो रही हो तो इसके पीछे कई कारण जैसे—निरोधक दवाइयो का आविष्कार, उनका अधिक प्रचार आधुनिक सस्ते व प्रभावशाली साधन जिनके द्वारा गर्भपात की समस्या ही नही उठती है। इसके अलावा अन्य कारण जैसे बढ़ना हुआ फैशन, सिने-ससार का हानिप्रद प्रभाव व नैतिक शिक्षा की कमी हो सकते हैं।

3 कारको का विश्लेषण (Analysis of factors)—इसके अन्तर्गत समस्त सकलित सामग्री का समन्वय कर उसका विश्लेषण किया जाता है। इसमे यह देखना होता है कि कौन से तत्त्व अधिक प्रभावशाली रहे, कौन से कम तथा कौन से तटस्थ एव इन कारको का परिवर्तन मे क्या हिस्सा रहा।

4 निष्कर्ष (Conclusion)—इसका अन्तिम चरण निष्कर्ष है। समस्त सामग्री उपलब्ध होने व कारको के अन्तिम विश्लेषण के पश्चात् किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है। इसके अतिरिक्त अध्ययनकर्त्ता स्वय की टीका-टिप्पणियो, दृष्टिकोण व इसम व्याप्त कमियो को भी प्रस्तुत करता है।

वैयक्तिक अध्ययन के गुण/लाभ
(Merits of Case-studies)

वैयक्तिक अध्ययन के निम्नांकित गुण अथवा लाभ हैं—

1 सामाजिक इकाई का सूक्ष्म अध्ययन (Microscopic study of social unit)—वैयक्तिक अध्ययन द्वारा सामाजिक इकाई के बारे मे पूर्ण जानकारी अर्जित की जा सकती है। इसमे इकाई के विशिष्ट व सामान्य दोनो लक्षणो का अध्ययन किया जाता है, उसकी गहराइयो मे पहुँचकर अति सूक्ष्म अध्ययन कर निश्चितता पर पहुँचा जा सकता है। कूले के शब्दो मे, "वैयक्तिक अध्ययन प्रणाली से हमारा बोध-ज्ञान विकसित होता है तथा वह जीवन के प्रति स्पष्ट अन्तर्दृष्टि प्रदान करती है। यह व्यवहार का अध्ययन, अप्रत्यक्ष एव अमूर्त रूप मे नही, बल्कि प्रत्यक्ष रूप से करती है।")

2 प्रमाणकारी उपकल्पना का निर्माण (Formation of evidential hypothesis)—चूँकि इकाइयों के विभिन्न पक्षों के अध्ययन द्वारा ही निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है अतः इन निष्कर्षों पर आधारित उपकल्पना प्रामाणिक रूप से सिद्ध होती है।

3 अनुसन्धानकर्त्ता के अनुभव का क्षेत्र व्यापक (The field of experience of researcher is vast)—वैयक्तिक अध्ययन प्रणाली में अनुसन्धानकर्त्ता को जीवन के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करना होता है (उसका क्षेत्र, सांख्यिकीकार के क्षेत्र की तरह सीमित नहीं होता है) उसे जीवन में आने वाली अनेक परिस्थितियों का अवलोकन व व्यक्ति की मनोवृत्तियों का अध्ययन करना होता है जिससे उसे कई विषयों का ज्ञान होता है व उसके अनुभव में वृद्धि होती है। गुडे एवं हट्ट के अनुसार, "अधिकांश सर्वेक्षण कार्य की सीमा निश्चित होने के कारण, वास्तव में अनुसन्धानकर्त्ता विश्लेषण स्तर पर विस्तृत अनुभव प्राप्त करता है जब प्रश्नों के अर्थों की छानबीन की जाती है।"

4 अनेक तकनीकों का प्रयोग (Use of many techniques)—वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत अनेक तकनीकों जैसे साक्षात्कार, प्रश्नावलियाँ, मौखिक प्रश्न, प्रलेख, पत्र, डायरियों द्वारा बड़ी उपयोगी सामग्री प्राप्त होती है। इन प्रणालियों द्वारा अध्ययनकर्त्ता को इतनी सामग्री प्राप्त हो जाती है कि यह प्रयोग सही निष्कर्षों पर पहुँचने में सफलतापूर्वक कार्य कर सकता है।

5 व्यक्तिगत मामलों का अध्ययन (Study of personal matters)—इसमें व्यक्तिगत मामलों के विभिन्न पहलुओं का बारीकी से अध्ययन किया जाता है। उसके मामले की पूरी जाँच-पड़ताल होती है—क्या दोष व कमियाँ हैं, क्या परिस्थितियाँ रही हैं जिसके कारण चारित्रिक दुर्बलता व नैतिक पतन को प्रोत्साहन मिला है। इस विधि द्वारा व्यक्तियों के गुणों, रहस्यों आदि की जानकारी प्राप्त होती है।

6. अध्ययन-समस्या को समझने में सहायक (Helpful in understanding study problem)—अध्ययनकर्त्ता अनुसन्धान के मुख्य भाग का प्रारम्भ करने से पूर्व कुछ इकाइयों को चुनकर उनका वैयक्तिक अध्ययन कर लेता है तो उसे समस्याओं को समझने में बड़ी आसानी रहती है।

7 सामान्यीकरण का आधार प्रदान करता है (Provides basis for generalisation)—विभिन्न परिस्थितियाँ व उनसे सम्बन्धित समस्याओं की जानकारी के आधार पर सामान्यीकरण करना सम्भव हो जाता है। गुडे एवं हट्ट के अनुसार, "यह प्रायः सत्य होता है कि वैयक्तिक अध्ययन द्वारा प्रदान की गई अन्तर्दृष्टि की गहराई से, बाद में वृहत् स्तर पर आयोजित अध्ययनों के लिए लाभकारी उपकल्पनाएँ निकल सकेंगी।"[1]

1 *Goode and Hatt*, Ibid, p 388

8 विरोधी इकाइयों को ज्ञात करना (To find out deviant cases)– विरोधी इकाइयाँ वे होती हैं जो हमारी प्रामाणिक व सुनिश्चित उपकल्पना के विरुद्ध होती हैं। ऐसी इकाइयों को ज्ञात कर, हम सही रास्ते पर अग्रसर होते है। इनका अध्ययन इसीलिए आवश्यक है ताकि हम सही तथ्यो पर पहुँच सकें।

वैयक्तिक अध्ययन के दोष या सीमाएँ
(Demerits or Limitations of Case Studies)

1 *यह ठोस परिणामो को प्रदान नहीं कर सकता* (It cannot provide solid results)—जिस प्रकार वैज्ञानिक पद्धति द्वारा हम ठोस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं, वैयक्तिक अध्ययन प्रणाली द्वारा हम सामान्यत किसी निर्विवाद निष्कर्ष पर नही पहुँच सकते क्योकि इस पद्धति द्वारा एकत्रित की गई सामग्री गलत हो सकती है।)साक्षात्कार व मौखिक प्रश्नो से, व्यक्ति सही जानकारी नही देता जिसके कारण परिणामो मे दोष आ जाता है।

2 सीमित अध्ययन (Limited Study)—इसमे केवल गिनी-चुनी इकाइयो का अध्ययन किया जाता है। अत इस आधार पर न तो निर्देशन दिया जा सकता है और न ही यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया जा सकता है।

3 समय की बर्बादी (Wastage of time)—अनुसन्धानकर्ता को प्रत्येक केस पर काफी समय देना पडता है, उसके बावजूद भी वह ठोस निष्कर्ष पर पहुँचने मे असफल रहता है। जब वह कई मामलो को हाथ मे लेता है तो समय की बहुत बर्बादी होती है, उसका ध्यान बार-बार इस ओर भी जाता है कि 'समय खराब हो रहा है', 'परिणाम कुछ नही निकल रहा है'।)समय की हानि के साथ परिणामो की प्राप्ति भी नहीं होना न्यायोचित बात नही है। गुडे तथा हट्ट के अनुसार, "मामले (Cases) एकत्र करने म अधिक समय लगता है तथा पूर्णता के साथ अध्ययन करने को तत्पर लोगो को ढूँढना कठिन होता है।"

4 अवैज्ञानिक पद्धति (Unscientific Method)—वैयक्तिक अध्ययन पद्धति अवैज्ञानिक, असगठित व अनियमित है। इसमे इकाइयों के चयन एव सामग्री सकलन पर कोई नियन्त्रण नही रहता। ऐतिहासिक व्यक्तियो के बारे मे जो सूचना विभिन्न स्रोतों से एकत्र की जाती है, उसकी सत्यापनशीलता सिद्ध नहीं हो सकती। डायरियो एव पत्रो द्वारा प्राप्त सूचना अक्सर मनुष्य की भावना, आवेग व सवेदना पर निर्भर करती है क्योकि जिस समय वह दैनिक घटनाओ का वर्णन करता है, उस समय कई मानसिक तनाव उस पर छाए रहते हैं अत उसकी विचार-सामग्री मे वैषयिकता (Subjectivity) नही आ सकती, इसके अलावा निष्कर्षों मे प्रामाणिकता की भी सम्भावना नहीं रहती। मैज (Madge) के मतानुसार "इकाइयो का सैम्पल करीब-करीब मनमाना-सा होता है जिसकी प्रवृत्ति सामाजिक विघटन की ओर होती है। इससे तथ्यो मे सजातीयता का पूर्ण अभाव रहता है और सांख्यिकीय निर्वचन यदि सम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है।"

5 अनुसन्धानकर्त्ता का झूठा आत्म-विश्वास (False self-confidence of researcher)—वैयक्तिक अध्ययन का बहुत बड़ा दोष है कि अनुसन्धानकर्त्ता को अपने ज्ञान के बारे में झूठा आत्म-विश्वास होना है। चूंकि उसे इकाई के विविध रूपों का अध्ययन करना होता है, अतः जो कुछ जानकारी उसके पास है और अन्य जानकारी जो प्राप्त करता है, उससे उसे यह विश्वास पैदा हो जाता है कि उसे बहुत अधिक जानकारी है। इस झूठे आत्म विश्वास के आधार पर निकाले गए निष्कर्ष भी झूठे साबित होते हैं। इस दृढ विश्वास के परिणामस्वरूप 'अनुसन्धान-रूपरेखा' (Research design) के प्रमुख नियमों की जाँच करना आवश्यक नहीं समझता है तथा असावधानी का प्रयोग करता है।[1]

6 दोषपूर्ण जीवन-इतिहास तथा रिकार्ड (Defective life histories and records)—इसमें निम्न बातें आती हैं—

(i) रिकार्ड मुश्किल से प्राप्त होते हैं और व्यक्तिगत या गोपनीय रिकार्ड मिलना तो और भी कठिन होता है।

(ii) जीवन-इतिहासों में घटनाओं का अतिरंजित वर्णन किया जाता है।

(iii) शर्म एवं डर के कारण प्रश्नकर्त्ता को उत्तरदाता सही जानकारी नहीं देता है।

(iv) अध्ययनकर्त्ता की स्वयं की लापरवाही से दोषपूर्ण तथ्य इकट्ठे हो सकते हैं।

7 सामान्यीकरण की प्रवृत्ति (Habit of generalisation)—अनुसन्धानकर्त्ता में सामान्यीकरण की प्रवृत्ति निष्कर्षों में धोखा देने वाली साबित होती है। कुछ लोगों के जीवन का अध्ययन कर निश्चित नियम बना लेना उसकी सबसे बड़ी भूल होती है। बाल-अपराधियों के मामले में यदि कुछ ही बालकों का अध्ययन करें कि इन कारणों से बाल-अपराधी होते हैं तो निष्कर्ष बिलकुल भ्रामक व गलत होगा।

8 रीड बेन (Read Bain) के अनुसार, वैयक्तिक अध्ययन प्रणाली में निम्नलिखित दोष हैं—

(i) प्रश्नदाता, अनुसन्धानकर्त्ता को वही जानकारी देता है जो उसकी समझ में अनुसन्धानकर्त्ता चाहता है। यदि दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है तो यह प्रवृत्ति और भी अधिक होगी।

(ii) उत्तरदाता तथ्यों की जानकारी देने के स्थान पर आत्म-समर्थन को विशेष रूप से प्रोत्साहन देता है।

(iii) साहित्यिक भावना से ओत-प्रोत होकर लोग वास्तविकता को छोड़ काल्पनिक तथ्यों को शामिल करने में अधिक प्रवृत्त होते हैं।

(iv) इसके आँकड़े तुलनात्मक न होकर गुणात्मक होते हैं।

(v) यह पद्धति घटना के बारे में अव्यावहारिक सूचना देती है।

वैयक्तिक अध्ययन का एक उदाहरण
(An Example of Case Study)

यहाँ हम 25 प्रश्नो की एक साक्षात्कार अनुसूची प्रस्तुत कर रहे हैं, जो 'भारत मे परिवार-नियोजन—एक वैयक्तिक अध्ययन' नामक विषय पर अध्ययन हेतु निर्मित की गई है।

भारत मे परिवार नियोजन-एक वैयक्तिक अध्ययन
(वैयक्तिक अध्ययन हेतु साक्षात्कार अनुसूची)

प्रश्न—1

उत्तरदाता के विषय मे सूचना

(1) उत्तरदाता का नाम श्री/श्रीमती ....
(2) उत्तरदाता की जन्म तिथि.................. ....आयु ....
(3) उत्तरदाता की लैंगिक स्थिति.................. ....स्त्री/पुरुष..........
(4) *उत्तरदाता की शैक्षणिक स्थिति-अशिक्षित/प्राइमरी स्तर/हाईस्कूल* स्तर/स्नातक/स्नातकोत्तर/अन्य ....
(5) उत्तरदाता की जाति/उपजाति..................................
(6) उत्तरदाता का धर्म..................................
(7) उत्तरदाता के जन्म का स्थान.................. ....जिला ....
(8) उत्तरदाता के निवास का पता..................................
(9) उत्तरदाता का *व्यवसाय*..................................
(10) उत्तरदाता की मासिक आय..................................

प्रश्न—2

उत्तरदाता के परिवार के विषय से सम्बद्ध सूचना

(1) आपका विवाह कितने वर्ष पूर्व हुआ था ? ....
(2) आपके कितने बच्चे हैं ? पुत्र ....पुत्रियाँ ....(सख्याओ का उल्लेख)
(3) आपके सबसे छोटे बच्चे की आयु..............
(4) क्या आप सयुक्त परिवार के सदस्य हैं ? .... हाँ/नहीं
यदि हाँ, तो परिवार के कुल सदस्यो की सख्या का उल्लेख कीजिये....
(5) परिवार मे कमाने वाले सदस्यो की सख्या..................................

प्रश्न—3

(1) भारत सरकार तृतीय एव चतुर्थ पचवर्षीय योजनाओ से परिवार नियोजन को बहुत प्राथमिकता दे रही है तथा क्या आप इस तथ्य से परिचित हैं ? .... हाँ/नहीं
(2) क्या आप जनसख्या मे हो रही वृद्धि को भारत के सामाजिक एव औद्योगिक विकास मे बाधक मानते हैं ? .... हाँ/नहीं

प्रश्न—4

(1) भारतवर्ष मे जिस दर से जनसख्या की वृद्धि हो रही है उसके अनुसार

इस शताब्दी के अन्त तक भारत की जनसंख्या एक अरब हो जाएगी। क्या आप इससे उत्पन्न होने वाले तथ्यों की समीक्षा कर सकते हैं ? हाँ/नहीं

(2) क्या परिवार नियोजन नीति को अनिवार्य घोषित कर दिया जाए ? हाँ/नहीं

प्रश्न--5

(1) क्या आप इस तर्क से सहमत हैं कि बच्चों का जन्म तो ईश्वर के हाथ में है ?.......... हाँ/नहीं

(2) क्या आपका धर्म परिवार नियोजन के पक्ष में मत व्यक्त करता है ? हाँ/नहीं

(3) सन् 1951 में परिवार नियोजन नीति को अपनाने के उपरान्त भी आशातीत प्रगति नहीं हो सकी। क्या आप उन बाधक तत्त्वों का उल्लेख कर सकेंगे ? ....

प्रश्न—6

(1) क्या आप इस पक्ष में हैं कि बच्चों को यौन शिक्षा प्रदान की जाए ? हाँ/नहीं

(2) इस प्रकार की शिक्षा क्या परिवार नियोजन को गति प्रदान करने में सहायक होगी ? हाँ/नहीं

प्रश्न--7

(1) परिवार नियोजन के लिए अपनाए जा रहे साधनों को वरीयता के क्रम में रखिए

(1) बन्धकरण (2) निरोध (3) लूप (4) गर्भपात (5) गोलियों का प्रयोग

( ) ( ) ( ) ( ) ( )

(2) क्या आप इन साधनों को प्रयोग में लाये जाने के पक्ष में हैं ? हाँ/नहीं

प्रश्न--8

(1) सरकार ने अनचाहे गर्भ को समाप्त करने के लिए गर्भपात कानून को मान्यता प्रदान करदी है, क्या आप इस कानून के पक्ष में हैं ? हाँ/नहीं

(2) आजकल इस कानून का व्यापक रूप से प्रचार किया जा रहा है। क्या जनता पर इसका अनुकूल प्रभाव हो रहा है ? हाँ/नहीं

प्रश्न—9

(1) क्या आप इस पक्ष में हैं कि परिवार तभी सुचारू रूप से चल सकता है जबकि बच्चों की संख्या दो या तीन से अधिक न हो ? हाँ/नहीं

(2) यदि परिवार में बच्चे केवल लड़के या लड़कियाँ हैं तो एक सामान्य समस्या उत्पन्न होती है कि दम्पत्ति एक लड़के या लड़की की इच्छा में निरन्तर बच्चों की संख्या में वृद्धि कर जाते हैं, क्या इस प्रयास का कोई औचित्य है ? हाँ/नहीं

(3) यदि हाँ तो आप एक लडके या लडकी की इच्छा क्यो रखते हैं ?

(4) क्या ऐसी स्थिति मे एक लडके या लडकी को आप गोद लेना पसन्द करेंगे ? हाँ/नही

प्रश्न—10

(1) क्या आप इस तर्क के पक्ष मे हैं कि विवाह की आयु और बढा दी जाए ? हाँ/नहीं

(2) यदि हाँ, तो विवाह की आयु कितनी करदी जाए।

लडके के लिए.........................

लडकियो के लिए.........................

(3) क्या विवाह की आयु बढा देने से परिवार नियोजन कार्यक्रम प्रभावी हो सकेगा ? हाँ/नहीं

प्रश्न—11

(1) क्या आप इस पक्ष मे हैं कि प्रत्येक विवाह का पजीकरण अनिवार्य कर दिया जाए ताकि विवाह की सूचना प्रशासन के पास रहे ? हाँ/नही

(2) कारण बताइए—(उत्तर के पक्ष मे कारण स्पष्ट करें)।

(3) क्या विवाह का पजीकरण बाल विवाह को समाप्त करने मे सहायक होगा ? हाँ/नही

प्रश्न—12

(1) क्या आप इस तर्क से सहमत हैं कि माता-पिता को ही केवल यह अधिकार है कि वह अपने बच्चो की सख्या निश्चित करें ?...........

हाँ/नही

प्रश्न—13

(1) क्या परिवार नियोजन के प्रयुक्त साधनो से स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है ? हाँ/नही

(2) इस प्रकार के मत की उत्पत्ति के लिए आप किस कारण को सर्वाधिक उत्तरदायी समझते हैं ? (✓ का चिन्ह लगाइए)

(अ) इन साधनो का उचित प्रचार नही किया गया।

(ब) जो व्यक्ति इन साधनो का प्रयोग करना नहीं चाहती/चाहते वे यह मत व्यक्त कर देते हैं।

(स) इन साधनो के प्रयोग की उचित विधि जनता को ज्ञात नही है।

(द) इन साधनो को जनता तक पहुँचाने मे प्रशिक्षित डॉक्टरो की सहायता कम मिली।

(ट) वास्तव मे यह साधन स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

(ठ) अन्य कारण।

प्रश्न—14

वर्तमान समय तक परिवार नियोजन कार्यक्रम को सफलता प्राप्त न हो सकी इसका सबसे मुख्य कारण बताइए :

(अ) प्रशासनिक सगठन का उचित न होना।
(ब) सामाजिक जागरूकता का अभाव।
(स) धार्मिक अन्धविश्वास।
(द) शिक्षा का अभाव।
(ट) परम्पराओ एव रूढिवादिता का बाहुल्य।
(ठ) समुचित प्रचार न होना। ( )

प्रश्न—15

(1) परिवार नियोजन की नीति को कुछ राज्यो द्वारा अनिवार्य नीति के रूप मे घोषित किया जा रहा है। क्या आप इस अनिवार्यता के पक्ष मे है ? हाँ/नही

प्रश्न—16

(1) क्या तीन से अधिक बच्चो की सख्या होने पर व्यक्ति को कुछ लाभो से वचित कर दिया जाए। हाँ/नहीं

(2) यदि नहीं तो क्यो ?..........................

यदि हाँ, तो आप कौन से प्रतिबन्धों की स्वीकृति प्रदान करेंगे (केवल सर्वोचित दो बताइए)—

(अ) सरकारी कर्मचारी होने पर उसकी पदोन्नति रोक दी जाए।
(ब) उसकी वेतन वृद्धि रोक दी जाए।
(स) प्रति बच्चे पर राज्य किसी प्रकार का कर लगा दे।
(द) सरकारी सेवाओ मे उसे न लिया जाए।
(ट) उस पर किसी प्रकार का जुर्माना लगाया जाए।
(ठ) जबरदस्ती उसका बन्धीकरण कर दिया जाए।

प्रश्न—17

तीन से कम बच्चों के होने पर क्या व्यक्ति को प्रोत्साहित किया जाये ? हाँ/नही

यदि नही, तो क्यो..............

यदि हाँ, तो प्रोत्साहन के सर्वोचित दो साधन बताइए—

(अ) पदोन्नति की जाए।
(ब) वेतन वृद्धि की जाए।
(स) राज्य उन बच्चो को विशेष सुविधाएँ दें।
(द) उन्हें पुरस्कार आदि देकर सम्मानित किया जाए।
(ट) सरकारी सेवाओ मे प्राथमिकता प्रदान की जाए।

प्रश्न—18

परिवार नियोजन की राष्ट्रीय नीति को और तीव्र गति प्रदान करने के लिए आपके क्या सुझाव हैं ?

....

....

प्रश्न—19

क्या आप सरकारी कर्मचारी है ? हाँ/नहीं

प्रश्न—20

यदि हाँ, तो (i) राज्य सरकार के अधीनस्थ है।

(ii) केन्द्रीय सरकार के अधीनस्थ हैं।

(iii) अर्ध सरकारी कर्मचारी है।

(iv) अन्य..................

प्रश्न—21

क्या आपने आपरेशन करवाया है ? हाँ/नहीं

आगे के प्रश्न (केवल उन उत्तरदाताओं के लिए जिन्होंने आपरेशन करवा लिए हैं।)

प्रश्न—22

यदि हाँ, तो कितने समय पूर्व...

प्रश्न—23

क्या इस आपरेशन के लिए आपको किसी ने प्रेरित किया। हाँ/नहीं

यदि हाँ, तो वह प्रेरणा किसने प्रदान की ?

(i) उच्चाधिकारी ने...

(ii) अन्य किसी ने...

प्रश्न—24

इस आपरेशन के मध्य आपको क्या सुविधाएँ प्रदान की गयी ?

(i) मुफ्त दवाओं का प्रबन्ध।

(ii) कार्यालय से सवेतन छुट्टी।

(iii) अन्य किसी प्रकार का पुरस्कार।

प्रश्न—25

क्या आपको यह ज्ञात था कि आपरेशन न करवाने पर आपको कुछ सुविधाओं से वंचित कर दिया जाएगा ? हाँ/नहीं

(1) यदि हाँ' तो वंचित हो जाने वाली उन सुविधाओं का उल्लेख करें।

साक्षात्कारकर्त्ता का नाम.................. ....

दिनांक.................................. (साक्षात्कारकर्त्ता के हस्ताक्षर)

6 औसत—माध्य, भूयिष्ठक, मध्यका

(Average : Mean, Mode, Median)

आँकडो अथवा तथ्यो के सकलन के पश्चात् समाज वैज्ञानिक अपना सम्पूर्ण ध्यान उनके विश्लेषण (Analysis) एव निर्वचन की ओर केन्द्रित करता है। केवल मात्र तथ्यो का सकलन तब तक अर्थहीन ही होता है, जब तक कि व्यवस्थित तरीके से उनका विश्लेषण एव व्याख्या न की जाए। इसके बिना अनुसधानकर्त्ता अपने प्रयोजन की सार्थकता सिद्ध नहीं कर सकता है। अत तथ्यों या आँकडो का विश्लेषण एव निर्वचन प्रत्येक सामाजिक अनुसधान की एक अनिवार्यता है।

सामाजिक विज्ञानो मे सामग्री के विश्लेषण के अनेक चरण हैं, जैसे—

1 सामग्री का सम्पादन (Editing of Data)
2 सामग्री का सकेत (Codification of Data)
3 सामग्री का वर्गीकरण (Classification of Data)
4 सामग्री का सारणीयन (Tabulation of Data)
5 सामग्री का साँख्यिकीय विश्लेषण (Statistical Analysis of Data)
6 सामग्री का चित्रात्मक प्रदर्शन (Diagramatic Presentation of Data)
7 सामग्री का निर्वचन (Interpretation of Data)
8 सामान्यीकरण (Generalization)

लेकिन यहाँ हम विषय सन्दर्भ की परिधि के बाहर न जाते हुए सामग्री के साँख्यिकीय विश्लेषण (Statistical Analysis of Data) का उल्लेख करेंगे। किसी भी सामाजिक घटना का यथातथ्य अध्ययन करने के लिए साँख्यिकीय विधियो (Statistical Methods) का प्रयोग किया जाता है। उसके सम्बन्ध मे आँकडे इकट्ठे किये जाते हैं और उनका वर्गीकरण व सारणीयन करके उन्हे सरल, व्यवस्थित एव बोधगम्य बनाने का प्रयास किया जाता है, ताकि उनसे निष्कर्ष निकाले जा सकें। आंग्ल भाषा का 'Statistics' शब्द अग्रेजी के ही 'State' शब्दो से निकला है। लेटिन भाषा मे 'State' को 'Status' कहा जाता था तथा 'Statistics' को 'Statista' कहा जाता था। रोमन भाषा मे 'State' को 'Stato' तथा 'Statistics'

को 'Statisticus' कहा जाता था। सांख्यिकी को प्राचीन काल मे शासकों का विज्ञान (Science of Kings) कहा जाता था। प्रोफेसर बाउले का मत है कि "सांख्यिकी वह विज्ञान है जो सामाजिक व्यवस्था को सामूहिक रूप मे सभी दृष्टिकोणो से मापता है।"

सामाजिक अनुसंधानो मे सामग्री के सांख्यिकीय विश्लेषण के लिए अनेक विधियो का प्रयोग किया जाता है, उनमे से कुछ महत्वपूर्ण विधियाँ निम्न हैं—

1 औसत-माध्य, भूयिष्ठक एव मध्यका (Averages Mean, Mode & Median)
2 सूचकांक (Index Number)
3 सह सम्बन्ध (Correlations)
4 प्रमाप-विचलन (Standard Deviation)
5 काई वर्ग परीक्षण (Chi-Square)

लेकिन यहाँ हमारा विषय केवल औसत (Averages) से है। अतः हम अन्य विधियो को छोडकर केवल औसत का अध्ययन करेंगे—

औसत क्या है ?

(What is Average)

जब भी हमे कुछ तथ्यो की तुलना करनी हो तो हमे सबके लिए एक आदर्श इकाई निर्धारित करनी पडती है। यह आदर्श इकाई ऐसी होनी चाहिए जो असामान्य परिवर्तनो का प्रभाव यथासम्भव कम कर दे। यह प्रभाव कम करने का एक मात्र सरल उपाय यह है कि विभिन्न समूहो का औसत (Average) निकाल लिया जाए। क्योकि व्यक्तियो के लिए यह सम्भव नहीं होता है कि वह उन आँकडो को सारणियो के रूप मे याद रख सके, अथवा उनसे किसी निष्कर्ष पर पहुँच सके। अन आँकडो के लक्षणो को कम से कम अंको के सारांश रूप मे प्रकट करने के लिए एक अनुसन्धानकर्त्ता को सांख्यिकीय माध्यो की गणना करके उस समूह या समस्या स सम्बन्धित केन्द्रीय प्रवृत्ति (Central Tendency) का ज्ञान प्राप्त करना पडता है।

'औसत' को 'माध्य' अथवा 'केन्द्रीय प्रवृत्ति का माप' (Measure of Central Tendency) भी कहा जाता है। इन्हे केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप इसलिए कहा जाता है क्योकि व्यक्तिगत चर-मूल्यो का अधिकतर उसके आस-पास जमाव होता है।[1]

प्रकट है कि सामग्री के सांख्यिकीय विश्लेषण के लिए माध्यो की खोज आवश्यक होती है, क्योकि विश्लेषणो के लिए हम आँकडों के जटिल समूहो का प्रयोग नहीं कर सकते, अत उन्हे विश्लेषण योग्य बनाने के लिए 'सांख्यिकीय औसत' का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। विश्लेषण के लिए सख्यात्मक तथ्यो से खोज क महत्व को स्पष्ट करते हुए रोनाल्ड फिशर (Ronald Fisher) ने लिखा है कि "सख्यात्मक तथ्यो को पूर्णरूपेण समझने की मानव मस्तिष्क की अन्तर्निहित अयोग्यता हमे ऐसे अपेक्षाकृत थोडे स्थिर-माप उपलब्ध करने को बाध्य करती है, जो समको

की पर्याप्त रूप से व्याख्या कर सके।" औसत इसका सर्वश्रेष्ठ व सबसे महत्वपूर्ण तरीका है।

उदाहरण के लिए हम एक समूह (Group) को ले सकते हैं। किसी भी समूह मे विभिन्न प्रकार के लोग होते हैं। समूह के लोगो का विस्तृत वर्णन करने के लिए हमे उनके प्रत्येक व्यक्ति का वर्णन करना होगा किन्तु 'औसत' द्वारा हम समूह का सक्षिप्त वर्णन कर देते हैं। जैसे किसी कक्षा के विद्यार्थियो की उम्र अलग अलग होगी। किन्तु यदि हम सब विद्यार्थियो की आयु का औसत निकाल ले तो हमे उन सब की उम्र की ओर इगित करने वाली एक 'माप' मिल जाती है। 'औसत' के द्वारा हम दो समूहो की तुलना भी आसानी से कर सकते हैं। जैसे यदि हम एम ए एव दसवीं कक्षा मे पढने वाले छात्रो की आयु ज्ञात करें तो हम देखेंगे कि एम ए के विद्यार्थियो की आयु दसवी के विद्यार्थियो से अधिक है। इस तुलना को शुद्ध ढग से ज्ञात करने का तरीका होगा दोनो के औसत की तुलना करना।

औसत का अर्थ एव परिभाषाएँ
(Meaning & Definitions of Average)

इस प्रकार हम देखते हैं कि औसत एक ऐसा केन्द्रीय बिन्दु है, जिसमे विशाल आँकडो की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ एव लक्षण निहित होते हैं। औसत श्रेणी (Series) की केन्द्रीय प्रवृत्ति को सरल एव सक्षिप्त रूप मे व्यक्त करने वाला प्रतिनिधि मूल्य होता है। औसत के अर्थ को अधिक अच्छी तरह समझने के लिए यह उपयुक्त होगा कि हम कुछ विद्वानो द्वारा प्रस्तुत परिभाषाओ को देखें—

पी. वी यग (P V Young) ने लिखा है 'विशाल अको को सक्षिप्त करने के लिए आवृति वितरण अत्यधिक उपयोगी है, लकिन सक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया सम्पूर्ण श्रेणी की विशेषताओ को एक अथवा अधिक से अधिक कुछ महत्त्वपूर्ण अगो मे सकुचित करने के द्वारा बहुत अधिक आगे बढाई जा सकती है। ये अक 'औसत' के रूप मे जाने जाते हैं तथा वे एक चरण के विशिष्ट मूल्यो का प्रतिनिधित्व करते हैं।'[1]

घोष एव चौधरी (Ghosh & Chaudhari) ने अपनी कृति 'स्टेटिस्टिक्स-थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस" मे इसे परिभाषित करते हुए लिखा है एक औसत एक सरल अभिव्यक्ति है जिससे एक जटिल समूह अथवा विशाल सख्याओ के वास्तविक परिणाम केन्द्रित हो।"[2]

क्राक्सटन एव काउडन ने लिखा है "औसत समको (आँकडो) के विस्तार के अन्तर्गत स्थित एक ऐसा मूल्य है जिसका प्रयोग श्रेणी क सभी मूल्यो का प्रतिनिधित्व करने के लिए किया जाता है। समक माला के विस्तार मे मध्य के स्थित होने के कारण इसे केन्द्रीय मूल्य का माप भी कहा जाता है।"

1 *P V Young* Social Surveys and Research, p 299
2 *Ghosh & Chaudhari* Statistics, Theory and Practice, p 119

ए ई वाघ (A E Waugh) ने 'एलीमेन्टस् श्रॉफ स्टेटिस्टीकल मेथडस' में लिखा है कि "एक श्रौसत मूल्यो के एक समूह मे से चुना गया वह मूल्य है जो उसका किसी रूप मे प्रतिनिधित्व करता है।"[1]

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि श्रौसत सम्पूर्ण श्रेणियो का प्रतिनिधित्व करने वाला श्रौर केन्द्रीय मूल्य को प्रकट करने वाला एक श्रक होता है जो कि उन श्रेणियो के न्यूनतम एव श्रधिकतम 'मूल्य' के बीच की एक स्थिति मे होता है। इस प्रकार श्रौसत को देखकर ही सम्पूर्ण श्रेणियो की केन्द्रीय विशेषता या मूल्य का पता लगाना हमारे लिए श्रासान होता है। इस श्रथ म श्रौसत विशाल सख्याश्रो का सक्षिप्तीकरण करने का एक साधन बन जाता है। श्रौर भी स्पष्ट रूप मे 'श्रौसत' समस्त समक श्रेणी का एक मूल्य (केन्द्रीय) प्रस्तुत करता है जिससे श्रनुसन्धानकर्ता के समक्ष उस समूह का मुख्य लक्षण स्पष्ट हो जाता है।

माध्यो की उपयोगिता एव महत्त्व
(Utility and Importance of Averages)

साँख्यिकीय प्रविधियो मे श्रौसत श्रथवा माध्य का श्रत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। समस्याएँ चाहे वे सामाजिक, राजनीतिक श्रार्थिक श्रथवा प्रशासनिक हो उनके श्रध्ययन मे माध्यो का मूलभूत महत्त्व है। सामाजिक समस्याश्रो के श्रध्ययन मे तो इसका महत्त्व इसलिए भी बढ जाता है कि उनकी उपयोगिता को मापने का कोई मापदण्ड नहीं है। इसके प्रतिरिक्त विश्लेषण की श्रन्य विधियाँ भी माध्यो पर ही श्राधारित हैं। श्रत माध्य एक प्रकार से विश्लेषण का श्राधार है श्रौर इसलिए प्रो बाउले ने सम्पूर्ण 'साँख्यिकी को माध्यो का विज्ञान' (Statistics may rightly be called the Science of Averages) कहा है। इनकी सहायता से समूह की विशेषताएँ सक्षिप्त रूप मे प्रकट हो जाती है तथा तुलना सरल हो जाती है। समग्र की इकाइयों का व्यक्तिगत रूप मे कोई महत्त्व नहीं होता परन्तु समाज के लोगो की श्रौसत श्रायु श्रथवा श्राय का ज्ञान समाज के लिए उपयोगी हो सकता है।

माध्यो की उपयोगिता या महत्त्व श्रथवा गुणो को निम्न बिन्दुश्रो म रख जा सकता है—

1 **सरल श्राकलन** (Simple Calculation)—माध्य निकालना व समझना श्रन्य साँख्यिकीय विधियो की तुलना म श्रत्यन्त सरल होता है। साधारण गणित के सूत्रो से माध्य श्रासानी से निकाले जा सकते हैं। सामान्यत छोटी कक्षाश्रो के विद्यार्थी भी गणित मे श्रौसत श्रथवा मध्यमान निकालते रहे हैं। साँख्यिकीय माध्य उनसे थोडा-सा भिन्न है, फिर भी इसका श्राकलन श्रत्यन्त सरल है।

2 **तुलना करना**—*माध्य मूल्य की खोज के पीछे एक मुख्य उद्देश्य दो समूहो की तुलना करना होता है। माध्य समूह को सक्षिप्त रूप मे प्रकट करते हैं श्रत तुलना कार्य सरल हो जाता है।* उदाहरणार्थ दो कारखानो क श्रमिको को बोनस का वितरण किया गया। प्रत्येक श्रमिक को मिलने वाली राशि दी हुई है

1 *A E Waugh* Elements of Statistical Methods (III Ed), p 107

हम इन समंको की सहायता से यह तुलना नही कर सकते कि किस कारखाने के श्रमिको को अधिक बोनस प्राप्त हुआ है। यदि हम दोनो का औसत बोनस ज्ञात करें, माना कि 'अ' का औसत 150 रु व 'ब' का औसत 160 रु आता है तो हम आसानी से कह सकेंगे कि 'ब' कारखाने के श्रमिको को औसत रूप से 'अ' की तुलना मे अधिक बोनस प्राप्त हुआ है। इस प्रकार माध्य सांख्यिकीय विश्लेषण मे तुलना करने की सुविधा प्रदान करते हैं।

3 सक्षिप्त चित्र प्रस्तुत करना—माध्य का दूसरा मुख्य कार्य समक माला या किसी समूह को सक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत करना है। किसी राष्ट्र के निवासियो की आय को व्यक्तिगत रूप मे व्यक्त करने से समक जटिल एव विशाल हो जाएँगे, इसके विपरीत यदि औसत प्रति व्यक्ति आय के रूप मे व्यक्त किया जाए तो समक सक्षिप्त, सरल एव समझने योग्य हो जाएँगे जिन्हे आसानी से याद भी रखा जा सकेगा।

मोरोने ने लिखा है कि "माध्य का उद्देश्य व्यक्तिगत मूल्यो के समूह का सरल और सक्षिप्त रूप मे प्रतिनिधित्व करना है जिससे कि मस्तिष्क, समूह की इकाइयो के सामान्य आकार को शीघ्रता से समझ सके।"[1]

4 समग्र का प्रतिनिधित्व करना—माध्य मूल्य एक ऐसी सख्या है जो पूरे समूह की विशेषताओ को व्यक्त करती है एव पूरे समूह का प्रतिनिधित्व करती है। प्रो जी पी वाटकिन्स (G P. Watkins) ने माध्यो को 'प्रतिनिधि सख्या' बताया है जो समको का अर्थ नही तो निचोड अवश्य होता है (Gist if not the substance of Statistics)।

5 मार्ग दर्शन—माध्य के द्वारा कीमत स्तर, उत्पादन के स्तर आदि मे होने वाले परिवर्तनो को ज्ञात किया जाता है और इसी जानकारी के आधार पर भावी नीतियो का निर्धारण होता है। एक बैंक अधिकारी के लिए यह जानकारी आवश्यक है कि औसत रूप से कितनी राशि एक दिन मे बैंक से निकाली जा सकती है, इसी के आधार पर यह निर्धारित किया जा सकता है कि नकद रूप मे कितनी राशि रखी जाएगी। इस प्रकार माध्य नीतियो के निर्धारण मे मार्ग-दर्शन का कार्य करते हैं।

6 सांख्यिकीय विवेचन का आधार—सांख्यिकीय विश्लेषण की अधिकांश क्रियाएँ जैसे—अपकिरण (Dispersion), सहसम्बन्ध (Correlation), काल माला का विश्लेषण (Analysis of Time Series), सूचकांक (Index Number) आदि के विवेचन का आधार माध्य ही हैं।

आदर्श माध्य के आवश्यक तत्त्व
(Essentials of Satisfactory Average)

एक आदर्श माध्य के आवश्यक तत्त्वो की व्याख्या करते हुए प्रो यूल एव केण्डाल ने इन्हे अग्रांकित छ: भागो मे विभाजित किया है।[2]

1 *Moroney*. Facts from Figures, p 34

2 *Yule and Kendall* An Introduction to the Theory of Statistics, p 103

(i) स्पष्ट एवं स्थिर परिभाषा होनी चाहिए ।
(ii) सभी मूल्यो पर आधारित हो ।
(iii) सरल एवं बुद्धिगम्य (Comprehensible) हो ।
(iv) गणना करने मे सरलता होनी चाहिए ।
(v) निदर्शन के परिवर्तनो का न्यूनतम प्रभाव पडे ।
(vi) बीजगणितीय विवेचन सम्भव होना चाहिए ।

प्रो केने एव कीपिंग ने आदर्श माध्य के निम्नलिखित आवश्यक गुण बताए हैं[1]—

(i) स्थिर रूप से परिभाषित किया जाए ।
(ii) गणना करना सरल हो ।
(iii) सरलता से निर्वचन (Interpretation) किया जा सके ।
(iv) सभी अवलोकित (Observed) मूल्यों पर आधारित हो ।
(v) एक या दो अधिक बडे अथवा छोटे मूल्यो से अनुचित रूप से प्रभावित न हो ।
(vi) उसी आकार की उसी समग्र से चुनी गई एक दैव न्यादर्श का दूसरे दैव न्यादर्श (Random Sampling) से सापेक्षिक रूप से बहुत कम अन्तर हो ।
(vii) यह गणितीय विश्लेषण के योग्य हो ।

उपरोक्त आवश्यक गुण एक आदर्श माध्य मे होने चाहिए । इसके साथ ही वह समग्र की अधिकांश विशेषताओ को व्यक्त करने वाला एव अधिकांश पद मूल्यो के निकट होना चाहिए ।

सॉंख्यिकीय श्रेणियाँ
(Statistical Series)

औसत ज्ञात करने के लिए हमे सॉंख्यिकीय या समक श्रेणियो की आवश्यकता होती है । समको को क्रमबद्ध रूप से अनुविन्यस्त करने के लिए सॉंख्यिकीय श्रेणियों का प्रयोग किया जाता है । कॉनर के अनुसार "यदि दो चर-मूल्यो को एक साथ इस प्रकार क्रमबद्ध किया जाए कि एक के मापनीय अन्तर दूसरे के मापनीय अन्तरो मे सम्बन्धित हो तो इस प्रकार उपलब्ध क्रम को सॉंख्यिकीय श्रेणी या समक माला कहते हैं ।'[2] इसी प्रकार होरेस सेक्राइस्ट ने सॉंख्यिकीय श्रेणी की परिभाषा करते हुए स्पष्ट किया है कि "सॉंख्यिकी मे समक श्रेणी उन पदो या इकाइयो के गुणों को कहा जा सकता है जो किसी तर्कपूर्ण क्रम के अनुसार अनुविन्यस्त किए जाएँ ।"[3] सॉंख्यिकीय श्रेणियो को अग्रलिखित प्रकार से विभाजित किया जा सकता है—

1 *J F Kenney and E S Keeping* Mathematics of Statistics, p 53
2 *Cornor* op cit, p 18
3 *Horace Secrist* An Introduction to Statistical Methods, p 157

(अ) सामान्य रूप से सांख्यिकीय श्रेणियाँ तीन प्रकार की होती हैं—

(i) कालानुसार श्रेणी (Time series)

(ii) स्थानानुसार श्रेणी (Spatial series)

(iii) परिस्थितिनुसार श्रेणी (Condition series)

(ब) रचना के आधार पर भी सांख्यिकीय श्रेणियों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

(i) व्यक्तिगत श्रेणी (Individual series)

(ii) खण्डित श्रेणी (Discrete series)

(iii) अविच्छिन्न श्रेणी (Continuous series)

लेकिन समाजशास्त्र में सामान्यतः तीन प्रकार की श्रेणियों का प्रयोग किया जाता है। ये तीन समक श्रेणियाँ हैं व्यक्तिगत, खण्डित एवं अविच्छिन्न या सतत् समक श्रेणी। अतः यहाँ हम इन्हें विस्तार से समझेंगे।

1 व्यक्तिगत श्रेणी
(Individual Series)

व्यक्तिगत श्रेणी में प्रत्येक मद या इकाई का अलग-अलग माप दिया जाता है। अर्थात् प्रत्येक मूल्य की आवृत्ति केवल एक ही हो तो हम उसे 'व्यक्तिगत श्रेणी' (Individual Series) कहते हैं। जैसे 10 विद्यार्थियों के एक परीक्षा में प्राप्तांक निम्न हो सकते हैं—

विद्यार्थी (क्रम संख्या)	प्राप्तांक
1	8
2	9
3	7
4	5
5	7
6	8
7	1
8	3
9	5
10	4

उपरोक्त उदाहरण में विद्यार्थियों को मापा गया है अतः वे 'मद या इकाई' हुए और प्राप्तांक 'मूल्य' हुए। प्रथम विद्यार्थी के 8 अंक, दूसरे के 9, तीसरे के 7 ...... आदि आए हैं। प्रत्येक विद्यार्थी को अलग-अलग मापा गया है और प्राप्तांक उसकी क्रम संख्या के सामने लिखे हैं। क्रम संख्या के स्तम्भ से हम यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि 8 एवं 7 या 5 अंक तो दो-दो विद्यार्थियों ने प्राप्त किए हैं। वास्तव में प्रत्येक विद्यार्थी को एक ही बार मापा गया है। वस्तुतः 8,7 एवं 5 अंकों की आवृत्ति (Frequency) दो दो बार है, लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि

प्रथम विद्यार्थी को 8 ग्रक मिले हैं एव छठे विद्यार्थी को भी 8 ग्रक मिले हैं। इसी प्रकार तीसरे एव पाँचवें विद्यार्थियो को 7 ग्रक तथा चौथे एव नवें विद्यार्थी को 5 ग्रक मिले हैं। इस प्रकार सभी विद्यार्थी ग्रलग-ग्रलग हैं चाहे उनके ग्रक बराबर ही क्यो न हो। ग्रत हमे ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक मद की क्रम सख्या के सामने उसका मूल्य लिखा जाता है, चाहे किसी मद या मदो के मूल्य बराबर ही क्यो न हो।

मूल्यों का ग्रनुविन्यास (Array)—व्यक्तिगत श्रेणी मे मूल्यो को ग्रारोही (Ascending) या ग्रवरोही (Descending) क्रम मे जमाने को ग्रनुविन्यास (Array) कहा जाता है। ग्रारोही क्रम मे सबसे छोटा मूल्य पहले लिखा जाता है फिर उससे बडा ग्रौर इस प्रकार ग्रन्त मे सबसे बडा मूल्य। ग्रवरोही क्रम मे इसका उल्टा होता है, ग्रर्थात् सबसे बडा मूल्य पहले लिखा जाता है, फिर उससे छोटा व ग्रन्त मे सबसे छोटा।

उपरोक्त मूल्यो का ग्रनुविन्यास इस प्रकार होगा—

ग्रारोही क्रम (Ascending Order)	ग्रवरोही क्रम (Descending Order)
1	9
3	8
4	8
5	7
5	7
7	5
7	5
8	4
8	3
9	1

2 खण्डित श्रेणी
(Discrete Series)

खण्डित श्रेणी को विच्छिन्न या ग्रसतत (Non Continuous) श्रेणी भी कहा जाता है। इस श्रेणी मे मूल्यो की ग्रावृत्ति जितने बार होती है वह सख्या उसी मूल्य के सामने लिखी होती है। इस श्रेणी का प्रयोग वहाँ होता है जहाँ प्रत्येक पद को यथार्थता से मापा जा सके। प्रत्येक मद का ग्रलग-ग्रलग महत्त्व होता है। इस प्रकार खण्डित श्रेणी मे प्रत्येक इकाई का यथार्थ माप (Exact Measurement) दिया जाता है तथा विभिन्न पदो के मूल्यो मे निश्चित ग्रन्तर होते हैं। प्राय ये मूल्य पूर्णांको मे होते हैं, ग्रौर उनके खण्ड (Fraction) नही होते। बच्चो की सख्या, ग्रण्डो या दुर्घटनाग्रो की सख्या ग्रादि ऐसे मूल्य हैं जो कि पूर्णांक होते हैं ग्रौर उनके खण्ड नहीं होते। बच्चो की सख्या 2 होगी या 3 या 4 लेकिन 2·5 या 3 4 नहीं हो सकती। इस प्रकार खण्डित श्रेणी के दो भाग होते हैं—

1 माप अथवा आकार, एवं
2. आवृत्ति अथवा उन इकाइयो की सख्या जिन पर माप प्रत्यक्ष रूप से लागू होती है ।

खण्डित श्रेणी का एक उदाहरण देखिए—

बच्चो की सख्या	परिवारो की सख्या
1	10
2	20
3	50
4	12
5	8

उपरोक्त उदाहरण मे परिवारो को मापा गया है, अतः वह 'मद या इकाई' हुए । उनको उनके बच्चो की सख्या मे मापा गया है अत. बच्चे 'मूल्य' हुए । उपरोक्त तालिका के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि 10 परिवार ऐसे हैं जिनमे एक बच्चा है, 2 बच्चे वाले 20 परिवार हैं, एव 3 बच्चो वाले 50 परिवार""" आदि हैं ।

इस प्रकार 1 की आवृत्ति 10, 2 की आवृत्ति 20 आदि है । 1 व 2 के मध्य विच्छिन्नता (Break) है अर्थात् 1 के बाद व 2 के पहले अन्य किसी मूल्य की आवृत्ति नही होती, अत इसे खण्डित श्रेणी कहा जाता है ।

3 अविच्छिन्न या सतत श्रेणी
(Continuous Series)

इस प्रकार की श्रेणियो मे विभिन्न मदो के मूल्य निश्चित सख्याओ के रूप मे न दिए जाकर 'वर्गान्तरो' मे दिए जाते हैं । चल मूल्य प्राय इस प्रकृति के होते है कि उनकी यथार्थ माप (Exact Measurement) नहीं हो पाती और उसमे बहुत ही सूक्ष्म (Minute) अन्तर होता है जिससे पद-मूल्यो को वर्गों या वर्गान्तरो मे ही रखा जाता है ।

इस प्रकार जब माप अथवा मूल्य निश्चित सख्या के रूप मे न होकर समूह के रूप मे होते हैं तो जो माला ऐसे चल मूल्यो को प्रदर्शित करती है उसे सतत श्रेणी कहा जाता है । आयु, भार, ऊँचाई, आय आदि ऐसे चल मूल्य हैं जिन्हे वर्गान्तरो मे ही रखा जाता है । एक उदाहरण देखिए—

आयु (वर्षों में)	विद्यार्थी
13–16	50
16–19	300
19–22	500
22–25	150

उपरोक्त उदाहरण मे विद्यार्थियो को मापा गया है । अत- विद्यार्थी 'मद या इकाई' हुए और उन्हे उम्र या आयु (Age) मे मापा गया है अत आयु 'मूल्य'

हुई । आयु को वर्गान्तरो मे प्रस्तुत किया गया है । अर्थात् 13 से 16 वर्ष की आयु वाले 50 विद्यार्थी हैं, 16–19 वर्ष की आयु वाले 300 विद्यार्थी हैं········ आदि ।

इस तालिका से व्यक्तिगत विद्यार्थी की उम्र ज्ञात नहीं की जा सकती है । आयु के वर्गों मे सततता (Continuity) होती है । पहला वर्ग 16 पर समाप्त होता है तो दूसरा 16 पर प्रारम्भ हो जाता है । अत इसमें विछिन्नता नहीं है ।

सांख्यिकीय दृष्टि से सतत श्रेणी को खण्डित श्रेणी से अच्छा माना जाता है । अत हम कह सकते हैं कि व्यक्तिगत श्रेणी मे आवृत्ति प्रत्येक मूल्य की सदा एक ही रहती है जबकि खण्डित एव सतत श्रेणी मे आवृत्ति (Frequency) एक से अधिक होती है । व्यक्तिगत श्रेणी मे आवृत्ति का कोई स्तम्भ नहो होता जबकि खण्डित एव सतत श्रेणियो मे मूल्य एव आवृत्ति दोनो के ही स्तम्भ (Bar) होते हैं । खण्डित श्रेणी मे 'मूल्य' पूर्णांको मे दिया जाता है जबकि सतत श्रेणी मे मूल्य वर्गों मे दिया जाता है ।

सतत श्रेणियाँ भी दो प्रकार की होती हैं—

1 असम्मिलित (Exclusive) एव

2 सम्मिलित (Inclusive)

1 असम्मिलित (Exclusive)—असम्मिलित सतत श्रेणी की पहचान यह है कि पिछले वर्गान्तर की अपर सीमा (Upper Limit) एव उसके अगले वर्गान्तर की अधर सीमा (Lower Limit) दोनो एक ही होती हैं । उदाहरण देखिए—

	मूल्य	आवृत्ति
	0–10 (अपर सीमा)	20
(अधर सीमा)	10–20	30
	20–30	50
	30–40	80

2 सम्मिलित (Inclusive)—सम्मिलित सतत श्रेणी की पहचान यह है कि पिछले वर्गान्तर की अपर सीमा एव उससे अगले वर्गान्तर की अधर सीमा एक नहीं होगी, जैसे—

प्राप्तांक	विद्यार्थी
10–19	8
20–29	10
30–39	25
40–49	30

हमे ध्यान रखना चाहिए कि प्रश्न हल करते समय इस प्रकार की सम्मिलित सतत श्रेणियों को असम्मिलित सतत श्रेणियो मे परिवर्तित कर लेना चाहिए । जैसे उपरोक्त तालिका इस प्रकार बनेगी—

प्राप्तांक	विद्यार्थी
9 5–19 5	8
19 5–29 5	10
29 5–39 5	25
39 5–49 5	30

उपरोक्त श्रेणियों की सहायता से औसत अथवा माध्यों का परिकलन किया जाता है। माध्य निकालने की विधियाँ भी श्रेणियों के अनुसार अलग-अलग होती हैं। अतः श्रेणियों को भली-भाँति समझना बहुत आवश्यक होता है। इन उपरोक्त श्रेणियों के अतिरिक्त भी अनेक श्रेणियाँ होती हैं लेकिन सामान्यतः सामाजिक विज्ञानों में उनका प्रयोग नहीं किया जाता है। सामाजिक विज्ञानों और विशेषकर समाजशास्त्र में उपरोक्त तीन प्रकार की श्रेणियों से ही माध्य निकाले जाते हैं।

औसत के प्रकार
(Types of Averages)

औसत के अनेक प्रकार वर्गीकृत किए गए हैं। एक औसत को सामान्यतः निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है—

1 गणितीय माध्य (Mathematical Averages)
   (A) अंकगणितीय माध्य (Arithmetic Average or Mean)
   (B) गुणोत्तर माध्य (Geometric Mean)
   (C) हरात्मक माध्य (Harmonic Mean)
   (D) द्विघातीय माध्य (Quadratic Mean)
2 स्थिति सम्बन्धी माध्य (Averages of Mean)
   (A) मध्यका (Median)
   (B) बहुलक या भूयिष्ठक (Mode)
3 व्यापारिक माध्य (Commercial Averages)
   (A) चल या गतिशील माध्य (Moving Average)
   (B) प्रगतिशील माध्य (Progressive Average)
   (C) संग्रथित माध्य (Composite Average)

उपरोक्त समस्त माध्यों को केन्द्रीय प्रकृति का माप कहा जाता है। इन्हें प्रथम दर्जे के माध्य (First Order Averages) भी कहा जाता है। लेकिन यहाँ हम तीन प्रकार के प्रमुख औसत का पृथक् शीर्षकों में विस्तार में उल्लेख करेंगे—

1 *अंकगणितीय माध्य (Mean),*
2 बहुलक या भूयिष्ठक (Mode),
3 मध्यका (Median)।

अंकगणितीय माध्य
(Arithmetic Average of Mean)

इसे 'समानान्तर माध्य' भी कहा जाता है। गणितीय माध्यों में इसे सर्वश्रेष्ठ माना गया है। अंकगणितीय माध्य वस्तुतः माध्यों में सबसे सरल और

उत्तम माध्य माना जाता है। एक आदर्श औसत के अधिकतर लक्षण इसी माध्य मे पाए जाते हैं। सामान्यत. 'औसत' शब्द का प्रयोग इसी माध्य के लिए होता है।

समानान्तर माध्य समस्त पदो के मूल्यो के योग को पदो की सख्या से भाग देने पर प्राप्त होता है। इस प्रकार इसे निकालने के लिए समस्त पदो का उपयोग किया जाता है, जिससे इसका प्रतिनिधित्व और भी बढ जाता है।

अनेक विद्वानों ने समानान्तर माध्य को परिभाषित किया है।

घोष और चौधरी ने लिखा है, "समानान्तर माध्य जिसे कि समानान्तर माध्य या केवल मध्यक भी कहते हैं, वह परिणाम है जो कि किसी चल मे पदों के मूल्यो के योग को उनकी सख्या से भाग देकर प्राप्त होता है।"

क्रास्सटन एव काउडन के अनुसार, "किसी श्रेणी का समानान्तर या अकगणितीय माध्य उसके पद मूल्या के योग मे उसकी सख्या का भाग देकर प्राप्त किया जा सकता है।"

रीगलमैन एवं फ्रीसबी (Riggleman and Frisbee) ने लिखा है, "यह एक औसत है जो पद मूल्यो से जोड मे उसकी सख्या का भाग देने से प्राप्त होता है।"

अकगणितीय माध्य की विशेषताएँ
(Characteristics of Mean)

अकगणितीय या समानान्तर माध्य की निम्नांकित विशेषताएँ होती हैं—

1 अकगणितीय माध्य कुल मदा के माप के योग को पदो की सख्या से भाग देकर निकाला जाता है।

2 अकगणितीय माध्य मे समस्त पद-मूल्यो का उपयोग होता है।

3 यदि अकगणितीय माध्य तथा पदों की सख्या ज्ञात हो तो दोनो का गुणा करने से समस्त पद-मूल्यो का योग जाना जा सकता है।

4 अकगणितीय माध्य भूयिष्ठक एवं मध्यका की भाँति कुछ ही आवृत्तियो (Frequencies) पर निर्भर नहीं रहता है, बल्कि समस्त पदो के मूल्यो पर निर्भर रहता है।

अकगणितीय माध्य का परिकलन
(Calculation of Mean)

अकगणितीय माध्य का परिकलन या गणना दो विधियों द्वारा की जाती है–

1 प्रत्यक्ष विधि (Direct Method)

2 लघु विधि (Short-cut Method)

1 प्रत्यक्ष विधि (Direct Method)—प्रत्यक्ष विधि से समानान्तर माध्य निकालने के लिए सबसे पहले समस्त मूल्यो को जोड लिया जाता है फिर उसमे

पदो की सख्या का भाग दिया जाता है। भागफल ही समानान्तर माध्य होगा। इसके लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है—

$$\overline{X} = \frac{\Sigma X}{N}$$

यहाँ इस सूत्र की व्याख्या करना उपयुक्त होगा—

$\overline{X}$ = समानान्तर या अ कगणितीय माध्य (Mean)
Σ = जोड़ (Total)
X = पद (Item)
ΣX = पदो के मूल्यों का जोड़ (Total of Values)
N = पदों की सख्या (Number of Items)

उदाहरण 1 दस विद्यार्थियो के एक परीक्षा के प्राप्तांको का विवरण नीचे दिया गया है। इसका प्रत्यक्ष विधि से समानान्तर माध्य ज्ञात कीजिए—

प्राप्तांक 15, 33, 39, 34, 37, 35, 48, 49, 55, 59.

$$\overline{X} = \frac{\Sigma X}{N}$$

$$15+33+39+34+37+35+48+49+55+59 = \frac{394}{10} \quad \frac{\Sigma X}{N}$$

$$\overline{X} = \frac{\Sigma X}{N}$$

$$\overline{X} = \frac{394}{0}$$

$$\overline{X} = 39\ 4 \text{ Ans}$$

उदाहरण 2 एक मानसिक योग्यता परीक्षण मे विश्वविद्यालय के विद्यार्थियो के एक समूह द्वारा निम्नलिखित अ क प्राप्त किए गए। इन आंकडो को समूह मे जमाकर माध्य, मध्यका एव भूयिष्ठक ज्ञात कीजिए। (राज विश्व 1984)

(प्राप्तांक)

71	61	54	50
70	60	54	50
69	59	54	49
69	58	54	47
69	58	53	40
64	57	52	39
64	56	52	34
63	55	51	30

=32 N

मध्यका व भूयिष्ठक हम बाद मे निकालेगे। यहाँ हम समानान्तर माध्य को प्रत्यक्ष विधि से ज्ञात कर रहे हैं—

$$\overline{X} = \frac{\Sigma X}{N}$$

71+70+69+69+69+64+64+63+61+60+59+
58+58+57+56+55+54+54+54+54+53+52+
52+51+50+50+49+47+40+39+34+30=1766Σ×

$$\overline{X}=\frac{\Sigma X}{N}$$

$$\overline{X}=\frac{1766}{32}$$

$$\overline{X}=55\ 19\ \text{Ans}$$

2. लघु विधि (Short-cut Method)—लघु विधि से समानान्तर या म कगणितीय माध्य निकालने के लिए निम्न क्रिया अपनानी पड़ती है—

(A) समक श्रेणी के किसी भी पद को कल्पित माध्य मान लेते हैं। साधारणतया दी हुई सख्याओ के बीच वाली सख्या को कल्पित माध्य (Assumed Mean) माना जाता है ताकि गणना कार्य सरल हो जाए।

(B) इस कल्पित माध्य से बाद मे पदो के विचलन निकाल लिए जाते हैं। फिर इन विचलनो मे यदि मूल्य कल्पित माध्य से कम है तो ऋण (−) एव यदि मूल्य कल्पित माध्य से अधिक है तो धन (+) का चिह्न लगाते हैं।

(C) अन्त मे निम्न सूत्र का प्रयोग करके समानान्तर माध्य की गणना की जाती है—

सूत्र—

व्यक्तिगत श्रेणी में $\overline{X}=a+\frac{\Sigma dx}{N}$

खण्डित श्रेणी में $\overline{X}=a+\frac{\Sigma fdx}{N}$

सतत श्रेणी में $\overline{X}=a+\frac{\Sigma fdx}{N}\times i$

सूत्र की व्याख्या—

$\overline{X}$=Mean (माध्य)
Σ=Total (जोड़)
x=Size (आकार)
N=Number of Items (पदों की सख्या)
a=Assumed Mean (कल्पित माध्य)
f=Frequency (आवृत्ति)
dx=Deviation from Assumed Mean (कल्पित माध्य से विचलन)
i=Class Interval (वर्ग अन्तराल)

उदाहरण (व्यक्तिगत श्रेणी)—पाँच व्यक्तियो का मासिक खर्च आगे दिया गया है। लघु विधि से समानान्तर माध्य ज्ञात कीजिए—

व्यक्ति N	मासिक खर्च x	कल्पित माध्य से विचलन dx
1	132	−12
2	140	−4
3	144 a	0
4	136	−8
5	138	−6
5N		−30 Σdx

$a = 144$

$\Sigma dx = -30$

$N = 5$

$$\overline{X} = a + \frac{\Sigma dx}{N}$$

$$\overline{X} = 144 + \frac{-30}{5}$$

$$\overline{X} = 144 - 6$$

$$\overline{X} = 138 \text{ Rs Ans.}$$

उदाहरण (खण्डित श्रेणी)—निम्न समकों से लघु विधि द्वारा माध्य ज्ञात कीजिए–

आय	Σx	236	237	239	241	242	243	244	245
कामगारों की संख्या	(f)	12	15	22	28	25	23	16	13

Income x	No. of Workers (f)	dx	fd	
236	12	−5	−60	−164
237	15	−4	−60	
239	22	−2	−44	
241 @	28	0	0	
242	25	+1	+25	+171
243	23	+2	+46	
244	16	+3	+48	
245	13	+4	+52	
	154 N.			

+171
−164
$\Sigma fdx + 7$

$N = 154$

$a = 241$

$\Sigma fdx = +7$

$$\overline{X} = a + \frac{\Sigma fdx}{N}$$

$$\overline{X} = 241 + \frac{+7}{154}$$

$\overline{X} = 241 + \cdot 04$

$\overline{X} = 241 \cdot 04$ Ans.

उदाहरण (सतत श्रेणी से)—निम्न समकों से समानान्तर माध्य ज्ञात कीजिए—

प्राप्तांक	विद्यार्थी	dx	fdx	
0–10	10	–20	–20	–35
10–20	15	–10	–15	
20–30@ 25	20	0	0	
30–40	25	+1	+25	+97
40–50	18	+2	+36	
50–60	12	+3	+36	
	N 100			

+97
–35

Σ fd x   +62

N=100
Σ fdx=+62
i=10
a=25

$$\overline{X} = a + \frac{\Sigma fdx}{N} \times i$$

$$\overline{X} = 25 + \frac{+62}{100} \times 10$$

$$\overline{X} = 25 + \frac{620}{100}$$

$$\overline{X} = 25 + 6\ 20$$

$$\overline{X} = 31\ 20 \text{ Ans.}$$

अंकगणितीय माध्य के गुण
(Advantages of Mean)

अंक गणितीय या समानान्तर माध्य के निम्नांकित गुण कहे जाते हैं—

1. इनकी गणना करना तथा इन्हें समझना आसान है।

2 ये सभी मूल्यों पर आधारित होते हैं अतः अधिक प्रतिनिधित्व करने वाला माध्य माना जाता है।

3 यह निश्चित, स्थिर व स्पष्ट होता है।

4 इसका बीजगणितीय विवेचन सम्भव है जिसके कारण इसका उपयोग सर्वाधिक है।

5. इसके पदों को क्रमबद्ध करने की आवश्यकता नहीं है।

अ कगणितीय माध्य के दोष/सीमाएँ
(Limitat ons of Mean)

1 इसकी गणना मे असाधारण व सीमान्त मूल्यों का बहुत प्रभाव पडता है।

2 इसका बिन्दुरेखीय प्रदर्शन सम्भव नहीं है।

3 यदि समक श्रेणी का कोई भी मूल्य ज्ञात न हो तो इसे ज्ञात नहीं किया जा सकता।

4 गुणात्मक सामग्री के अध्ययन हेतु यह माध्य अनुपयुक्त है।

5 कभी-कभी मध्यक को देखकर गलत निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

परन्तु सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं के अध्ययन के लिए यह माध्य अत्यन्त उपयोगी होते हैं। गणना या परिकलन करने एवं समझने में सरल होने के कारण इनका प्रयोग बहुत अधिक होता है।

भूयिष्ठक या बहुलक
(Mode)

किसी समक श्रेणी मे जिस मूल्य की आवृत्ति सबसे अधिक होती है, उसी को बहुलक या भूयिष्ठक (Mode) कहा जाता है। इसी प्रकार भूयिष्ठक समक श्रेणी का सर्वाधिक सामान्य मूल्य होता है। यह समक श्रेणी या पदमाला का ऐसा मूल्य या परिणाम है, जो दिये हुये आँकडो मे सबसे अधिक बार आता है।

अंग्रेजी का (Mode) शब्द फ्रेंच भाषा के 'La Mode' से बना है जिसका आशय Most Fashionable' (सर्वाधिक फैशन या रिवाज) है। औसत व्यक्ति अमुक वस्त्र पहनता है, औसत स्त्री अमुक सौन्दर्य प्रसाधन का प्रयोग करती है, औसत व्यक्ति अमुक नाप मे जूते पहनता है आदि कथनो मे औसत शब्द का आशय अधिकांश से है। यह 'अधिकांश' ज्ञात करने की विधि ही भूयिष्ठक या बहुलक है।

बहुलक 'सर्वाधिक घनत्व की स्थिति' (Position of greatest density) 'मूल्यो के अधिकतम केन्द्रीयकरण का बिन्दु' (Point of highest concentration of value) 'सर्वाधिक आने वाले पद का मूल्य' (Most Frequency occuring value) होता है।

बहुलक को अनेक विद्वानो एवं सांख्यिकी शास्त्रियो ने परिभाषित किया है। बहुलक के निर्माता 'जिजेक' (Zizek) के अनुसार—

"बहुलक वह मूल्य है जो पदों की श्रेणी (अथवा समूह मे सबसे अधिक बार आता है, तथा जिसके चारो और सबसे अधिक घनत्व मे पदो का वितरण रहता है।"

क्रास्टन एवं काउडन के अनुसार "एक वितरण का बहुलक वह मूल्य है, जिसके निकट श्रेणी की अधिक से अधिक इकाइयाँ केन्द्रित होती हैं। उसे मूल्यो की श्रेणी का सबसे अधिक प्रतिरूपी माना जा सकता है।"[1]

1 *Croxton & Cowden* ; op cit., p 189

केनें एव कीपिंग के अनुसार "वितरण में सर्वाधिक आने वाले पद का मूल्य बहुलक या भूयिष्ठक कहलाता है।"[1]

गिलफोर्ड (Gilford) ने लिखा है।"माप के पैमाने पर बहुलक वह बिन्दु है, जहाँ पर वितरण मे सबसे अधिक आवृत्तियाँ केन्द्रित होती हैं।"

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओ से स्पष्ट है कि श्रेणी मे उस पद का मूल्य है जिसकी आवृत्ति सबसे अधिक होती है।"

उदाहरण के लिए मान लीजिए यदि किसी कारखाने के दस श्रमिको की मासिक आय क्रमश 470, 450, 450, 480, 520, 450, 470, 510, 450, 530 रुपये है तो इसमे 450 बहुलक या भूयिष्ठक माना जाएगा, क्योंकि यह सख्या सबसे अधिक बार प्राप्त की गई है।

उपरोक्त विवेचन से यह भ्रम होना स्वाभाविक है कि बहुलक ज्ञात करना बहुत आसान होगा। यदि अक बँटन बिल्कुल सामान्य है और अकों मे उतार-चढाव भी सामान्य है, तो वास्तव मे बहुलक मूल्य ज्ञात करना बहुत सरल है, परन्तु आवृत्तियाँ समतित (Symmetrical) न होने पर उन्हें वर्गों मे समूहन (Grouping) करना पडता है।

बहुलक की विशेषताएँ (Characteristics of Mode)—बहुलक की अनेक विशेषताएँ हो सकती हैं। कुछ प्रमुख निम्न हैं:

1. बहुलक का मूल्य सबसे अधिक सम्भावित मूल्य होता है। यह वह मूल्य होता है जिसके पास-पास सबसे अधिक आवृत्तियाँ केन्द्रित होती हैं।
2. बहुलक का मूल्य प्राय अधिकतम आवृत्तियो से निर्धारित होता है, इकाइयो से नहीं।
3. बहुलक का मूल्य केवल एक सम्भावित मूल्य होता है जो हमेशा अस्थिर रहता है। बहुलक का मूल्य वर्गीकरण की प्रक्रियाओ से प्रभावित होता है तथा बनता है जैसे—

मूल्य	आवृत्ति	
20	5	
30	7	Mode
40	8	
50	9	Mode
60	10	
70	8	
80	7	
90	6	
100	5	

1 *Kenney & Keeping*. Mathematics of Statistics, p. 50

4 किसी भी एक विभाजन मे दो या दो से अधिक बहुलक हो सकते हैं, जैसे—

मूल्य	आवृत्ति
2	5
3	10←Mode
4	7
5	8
6	12←Mode
7	9
8	4

5 बहुलक का मूल्य बहुलकता की मात्रा को प्रदर्शित करता है।

6 बहुलक के मूल्यो को बीजगणित के सिद्धान्तो द्वारा हल नहीं किया जा सकता।

7 बहुलक का मूल्य निकालने के लिए तथ्य को उनके आकारानुसार क्रमबद्ध करना पडता है।

8 बहुलक का मूल्य खुले वर्गान्तरो के रूप मे किए गए तथ्यो से भी निकाला जा सकता है।

9 बहुलक का मूल्य ही केवल ऐसा मूल्य है जो गुणात्मक तथ्यो के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है।

बहुलक का परिकलन (Calculation of Mode)—बहुलक भी श्रेणियों के अनुसार निकाला जाता है। व्यक्तिगत, खण्डित एव सतत श्रेणी मे बहुलक निकालने की विधि अलग-अलग है।

व्यक्तिगत श्रेणी मे बहुलक तीन प्रकार से निकाला जाता है

1 निरीक्षण द्वारा,
2 खण्डित अथवा सतत श्रेणियो मे बदल कर,
3 मध्यका (Median) तथा अकगणितीय माध्य (Mean) के अनुसार।

उदाहरण (निरीक्षण द्वारा)—

दस विद्यार्थियो के प्राप्ताक नीचे दए गए हैं, बहुलक ज्ञात कीजिए.

8, 7, 6, 3, 6, 4, 8, 4, 6, 7

यदि हम उपर्युक्त प्राप्तांको को क्रम से रखें तो सभी समान पद एक साथ आ जाएँगे और फिर निरीक्षण करने पर ज्ञात होगा कि 6 प्राप्तांक ऐसे प्राप्तांक हैं जो सबसे अधिक (अर्थात् 3) छात्रो ने प्राप्तांक किए हैं अत 6 प्राप्तांक ही भूयिष्ठक होगा।

उदाहरण (खण्डित श्रेणी में बदलकर)—

एक मानसिक योग्यता परीक्षण मे विश्वविद्यालय के विद्यार्थियो के एक समूह द्वारा निम्नलिखित अक प्राप्त किए गए। इन आँकडो को समूह मे जमाकर बहुलक (भूयिष्ठक) ज्ञात कीजिए—

71	61	54	50
70	60	54	50
69	59	54	49
69	58	54	47
69	58	53	40
64	57	52	39
64	56	52	34
63	55	51	30

(राज वि वि 1984)

खण्डित श्रेणी मे बदलने पर—

प्राप्तांक	71	70	69	64	63	61	60	59	58
छात्रो की सख्या	1	1	3	2	1	1	1	1	2
प्राप्तांक	57	56	55	54	53	52	51	50	49
छात्रो की सख्या	1	1	1	4	1	2	1	2	1
प्राप्तांक	47	40	39	34	30				
छात्रो की सख्या	1	1	1	1	1				

हम देखते है कि सर्वाधिक 4 विद्यार्थियो के 54 अक हैं अत. 54 प्राप्तांक बहुलक है।

$Z = 54$ Ans

सतत श्रेणी मे बदलकर—व्यक्तिगत श्रेणी को खण्डित श्रेणी पर बदलने पर यदि व्यक्तिगत मूल्य एक से अधिक बार नहीं पाया जाता हो तो ऐसे समय व्यक्तिगत श्रेणी को सतत या अविच्छिन्न श्रेणी से बदलकर बहुलक वर्ग (Model Class) ज्ञात कर लिया जाता है, और बहुलक वर्ग म बहुलक मूल्य का निर्धारण सूत्र की सहायता से किया जाता है। इस रीति का विश्लेषण इसी अध्याय मे आगे किया गया है।

मध्यका एव अकगणितीय माध्य की सहायता से—इस रीति से बहुलक ज्ञात करने से पूर्व मध्यका एव अकगणितीय माध्य का मूल्य ज्ञात कर लिया जाता है। बहुलक का निर्धारण निम्न सूत्र से किया जाता है—

$$Z = 3M - 2\bar{X}$$

इस रीति का प्रयोग सभी श्रेणियो मे किया जा सकता है।

खण्डित श्रेणी—खण्डित श्रेणी मे बहुलक दो प्रकार से ज्ञात किया जा सकता है—(i) निरीक्षण द्वारा (By Inspection), (ii) समूहन द्वारा (By Grouping)।

(i) निरीक्षण द्वारा—जब श्रेणी मे आवृत्तियो का वितरण नियमित हो, उस समय निरीक्षण द्वारा बहुलक ज्ञात कर लिया जाता है। नियमित वितरण से तात्पर्य प्रारम्भ मे आवृत्तियाँ बढती रहें, केन्द्र मे अधिकतम हो जाएँ और उसके बाद आवृत्तियाँ घटने लगें। ऐसी श्रेणी मे अधिकतम आवृत्ति वाले पद का मूल्य ही बहुलक होता है।

उदाहरण—

निम्न सारणी मे एक कक्षा के 50 विद्यार्थियों का वजन दिया हुआ है, बहुलक वजन ज्ञात कीजिए—

Weights (kgm)	48	49	50	51	52	53	54
No of Students	4	8	12	16	7	2	1

हल—

श्रेणी मे आवृत्तियो का वितरण नियमित है। प्रारम्भ मे आवृत्तियाँ बढ रही हैं, 51 किलोग्राम पर अधिकतम 16 हो जाती हैं और उसके बाद कम होना प्रारम्भ हो जाती हैं। निरीक्षण से यह ज्ञात हो जाता है कि अधिकतम आवृत्ति 16 का मूल्य 51 किलोग्राम है अत बहुलक वजन = 51 किलोग्राम।

(ii) समूहन द्वारा—जब आवृत्तियो का वितरण अनियमित हो—अर्थात् अनियमित रूप से कभी बढे और कभी कम हो, अधिकतम आवृत्ति केन्द्र में न होकर प्रारम्भ मे या अन्त में हो, अधिकतम आवृत्ति दो या दो से अधिक स्थानो पर हो, तो निरीक्षण द्वारा बहुलक ज्ञात करना कठिन हो जाता है। ऐसे समय बहुलक ज्ञात करने के लिए समूहन रीति का प्रयोग किया जाता है। श्रेणी की आवृत्तियो का समूहन निम्नांकित प्रकार से किया जाता है—

सर्वप्रथम 6 खानो (Columns) वाली एक सारणी बनाई जाती है और इन खानो मे आवृत्तियो का समूहन किया जाता है। समूहन (Grouping) इस प्रकार किया जाता है—

1st Column मे दी हुई आवृत्तियो को ही लिखा जाता है।
2nd ,, मे आरम्भ से दो-दो आवृत्तियो का योग लिखा जाता है।
3rd ,, मे आरम्भ से एक आवृत्ति छोडकर दो दो आवृत्तियो का योग लिखा जाता है।
4th ,, मे तीन-तीन आवृत्तियो का योग लिखा जाता है।
5th ,, मे प्रथम आवृत्ति को छोडकर तीन-तीन आवृत्तियो का योग लिखा जाता है।
6th ,, मे प्रथम और द्वितीय, दो आवृत्तियो को छोडकर तीन-तीन आवृत्तियो का योग लिखा जाता है।

समूहन के बाद एक विश्लेषण सारणी बनाई जाती है जिसके द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि अधिकतम आवृत्ति वाला मूल्य कौन-सा है, यही मूल्य बहुलक होता है।

उदाहरण—निम्न अंको से भूयिष्ठक ज्ञात कीजिए—

प्राप्तांक	10	15	20	25	30	35	40	45	50	55
छात्रों की संख्या	4	6	10	15	16	13	17	4	2	1

प्राप्तांक	छात्रों की संख्या 1	2	3	4	5	6
10	4	10		20		
15	6		16		31	
20	10	25				41
25	15		31	41		
30	16	29			46	
35	13		30			34
40	17	21		34		
45	4		6		7	
50	2	3				
55	1					

इसके बाद विश्लेषण सारणी (Tally Sheet) इस प्रकार बनाई जाती है—

TALLY SHEET

कालम न. प्राप्तांक	10	15	20	25	30	35	40	45	50	55
1							1			
2					1	1				
3				1	1					
4				1	1	1				
5					1	1	1			
6			1	1	1					
जोड़			1	3	5	3	2			

उपर्युक्त सारणी से ज्ञात होता है कि प्राप्तांक 30 सबसे अधिक बार (5 बार) आया है। इसीलिए भूयिष्ठक प्राप्तांक 30 है। सामान्य निरीक्षण मे 40 भूयिष्ठक लगता है परन्तु वह समूहन के बाद गलत निकला।

उदाहरण (सतत श्रेणी से बहुलक निकालना)—यदि पद मूल्य किसी सतत श्रेणी के वर्गों (Classes) के रूप मे दिए गए हैं तो सर्वप्रथम उनकी आवृत्तियों को देखकर ही यह आभास हो जाना चाहिए कि किस वर्ग का आवृत्ति सर्वाधिक है, उसी पद मूल्य वर्ग मे सामान्यत भूयिष्ठक होता है। यदि एक से आकार की आवृत्तियाँ अधिक सख्या मे अथवा एक समान हो, तब यह निर्धारण करने के लिए कि किस वर्ग म भूयिष्ठक या बहुलक विद्यमान है, समूहीकरण (Grouping) तथा विश्लेषण-सारणी (Analysis-Table) बनानी पड़ेगी। भूयिष्ठक का वर्ग (Class) ज्ञात हो जाने के पश्चात् निम्नांकित सूत्र का प्रयोग करके भूयिष्ठक निकाला जाता है।

हमे ध्यान रखना चाहिए कि सतत श्रेणी मे यदि विभिन्न पद-मूल्य वर्गों मे समान वर्गान्तर (Class-interval) है, केवल तभी इस सूत्र को भूयिष्ठक या बहुलक निकालने हेतु प्रयुक्त किया जाता है, अन्यथा इसे प्रयोग करने के पूर्व समस्त पद-समूहो के वर्गान्तरो को एक समान दूरी मे परिवर्तित कर लेना आवश्यक होता है।

सूत्र $$Z = l_1 + \frac{(f_1 - f_0)}{(f_1 - f_0) + (f_1 - f_2)} \times i$$

सूत्र की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है—

Z = बहुलक (Mode)

l_1 = बहुलक वर्ग की निम्न सीमा (Lower Limit of the Class)

f_1 = बहुलक वर्ग की आवृत्ति (Frequency of the Model Group)

f_0 = बहुलक वर्ग से पिछले वर्ग की आवृत्ति
(Frequency of the Preceeding Model Group)

f_2 = बहुलक वर्ग से अगले वर्ग की आवृत्ति
(Frequency of the Succeeding Model Group)

i = वर्ग-अन्तराल (Class-interval)

निम्न समंकों से भूयिष्ठक (बहुलक) ज्ञात कीजिए—

मजदूरी वर्ग (प्रति दिन)	0-10	10-20	20-30	30-40	40-50	50-60	60-70
श्रमिकों की संख्या	6	10	12	16	13	8	7

मजदूरी वर्ग	1 श्रमिकों की संख्या	2	3	4	5	6
0-10	6	16		28		
10-20	10		22		38	
20-30	12 f_0	28				41
l_1 30-40	16 f_1		29	37		
40-50	13 f_2	21			26	
50-60	8		15			
60-70	7					

विश्लेषण सारणी

(Tally Sheet)

कालम नं	मजदूरी वर्ग 0–10	10–20	20–30	30–40	40–50	50–60	60–70
1			1	1			
2				1	1		
3				1	1	1	
4		1	1	1			
5			1	1	1		
6				1			
	0	1	3	6	3	1	

उपर्युक्त सारणी से ज्ञात होता है कि मजदूरी 30-40 वर्ग में सबसे अधिक अर्थात् 6 बार आया है, अतः यही भूयिष्ठक-वर्ग (Model-Group) है। अब हम सूत्र का प्रयोग कर भूयिष्ठक ज्ञात करेंगे—

$$Z=l_1+\frac{(f_1-f_0)}{(f_1-f_0)+(f_1-f_2)}\times i$$

$$Z=30+\frac{(16-12)}{(16-12)+(16-13)}\times 10$$

$$Z=30+\frac{(4)}{4)+(3)}\times 10$$

$$Z=30+\frac{4}{4+3}\times 10$$

$$Z=30+\frac{40}{7}$$

$$Z=30+5\ 71$$

$$Z=35\ 71 \text{ Ans.}$$

उदाहरण—निम्न समको से भूयिष्ठक ज्ञात कीजिए—

मध्य मूल्य	आवृत्ति
1	2
2	9
3	11
4	14
5	20
6	24
7	20
8	16
9	5
10	2

हल—उपरोक्त श्रेणी देखने मे खण्डित श्रेणी लगती है, लेकिन वास्तव में ऐसा नही है। मूल्य मध्य बिन्दुओ (Central size) मे दिए गए हैं। मध्य बिन्दु केवल सतत श्रेणी में ही होते हैं। अत उपरोक्त श्रेणी सतत श्रेणी है, जिसके वर्गान्तर इस प्रकार बनाए जाएँगे—

मूल्य	आवृत्ति
0 5—1·5	2
1·5—2 5	9
2·5—3 5	11
3·5—4·5	14
4 5—5 5	20
5·5—6 5	24
6 5—7 5	20
7 5—8 5	16
8 5—9 5	5
9·5–10 5	2

इस प्रकार इन्हे उपरोक्त वर्गों मे जमाने के बाद हम निम्न प्रकार से भूयिष्ठक ज्ञात कर सकते हैं—

मूल्य	आवृत्ति 1	2	3	4	5	6
0 5—1 5	2	11		22		
1 5—2·5	9		20		34	
2 5—3 5	11	25				45
3 5—4 5	14		34	58		
4 5—5 5	20 (f_0)	44			64	
$l_1$5 5—6 5	24 (f_1)		44			60
6 5—7 5	20 (f_2)	36		41		
7·5—8·5	16		21		23	
8 5—9 5	5	7				
9 5—10 5	2					

Tally Sheet

क्र	मूल्य 0 5-1 5	1 5-2 5	2 5-3 5	3 5-4 5	4 5-5 5	5 5-6 5	6 5-7 5	7 5-8 5	8 5-9 5	9 5-10 5
1					1	1				
2						1	1			
3				1	1	1				
4					1	1	1			
5						1	1	1		
6										
				1	3	5	3	1		

इस प्रकार भूयिष्ठक वर्ग 55-65 है। अब हम सूत्र का प्रयोग कर भूयिष्ठक ज्ञात करेंगे—

$$Z=l_1+\frac{(f_1-f_0)}{(f_1-f_0)+(f_1-f_2)}\times i$$

$$Z=5\ 5+\frac{(24-20)}{(24-20)+(24-20)}\times 1$$

$$Z=5\ 5+\frac{(4)}{(4)+(4)}\times 1$$

$$Z=5\ 5+\frac{4}{4+4}\times 1$$

$$Z=5{\cdot}5+\frac{4}{8}\times 1$$

$$Z=5\ 5+{\cdot}5$$

$$Z=6 \quad \text{Ans.}$$

भूयिष्ठक का महत्त्व लाभ (Advantage/Importance of Mode)—औसत अथवा सांख्यिकीय माध्यों में भूयिष्ठक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके महत्त्वपूर्ण लाभ निम्नांकित हैं—

1 भूयिष्ठक को निरीक्षण मात्र से ही निर्धारित कर लेना एवं सामान्य व्यक्ति के द्वारा प्रयोग करना अत्यन्त सरल होता है। प्रो वाघ (Vaugh) के अनुसार भूयिष्ठक स्वाभाविक रूप से ही समकों का वितरण इस प्रकार प्रस्तुत करता है जिससे उसका अर्थ सरलता से समझा जा सकता है।'

2 भूयिष्ठक का हमारे दिन प्रतिदिन के जीवन में अत्यन्त महत्त्व है। सामान्य जीवन में हम विभिन्न वस्तुओं के प्रचलित भाव, सर्वाधिक फैशन की वस्तुओं तथा विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों को ज्ञात करने के लिए भूयिष्ठक पर ही निर्भर करते हैं।

3 भूयिष्ठक सर्वाधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण होता है, क्योंकि यह सम्पूर्ण श्रेणी की सर्वाधिक आवृत्ति पर निर्भर करता है। प्रो किंग (King) के अनुसार भूयिष्ठक की प्रवृत्ति इस प्रकार की है कि इसे आँकड़ों का सर्वोत्तम प्रतिनिधि माना जा सकता है।"

4 भूयिष्ठक अपनी श्रेणी में पाए जाने वाले किन्हीं अत्यधिक बड़े या छोटे पदों से प्रभावित नहीं होता है, क्योंकि इसमें मूल्यों को जोड़कर पदों से भाग देने की आवश्यकता नहीं होती है।

5 भूयिष्ठक ज्ञात करने से समंक समूह की अधिकतम एवं निम्नतम संख्या की जानकारी की आवश्यकता भी नहीं होती है बशर्ते कि यदि वे समंक भूयिष्ठक वर्ग से सम्बन्धित नहीं हैं।

6 भूयिष्ठक की गणना के लिए बहुत अधिक औपचारिकताओं की भी आवश्यकता नहीं होती है। कभी-कभी केवल सरल दण्ड चित्र (Bar Diagram) अथवा ग्राफ (Graph) द्वारा भी दर्शाया जा सकता है।

भूयिष्ठक के उपरोक्त लाभों के आधार पर हम कह सकते हैं कि भूयिष्ठक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माध्य है। यह सर्वाधिक मूल्य वाला पद होता है अत उद्योगों में इसका अत्यन्त महत्त्व है। प्रजातन्त्र के युग में बहुमत के आधार पर ही प्रतिनिधि का चुनाव होता है, जब एक भूयिष्ठक मशीन या भूयिष्ठक श्रमिक (Model Machine or Model Labourer) मालूम हो जाता है तो उद्योगपति वैसी ही अधिक मशीनें लगाने का प्रयास करता है ताकि उसे अधिकतम लाभ हो सके। ऐसी मशीनें जो भूयिष्ठक मशीन से कम उत्पादन देती हैं उनमें उचित सुधार की व्यवस्था की जाती है या उन्हें बदल दिया जाता है। इसी प्रकार, इसके अतिरिक्त कम उत्पादन देने वाली मशीनों एवं श्रमिकों की ओर भी उत्पादक का ध्यान आकर्षित हो जाता है।

इसी प्रकार जलवायु विभाग (Mateorological Department) भी तापमान, वर्षा, वायु-गति आदि के आधार पर प्रत्येक क्षेत्र में भूयिष्ठक-स्थानों का निर्धारण कर लेता है और कुछ भूयिष्ठक स्थान ही सारे देश की जलवायु आदि की

तुलना मे बहुत सहायक होते हैं। मूयिष्ठक की व्यावहारिक उपयोगिता भी अधिक है। अनेक वस्तुओं जैसे—जूते, फैशनेबल वस्त्र आदि की एक प्रचलित माप की प्रवृत्ति पहले से ही ज्ञात हो जाती है।

मूयिष्ठक के दोष/सीमाएँ (Disadvantages/Limitations of Mode)—मूयिष्ठक के लाभ एवं महत्त्व को देखने से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि मूयिष्ठक में कोई कमियाँ या दोष नहीं हैं। अनेक दशाओं में मूयिष्ठक की गणना के द्वारा तथ्यों की वास्तविकता को समझ सकना अत्यधिक कठिन होता है। अतः हमें मूयिष्ठक के दोषों व सीमाओं को भी देखना चाहिए। इसमें प्रमुखतः निम्न कमियाँ पाई जाती हैं—

1 मूयिष्ठक अनेक बार वास्तविकता से दूर, भ्रान्तिपूर्ण या सन्देहपूर्ण होता है। 'बाघ' ने लिखा है कि "यदि एक समक श्रेणी में पदों की संख्या बहुत कम होती है तो इसके आधार पर प्राप्त किया गया मूयिष्ठक बिल्कुल अव्यावहारिक होता है।"

2 समक श्रेणी में यदि पद-मूल्य केवल एक संख्या के रूप में होता है तो मूयिष्ठक अधिक सही हो सकता है लेकिन यदि पद-मूल्य एक वर्गान्तर के रूप में हो तो उससे ज्ञात होने वाला बहुलक अत्यधिक अनिश्चित एवं सन्देहपूर्ण बना रहता है।

3 अनेक बार समक श्रेणी में एक से अधिक मूयिष्ठक होने पर उनका निर्धारण करना कठिन हो जाता है। इससे अनिश्चितता भी उत्पन्न होती है। आर लोवडे (R Loveday) के अनुसार "समूहों में आने वाले अवलोकनों में सूक्ष्मतापूर्वक मूयिष्ठक का निर्धारण सरल कार्य नहीं है।"

4 मूयिष्ठक अनेक महत्त्वपूर्ण परन्तु असामान्य मूल्यों को छोड़ देता है तथा सम्पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं होता है। एफ सी मिल्स ने लिखा है 'अनुमानित मूयिष्ठक का निर्धारण करना जितना सरल है, वास्तविक मूयिष्ठक का निर्धारण करना वास्तव में उतना ही कठिन है।'

5 मूयिष्ठक की गणना आवृत्तियों के आधार पर की जाती है अतः इसे बीजगणितीय पद्धति से ज्ञात नहीं किया जा सकता।

6 यदि मूयिष्ठक का मूल्य एवं कुल पदों की संख्या ज्ञात हो तो उनका गुणा करके समक श्रेणी में स्थित सभी पद-मूल्यों के योग को ज्ञात नहीं किया जा सकता। मूयिष्ठक की यह सांख्यिकीय दुर्बलता है।

मध्यका
(Median)

मध्यका (Median) एक स्थिति सम्बन्धी माध्य है। ऐसे माध्य जो कि किसी समक-श्रेणी के अन्तर्गत किसी विशेष स्थिति को दर्शाते हैं या जिन्हें किसी विशिष्ट स्थिति पर निर्धारित किया जाता है, स्थिति सम्बन्धी माध्य (Averages of Position) कहा जाता है।

मध्यका किसी समक श्रेणी (Statistical Series) के 'मध्य वाले पद' के मूल्य को कहते हैं जबकि किसी समक श्रेणी के मूल्यो को आरोही (Ascending) अथवा अवरोही (Descending) क्रम मे व्यवस्थित कर लिया जाता है। इस प्रकार मध्यका समक श्रेणी को दो बराबर भागो मे विभाजित करती है। मध्यका के एक भाग मे सभी पद मध्यका से छोटे एव दूसरे भाग मे सभी पद मध्यका से बड होगे।

उदाहरण के लिए यदि एक परिवार के पाँच भाइयो की लम्बाई क्रमश 48", 52", 63", 67" एव 69" है तो 63" लम्बाई मध्यिका कही जाएगी। 63" स कम दो भाइया की लम्बाई है, एव 63" से अधिक भी दो भाइयों की लम्बाई है।

इस प्रकार आरोही अथवा अवरोही, किसी क्रम की शृ खला मे समस्त श्रेणी अथवा पदो के अर्द्ध बिन्दु पर निर्धारित पद का मूल्य ही मध्यका मानी जाएगी। हमे ध्यान रखना चाहिए कि मध्य पद स्वय ही मध्यका नहीं होती है, बल्कि उस पद का माप अथवा मूल्य मध्यिका मानी जाती है।

मध्यका को भी अनेक विद्वानो ने परिभाषित किया है—

कोनोर (Connor) ने 'स्टेटिस्टिक्स इन थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस' मे लिखा है कि 'मध्यका समक श्रेणी का वह पद मूल्य है जो समूह को दो समान भागो मे इस प्रकार विभाजित करता है कि एक भाग मे समस्त मूल्य मध्यका से अधिक और दूसरे भाग मे समस्त मूल्य मध्यका से कम होते हैं।"[1]

डॉ जे सी चतुर्वेदी (Dr J C Chaturvedi) के अनुसार "यदि एक श्रेणी के पदो को उनके परिणामो के आधार पर आरोही अथवा अवरोही क्रमो से लगाया जाए तो बिल्कुल मध्य वाली राशि के मान (मूल्य) अथवा माप को ही मध्यका कहा जाएगा।[2]

डी एन. एलहस (D N Elhance) के अनुसार "जब तक समक श्रेणी आरोही अथवा अवरोही क्रम मे व्यवस्थित होती है तो इस समक श्रेणी को दो बराबर भागो मे विभाजित करने वाले मूल्य को हम मध्यांक या मध्यका कहते हैं।"[3]

ए ई. वाघ (A E Waugh) ने लिखा है कि "यदि हम समस्त मूल्यो को आकार के क्रम मे व्यवस्थित करें तो सबसे कम मूल्य एक ओर एव सबसे अधिक मूल्य दूसरी ओर हो और तब यदि हम एक मूल्य का चयन इस प्रकार करें कि इसके दोनो ओर इकाइयो की सख्या समान हो तो इस प्रकार चुना हुआ मूल्य मध्यका होगा।'[4]

1 *Connor* Statistics in Theory and Practice, p 89
2 *Dr J C Chaturvedi* Mathematical Statistics, 1961 p 106
3 *D N Elhance* Fundamentals of Statistics, p. 118
4 *A E Waugh* Elements of Statistical Methods, p 66.

सेक्रिस्ट (Secrist) के अनुसार "एक श्रेणी की मध्यका आकार के आधार पर क्रमबद्ध करने पर उस पद का ऐसा अनुमानित अथवा वास्तविक मूल्य है जो वितरण को दो भागो मे विभक्त कर देता है।"

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओ से हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि किसी समक श्रेणी के मूल्यो को यदि आरोही (चढते हुए) अथवा अवरोही (गिरते हुए) क्रम मे व्यवस्थित कर लिया जाए तो जो मूल्य मध्य बिन्दु होगा वही 'मध्यका' कहलाएगा। मध्यका से पहले वाली आवृत्तियो व बाद वाली आवृत्तियो की सख्या सदा समान होगी क्योंकि यह श्रेणी को बिल्कुल दो बराबर भागो मे बाँट देता है एव स्वय 'मध्य' मे उपस्थित होता है।

मध्यका की विशेषताएँ (Characteristics of Median)—मध्यका की *उपरोक्त परिभाषाओ के आधार पर इसकी निम्नांकित विशेषताएं निकाली जा* सकती हैं—

1 *मध्यका समक श्रेणी के बिल्कुल मध्य भाग पर केन्द्रित होती है।*
2 मध्यका सम्पूर्ण श्रेणी को दो बराबर भागो मे विभाजित करती है, जिसमे से एक भाग मे मध्यिका से कम एव दूसरे भाग मे मध्यका से *अधिक मूल्य होता है।*
3. मध्यका के लिए समक श्रेणी को आरोही अथवा अवरोही क्रम मे व्यवस्थित कर लिया जाना है।
4 मध्यका स्वय मध्य वाला पद नही होता बल्कि उस पद का मूल्य *मध्यका माना जाता है।*
5 मध्यका को प्राय पद-मूल्यो की क्रमिक वृद्धि पर ही आधारित किया जाता है।

मध्यका का परिकलन (Calculation of Median)—मध्यका का परिकलन भी श्रेणियों के अनुरूप किया जाता है।

व्यक्तिगत श्रेणी—व्यक्तिगत श्रेणी मे मध्यका निकालने के लिए निम्न कार्य करने होते हैं—

1 सबसे पहले श्रेणी को आरोही या अवरोही क्रम मे व्यवस्थित करेंगे।
2 श्रेणी मे क्रम सख्या लिखेंगे।
3 निम्न सूत्र का प्रयोग कर मध्यिका का निर्धारण करेंगे—

$$M = \text{the size of } \left(\frac{N+1}{2}\right) \text{th item}$$

सूत्र की व्याख्या इस प्रकार है—

M=मध्यका (Median)
N=मदो की सख्या (Number of items)

उदाहरण—निम्न सात मजदूरो की मध्यका मजदूरी ज्ञात कीजिए रुपयो मे 80, 70, 110, 100, 120, 115, 114

हल—

क्रम सख्या	मजदूरी
1	70
2	80
3	100
4	110
5	114
6	115
7	120

अत रु 110 मध्यका है, क्योकि यह श्रेणी का चौथा मद है।

उदाहरण—निम्न समको से मध्यका ज्ञात कीजिए—

रोल न	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
प्रक	10	27	24	12	25	27	20	15	18	29

हल—

रोल न	प्रक
1	10
2	12
3	15
4	18
5	20
6	24
7	25
8	27
9	27
10	29

$M =$ the size of $\left(\frac{N+1}{2}\right)$ th item

$M =$ the size of $\left(\frac{10+1}{2}\right)$ th item

$M =$ the size of 5 5 th item

5 5वें पद के मूल्य को इस प्रकार ज्ञात करेंगे—

$$\frac{20+24}{2}=\frac{44}{2}=22 \qquad M=22 \text{ Ans}$$

उदाहरण—एक मानसिक योग्यता परीक्षण मे विश्वविद्यालय के विद्यार्थियो के एक समूह द्वारा अग्रलिखित प्रक प्राप्त किए गए। इन आँकडो को समूह म जमाकर मध्यका ज्ञात कीजिए—

71	61	54	50
70	60	54	50
69	59	54	49
69	58	54	47
69	58	53	40
64	57	52	39
64	56	52	34
63	55	51	30

(राज. वि. वि. 1984)

हल—

क. स.	पदो का मूल्य
1	30
2	34
3	39
4	40
5	47
6	49
7	50
8	50
9	51
10	52
11	52
12	53
13	54
14	54
15	54
16	54
17	55
18	56
19	57
20	58
21	58
22	59
23	60
24	61
25	63
26	64
27	64
28	69
29	69
30	69
31	70
32	71

$M=$ the size of $\left(\frac{N+1}{2}\right)$ th item

$M=$ the size of $\left(\frac{32+1}{2}\right)$ th item

$M=$ the size of $\left(\frac{33}{2}\right)$ th item.

$M=$ the size of 16 5 th item

16 5 वें पद के मूल्य को इस प्रकार निकालेंगे—

$$\frac{54+55}{2}=\frac{109}{2}=54\ 5$$

M=54 5 Ans

खण्डित श्रेणी (Discrete Series)

(i) सर्वप्रथम संचयी आवृत्तियाँ ज्ञात की जाती है।

(ii) मध्यका पद सूत्र $\left(\frac{N+1}{2}\right)$ द्वारा ज्ञात किया जाता है।

(iii) मध्यका पद संख्या प्रथम बार जिस संचयी आवृत्ति म सम्मिलित होती है, उसका मूल्य ही मध्यका होता है।

उदाहरण—निम्न श्रेणी का मध्यका ज्ञात कीजिए—

Size	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15
Frequency	40	48	52	56	60	63	57	55	50	52	41	57

हल— मध्यका मूल्य की गणना (खण्डित श्रेणी)

Size	Frequency	Cumulative Frequency
4	40	40
5	48	88
6	52	140
7	56	196
8	60	256
9	63	319
10	57	376
11	55	431
12	50	481
13	52	533
14	41	574
15	57	631
	$N=631$	

$$M = \text{Size of } \left(\frac{N+1}{2}\right) \text{ item}$$

$$M = \text{Size of } \left(\frac{631+1}{2}\right)^{\text{th}} \text{ item} = 316$$

$$= \text{Size of } 316^{th} \text{ item} = 9 \qquad \text{मध्यका} = 9$$

यहाँ मध्यका पद 316 ग्राता है, यह पद प्रथम बार 319 सचयी ग्रावृत्ति मे सम्मिलित है ग्रत 319 सचयी ग्रावृत्ति का मूल्य 9 ही मध्यका होगा क्योकि 257 से 319 तक की सभी इकाइयो का मूल्य 9 है, ग्रत 316 का मूल्य भी 9 होगा।

सतत श्रेणी (Continuous Series)

ग्रविच्छिन्न श्रेणी मे मध्यका मूल्य का निर्धारण निम्न प्रकार से किया जाता है—

(i) श्रेणी की सचयी ग्रावृत्तियाँ ज्ञात की जाती है।

(ii) मध्यका पद$\left(\frac{N}{2}\right)$ सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है। ग्रविच्छिन्न श्रेणी मे $\left(\frac{N+1}{2}\right)$ का प्रयोग नही किया जाता, क्योकि श्रेणी को ग्रारोही या ग्रवरोही क्रम मे रखने पर मध्यका का मूल्य समान प्राप्त नही होता। ग्रत $\left(\frac{N}{2}\right)$ का ही प्रयोग किया जाता है, इससे ग्रारोही एव ग्रवरोही क्रम मे प्राप्त मध्यका मूल्य समान होता है।

(iii) मध्यका-वर्गान्तर (Median class interval) ज्ञात किया जाता है। मध्यका पद सर्वप्रथम जिस वर्ग की सचयी ग्रावृत्ति मे सम्मिलित होता है, वही वर्ग मध्यका वर्गान्तर कहलाता है।

(iv) मध्यका वर्गान्तर मे मध्यका मूल्य का निर्धारण निम्न सूत्र के प्रयोग द्वारा किया जाता है—

$$M = l_1 + \frac{i}{f}(m - c) \text{ या } M = l_1 + \frac{i}{f}\left(\frac{N}{2} - c\right)$$

M = मध्यका (Median)

l_1 = मध्यका वर्ग की निम्न सीमा (Lower limit of median class)

i = मध्यका वर्ग का विस्तार (Magnitude of class interval of median class)

f = मध्यका वर्ग की ग्रावृत्ति (Frequency of the median class)

m = मध्यका पद $\left(\frac{N}{2}\right.$ से प्राप्त मूल्य $\left.\right)$ (Median item)

c = मध्यका वर्ग से पूर्व की सचयी आवृत्ति (Cumulative frequency of the preceeding group of the median class)

यदि समक अवरोही क्रम मे हैं तो निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है—

$$M = l_2 - \frac{i}{f}(m - c)$$

यहाँ l_2 से तात्पर्य मध्यका वर्ग की ऊपरी सीमा से है।

उदाहरण—

निम्न आवृत्ति वितरण से मध्यका की गणना कीजिए—

Marks	No of Students	Marks	No of Students
10–20	110	40–50	45
20–30	125	50–60	18
30–40	86	60–70	12

हल— मध्यका मूल्य का निर्धारण (अविच्छिन्न श्रेणी)

आरोही एव अवरोही क्रम

Marks	No of Students f	cf	Marks	f	cf
10–20	110	110 c	60–70	12	12
20–30	125 f	235	50–60	18	30
30–40	86	321	40–50	45	75
40–50	45	366	30–40	86	161 c
50–60	18	284	20–30	125 f	286
60–70	12	396	10–20	110	299

$$\text{मध्यका पद} = \frac{N}{2} = \frac{396}{2} = 198$$

आरोही क्रम—

$$M = l_1 + \frac{i}{f}(m - c)$$

$$= 20 + \frac{10}{125}(198 - 110)$$

$$= 20 + \frac{10}{125} \times 88 = 20 + \frac{880}{125}$$

$$= 20 + 7\ 04 = 27\ 04$$

$M = 27\ 04$ Ans

अवरोही क्रम—

$$M = l_2 - \frac{i}{f}(m - c)$$

$$= 30 - \frac{10}{125}(198 - 161)$$

$$= 30 - \frac{10}{125} \times 37 = 30 - \frac{370}{125}$$

$$= 30 - 2\ 96 = 27\ 04$$

$$M = 27\ 04 \quad \text{Ans}$$

मध्यका के गुण—(1) मध्यका म सरलता का गुण विद्यमान है, क्योंकि इसे समझना और ज्ञात करना सरल है।

(2) मध्यका श्रेणी के मध्य म स्थित मूल्य होता है अत यह सीमान्त मूल्यो से प्रभावित नही होता है।

(3) मध्यका का निर्धारण निश्चितता स किया जा सकता है यह बहुलक की तरह अनिश्चित नही होता है।

(4) खुले सिरे वाली श्रेणी से भी मध्यका ज्ञात किया जा सकता है।

(5) मध्यका की गणना रेखाचित्र द्वारा भी की जा सकती है।

मध्यका के दोष—(1) मध्यका मूल्य निर्धारण के लिए समको का आरोही या अवरोही क्रम मे अनुविन्यस्त करना होता है।

(2) अविच्छिन्न श्रेणी म तो मध्यका निर्धारण इस मान्यता के आधार पर किया जाता है कि वर्गान्तर म आवृत्तियाँ समान रूप स अनुविन्यस्त है किन्तु यह मान्यता वास्तविक नही है।

(3) मध्यका मूल्य एव पदो की सख्या दी हुई हो तो हम सभी पदो क मूल्यो का योग प्राप्त नही कर सकते, अत उच्चतर गणितीय क्रियाओ म इसका प्रयोग बहुत कम किया जाता है।

(4) मध्यका पद मूल्यो के आकार से प्रभावित न होकर केवल पदो की सख्या स प्रभावित होता है अत श्रेणी का सही प्रतिनिधित्व नही कर सकता है।

(5) आवृत्तियो क अनियमित होन पर एव पदो की सख्या बहुत कम होन पर मध्यका केन्द्रीय प्रवृत्ति की सही माप नही कर सकता है।

(6) यदि पदो की सख्या सम (Even) है तो मध्यका किसी पद विशेष का वास्तविक मूल्य नही होता है, दो पदो के मध्य मूल्य को ही मध्यका मान लिया जाता है।

उपयोग—उपरोक्त दोषो के होते हुए भी गुणात्मक तथ्यो एव सामाजिक समस्याओ, जैसे—बुद्धिमत्ता स्वास्थ्य मजदूरी स्तर सम्पत्ति वितरण आदि क अध्ययन म मध्यका का प्रयोग किया जाता है। जहाँ सभी पद मूल्यो को महत्त्व देना आवश्यक हो वहाँ मध्यका का प्रयोग उचित नहीं है।

सामाजिक अनुसन्धान मे माध्य भूयिष्ठक एव मध्यका का महत्त्व (Importance of Mean Mode and Median in Social Research) — माध्य, भूयिष्ठक एव मध्यका किसी सीमा तक भिन्न प्रकार की आधार-सामग्रिया

के लिए प्रयुक्त होते हैं और हमें भिन्न प्रकार की जानकारी देते हैं। यदि हम किसी निदर्शन (Sampling) का अध्ययन कर रहे हो तो सामान्यत माध्य (Mean) सबसे उपयुक्त रहता है, स्पष्ट है कि किसी समग्र (Universe) के निदर्शनो मे कुछ न कुछ भेद होगा। उसके माध्य, मूयिष्ठक एव मध्यका सभी कुछ न कुछ भिन्न होगे। किन्तु विभिन्न निदर्शनो के माध्यो मे सबसे कम भेद होगा। दूसरे शब्दो म यह कहा जा सकता है कि माध्य केन्द्रीय प्रवृत्ति की सबसे स्थिर माप है। इसलिए जब सन्देह हो कि कौनसा माप प्रयोग किया जाए तो माध्य ही सबसे ठीक रहता है।

मूयिष्ठक तब उपयोगी होता है जब दो या अधिक समग्रो का मिश्रण हो। ऐसी स्थिति मे माध्य या मध्यका केन्द्रीय प्रवृत्ति को भली-भाँति नहीं बता सकते। यदि दो समग्रो का मिश्रण हो तो मूयिष्ठक भी दो मिलने की सम्भावना रहती है और ये उन समग्रो की अलग-अलग केन्द्रीय प्रवृत्तियाँ बताएँगी। जैसे यदि किसी कक्षा में दो प्रकार के विद्यार्थी हों, एक वे जो सप्ताह में दो बार सिनेमा देखते हों एव दूसरे प्रकार के महीने मे एक बार, तो दो मूयिष्ठक ज्ञात करना अधिक महत्त्वपूर्ण होगा बजाय इसके कि कुल विद्यार्थियो का माध्य या मध्यका निकाल दी जाए।

मध्यका तब उपयोगी होती है जब वितरण असीमित हो अर्थात् बहुत कम एवं बहुत अधिक अंको मे सन्तुलन न हो। जैसे आमदनी के अध्ययन के लिए सामान्यत मध्यका निकाली जाती है क्योंकि कुछ बहुत गरीब एवं कुछ बहुत अमीर लोगो के होने से मध्यका पर उतना प्रभाव नहीं पडता, जितना 'माध्य' पर पडता है।

यहाँ हमे यह ध्यान रखना चाहिए कि किसी भी अध्ययन मे बहुत-से चर होते हैं। इनकी प्रवृत्ति भिन्न-भिन्न होती है। किसके लिए केन्द्रीय प्रवृत्ति या औसत की कौन-सी माप प्रयुक्त करनी है तो यह निर्णय अनुसन्धानकर्ता को ही करना होता है।